एस. आर. रैलन बी० कॉम० (ऑनर्स) (बरमिंघम)
उपाचार्य, विक्रमजीतसिंह सनातन धर्म कॉलिज, कानपुर
एवं
तान्त्रिक सलाहकार, यू० पी० चैम्बर ऑफ कॉमर्स

तथा

पी. एल. गोलवलकर एम० ए०, बी० कॉम०
वाणिज्य विभाग, विक्टोरिया कॉलिज, ग्वालियर

रामप्रसाद एण्ड सन्स
पुस्तक प्रकाशक, आगरा

प्रथम संस्करण : दिसम्बर १६५०

आवरण-चित्र—श्री मथुराप्रसाद

मुद्रक—अमृत इलैक्ट्रिक प्रेस, बेलनगंज, आगरा।

प्रकाशक—रामप्रसाद एण्ड सन्स, हौसपीटल रोड, आगरा।

मूल्य पाँच रुपया

अधिकोषण

अनुक्रमणिका (द्वितीय भाग)

द्वितीय भाग

अध्याय १

अधिकोष : विकास, परिभाषा एवं कार्य ।

'अधिकोष'—इस शब्द की कल्पना से ही हमारे सामने एक बड़ा एवं भव्य भवन तथा उसमें काम करनेवाले अनेक लिपिक (क्लार्क) कार्य में व्यस्त दिखलाई पड़ने लगते हैं और हम यह सोचने लगते हैं कि आखिर ये सवेरे से शाम तक किस काम में इतने संलग्न रहते हैं। इसी प्रकार भवन में प्रवेश करते ही हमको अनेक गणित्र (Counter) दिखाई देते हैं जिनमें प्रत्येक पर एक-एक लिपिक बैठा रहता है। इनका जरा-सा भी समय बेकार कामों में नहीं जाता।

वह देखिये एक व्यक्ति आया और उसने अपना धनादेश (Cheque) उस गणित्र के लिपिक को दे दिया जिस पर 'धनादेश' आदि अङ्कित हैं। लिपिक ने तुरंत ही प्रपंजी (Ledger) निकाल कर धनादेश देनेवाले का खाता देखा। खाता देखकर धनादेश को प्रपंजी सहित लेखापाल (Accountant) के पास भेजा। लेखापाल ने उस खाते में उस व्यक्ति की पर्याप्त रकम है यह देख कर धनादेश पर मुद्रा (मोहर) लगादी तथा अपने हस्ताक्षर कर दिये। अब यह धनादेश उसने रोकड़िया (Cashier) के पास भेजा। रोकड़िया ने उस व्यक्ति का क्रमांक आते ही उसे धनादेश में अंकित रकम दे दी। यह हुआ एक व्यवहार का उदाहरण। अधिकोषों में ऐसे अनेक व्यवहार प्रतिदिन हुआ करते हैं। कोई धनादेश आदि के अथवा अपने निजी खाते के पैसे निकालता है, कोई धनादेश आदि की रकम अपने खाते में जमा कराता है और कोई रोकड़ आदि जमा कराने आता है। इस प्रकार अधिकोषों में केवल मुद्रा एवं साख सम्बन्धी व्यवहार हुआ करते हैं। अधिकोष अनेक प्रकार के कार्य करते हैं। केवल इतना ही नहीं, अपितु वर्तमान आर्थिक जगत में अधिकोषों को प्रमुख स्थान प्राप्त है। वे आज के व्यापार एवं औद्योगिक व्यवस्था की उन्नति एवं विकास के लिए एक महत्वपूर्ण साधन हैं, क्योंकि इन्हीं अधिकोषों

द्वारा उनकी चलित पूँजी (Circulating Capital) की पूर्ति होती रहती है। जिन लोगों के पास थोड़ा-सा धन है उनसे अधिकोप वह धन निक्षेप (Deposit) के रूप में लेकर उसको औद्योगिक तथा आर्थिक कार्यों के विकास के लिए विनियोग में लाते हैं। इस प्रकार एक ओर तो वे धन को औद्योगिक विकास के लिए हस्तांतरित करते हैं और दूसरी ओर जिन लोगों से यह धन वे निक्षेप के रूप में लेते हैं उनको भी व्याज देकर अतिरिक्त प्राप्ति कराते हैं। इस महत्व के कारण ही अधिकोपण का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

अधिकोप : इस संस्था का विकास :

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या यह सब कार्य अधिकोप एकदम करने लग गये ? नहीं, अधिकोपों का विकास बहुत पूर्वकाल से होते होते वर्तमान स्तर पर पहुँचा है। यह अधिकोप के अंगरेज़ी पर्याय बैंक (Bank) शब्द की उत्पत्ति से स्पष्ट हो जाता है। बैंक शब्द की उत्पत्ति बैंको (Banco) से हुई जिसका अर्थ है—बेंच के आसपास बैठना (To sit around the benches); अर्थात् सर्राफ़ या धनी लोग विभिन्न मुद्राओं का परिवर्तन बेंचों पर बैठ कर किया करते थे। ऐसा अनुमान करना स्वाभाविक भी है। इस प्रकार सर्राफ़ विभिन्न मुद्राओं को बदलने का प्रमुख कार्य आरंभ में करते थे जिससे परदेश के यात्रियों तथा व्यापारियों को सुविधा होती थी। इसके बाद इनकी साख तथा उसमें जनता का विश्वास होने के कारण कालांतर में लोग अपने पास की अधिक मुद्राएँ सुरक्षा की दृष्टि से इन्हीं सर्राफ़ों के पास अमानत (धरोहर) के रूप में रखने लगे, जिसे वे चाहें जिस समय अपने उपयोग के लिए वापस ले सकते थे। इस अमानत के बदले सर्राफ़ उन्हें रसीद देते थे। इस सुरक्षा के बदले में सर्राफ़ आरंभ में कुछ शुल्क (fees) भी लिया करते थे। साथ ही साथ वे सर्राफ़ अपने पास का अतिरिक्त धन ऋण के रूप में दूसरों को व्याज पर दिया करते थे। कुछ काल बीतने पर उन्हें यह अनुभव हुआ कि लोग जितना धन इनके पास अमानत अथवा निक्षेप के रूप में जमा करते थे, उसमें से बहुत ही कम वे निकालते थे और शेष सर्राफ़ों के पास बेकार पड़ा रहता था। यह देखकर क्रमशः उन्होंने इस अतिरिक्त धन को भी व्याज पर देना आरंभ कर दिया और अमानत पर शुल्क लेना बंद कर उलटा व्याज देना शुरू किया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके पास अमानतें बढ़ने लगीं। व्याज देने की दर व्याज लेने की दर से कम होती थी और इस प्रकार सर्राफ़ लाभ उठाते थे। यहीं से निक्षेप अधिकोपण (Deposit Banking) का आरंभ हुआ।

ऊपर बतलाया गया है कि जनता की अमानत के बदले सर्राफ रसीदें देते थे। सर्राफों की साख के कारण ये रसीदें क्रमशः उनके क्षेत्र में ऋण आदि व्यवहारों के भुगतान में स्वीकृत होने लगीं। यह देखकर कि उनकी साख के कारण उनकी रसीदें चल सकती हैं उन्होंने सोचा कि आगे किसी को ऋण देना हो तो मुद्रा में न देकर 'माँग पर भुगतान करने का वचन' वाले पत्र (Promise to pay the bearer on demand) देना अधिक लाभप्रद होगा और ऐसे ही पत्र देना आरंभ कर दिया। इन्हीं पत्रों से पत्र-मुद्रा (Paper money) का आरंभ हुआ तथा पहली रसीदों में भुगतान करने की पद्धति से धनादेश (Cheque) पद्धति का आरंभ हुआ।

इस व्यापार में अधिकाधिक लाभ होता देख कर अनेक नये नये व्यक्ति भी ऐसा व्यापार करने लगे और क्रमशः अधिकोपण का विकास होता गया। आधुनिक अधिकोष निक्षेप स्वीकृत करते हैं, ऋण देते हैं तथा निक्षेप, आवश्यकता पड़ने पर, कोई व्यक्ति, किसी भी समय धनादेश द्वारा निकाल सकता है। यही आधुनिक अधिकोषों का मुख्य कार्य है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा के लिए आभूषण, स्वर्ण आदि का रखना, पत्र-मुद्राओं का चलाना, साख का नियमन करना तथा अपने ग्राहकों को मुद्रा-सम्बन्धी अनेक प्रकार की सुविधाएँ देना—ये सब कार्य भी अधिकोष करते हैं। (इन कार्यों का विवेचन आगे होगा)। इस प्रकार आधुनिक अधिकोषों का, जो वर्तमान आर्थिक एवं व्यापारिक ढाँचे का एक प्रमुख अङ्ग हैं, क्रमशः विकास हुआ है।

भारतीय अधिकोपण का विकास एवं उत्क्रांति :

गत अनेक शताब्दियों से भारत में अधिकोपण का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहा है। इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए चार्वाक् का 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'—यह श्लोकार्द्ध स्पष्ट बतलाता है कि भारत में ऋण दिये जाते थे। इसी प्रकार द्यूतक्रीड़ा के समय ऋण का आदान प्रदान होता था। इसके भी उदाहरण महाभारतादि में उपलब्ध हैं। बारहवीं शताब्दि में जैनों द्वारा अधिकोपण का कार्य किया जाता था। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आबू पर्वत पर स्थित और ११६७—१२४७ ई० के बीच निर्मित, दिलवारा देवालय है। तेरहवीं शताब्दि में टेवर्नियर नामक फ्रांसीसी यात्री भारत के विषय में लिखता है कि बहुधा प्रत्येक देहात में एक मुद्रा-परिवर्तनकर्त्ता रहता था, जिसे सर्राफ कहते थे और ये ही सर्राफ अधिकोषों का कार्य भी करते थे अर्थात् मुद्राओं का स्थानान्तरण (Remittances), विनिमय-पत्र देना इत्यादि। ये सर्राफ लोग ज्यू जाति से—जो इसी काल में अधिकोषों का कुछ कार्य करते थे—भी बढ़े चढ़े थे। अधिकोपण की उत्क्रांति एवं पर्याप्त

विकास मनुस्मृति से पहले भी हो चुका था, ऐसा मनुस्मृति से स्पष्ट होता है, जहाँ पर स्मृतिकार 'रहन तथा निक्षेप' के विषय पर लिखता है "कि एक सुज्ञ व्यक्ति को अपना धन ऐसे व्यक्ति के पास निक्षेप रखना चाहिए जो कुलीन हो, सच्चरित्र हो, विधान का ज्ञाता हो तथा माननीय एवं धनी हो।" कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में अधिकोषण-पद्धति के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है किन्तु उस काल में अधिकोषों के कार्य निक्षेप एवं ऋणों की स्वीकृति एवं ऋण-दान तक ही सीमित थे। हुंडियों के चलन का उल्लेख भी बहुत प्राचीन काल से हमारे साहित्य में मिलता है परंतु फिर भी आंग्ल पद्धति पर अधिकोषण-संगठन की उत्क्रांति एवं विकास यहाँ पर अंगरेजों के आगमन के बाद ही हुआ।

अधिकोष की परिभाषा :

हमने ऊपर देखा कि आधुनिक अधिकोष निक्षेप स्वीकृत करते हैं, दूसरों से ऋण लेते हैं तथा दूसरों को ऋण देते हैं। इसके अतिरिक्त अपने ग्राहकों को अनेक प्रकार की सुविधाएं देते हैं—जैसे उनके आभूषण आदि की सुरक्षा, धनादेशों का संग्रहण (Collection), आगोप (Insurance) की प्रव्याजि (Premium) भेजना, गुप्त रूप से किसी भी ग्राहक की आर्थिक परिस्थिति की जानकारी लेना तथा देना आदि। सब प्रकार के कार्यों की करने वाली संस्था अर्थात् अधिकोष की ठीक ठीक परिभाषा करना एक कठिन तथा महत्त्वपूर्ण समस्या है क्योंकि भिन्न-भिन्न लेखकों ने अधिकोष की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की हैं।

अधिकोष शब्द का अर्थ है—"अपने ग्राहकों से अथवा ग्राहकों द्वारा प्राप्त मुद्राओं की सुरक्षा करनेवाली संस्था। इसका महत्त्वपूर्ण कार्य उसके ऊपर आहरित (drawn) विकर्षों (drafts) का भुगतान करना, उनका जो पैसा निरुपयोगी रह जाता है, उसके उपयोग से उसे लाभ होता है।[१] इस अर्थ से हम केवल यह समझ सकते हैं कि अधिकोष निक्षेप स्वीकृत करते हैं जिनका भुगतान उन्हें ग्राहकों के विकर्षों द्वारा माँग होने पर करना पड़ता है। कोई वैधानिक परिभाषा १७७२ तक इसकी उपलब्ध न थी किंतु १८८१ में इङ्गलैंड के विनिमय पत्र विधान १८८२ में सर्व प्रथम की गई जिसके अनुसार "अधिकोषिक (Banker) के अन्तर्गत कोई भी व्यक्तियों का समूह जो

---

[१] *An establishment for the custody of money received from or on behalf of its customers. Its essential duty is to pay their drafts on it, its profits arise from the use of the money left unemployed by them."*

A Shorter Oxford English Dictionary.

अधिकोपण-व्यापार करता है—फिर चाहे वह समामेलित (Incorporated) हो अथवा नहीं—आता है"[1]; लेकिन इस परिभाषा में इसका न तो उल्लेख है न स्पष्टीकरण कि अधिकोपण क्या है अथवा अधिकोपण व्यापार किसे कहा जा सकता है। अतः यह परिभाषा ठीक नहीं कही जा सकती। संयुक्त राष्ट्र में अधिकोष शब्द का प्रयोग शिथिल (Loose) रूप में किया जा सकता है और इसके अन्तर्गत वे सब कार्य समाविष्ट होते हैं जो अधिकोष करते हैं। इसके अनुसार "वह संस्था जो साख का व्यवहार करती है अधिकोष है।"[2] किंतु साख के व्यवहार क्या हैं, इसका स्पष्टीकरण उनके विधान में किया गया है जिसके अनुसार, "अधिकोष के अन्तर्गत व्यक्ति का, सार्थ (firm) का, प्रमंडल (Company) का समावेश होता है, जहाँ निक्षेप द्वारा, मुद्रा-संग्रहण द्वारा साख खोली जाती है एवं जिसका भुगतान विकर्ष, धनादेश अथवा आदेश द्वारा होता है, अथवा स्कंध आदि पर मुद्राएँ अथवा ऋण दिये जाते हैं तथा जिसका व्यापारिक स्थान होता है।"[3]

इस परिभाषा से अधिकोषों के प्रमुख कार्यों का चित्रण स्पष्ट होता है। पहले तो उसे निक्षेप स्वीकृत करना चाहिए जिसका धनादेश आदि द्वारा माँग पर भुगतान हो। दूसरे उसका साख में व्यवहार होना चाहिए। किंतु इस परिभाषा में जब तक 'साख क्या है ?' इसका स्पष्टीकरण नहीं होता तब तक यह परिभाषा भी अपूर्ण रहती है और इससे हमको अधिकोषों के कार्यों का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। अधिकोष की परिभाषा डॉ० हार्ट—"अधिकोषिक वह है जो अपने सामान्य व्यवहारों में उस पर आहरित किये हुए उन धनादेशों का भुगतान करता है जिनके द्वारा वह चल-लेखा (Current Account) पर मुद्राएँ (धन) प्राप्त करता है।[4] परंतु यह परिभाषा भी अपूर्ण है क्योंकि अधिकोषिक केवल उन्हीं लोगों के धनादेशों का भुगतान नहीं करता जिनके

---

[1] *A banker includes any body of persons whether incorporated or not who carry on the business of banking.—The Bills of Exchange Act 1882.*

[2] *Any institution dealing in credit is a Bank.*

[3] *By a Bank, we include every person, firm or company having a place of business where credits are opened by deposits or collection of money or currency, subject to be paid or remitted on draft, cheque or order or money, is advanced or loaned on stocks etc.*

A Text Book of Intermediate Banking by R. V. Rao.

[4] *"A banker is one who in the ordinary course of his business honours cheques drawn upon him by persons from and for whom he receives money on current account."*

कि केवल चल-विक्षेप उसके पास हैं बल्कि इसके अतिरिक्त अनेक कार्य वह करता है जिनका समावेश इस परिभाषा में नहीं होता किंतु फिर भी जहाँ तक अधिकोप के मुख्य अर्थ का समावेश—निक्षेप स्वीकृति एवं उसका माँग पर भुगतान—होता है। यह परिभाषा कोई भी वैधानिक आधार न होते हुए भी सर्व-मान्य एवं सर्व-स्वीकृत है। क्योंकि सर जॉन पँगेट के अनुसार, 'कोई व्यक्ति अथवा संस्था, चाहे वह समामेलित हो अथवा नहीं—अधिकौपिक नहीं कही जा सकती जो निक्षेप लेखे स्वीकार नहीं करती, जो चल-लेखे नहीं लेती और अपने ग्राहकों के धनादेशों का भुगतान एवं संग्रहण नहीं करती, चाहे वे रेखित (Crossed) हों या अनरेखित (Uncrossed) हों।'[1] इन सब परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी संस्था जब तक कि जनता से निक्षेप स्वीकृत न करे एवं उनका भुगतान धनादेश द्वारा अथवा विकर्ष अथवा आदेश द्वारा न करे, तब तक अधिकोप नहीं हो सकती। क्योंकि जहाँ तक ऋण देने का सम्बन्ध है, कोई भी व्यक्ति एवं संस्था अथवा विपत्र मध्यग् (Bill brokers, विपत्रों के दलाल) अथवा ऋण-दाता (Money lender) यह कार्य करता है। इसलिए निक्षेपों की स्वीकृति एवं उसका धनादेशों आदि द्वारा भुगतान—यह किसी भी अधिकोपण संस्था का प्रमुख कार्य है।

इस प्रकार इस महत्त्वपूर्ण कार्य को दृष्टि में रखकर ही भारतीय प्रमंडल विधान १९३६ (Indian Companies Act 1936) में अधिकोप की परिभाषा की गई है। इस विधान के अन्तर्गत "अधिकोपण प्रमंडल वह प्रमंडल है जिसका प्रमुख व्यापार चल अथवा अन्य लेखों पर निक्षेपों की स्वीकृति जो धनादेश, विकर्ष (draft) अथवा आदेश द्वारा निकाली जा सके—देना है।"[2] इसमें यह भी उल्लेख है कि इस परिभाषा के लिये उसके अन्य कार्यों का संबंध नहीं है, जो कार्य अधिकोप अपने दैनंदिन व्यवहारों में करते हैं। किंतु इस परिभाषा के अतंर्गत वे संस्थाएँ नहीं आती थीं जो अधि-कोप, अधिकौपिक अथवा अधिकोप प्रमंडल इन शब्दों का प्रयोग करती थीं

---

१ *"No person or body corporate or otherwise can be a banker who does not take deposit accounts, take current accounts, issue and pay cheques and collects cheques crossed or uncrossed for his customers."*

२ *"Banking Company" is a company which carries on as its principal business the accepting of deposits of money on current account or otherwise, subject to withdrawal by cheque, draft, or otherwise."—Indian Companies Act 1936.*

और यह इस विधान के स्वीकृत होने से पहिले अस्तित्व में थीं। ऐसी संस्थाओं द्वारा अपने लिए अधिकोष, अधिकोषिक अथवा अधिकोष प्रमंडल शब्द के प्रयोग करने पर अधिकोषण विधान १९४९ के अतंर्गत प्रतिरोध लगा दिया गया तथा अधिकोष शब्द की परिभाषा भी नई बनाई गई। जिसके अनुसार "ऋण देने के लिये अथवा विनियोग के लिये जनता से मुद्रा निक्षेप की स्वीकृति करना, जो माँग पर अथवा अन्य प्रकार से वापस ली जा सके, तथा धनादेश, विकर्ष, आदेश अथवा अन्य प्रकार से 'आहरित हो"[1] यह अधिकोषण की परिभाषा की गई और केवल इन कार्यों को करनेवाली संस्था ही 'अधिकोष', अधिकोषिक तथा अधिकोषण प्रमंडल शब्दों का प्रयोग कर सकती है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अधिकोष' हम उस व्यक्ति या संस्था को कह सकते हैं जो निम्न कार्य करे:—

१—जनता से निक्षेपों की स्वीकृति करे जिनका भुगतान धनादेश विकर्ष अथवा आदेश द्वारा किया जाय। अर्थात् कोई भी संस्था निक्षेपों की स्वीकृति करते हुए भी अगर उनका भुगतान धनादेश आदि से न करे तो वह अधिकोष नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार कोई भी संस्था जो निक्षेप स्वीकृत नहीं करती किंतु धनादेश आदि द्वारा पैसे देती है तो उसे भी हम अधिकोष नहीं कह सकते। इस प्रकार निक्षेपों की स्वीकृति एवं धनादेश आदि द्वारा उनका भुगतान यह अधिकोष का प्रमुख कार्य है, और जो संस्था यह कार्य करती है उसे ही हम अधिकोष कह सकते हैं। इस कार्य के साथ अधिकोष अन्य मुद्रा-सम्बन्धी व्यवहार करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं।

अधिकोषों का वर्गीकरण :

आधुनिक आर्थिक परिस्थिति में अधिकोष भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करते हैं और उन कार्यों के अनुसार अधिकोषों का वर्गीकरण भी किया गया है। इन अधिकोषों में से कुछ अधिकोष किन्हीं विशेष प्रकारों के कार्य करते हैं तथा कुछ सामान्य कार्य करते हैं जैसे वैयक्तिक अधिकोष अथवा अधिकोषण सार्थ (Banking firms) जो सामान्य अधिकोषण अर्थात् निक्षेप लेना, ऋण देना आदि कार्य करते हैं। इसके विपरीत कुछ अधिकोष ऐसे होते हैं जो विशेष प्रकार के ही कार्य करते हैं जैसे औद्योगिक अधिकोष, विनिमय अधिकोष, विनियोग अधिकोष, व्यापारिक अधिकोष आदि। इनमें से व्यापारिक

[1] *"Banking" has been defined as "the accepting for the purpose of lending or investment, of deposits of money from the public repayable on demand or otherwise and withdrawable by cheque, draft, order or otherwise"*—Indian Banking Companies Act 1949.

अधिकोप अधिक प्रचलित एवं महत्त्वपूर्ण हैं। औद्योगिक अधिकोप, विनियोग अधिकोप आदि दीर्घकालीन निक्षेप स्वीकृत करते हैं और उसी प्रकार औद्योगिक उन्नति के लिये दीर्घकालीन ऋण भी देते हैं अथवा स्थायी संपत्ति (Fixed assets) खरीदने के लिए आदि। विनिमय अधिकोप आदि विदेशी व्यापार के लिये विनिमय की सुविधाएँ प्रदान करते हैं। कृषि अधिकोप (Agricultural Banks) कृषिज कार्यों के लिये ऋण देना तथा पूँजी की पूर्ति करने का कार्य करते हैं। भू-प्राधि अधिकोप (Land Mortgage Banks) किसानों को पुराने ऋण के भुगतान के लिये जमीन की रहन पर ऋण देते हैं अथवा कृषि में स्थायी सुधार करने के लिये ऋण देते हैं जैसे कुएँ बनवाना आदि। ये ऋण भी दीर्घकालीन अवधि के होते हैं। इसके अतिरिक्त संचय अधिकोप होते हैं जो केवल छोटी आय वाले व्यक्तियों की बचत स्वीकार करते हैं तथा बचत की आदत डालते हैं, जैसे प्रेषालय-संचय-अधिकोप (Post Office Savings Banks)। इसके अतिरिक्त भारत में स्वदेशीय अधिकोप (Indigenous Banks) भी हैं जो आंतरिक व्यापारिक आवश्यकताओं आदि के लिये ऋण देते हैं और इनका प्रसार देहातों में बहुत अधिक है क्योंकि विशेषतः कृषिज कार्यों को ऋण इन्हीं से अधिकतर प्राप्त होता है। सहकारी अधिकोप, सहकारी तत्त्व पर, परस्पर सहायता देने के आधार पर निर्माण हुए हैं तथा ये भी बचत की आदत डालने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं; इनका प्रसार मद्रास तथा पंजाब में विशेष आशाजनक है। इसके अतिरिक्त आजकल प्रत्येक देश में एक केन्द्रीय अधिकोप होता है जिसका कार्य साख और चलन में समन्वय रखना तथा उसे नियन्त्रित करना होता है; यह अधिकोप अधिकोपों का अधि-कोप अथवा देश में अधिकोप-प्रमुख का कार्य करता है तथा अन्य अधिकोपों को कठिनाई में सहायक होता है, सरकार के लिए आर्थिक आढ़तिया (Fiscal agent) का काम भी यही अधिकोप करता है जैसे भारत में 'रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया'। इस प्रकार अधिकोपों के निम्न प्रकार हैं:—

व्यापारिक अधिकोप	(Commercial Banks)
औद्योगिक ,,	(Industrial Banks)
विनियोग ,,	(Investment Banks)
भू-प्राधि अधिकोप	(Land Mortgage Banks)
प्रेषालय संचय अधिकोप	(Post Office Savings Banks)
विनिमय अधिकोप	(Exchange Banks)
सहकारी अधिकोप	(Cooperative Banks)
स्वदेशीय अधिकोप	(Indigenous Banks)

कृषि अधिकोष (Agricultural Banks)
केन्द्रीय अधिकोष (Central Bank)

इन सब अधिकोष-प्रकारों में से भारत में स्वदेशीय अधिकोष, सहकारी अधिकोष, भू-प्राधि अधिकोष, विनिमय अधिकोष, प्रेपालय संचय अधिकोष, व्यापारिक अधिकोष और केन्द्रीय अधिकोष हैं। इनमें व्यापारिक अधिकोष ही अधिकतर हैं, जिनमें से 'बड़े पांच' अधिकोष निम्न हैं :—

सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड, बैंक ऑफ बड़ोदा, पंजाब नेशनल बैंक, इलाहाबाद बैंक तथा बैंक ऑफ इंडिया। इन सब प्रकार के अधिकोषों के कार्यक्षेत्र का विवेचन यथास्थान आगे किया जायगा।

अधिकोषों के कार्य एवं सेवाएँ :

व्यापारिक अधिकोष अधिक महत्वपूर्ण एवं प्रचलित हैं यह हम ऊपर कह चुके हैं, क्योंकि उद्योग धंधों को चल पूंजी देने के लिए व्यापारिक अधिकोष आवश्यक हैं, इसलिये जब कभी भी 'अधिकोष' शब्द का प्रयोग होता है वह विशेषतः 'व्यापारिक अधिकोष' के अर्थ में ही किया जाता है। व्यापारिक अधिकोषों का पूर्ण ज्ञान होने के लिए, यह जानना आवश्यक है कि उनके कार्य क्या हैं।

अधिकोष विशेषतः निम्न प्रकार के कार्य करता है :—

(१) निक्षेप के द्वारा अथवा अन्य किसी मार्ग से ऋण लेना तथा ऋण देना

(२) अभिकर्ता का कार्य (To act as an agent to his customers)

(३) सामान्य उपयुक्त सेवाएँ

इनमें से पहिला कार्य ऋण लेना तथा ऋण देना अधिकोषों का प्रमुख कार्य है। यह ऋण लेने का कार्य अधिकोष दो मार्गों से करता है, एक तो अंश पुँजी (Share Capital) द्वारा तथा दूसरे निक्षेप की स्वीकृति द्वारा। निक्षेप भी तीन प्रकार के होते हैं : १. संचय निक्षेप (Saving Deposits) २. स्थायी निक्षेप (Fixed Deposits) तथा ३. चल निक्षेप (Current deposits)। इसके अतिरिक्त एक अधिकोष दूसरे अधिकोषों से ऋण लेकर भी रकम खड़ी कर सकता है।

ऋण देने का कार्य भी महत्वपूर्ण है। अधिकोष तीन प्रकार से ऋण देते हैं : १. ऋण लेने वाले की वैयक्तिक जमानत पर, दूसरे ऋण लेने वाले की वैयक्तिक जमानत के अतिरिक्त दो अन्य व्यक्तियों की जमानत पर तथा तीसरे

प्रतिभूतियां, अंश, स्कंध आदि रहन रखने पर। इसके अतिरिक्त अधिकोप अपने विशेष ग्राहकों को रोक ऋण (Cash Credit) अधिविकर्ष (Overdraft) की सुविधाएं भी देते हैं तथा विनिमय विपत्रों को अपहृत (Discounting of Bills of Exchanges) कर व्यापारियों को ऋण देने की सुविधाएँ भी देते हैं। इस प्रकार अधिकोपों के मुख्य कार्य निम्न हैं :—

(१) निक्षेपों की स्वीकृति (acceptance of deposits)
(२) ऋण देना (Giving Loans)
(३) विनिमय विपत्रों का आहरण (Discounting of Bills of Exchange)
(४) पत्र-मुद्रा चलाना (अगर उसको अधिकार हो)

इन कार्यों के अतिरिक्त अन्य दो कार्य—अभिकर्ता का कार्य तथा सामान्य उपयुक्त सेवाएं—ये अधिकोप केवल अपने ग्राहकों की अधिकाधिक सेवा करने की दृष्टि से करते हैं। इनमें से अभिकर्ता का कार्य करते समय उसको ग्राहक की लिखित अनुमति प्राप्त होनी चाहिये, तभी वह कार्य कर सकता है क्योंकि उसके अभिकर्ता के रूप में किये हुए कार्य ग्राहक को बाध्य होकर स्वीकृत करने पड़ते हैं। अभिकर्ता के कार्य निम्न हैं :—

(१) धनादेशों का संग्रहण एवं भुगतान : ग्राहक जो धनादेश उसके लेखे के विरुद्ध अधिकोप पर आहरित करे उनका भुगतान करना। उसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है इस की सावधानी रखना तथा ग्राहक को, जो दूसरों से धनादेश मिलते हैं, उन धनादेशों को आहरित अधिकोपों से भुनवाना; यह कार्य अधिकोप करता है।

(२) विपत्र, प्रतिज्ञा अर्थपत्र, लाभांश आदि का संग्रहण : अधिकोप के ग्राहकों के जो विपत्र, प्रतिज्ञा अर्थपत्र, लाभांश आदि अन्य व्यक्तियों, साथों या प्रमंडलों से लेने होते हैं उनका उनसे संग्रहण करना—यह कार्य भी करना होता है।

(३) आगोप प्रव्याजि आदि का भुगतान : ग्राहक की ओर से जो आगोप प्रव्याजि आदि ग्राहक को नियमित रूप से देना पड़ती है उनका भुगतान ग्राहक की ओर से करना।

(४) प्रन्यासी (Trustee) रिक्थसाधक (Executioner), व्यवस्थापक आदि कार्यों का ग्राहक की जगह प्रतिनिधित्व करना।

(५) ग्राहक की ओर से उसके लिये अंश उपप्रतिभूतियां आदि का क्रय-विक्रय करना तथा ग्राहक की ओर से इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करना।

उपर्युक्त सेवाएं अधिकोष ग्राहक के अभिकर्ता (agent) के नाते से करता है। इसके अतिरिक्त अधिकोष अधिकाधिक सेवा दान द्वारा ग्राहकों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं देता है जो निम्न हैं। इन सेवाओं से आकर्षित होकर उसकी ग्राहक संख्या तथा निक्षेप में वृद्धि होती है:—

१. मुद्रा का स्थानांतरण (Remittances): प्रेषालयों द्वारा अथवा अन्य मार्गों से रकम भेजने की अपेक्षा अधिकोषों के द्वारा एक शहर से दूसरे शहर पैसा भेजने में कम खर्च होता है, अतः इस प्रकार की सुविधाएं अधिकोष अपने ग्राहकों को देते हैं। उदा० मुझे २००) रुपये बंबई भेजने की आवश्यकता है और मेरा लेखा सेंट्रल बैंक में है। इस दशा में अगर मैं २००) रु० मनीआर्डर से भेजता हूं या बीमे से (Insured Post) भेजता हूं तो मेरा क्रमशः २॥) रु० तथा १) रु० लगेगा। यही अगर मैं सेंट्रल बैंक के मार्फत भेजता हूँ तो सेंट्रल बैंक मुझे उस व्यक्ति के नाम एक अधिविकर्ष (draft) अथवा अपनी बंबई स्थित शाखा पर धनादेश देगा और इस सेवा के बदले मुझसे केवल ।=) आने वर्तन (Commission) लेगा। इस प्रकार मैं २००) रु० भेज सकता हूँ और खर्च में बचत कर सकता हूं।

२. साख पत्र परिपत्र आदि देना (Issuing letters of credit, Circular notes etc): अधिकोषों की शाखा तथा अभिकर्ता विभिन्न स्थानों पर रहने के कारण वे अपने विशेष ग्राहकों को रकम प्राप्त करने के लिये अधिकोष साख पत्र आदि देते हैं जिसके आधार पर वे आवश्यक रकम किसी भी स्थान पर प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार परिपत्र (Circular notes) भी अधिकोषों द्वारा दिये जाते हैं। इस सुविधा के कारण ग्राहकों को कहीं भी विशेष अड़चन नहीं उठानी पड़ती। इस कार्य के लिए अधिकोष वर्तन (Commission) लेते हैं। (साख पत्र आदि का पूर्ण विवेचन यथा-स्थान किया जायगा)

३. विदेशी विनिमय प्राप्त करने की सुविधाएँ भी अधिकोष देता है क्योंकि उनकी शाखाएं ऐसे देशों में अक्सर होती हैं जहाँ का व्यापारिक संबंध इस देश से घनिष्ट होता है।

४. जवाहिरात, स्वर्ण आदि की सुरक्षा: अधिकोष अपने यहाँ ग्राहकों के गहने, आभूषण, मूल्यवान कागज आदि रखने की सुविधा भी देते हैं जिससे चोरों आदि से उनकी रक्षा हो सके। ये सेवाएं कई अधिकोष निशुल्क करते हैं तथा कुछ अधिकोष इन सेवाओं के बदले ग्राहक से कुछ शुल्क लेते हैं।

५. विपत्रों की स्वीकृति: अधिकोष अपने ग्राहकों पर आहरित किये हुए विपत्रों की स्वीकृति भी करते हैं, जिसके लिये वे वर्तन लेते हैं किंतु ऐसे

विपत्र केवल कुछ मानी एवं विश्वसनीय ग्राहकों के ही स्वीकृत किये जाते हैं जिससे आहर्ता (Drawer) को भी उस विपत्र के बारे में पूर्ण विश्वास हो जाता है। यह प्रथा हमारे देश में प्रचलित नहीं है किंतु विदेशों में इस प्रथा का पर्याप्त प्रचार है जहाँ पर इस कार्य के लिए विशेष संस्थाएं "स्वीकृत गृहों" (Acceptance Houses) के नाम से अस्तित्व में हैं।

६. अधिकोष अपने ग्राहकों के होने वाले ग्राहकों की आर्थिक परिस्थिति संबंधी जानकारी प्राप्त कर अपने ग्राहकों को उसकी सूचना देते हैं, अर्थात् जिनसे उनके ग्राहक व्यवहार करना चाहते हैं उनकी वास्तविक स्थिति कैसी है यह बतलाते हैं। इससे उनके ग्राहकों को बड़ी सुविधा होती है।

अधिकोषों की उपयुक्तता:

उपर्युक्त विवेचन से अधिकोषों के कार्य तथा सेवा का महत्व स्पष्ट हो जाता है। किसी भी देश के निरुपयोगी एवं बिखरे हुए धन को अधिकोष एकत्र लाकर उसको औद्योगिक एवं विनियोग कार्यों में लगाते हैं तथा साथ ही साथ वे जनता में बचत की आदत का भी निर्माण करते हैं। इस प्रकार देश में औद्योगिक पूँजी का निर्माण कर औद्योगिक विकास में सहायक होते हैं। थॉमस के शब्दों में "अधिकोष साख पत्रों का चलन नियंत्रित एवं संगठित करते हैं, वे अग्रिम एवं ऋण के रूप में अधिकोष निर्मित साख का नियमन करते हैं, ऋणदा पूंजी (Loanable Capital) को गति देते हैं तथा उसका वितरण एवं सदुपयोग संभव करते हैं, वे चलन की जब और जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ नियोजन करते हैं तथा अधिक चलन के क्षेत्रों से दुर्लभ क्षेत्रों में चलन का स्थानांतरण करते हैं।[1]

इस प्रकार अधिकोष जिन लोगों के पास ऋण देने के लिये पर्याप्त धन है तथा जो लोग ऋण लेना चाहते हैं उन दोनों के बीच मध्यग (Middleman) का कार्य करते हैं। जो धन निरुपयोगी रूप से पड़ा रहता है उस धन को औद्योगिक विकास कार्यों में लगाते हैं। अधिकोषों से जिस सुविधा से ऋण मिल सकता है उससे उद्योगों एवं कारखानों को उत्तेजन

---

[1] *"Banks organize and control the issue and currency of credit instruments, they regulate the granting of banks credit in the form of advances and loans, they facilitate the investment of loanable capital, aud make possible its distribution and use to the best advantage, they provide curreney when and where it is required, and ... surplus currency from some area to places that are short of ...pplies"—*

Principles of Banking, By S. E. Thomas.

मिलता है क्योंकि वे संकटकाल में किसी भी समय इन अधिकोषों से ऋण प्राप्त कर सकते हैं।

इन सुविधाओं के कारण सुसंगठित एवं सुसंचालित अधिकोषण पद्धति का अस्तित्व प्रत्येक देश में आवश्यक है; इससे औद्योगिक एवं आर्थिक विकास में सहायता मिलती है। इसी प्रकार वे अपनी उपयुक्त सेवाओं से मुद्राओं की आवश्यकता कम करते हैं तथा व्यवहारों में साख पत्रों के उपयोग को उत्तेजना देते हैं, जिनके उपयोग से पैसे की, समय की एवं श्रम की भी बचत होती है। इसलिये समुचित आर्थिक विकास की दृष्टि से आधुनिक अर्थव्यवस्था में अधिकोषों का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न संग्रह

१. भारतीय अधिकोषण का विकास देते हुए, आधुनिक अर्थव्यवस्था में अधिकोषों का महत्त्व समझाइये।

२. "अधिकोष की परिभाषा की समस्या" के विषय में, आप अपने विचार उद्बोधक रीति से लिखिये।

३. "अधिकोषों के कार्य एवं प्रकार" इस विषय पर एक स्पष्ट लघु निबंध लिखिये।

४. भारत में जो अधिकोष हैं उनका वर्गीकरण कीजिये तथा उनके कार्यों का विवेचन संक्षेप में कीजिये।

अध्याय २

अधिकोषण का स्वरूप

पिछले अध्याय में हमने अधिकोष की परिभाषा एवं उसके कार्य देखे, जिससे यह स्पष्ट है कि अधिकोष कितने ही प्रकार के हों, उनको हम विशेषतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं: एक तो विनियोग अधिकोषण (Investment Banking) तथा दूसरा व्यापारिक अधिकोषण (Commercial Banking)। विनियोग अधिकोषण विशेषतः उत्पादन कार्यों के लिये दीर्घकालीन ऋण देते हैं तथा उनके निक्षेप भी दीर्घकालीन होते हैं। विपरीत इसके व्यापारिक अधिकोष अल्पकालीन उत्पादक कार्यों के लिये ऋण देते हैं तथा उनके निक्षेप भी अल्पकालीन होते हैं। इस दृष्टि को ध्यान में रखकर अगर हम व्यापारिक अधिकोषण का स्वरूप देखें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि किसी भी अधिकोष में जनता का विश्वास होना आवश्यक है और इस विश्वास के साथ ही अधिकोष को लाभ भी होना चाहिये क्योंकि अगर वह लाभ नहीं कमाता तो उसको शीघ्र ही अपने दरवाज़े बंद करने पड़ेंगे। इसलिये विश्वास को कायम रखने के लिये अधिकोषों का लाभ की अपेक्षा सेवाओं की तत्परता के ऊपर अधिक ध्यान होता है। इस दृष्टि से अन्य व्यापारों की अपेक्षा अधिकोषण व्यापार में अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है; क्योंकि जनता का विश्वास डगमगाते ही निक्षेप निकालना आरंभ हो जाता है और ऐसी अवस्था में सुव्यवस्थित एवं सुसंचालित अधिकोषों को भी अपने दरवाज़े बंद करने पड़ते हैं। इसलिये विश्वास की ओर अधिकोषों को अधिक ध्यान देना पड़ता है। जनता में बचत की आदत डालने के साथ ही ईमानदारी, विश्वास एवं नैतिक स्तर के निर्माण की ओर भी अधिक ध्यान रखना पड़ता है। इस दृष्टि से निक्षेप के रूप में लिया हुआ ऋण अच्छे प्रकार से विनियोग में लगाना उसका पहिला ध्येय होना चाहिये। अतः लाभ की अपेक्षा वित्त की सुरक्षा का ध्यान रखना तथा सेवाएं देना इस व्यापार का पहिला आवश्यक तत्व है।

दूसरे इस सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अल्पकालीन ऋणों की अपेक्षा दीर्घकालीन ऋण देना अपने व्यापार को खतरे में डालने की निशानी होती है। अतः अधिकोष को सदैव इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उसके किये हुए विनियोग एवं दिये हुए ऋण ऐसे हैं जो मुद्रा में किसी भी समय परिवर्तित हो सकें। इस दृष्टि से अपने देय (Liabilities) को ध्यान में रखते हुए उसको सदैव अपने विनियोग एवं अपनी संपत्ति तरल (Liquid) रखनी पड़ती है।

तीसरे इस व्यापार में यशस्वी होने के लिये अधिकोष के व्यवस्थापक एवं निर्देशकों को सम्यक् ज्ञानशक्ति, अनुभव एवं न्याय की दृष्टि होनी चाहिये जिससे वे जनता के विश्वास को संपादन करने के साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति को मज़बूत रख सकें। इसी दृष्टि से अधिकोषों को अधिक लाभ कमाने की अपेक्षा अधिक सेवा देने की दृष्टि तथा अपने वित्त की सुरक्षा को सदैव ध्यान में रखना पड़ता है।

एकक अधिकोपण तथा शाख अधिकोपण (Unit Banking & Branch Banking) :

अधिकोपण के जो भिन्न प्रकार हमने पिछले अध्याय में देखे उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रम विभाजन-तत्त्व का अवलम्ब इस व्यापार में भी पूर्णरूप से है। किन्तु आजकल अधिकोपण व्यापार के केन्द्रीकरण की ओर प्रवृत्ति अधिक बढ़ गई है अर्थात् अधिकोष केवल एक प्रमुख कार्यालय रखते हुए अपनी शाखाएं विभिन्न स्थानों में रखते हैं जिससे व्यवस्था का केन्द्रीकरण होने के साथ ही व्यवस्था व्यय कम होता है तथा कार्यक्षमता की वृद्धि होती है। आजकल अधिकोपण नीति का निर्धारण विशेषतः केन्द्रीय अधिकोष करते हैं जिससे देश के अन्य अधिकोष भी प्रभावित होते हैं। इस प्रकार विश्व में अधिकोपण के दो प्रकार देखने को मिलते हैं :—

१. एकक अधिकोपण (Unit Banking)
२. शाख अधिकोपण (Branch Banking)

एकक अधिकोपण का अवलंब संयुक्तराष्ट्र में अधिक है, जहां पर प्रत्येक अधिकोष व्यवस्था आदि के बारे में स्वतंत्र है और उन सब पर वहां के केन्द्रीय अधिकोष का पर्यवेक्षण (Supervision) रहता है। अन्य देशों में शाख अधिकोपण ही विशेषतः है। इन दोनों में कौन सी पद्धति अच्छी है यह विवादग्रस्त प्रश्न हो गया है।

शाख-अधिकोपण के पक्ष में जो लोग है उनका कहना है कि शाख अधिकोपण में एक जगह का अधिक धन कम धन वाले स्थानों में स्थानांतरित

हो सकता है तथा मौसमी आवश्यकताओं के अनुसार धन का वितरण हो सकता है। दूसरे एक ही अधिकोष की अनेक शाखाएँ देश में होने के कारण अधिकोषों के ब्याज की दर में भिन्न स्थानों पर समानता रहती है जो एकक अधिकोषण में संभव नहीं क्योंकि उसमें समृद्ध तथा पुराने भागों में ब्याज की दर कम एवं असमृद्ध एवं नये विभागों में धन के लिए औद्योगिक एवं आर्थिक आवश्यकताएं अधिक होने से ब्याज की दर अधिक रहती है। तीसरे शाख-अधिकोषण में अधिक शाखाएं होने के कारण हानि का समान वितरण संभव होने से अधिकोषों में स्थायित्व रहता है क्योंकि एक स्थान की हानि की पूर्ति करने के लिये दूसरे स्थान की शाखाओं के लाभ से समायोजन (Adjustment) किया जा सकता है; जो एकक अधिकोषण में असंभव है। चौथे इसमें व्यवस्था का केन्द्रीकरण मुख्य कार्यालय से होने के कारण वहाँ से सब शाखाओं का सूत्र-संचालन होता है जिससे कार्य क्षमता बढ़ती है तथा आंतरिक एवं विदेशी विनिमय व्यापार में मितव्ययिता होती है और अन्य नये नये स्थानों पर शाखाएं खोली जा सकती हैं, जो एकक अधिकोषण में संभव नहीं है।

इसके विपरीत एकक अधिकोषण के पक्ष में जो लोग हैं उनका कहना है कि उपर्युक्त लाभ सैद्धान्तिक दृष्टि से तो ठीक हैं परन्तु उनमें से कुछ प्रात्यक्षिक नहीं हैं, जैसे जिन स्थानों में अधिकोषण की सुविधाएं नहीं है वहां भी शाखा खोलना, ब्याज के दर की समानता आदि अन्य लाभ एकक-अधिकोषण में भी प्राप्त हैं। शाख अधिकोषण में अनेक त्रुटियां हैं जो एकक अधिकोषण में नहीं हैं। उनके अनुसार शाख अधिकोषण में प्रत्येक शाखा के व्यवस्थापक का स्थानांतरण (Transfer) होता रहता है जिसकी वजह से वह किसी भी शाख के क्षेत्र की परिस्थिति का पूर्णतः अध्ययन नहीं कर पाता, जिससे उनको जिस प्रकार की सुविधाएं चाहियें वह नहीं दे सकता; दूसरे उसे प्रमुख कार्यालय के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है जिससे समय की हानि होती है, जो एकक अधिकोषण में नहीं होता। तीसरे अधिकोषण का केन्द्रीकरण हो जाने से देश की आर्थिक स्थिति कुछ व्यक्तिविशेषों के एकाधिकार में चली जाती है जो देश की आर्थिक दृष्टि से खतरनाक सिद्ध होती है एवं जिसकी संभावना एकक अधिकोषण में किंचित भी नहीं है।

किंतु एकक अधिकोषण ऐतिहासिक दृष्टि से अयशस्वी प्रमाणित हुआ है क्योंकि उसमें अधिकोषों को यश नहीं मिलता तथा अनेक अधिकोष टूट चुके हैं जिसमें सबसे बड़ा अधिकोष संकट १९३३ का था। इसलिए देश की आर्थिक स्थिरता की दृष्टि से शाख अधिकोषण ही अधिक उपयुक्त है। लेकिन शाख अधिकोषण में केन्द्रीकरण एकाधिकार में परिवर्तित न हो जाय इस बात को

अवश्य ध्यान में रखना चाहिये। क्योंकि शाख अधिकोषण में अच्छे एवं योग्य व्यक्तियों के द्वारा कार्यक्षम अधिकोषण का अवलंब होता है एवं व्यापारिक बहु प्रमाण उत्पादन (Large Scale Production) को देखते हुए शाख अधिकोषण का विकास होना ही अवश्यंभावी है।

सुसंचालित अधिकोषण की आवश्यकताएँ : अधिकोषण का स्वरूप एवं उसका आधुनिक आर्थिक ढाँचे में जो महत्त्व है उससे यह स्पष्ट है कि अधिकोषण सुसंचालित एवं सुसंगठित होना चाहिये। इस दृष्टि से अधिकोषों का अधिकार ऐसे सुयोग्य व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिये जिनमें इस व्यापार के लिये पर्याप्त योग्यता तथा सचाई हो। इसी के साथ ऐसे लोगों को व्यापारिक क्षेत्र का भी अनुभव होना अत्यावश्यक है जिससे वे जनता का विश्वास प्रतिपादन करने में समर्थ हो सकें। जिन व्यक्तियों के हाथ में अधिकोषण का नियंत्रण-भार रहता है उनको देश विदेश के अधिकोषण विधान का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये तथा अन्य व्यापारिक एवं औद्योगिक विधानों का ज्ञान भी आवश्यक है। इसलिये निर्देशकों की नियुक्ति केवल उनकी उपाधियों (qualifications and titles) की दृष्टि से ही नहीं बल्कि उनकी सारासार विचारशक्ति तथा योग्यता के भी ध्यान से होनी चाहिये। दूसरे, देश की व्यापारिक प्रगति में आर्थिक संगठन का विशेष स्थान होने के नाते देश की अधिकोषण नीति देश के व्यापार एवं उद्योग-धंधों की पोषक होनी चाहिये जिससे देश आर्थिक प्रगति कर सके। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम विदेशी विशेषज्ञों को न रखें किंतु हमेशा यह ध्यान रखना चाहिये कि अधिकोषण नीति का संचालन देश के अनहित के लिए कारणीभूत न हो। साथ ही देश की अधिकोषण प्रगति के लिये देश की सरकारी नीति भी ऐसी होनी चाहिये जिससे अधिकोषण का समुचित एवं सुसंचालित ढंग पर विकास हो सके।

प्रश्न संग्रह

(१) अधिकोषण व्यापार का स्वरूप बतलाते हुए बताइये कि भारत में आप एकक अधिकोषण अथवा शाख-अधिकोषण का अवलंब करेंगे और क्यों ?

अध्याय ३

अधिकोष का स्थितिविवरण (Bank Balance-sheet)

अधिकोषों के कार्यों के अध्ययन से हमने यह देखा कि अधिकोषों को उनके कार्य के लिये चल-पूंजी अंशों (shares) से, निक्षेपों से तथा अन्य अधिकोषों से ऋण लेकर प्राप्त होती हैं तथा उसका विनियोग किन-किन कार्यों में करते हैं। अब हम यह देखेंगे कि अधिकोषों की कार्य-क्षमता एवं सुसंचालन व्यवस्था किन बातों पर निर्भर रहती है।

प्रत्येक अधिकोष को जिसका समामेलन (Incorporation or Registration) हो चुका है उसको अपना स्थिति-विवरण निश्चित सामयिक अवधि में वैधानिक रीति से प्रकाशित करना पड़ता है जिससे उसकी आर्थिक स्थिति की जानकारी जनता के सम्मुख स्पष्ट हो जाय। इस विवरण में उस निश्चित तिथि को उसकी संपत्ति कितनी है तथा किन-किन बातों का उसमें समावेश है, उसी प्रकार उसका देय कितना है एवं किस प्रकार वह देय (Liabilities) बना हुआ है, इन बातों को स्पष्ट रूप से दिग्दर्शित किया जाता है। इसी आर्थिक विवरण को हम स्थिति-विवरण कहते हैं। इस आर्थिक विवरण के ऊपर ही जनता का विश्वास निर्भर रहता है। यह किस प्रकार का होता है यह निम्न स्थिति-विवरण से स्पष्ट हो जायगा :—

अधिकोष का स्थिति विवरण—दिनांक ३१ दिसम्बर १६

देय (Liabilities)	रकम	संपत्ति (assets)	रकम
अधिकृत पूंजी	.....	हस्तस्थ रोकड़ (cash in hand)	
निर्गमित एवं प्रार्थित पूंजी (Issued & Subscribed Capital)	.....	अधिकोषस्थ रोकड़ (cash at Banks, including Reserve Bank of India)	
दत्त पूंजी (Paid up Capital)		याचित एवं अल्पकालीन ऋण (Money at call & short notice)	
संचिति प्रणिधि (Reserve Fund)			
निक्षेप (चल, स्थायी, संचय आदि)		क्रीत एवं अपहृत विपत्र (Bills Purchased & discounted)	
संग्रहण के विपत्र (Bills for collection) [प्रति प्रविष्टि]		विनियोग (Investments)	
स्वीकृत विपत्रों का देय (Liabilities for acceptances etc.)		ऋण तथा अग्रिम (Loans and advances)	
लाभालाभ लेखा [P/L a/c]		प्राप्य विपत्र (B/R as per contra) [प्रतिप्रविष्ट के अनुसार]	
		अधिकोष भू-गृहादि	
योग	...		...

उपर्युक्त उदाहरण के अनुसार ही भारतीय अधिकोषों के स्थिति-विवरण बनते हों ऐसी बात नहीं अपितु मोटे तरीके से किसी भी अधिकोष में उपर्युक्त बातों का समावेश हो जाता है। फिर भी भारतीय प्रमंडल विधान के प्रपत्र फ (Form F) के अनुसार प्रत्येक अधिकोष प्रमंडल को अपना स्थिति-विवरण प्रकाशित करना पड़ता है, जिससे तुलनात्मक आलोचना द्वारा अधिकोषों की आर्थिक परिस्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

स्थितिविवरण को हम दो विभागों में देखते हैं : एक तो देय पार्श्व तथा दूसरा संपत्ति पार्श्व, जो क्रमशः बायें एवं दायें हाथ को दिखाये जाते हैं। देय पार्श्व में जो विभिन्न विषयों के आंकड़े बनाए जाते हैं वे हमको यह बताते हैं कि स्थिति-विवरण के दिन अधिकोष का कुल देय कितना है तथा उस देय का कितना भाग अंश-भागियों अथवा हिस्सेदारों (Shareholders) को पूंजी के रूप में देना है तथा कितना भाग उसने निक्षेप आदि के रूप में जो लिया है उसके भुगतान की जिम्मेदारी है। इसी प्रकार संपत्ति पार्श्व से हम यह जानते हैं कि अधिकोष के पास कितनी संपत्ति है जिस संपत्ति के आधार पर वह अपना देय भुगता सकता है तथा यह संपत्ति किस प्रकार से बनी हुई है, अधिकोष के पास कितनी रोकड़ है, कितना ऋण उसको लेना है तथा कितनी स्थायी संपत्ति उसके पास है। यह संपत्ति पार्श्व के अध्ययन एवं विश्लेषण से जानी जा सकती है। किसी भी समय में अधिकोष के पास पर्याप्त संपत्ति होनी चाहिये जिससे वह अपना देय चुका सके इसलिये संपत्ति एवं देय पार्श्व का योग भी बराबर होना चाहिये।

सर्व प्रथम हम देय पार्श्व को देखेंगे जिससे हमको यह समुचित रूप से मालूम होगा कि अधिकोष को चल पूंजी एवं उसके कार्य के लिए आवश्यक पूंजी कहाँ से प्राप्त होती है।

पूंजी : अंशी-भागी अधिकोष में अनेक अंशभागी होते हैं जो कुछ निश्चित रकम के अंश खरीदते हैं। अधिकोष को कुल व्यापार संचालन के लिये जितनी पूंजी की आवश्यकता होती है उतनी पूंजी के अंश सर्व प्रथम निश्चित किये जाते हैं जिनका आंकड़ा पार्षद-सीमा-नियम (Memorandum of Association) में दिया जाता है। इस पार्षद सीमा नियम से प्रमंडल का कार्य-क्षेत्र सीमित रहता है, अतः इसमें जो पूंजी की रकम दी हुई होती है उसे अधिकृत पूंजी कहते हैं। इस पूंजी का कुछ भाग अधिकोष अपनी आवश्यकतानुसार चल पूंजी की प्राप्ति के लिए जनता को खरीदने के लिए देते हैं; जितनी रकम के अंश जनता को खरीदने के लिए दिये जायेंगे उसे निर्गमित (Issued) पूंजी कहते हैं। इन निर्गमित अंशों में से जनता जितने अंश खरीदेगी एवं खरीदने के लिये मान्य करेगी उस भाग को प्रार्थित (Subscribed) पूंजी एवं इस प्रार्थित पूंजी का जितना भाग चुकता हो जायेगा उसे दत्त पूंजी (Paid up Capital) कहते हैं।

किसी भी अधिकोष की प्रार्थित पूंजी का पूर्ण अथवा कितना भाग दत्त (Paid up) अथवा चुकता रहेगा इस संबंध में किसी भी प्रकार के वैधानिक निर्बन्ध नहीं है। अधिकोषों की पूंजी कितनी होनी चाहिये एवं

उसकी दत्त पूंजी कितनी होनी चाहिये इस संबंध में कुछ देशों में वैधानिक निर्वन्ध हैं। उदा० संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा जापान में अधिकोषों की अधिकृत पूंजी के आंकड़े विधान द्वारा निश्चित किये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र (U. S. A.) के नेशनल बैंक एक्ट के अनुसार अधिकृत न्यूनतम पूंजी संबंधी आंकड़े निम्न हैं :—

जन संख्या	न्यूनतम अधिकृत पूंजी
३,००० तक	२५,००० डालर
३,००० से ६,००० तक	५०,००० ,,
६,००० से ५०,००० तक	१,००,००० ,,
५०,००० से ऊपर	२,००,००० ,,

इससे अधिक अधिकृत पूंजी रखी जा सकती है जो सर्वथा उस स्थान की आर्थिक परिस्थिति, जनता की आदतें एवं व्यापार के स्वरूप पर निर्भर रहेगा।

[इसी प्रकार जापान में १०,००० जनसंख्या वाले अथवा इससे कम जनसंख्या वाले स्थान पर न्यूनतम अधिकृत पूंजी ५,००,००० येन (जापानी मुद्रा) और साधारणतः १०,००,००० येन हैं। बड़े-बड़े शहरों में अधिकृत पूंजी का निर्धारण वहाँ के अर्थ-मंत्री द्वारा होगा किंतु किसी भी दशा में २० लाख येन से कम अधिकृत पूंजी वाला अधिकोष बड़े शहरों में नहीं होगा। दत्त पूंजी के विषय में कोई वैधानिक प्रतिबंध नहीं है किंतु फिर भी कुल पूंजी अथवा अधिकतर पूंजी चुकानी ही होती है। कैनाडा में न्यूनतम अधिकृत पूंजी ५,००,००० लाख डॉलर है तथा इसका आधा भाग व्यापार प्रारंभ के पूर्व चुकता होना आवश्यक है। इङ्गलैंड में पूंजी के चुकता होने के विषय में कोई भी निर्वन्ध नहीं है लेकिन वहाँ पर ५०% से अधिक पूंजी चुकता नहीं होगी, इस प्रकार अयाचित पूंजी (Uncalled Capital) संचित देय के रूप में बनी रहती है जो संकट काल में अथवा दिवालिये होने पर ही वसूल की जाती है।

भारत में भी इङ्गलैंड के अनुसार ५० प्रतिशत पूंजी संचित देय अथवा सुरक्षित देय के रूप में ही रहती है जिससे आवश्यकता के समय काम में आ सके। भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान १९४९ की धारा १२ के अन्तर्गत प्रत्येक अधिकोष को यह अनिवार्य कर दिया गया है कि अधिकृत पूंजी के ५० प्रतिशत प्रार्थित पूंजी हो; तथा प्रार्थित पूंजी के ५० प्रतिशत दत्त-पूंजी हो। इस प्रकार चल पूंजी प्रारंभ में अंशों द्वारा एकत्रित की जाती है।]

संचिति प्रणीवि (Reserve Fund) : देयता पार्श्व में पूंजी के बाद

'संचिति प्रणीवि' आती है। यहाँ पर यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि 'संचिति प्रणीवि' 'संचित देय' (Reserve Liability) से भिन्न है। संचिति प्रणीवि का निर्माण अवितरित लाभ (Undistributed Profits) से किया जाता है जिससे कि वह असंभाव्य हानि (Contingent losses) की पूर्ति में, अथवा समायोजन के लिये उपयोगी हो सके। ऐसी प्रणीवि प्रत्येक समामेलित अधिकोष को रखना विधान से अनिवार्य है। भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान १९४९ के अनुसार संचित प्रणीवि की रकम दत्त-पूंजी के बराबर होनी चाहिये, इस हेतु प्रत्येक अधिकोष के लिए अपने लाभ का २० प्रतिशत भाग संचिति प्रणीवि में जब तक वह दत्त-पूंजी के बराबर न हो, स्थानांतरित (Transfer) करना अनिवार्य कर दिया है (धारा १७)। यह प्रणीवि वास्तव में अंशभागियों (हिस्सेदारों) की होती है क्योंकि अवितरित लाभ से इसका निर्माण किया जाता है इसलिये किसी भी समय यह उनके हित के लिये उपयोग में लाई जाई जा सकती है। जैसे हिस्सेदारों के लाभांश (dividends) की दर समान रखने के लिये अथवा उनको अधिलाभांश-अंश (Bonus shares) देने के लिये। यह वास्तव में अधिकोष की कुल संपत्ति, दत्त पूंजी तथा अन्य देय से मिलाकर कितनी अधिक है यह दिग्दर्शित करता है जिससे ग्राहकों को सुरक्षा का प्रमाण मिलता है तथा अधिकोष निर्देशकों की बुद्धिमत्ता का परिचय भी मिलता है क्योंकि यह कार्यक्षम व्यवस्था के कारण ही शीघ्र निर्माण हो सकती है। इस प्रणीवि में कभी कभी नये अंश-निर्गमन पर जो प्रव्याजि (Premium on new share issues) मिलती है वह भी जमा की जाती है।

अपनी आर्थिक स्थिति की दृढ़ता के लिये कुछ अधिकोषों के निर्देशक (Directors) गुप्त संचिति (Secret Reserves) भी बना लेते हैं, जिनका उल्लेख स्थितिविवरण में नहीं मिलता; तथा ये गुप्त संचिति अधिकोष की स्थायी संपत्ति को वास्तविक मूल्य से कम मूल्य पर लेखा-पुस्तकों में दिखाकर बनाई जाती है। उदाहरणार्थ अधिकोषों के स्थिति-विवरण में लाखों रुपयों का उपस्कर (Furniture) होते हुए भी, नहीं दिखाया जाता, जो एक प्रकार से गुप्त संचिति ही है; इसका उपयोग आर्थिक संकट में किया जाता है।

इस प्रकार प्रारंभ में कार्यशील पूंजी दत्त पूंजी से प्राप्त होती है और क्रमशः संचिति प्रणीवि के निर्माण के साथ कार्यशील पूंजी बढ़ती है। यह प्रणीवि प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों के क्रय में विनियोग की जाती है।

निक्षेप : देय पार्श्व में संचिति प्रणीवि के बाद आनेवाला महत्त्वपूर्ण पद

(item) निक्षेपों (deposits) का है क्योंकि निक्षेप के आधार पर उस अधिकोष में जनता का विश्वास कितना है यह जाना जा सकता है तथा अधिकोष का इस विषय में कितना देय है यह भी मालूम होता है। इस पद में अधिकोष के पास भिन्न भिन्न प्रकार के निक्षेपों की रकम दिखाई जाती है। हम यह बता चुके हैं कि ये निक्षेप तीन प्रकार के होते हैं :—

चल निक्षेप (Current Deposits) : यह जनता की वह जमा रकम है जो किसी भी समय बिना पूर्व सूचना के निकाली जा सकती है; इसलिये इन निक्षेपों के विनियोग में अधिकोष को अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है।

संचय निक्षेप (Savings Deposits) : में जनता की वह रकम जमा होती है जो निश्चित सामयिक अवधि (Periodical Intervals) में कुछ निश्चित भाग से अधिक नहीं निकाली जा सकती।

स्थायी निक्षेप (Fixed Deposits) में जनता की वह रकम होती है जो एक निश्चित काल के लिये जमा की जाती है तथा जिसको इस निश्चित अवधि के पहिले बिना पूर्व सूचना के नहीं निकाला जा सकता।

इन तीनों प्रकार के निक्षेपों से अधिकोष को कार्यशील पूंजी (Working Capital) मिलती है तथा इसको ऋण आदि देने में विनियोग करने से अधिकोष अपना लाभ कमाते हैं; इसलिये इसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी अधि-कोष पर रहती है अतः इसका विनियोग अधिकोष को इस प्रकार करना पड़ता है जिससे उसे लाभ भी मिले तथा माँग होने पर किसी भी समय इसका भुगतान करने में भी सुविधा हो। क्योंकि निक्षेप की रकम की माँग होने पर अगर अधिकोष उसका भुगतान नहीं कर सकता तो वह जनता का विश्वास खो बैठता है जिससे उसका व्यापार भी बंद होने की संभावना रहती है।

भिन्न भिन्न प्रकार के निक्षेपों से व्यापारिक स्थिति की भी कल्पना हो सकती है क्योंकि व्यापारिक मंदी के समय लाभकर विनियोगों के संचित न होने के कारण चल निक्षेपों में अन्य निक्षेपों की रकम की अपेक्षा कम रकम होती है; इसके विपरीत व्यापारिक उन्नति के काल में लाभकर विनियोगों के साधन उपलब्ध होने से चलनिक्षेपों की जमा अधिक होती है क्योंकि व्या-पारिक विस्तार के लिए उनको अधिकाधिक रकम की आवश्यकता होती है। इस प्रकार व्यापारिक मंदी के समय अन्य निक्षेपों का अनुपात (ratio) चलनिक्षेपों के अनुपात में घटता तथा व्यापारिक तेजी (Trade boom)

के समय चलनिक्षेपों के अनुपात में अन्य निक्षेपों की तुलना में वृद्धि होती है। इस प्रकार निक्षेपों के अनुपात, एक प्रकार से व्यापारिक परिस्थिति के निर्देशांकों का कार्य भी करते हैं।

भारतीय अधिकोष अपने स्थितिविवरण में भिन्न भिन्न निक्षेपों की रकम भिन्न भिन्न नहीं बताते, वास्तविक अधिकोषण स्थिति की पूर्ण एवं समुचित कल्पना होने के लिये इन निक्षेपों को भिन्न भिन्न बताना विधानतः (Legally) अनिवार्य होना चाहिये।

संग्रहण के लिये आए हुए विपत्र (Bills for Collection) : इस पद में उन विपत्रों का तथा परिपत्रों का समावेश होता है जो अधिकोष अपने ग्राहकों की ओर से स्वीकृत करता है क्योंकि जहां तक इन विपत्रों की स्वीकृति का संबंध होता है, इनकी रकम अधिकोषिक को आहर्ता को देनी पड़ती है इसलिये यह उसका देय होता है। इस रकम की पूर्ति संपत्ति पार्श्व में जो 'प्राप्य विपत्र' होते हैं उसकी रकम से हो जाती है क्योंकि जिन ग्राहकों की ओर से अधिकोष विपत्र स्वीकृत करता है वे उसे प्राप्य विपत्र—ग्राहकों द्वारा स्वीकृत—देते हैं अतः इस पद पर उसका विशेष दायित्व नहीं रहता। वास्तव में इन विपत्रों का भुगतान ग्राहक ही करते हैं परंतु यदि ग्राहक उनका भुगतान न करे तो भुगतान की जिम्मेदारी अधिकोष की होती है। इसीलिये इस रकम की प्रतिप्रविष्टि संपत्ति-पार्श्व में "प्राप्य विपत्र" इस पद में दिखाई जाती है। इसी देय को "स्वीकृत विपत्रों पर देय" इस पद के अन्तर्गत देय पार्श्व में दिखाया जाता है। अतः वास्तव में "स्वीकृत विपत्रों पर देय" तथा संग्रहण के विपत्र इन दोनों शीर्षकों से एक ही तात्पर्य है।

लाभालाभ लेखा (Profit & Loss account) : बहुत से अधिकोष इस पद के अन्तर्गत उनको जो लाभ होता है उसे बताते हैं तथा उस लाभ का विभाजन अंशभागियों में किस प्रकार किया गया इसका दिग्दर्शन करते हैं। यह लाभ अंशभागियों को देय होने के कारण अधिकोष के लिये भी देय होता है।

सम्पत्ति पार्श्व : सम्पत्ति पार्श्व से अधिकोष अपने देय का उपयोग एवं विनियोग किस प्रकार से करते हैं यह मालूम होता है। अपनी देयता के भुगतान के लिये अपने पास कितना रोक निधि (Cash Reserves) तथा कितनी तरल संपत्ति रखते हैं इसका ज्ञान होता है। सम्पत्ति पार्श्व में भिन्न भिन्न प्रकार की सम्पत्ति उनकी तरलता के अनुसार क्रमशः दी जाती है; उदाहरणार्थ स्थायी संपत्ति अंत में क्योंकि वह उतनी तरल नहीं होती अथवा उससे इतने शीघ्र रोकड़ नहीं प्राप्त की जा सकती जितनी कि प्राप्य विपत्रों से।

इसीलिये रोकड़ तथा अधिकोपस्थ रोकड़ यह पद संपत्ति पार्श्व में सबसे पहिले दिया जाता है।

अधिकोष अपने वित्त का, जो उसने निक्षेपों के रूप में स्वीकृत किया है, उसका विनियोग करने के लिये पूर्णरूप से स्वतंत्र होते हुए भी उसको इसका विनियोग सुरक्षित रीति से करना पड़ता है; क्योंकि अधिकोषण का स्वरूप ही ऐसा है जिसमें निक्षेपों का माँग पर भुगतान करने की जिम्मेदारी अधिकोष पर होती है तथा इन्हीं निक्षेपों की रकम के विनियोग से उसे अपना लाभ भी कमाना पड़ता है। इस प्रकार एक ओर निक्षेपों की सुरक्षा, एवं मांग पर भुगतान करने की शक्ति तथा दूसरी ओर लाभार्जन के हेतु उनका विनियोग इस दुहेरी कैंची में अधिकोष होता है। इसीलिये अधिकोष को अपने देय एवं निक्षेपों के भुगतान के लिये सदैव कुछ रोकनिधि (Cash Reserve) अपने पास रखनी पड़ती है तथा अन्य धन का विनियोग वह इस प्रकार करता है जिससे उस विनियोग की बिक्री से उसे तुरंत ही आवश्यकता पड़ने पर, धन प्राप्त हो सके। इसलिए अधिकोष की सुरक्षा उसके धन की तरलता पर निर्भर रहती है, इसी हेतु हमारे लिए संपत्ति पार्श्व के विभिन्न पदों का समुचित अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

हस्तस्थ तथा अधिकोपस्थ रोक : इस पद के अन्तर्गत अधिकोष के पास जो रोकड़ होती है उसकी रकम तथा जो धन अन्य अधिकोषों के पास तथा रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया के पास जमा रहता है उस धन का समावेश होता है। अपना धन एक अधिकोष दूसरे अधिकोषों के पास भी निक्षेप में रखता है तथा निक्षेप की रकम जो केंद्रीय अधिकोष के पास में होती है वह अधिकोषों को रखना वैधानिक रीति से (legally) अनिवार्य है। जो रकम इस प्रकार अन्य अधिकोषों में एवं केंद्रीय अधिकोष के पास जमा रहती है वह 'हस्तस्थ रोक' की तरह ही होती है क्योंकि समय आने पर अधिकोष इन निक्षेपों की रकम अपने देय के भुगतान के लिये उपयोग में ला सकता है। इस अधिकोपस्थ रोक को हस्तस्थ रोक से भिन्न दिखाने की प्रथा आधुनिक है जिससे ग्राहकों को अधिकोष की तरलता संबंधी पूर्ण ज्ञान हो सके। इसको 'रोकनिधि' भी कहते हैं।

याचित तथा अल्पकालीन सूचना वाले ऋण (Money at call & short notices) : रोक एवं अधिकोपस्थ रोक के बाद आने वाला यह तीसरा शीर्षक पद है। इस पद के अन्तर्गत अधिकोष विभिन्न व्यक्तियों को जो ऋण देता है उन ऋणों का समावेश होता है। ये ऋण तीन प्रकार के होते हैं :—

१. वह ऋण जो अधिकोप अपने व्यापार के अन्त में केवल रात्रि के उपयोग के लिए देते हैं और जिनका भुगतान दूसरे दिन अधिकोप के कार्यारम्भ के समय हो जाता है। ऐसे ऋण विशेषतः परिकाल्पनिक व्यवहारों के लिये अथवा स्कंध विनिमय व्यवहारों के लिए दिये जाते हैं।

२. वे ऋण जो अधिकोप इस शर्त पर देता है कि उनका भुगतान बिना किसी पूर्व सूचना के ऋण लेने वाले करेंगे। ऐसे ऋणों को (Money at call) 'याचना पर भुगतान होने वाले ऋण' कहते हैं।

३. वे ऋण जो अधिकोप इस शर्त पर देते हैं कि उनका भुगतान सूचना पाते ही २४ घंटे से ७ दिन के अन्दर होना चाहिये। इन ऋणों में कुछ ऋण ऐसे होते हैं जिनका भुगतान भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाओं की प्राप्ति पर उस अवधि में तुरन्त होना चाहिये लेकिन किसी भी दशा में ये अवधि न्यूनतम २४ घंटे तथा अधिकतम ७ दिन की होती है।

हमने यह ऊपर बताया कि अधिकोप अपनी सुरक्षा के लिये, तत्कालीन भुगतान करने के लिये रोकड़ रखते हैं किन्तु यह रोकड़ उनके व्यापार की दृष्टि से उनके पास निरुपयोगी नहीं रह सकती क्योंकि उस रोकड़ पर भी ये लाभ कमाना चाहते हैं अतः इस प्रकार अल्पकालीन ऋण वे विपत्र-मध्यग, अपहार गृहों (Discount Houses), स्कंधविनिमय व्यवहारकर्ताओं तथा परिकाल्पनिक व्यवहारकर्ताओं आदि को देते हैं। इन ऋणों पर ब्याज की दर भी बहुत कम होती है जो १% से २% प्रति वर्ष होती है। ये ऋण प्रतिभूतियों की रहन अथवा प्राधि (Mortgage) पर दिये जाते हैं। अगर किसी भी समय अधिकोप के पास रोकड़ न रहेगी तो भुगतान के लिये यह दूसरा साधन होता है। इस प्रकार अधिकोपण की सुरक्षा की दृष्टि से यह दूसरा साधन है।

अपहृत विपत्र (Bills discounted): यह तीसरा पद है जो तरलता की दृष्टि से अधिकोप के स्थिति-विवरण में आता है। इस शीर्षक के अतंर्गत अधिकोप का वह विनियोग आता है जो वह विपत्रों के अपहरण (Discounting) द्वारा दूसरों को देते हैं। इस में अधिकौपिक केवल प्रथम श्रेणी के विपत्रों का ही अपहरण करता है। विपत्रों का अपहरण उस क्रिया को कहते हैं जिसमें अधिकोप विपत्रों का तत्कालीन मूल्य विपत्र संधारक

(Holder of Bill) को चुकाते हैं। उदाहरणार्थ एक विपत्र १००० रुपये का ६० दिन बाद देय है तथा यह विपत्र संधारक अपहरण के लिये लाता है। अर्थात् इस विपत्र पर अधिकोपिक १००० रु० का ६० दिन का सूद इस रकम में से तत्कालीन दर के हिसाब से कम करके शेष मूल्य संधारक (Holder) को चुकायेगा। अब यह विपत्र अधिकोपिक की संपत्ति है जिसका ६० दिन बाद उसे आहार्यी (Drawee) द्वारा भुगतान होगा। इन विपत्रों में उसका विनियोग इस प्रकार से होता है कि एक के बाद दूसरा विपत्र चुकता होता रहे जिससे किसी भी समय उसे रोकड़ की कमी न रहे। यह अधिकोपिक की सुरक्षा का तीसरा साधन है क्योंकि किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर अधिकोप इन विपत्रों को विपत्रविपणि (Bill market) में बेचकर अथवा केंद्रीय बैंक से पुनः अपहृत कर धन प्राप्त कर सकता है।

विपत्रों का अपहरण करना यह अधिकोप का एक कार्य है और इसीलिये विपत्रों के अपहरण में उसके अधिकतर धन का विनियोग होता है। कभी कभी इन अपहृत विपत्रों में कोष विपत्रों का भी समावेश होता है जो उस देश की सरकार की दैनिक आवश्यकताओं के लिये केंद्रीय अधिकोप बेचता है; इन विपत्रों की अवधि ६० दिन से अधिक नहीं होती तथा इन पर व्याज भी कम मिलता है। भारतीय सरकार के कोषविपत्रों पर युद्ध पूर्व १¾% व्याज मिलता था परंतु आजकल यह दर केवल ८ आने प्रतिशत है।

भारत में विपत्र-विपणि सुसंचालित एवं सुसंगठित न होने के कारण इस पद के अन्तर्गत बहुत कम विनियोग होता है परंतु विदेशों में जहाँ विपत्र-विपणि का संगठन एवं संचालन बहुत ही अच्छा है वहाँ पर अधिकोषों के बहुत अधिक धन का विनियोग विपत्रों के अपहरण कार्यों में होता है। विदेशों में इस शीर्षक के अंतर्गत अधिकोषों की कार्यशील पूँजी का २० से २५% विनियोग होता है, जहाँ भारत में केवल २% से ३% कार्यशील पूँजी का विनियोग होता है। इसीलिये भारतीय अधिकोषों के स्थितिविवरण में इस शीर्षक को अलग न दिखाते हुए 'अग्रिम तथा ऋण' (Loans & Advances) इस शीर्षक में ही समाविष्ट किया जाता है।

विनियोग (Investments) : यह अधिकोप की सुरक्षा का चौथा साधन है। इसमें अधिकोप के उस विनियोग का समावेश होता है जो सरकारी प्रतिभूतियों में, सम-सरकारी (Semi Government) प्रतिभूतियों, सामाजिक उपयुक्तता के प्रमंडलों के ऋण-पत्रों और प्रथम श्रेणी के प्रमंडलों के

अंशों में किया जाता है। सरकारी प्रतिभूतियों पर, ऋण-पत्रों आदि पर ब्याज तथा प्रमंडलों के अंशों पर लाभांश मिलता है जिससे अधिकोषों को लाभ होता है। किन्तु संकट समय में इनका रोक में परिवर्तन असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है क्योंकि जिस काल में मुद्रा की अधिक आवश्यकता होती है उस समय ये प्रतिभूतियां बेची भी नहीं जा सकतीं, कारण उस समय मुद्रा-विपणि में पैसे का अभाव रहता है। अपितु ऐसे समय में प्रत्येक अधिकोष अगर अपने विनियोग पत्रों को बेचने का प्रयत्न करता है तो विनियोग पत्रों के मूल्य गिर जायेंगे और अधिकोषण स्थिति से जनता का विश्वास डांवा-डोल हो जायेगा। अतः उपर्युक्त तीनों पदों के विनियोग से इसमें तरलता कम रहती है किन्तु ये विनियोग पत्र प्रथम श्रेणी के होने के कारण संकटकाल में इनकी प्राधि पर केंद्रीय अधिकोष से ऋण प्राप्त किया जा सकता है।

अग्रिम तथा ऋण (Loans & Advances) : अधिकोष अपने वित्त को ग्राहकों को ऋण तथा अग्रिम के रूप में ऋण देकर सब से अधिक लाभ कमाता है। ये ऋण ऊंची ब्याज की दर पर दिये जाते हैं तथा यह दर ६% प्रति वर्ष से ६ प्रतिशत प्रतिवर्ष तक होती है। व्यापारिक अधिकोष इस प्रकार के ऋण ६ से ६ महीने की अवधि के लिये देते हैं तथा इस शर्त पर कि मांग पर उनका भुगतान होगा। किन्तु अधिकोष इन पर अधिक निर्भर नहीं रह सकता क्योंकि संकटकाल में अगर सब ग्राहकों से ऋण का भुगतान मांगा जायगा तो अधिकोष से तो विश्वास उठेगा ही तथा जो लोग ऋण चुकाने में अपनी असमर्थता प्रकट करेंगे वे दिवालिये हो जायेंगे जिससे देश की व्यापारिक स्थिति को धक्का लगेगा।

इसीलिये अधिकोष को अपनी ऋणनीति अधिक दृढ़ रखनी पड़ती है क्योंकि अगर वह ऋण न दे तो उनको लाभ नहीं होगा और अधिक से अधिक लाभ होने का साधन तो ये विनियोग ही हैं।

प्राप्य विपत्र (Bills Receivable) : यह पद जैसा कि पहिले बताया गया है, स्वीकृत विपत्रों की प्रतिप्रविष्टि है। अतः इस पद का संतुलन (Balancing) देय पार्श्व के 'स्वीकृत विपत्र' इस पद की रकम से होता है।

भूगृहादि (Land Buildings etc.) : यह पद स्थितिविवरण में सब पदों के अन्त में आता है क्योंकि यह सबसे कम तरल संपत्ति है जिसका रोक-परिवर्तन अधिकोष के बंद हो जाने पर ही किया जाता है अथवा होने की संभावना पर। इस प्रकार की जो स्थायी संपत्ति होती है उसका मूल्य वास्तविक मूल्य से बहुत कम दिखाया जाता है जिससे अधिकोष संकटकाल के लिये अथवा असंभाव्य हानिपूर्ति के लिये "गुप्त संपत्ति" निर्माण करते हैं।

अधिकोष के स्थितिविवरण के अध्ययन से एवं विश्लेषण से हमको निम्न बातें विशेषरूप में समझ में आ जाती हैं :—

१. कि किसी भी समय अधिकोष की सपत्ति एवं देय का संतुलन होता है।

२. स्थितिविवरण के देय पार्श्व में जो देय होते हैं उन सबका भुगतान अधिकोष को एक ही साथ नहीं करना पड़ता; इतना ही नहीं, अपितु कुछ देय ऐसे होते हैं जिनका भुगतान अधिकोष को करना नहीं पड़ता किंतु भुगतान की जिम्मेदारी अधिकोष पर होती है; उदाहरणार्थ स्वीकृत विपत्रों पर देय। दूसरे कुछ देय ऐसे होते हैं जिनका भुगतान करने की अधिकोष को कभी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होगी और न उनका भुगतान होता है जैसे संचिति प्रणीधि एवं दत्त पूंजी। तीसरे, निक्षेप के रूप में जो देय दिखाया जाता है उसके भुगतान की वास्तविक जिम्मेदारी अधिकोष की होती है किंतु इसमें भी कुछ निक्षेप ऐसे होते हैं जो स्थायी होते हैं एवं जिनको निश्चित अवधि के बाद निकाला जा सकता है जिसका पूर्व ज्ञान होने से उसका समय पर भुगतान हो सकता है। इसी प्रकार संचय निक्षेप की रकम भी कुछ निश्चित मात्रा में ही निकाली जा सकती है, तथा यह रकम कितनी होगी, इसका अनुभव अधिकोषों को होता है तथा इसके भुगतान की जिम्मेदारी अधिकोष पूर्णरूप से निभा सकता है। हां, जहां तक चल-निक्षेपों का संबंध है उनके भुगतान की वास्तविक जिम्मेदारी अधिकोष पर होती है; क्योंकि इन निक्षेपों की रकम भी अन्य निक्षेपों की मात्रा से अधिक होती है, तथा दूसरे ये निक्षेप किसी भी समय, किसी भी परिमाण में ग्राहकों द्वारा निकाले जा सकते हैं। अतः इस संबंध में अधिकोष का तत्कालीन दायित्व महत्त्वपूर्ण है जिसके भुगतान के लिये उसको सदैव अपने पास रोकनिधि रखनी पड़ती है।

३. संपत्ति पार्श्व में भिन्न भिन्न प्रकार की संपत्ति उनकी तरलता के अनुसार लिखी जाती है तथा इस संपत्ति का विनियोग सुरक्षा की दृष्टि से अधिक तरल तथा सुरक्षित हो एवं अधिकाधिक लाभ भी कमाया जा सके, इस दृष्टि से अधिकोषों को करना पड़ता है, जो एक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी का कार्य है।

इस प्रकार स्थितिविवरण के समुचित अध्ययन एवं विश्लेषण से अधिकोष की लाभ देने की शक्ति, धन की तरलता एवं सुरक्षा, तथा उसके व्यापार का स्वरूप हम समझ सकते हैं।

जहां तक लाभ देने की शक्ति का संबंध है हम पिछले स्थितिविवरण

के तुलनात्मक अध्ययन से यह देख सकते हैं कि लाभांश (Dividends) गिर रहे हैं अथवा बढ़ रहे हैं। इसी प्रकार दत्त पूंजी एवं निक्षेपों का अनुपात क्या है ? क्योंकि जैसे जैसे लाभ देने की शक्ति बढ़ती जायेगी, उसी हिसाब से उसके निक्षेप में भी वृद्धि होगी और दत्त पूंजी की अपेक्षा निक्षेप का अनुपात बढ़ता जायगा। इसी प्रकार संचिति-प्रणीवि को देखकर हम अधिकोष की आर्थिक स्थिति समझ सकते हैं क्योंकि सुसंचालित अधिकोषण में संचिति-प्रणीवि क्रमश: बढ़ती ही जाती है।

संपत्ति की सुरक्षा एवं तरलता जानने के लिये कुल निक्षेप एवं विनियोग का क्या अनुपात है यह देखना होगा। तरलता के लिये विनियोग को शीघ्र रोक में परिवर्तित किया जा सकता है अथवा नहीं यह देखना होगा। सुरक्षा की दृष्टि से ऋण को निक्षेपों से अधिक मात्रा में नहीं होना चाहिये, अगर हैं तो संचिति प्रणीवि उनकी पूर्ति के लिए पर्याप्त है अथवा नहीं यह देखना होगा। इसी प्रकार सुरक्षा की दृष्टि से विनियोग किन प्रकार की प्रतिभूतियों अथवा विनियोगपत्रों में है यह भी देखना चाहिये क्योंकि विनियोगपत्र ऐसे नहीं होने चाहियें जिनके मूल्यों में अधिक उच्चावचन होता है।

व्यापार का स्वरूप : अधिकोष का व्यापार बढ़ रहा है अथवा नहीं यह देखने के लिये निक्षेप का पूंजी से अनुपात बढ़ रहा है या नहीं यह देखना होगा। इसी प्रकार अगर ऋणों में विनियोगों तथा निक्षेपों में वृद्धि हो रही हो तो यह निश्चित है कि अधिकोष का व्यापार प्रगति पथ पर है। लेकिन इस वृद्धि के साथ ही साथ तरलता एवं सुरक्षा को देखना अत्यन्त आवश्यक है। इस व्यापार के स्वरूप को जानने के लिये कोई भी ऐसे नियम नहीं हैं जो अक्षरशः लागू किये जा सकें किंतु इनके स्थितिविवरण की तुलना प्रथम श्रेणी के अधिकोष से करने पर कौनसा अधिकोष अच्छा है यह जाना जा सकता है। हमारे देश में विशेषतः जो प्रथम श्रेणी के एवं अच्छे अधिकोष हैं वे निक्षेपों पर बहुत कम ब्याज देते हैं, इसी प्रकार उनके विनियोग तथा ऋण भी कम ब्याज पर ही होते हैं। क्योंकि जितनी ही विनियोग एवं ऋणों की ब्याज की दर कम होगी उतनी ही उनकी सुरक्षा अधिक से अधिक होगी।

इस प्रकार स्थितिविवरण के अध्ययन से, एवं विश्लेषण से अधिकोषों की लाभ देने की शक्ति, उनके धन की सुरक्षा एवं तरलता तथा उनके व्यापार की प्रगतिशीलता का ज्ञान ठीक ठीक रीति से हमको प्राप्त हो सकता है तथा हम यह भी जान सकते हैं कि वह अधिकोषण संस्था सुसंचालित (Sound) है अथवा नहीं।

प्रश्न संग्रह

१ अधिकोष का काल्पनिक स्थितिविवरण बनाकर यह बताइये कि उसके भिन्न पदों का क्या महत्त्व है ?

२ "अधिकोष सुसंचालित है तथा उसके निक्षेप सुरक्षित हैं," यह आप किस प्रकार जान सकेंगे, सकारण लिखिये ?

अध्याय ४

अधिकोष की विनियोग नीति

पिछले अध्याय से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्थितिविवरण से अधिकोष की आर्थिक परिस्थिति का अन्दाज ठीक से लगाया जा सकता है तथा उसके व्यापार की परिस्थिति का ज्ञान भी हो सकता है। फिर भी अनेक बातें ऐसी हैं जिनका स्थितिविवरण में समावेश नहीं होता, उदाहरणार्थ किन प्रति-भूतियों के आधार पर अधिकोष के ऋण दिये गये हैं ? आदि। फिर भी हमने यह देखा कि अधिकोष की देय भुगतान करने की समर्थता का ज्ञान अधिकोष की दत्त पूँजी तथा संचिति प्रणीवि के आधार पर तथा उसकी कार्यशील पूँजी से हो सकता है क्योंकि प्रगति की अवस्था में इनकी रकम बढ़ती जाती है। इसी प्रकार जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है कि अधिकोष की पहिला सुरक्षा का साधन रोक निधि है जिसकी रकम अधिकोषस्थ तथा हस्तस्थ रोक से मालूम की जाती है। क्योंकि वह याचित देय (Demand Liabilities) का भुगतान करने में तभी समर्थ हो सकता है जब उसके पास पर्याप्त रोक निधि हो। इसी प्रकार उसके भिन्न विनियोग का अनुपात कुल याचित देय के समुचित परिमाण में है क्योंकि किसी भी समय सारे देय का भुगतान तो उसे करना ही नहीं पड़ता। विशेषतः अच्छे अधिकोषों के स्थितिविवरण से यह देखा जा सकता है कि सम्पत्ति पार्श्व के पहिले तीन पदों—तीन सुरक्षा के साधनों—का परिमाण कुल याचित देय के ६० प्रतिशत होता है। इसी प्रकार कुल देय के कितने प्रतिशत ऋण दिये गये हैं तथा वे ऋण किन व्यक्तियों को किस कार्य के लिए एवं किन प्रति-भूतियों के आधार पर दिये गए हैं। इन सब बातों को देखने से अधिकोष की देय-भुगतान शक्ति का एवं सुसंचालन का समुचित प्रमाण मिलता है।

विनियोग नीति का आधार : यहाँ पर यह देखना आवश्यक हो जाता है कि वह कौनसी नीति है जिसके आधार पर अधिकोष अपनी विभिन्न सम्पत्ति में अपने धन का उपयोग करता है ? अधिकोषण व्यापार के स्वरूप से यह स्पष्ट हो गया है कि उसको अपने धनकी सुरक्षा एवं तरलता

का ध्यान रखना पड़ता है जिससे वह अपने याचित देय (Demand Liabilities) का भुगतान किसी भी समय करने में समर्थ हो सके। क्योंकि अगर वह धनादेश आते ही उसका भुगतान नहीं करता तो उस अधिकोष से जनता का विश्वास उठ जायगा तथा उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी होते हुए भी उसे व्यापार बंद करना होगा। इस के साथ ही अधिकोष सारे धन को अपने पास भी नहीं रख सकता क्योंकि उसे लाभ भी कमाना होता है; जिसके लिये वह अपने धन का अन्यत्र विनियोग करता है तथा इस विनियोग में उसे अनेक प्रकार की सावधानी की आवश्यकता होती है।

विनियोग नीति का आधार :

यह विनियोग नीति प्रत्येक देश में एक ही आधार पर उपयोग में नहीं आ सकती तथा भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। किस प्रकार विनियोग किया जाय यह उस देश की जनता की आदतों पर, व्यापारिक एवं औद्योगिक परिस्थिति पर तथा विपत्र-विपणि के विकास (Development of a Bill Market) पर निर्भर रहता है। फिर भी अधिकोष के व्यापार का स्वरूप देखते हुए धन की सुरक्षा, सम्पत्ति की तरलता तथा लाभ इन तीन बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखना पड़ता है। तथा जब तक अधिकोष इन आधारभूत तत्वों पर संचालित नहीं होता तब तक वह यशस्वी नहीं हो सकता और न जनता का विश्वास ही सम्पादन कर सकता है।

इस लिये मोटे तौर से अधिकोष की विनियोग नीति निम्न तत्वों पर आधारित होनी चाहिये :—

१. सम्पत्ति की तरलता : अधिकोषण व्यापार के लिये सम्पत्ति की तरलता के महत्त्व के विषय में हम बहुत लिख चुके हैं। इसलिये विनियोग करते समय सम्पत्ति की तरलता का ध्यान रखना अत्यावश्यक है, जिससे समय पड़ने पर तत्काल इस सम्पत्ति को बेचकर रोकड़ प्राप्त हो सके। अतएव अधिकोषिक को अपने विनियोग अल्पकालीन ऋणों के लिये ही करने चाहियें तथा दीर्घ-कालीन ऋणनीति का परित्याग करना चाहिये। अर्थात् अधिकोषों को अपने अल्पकालीन निक्षेपों के धन से दीर्घकालीन ऋण नहीं देना चाहिये। श्री टैनन के अनुसार "यशस्वी अधिकोषिक वह है जो एक विनिमय विपत्र तथा आधि का अन्तर जान सकता है।[1]" क्योंकि अगर अधिकोष अपने धन का विनियोग भूगृहादि के क्रय में अथवा दीर्घकालीन ऋणों में करता है तो वे संकटकाल

[1] *"A successful banker is he who can distinguish between a Bill of Exchange and a mortgage"*

—Banking Law & Practice in India by M. L. Tannan.

में तत्काल ही रोकड़ में परिवर्तित नहीं किये जा सकते। इतना ही नहीं अपितु बुद्धिमान अधिकोषिक अपने धन का विनियोग भिन्न-भिन्न प्रकार से ऐसे करता है जिससे उसके पास सदैव रोकड़ रहती है और विनियोगों के बेचने से किसी प्रकार की हानि भी नहीं होती। अर्थात् अधिकोष के विनियोग इतने तरल हों, जिनका परिवर्तन रोकड़ में किसी भी समय बिना किसी घाटे के हो सके।

२. दूसरे, अधिकोष की विनियोग नीति केन्द्रीय अधिकोष की विनियोग नीति के आधार पर होनी चाहिये। क्योंकि केन्द्रीय अधिकोष के कुछ नियम होते हैं जिनकी प्राप्ति पर ही वह ऋण देता है। अतः संकटकाल के लिये केन्द्रीय अधिकोष से ऋण प्राप्त हो सके इस हेतु अधिकोष को उन्हीं विनियोग पत्रों तथा प्रतिभूतियों में अपने धन का विनियोग करना चाहिये जो केन्द्रीय अधिकोष द्वारा स्वीकृत हों।

३. तीसरे, अपने धन का विनियोग करते समय अधिकोष को सदैव दूर-दृष्टि से काम लेना चाहिये। उसको अपने धन का विनियोग इस प्रकार के पत्रों एवं प्रतिभूतियों में करना चाहिये, जिनसे उसे अच्छा लाभ मिल सके तथा साथ ही साथ उसका धन भी सुरक्षित रहे क्योंकि यह धन उसका निजी न होते हुए, निक्षेप रूप में ग्राहकों से उधार लिया हुआ है जिसकी सुरक्षा एवं भुगतान की जिम्मेदारी उस पर होती है। इस दृष्टि से उसे कभी भी पारिकाल्पनिक व्यवहारों में नहीं पड़ना चाहिये। क्योंकि सुरक्षा और तरलता में ही अधिकोष को किसी प्रकार का भय नहीं रहता तथा उसकी आर्थिक परिस्थिति भी मज़बूत रहती है।

४. चौथे, अधिकोष को अपने धन का विनियोग किसी एक ही प्रकार के उद्योग अथवा व्यापार में नहीं करना चाहिये क्योंकि अगर ऐसा व्यापार या उद्योग घाटे में आ जाय तो अधिकोष के विनियोगों को भय रहता है। इसी प्रकार अधिकोष अपने सारे ऋण एक ही व्यक्ति को भी न दे क्योंकि उसमें भी बराबर भय रहता है। इसीलिये अधिकोष को चाहिये कि वह अपने विनियोग भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यापार एवं उद्योगों में करे तथा इसी प्रकार व्यक्तिगत ऋण देने की नीति का भी अवलम्ब करे।

विनियोग की पद्धति : अधिकोष अपने धन का उपयोग दो प्रकार से करते हैं :—

१. अलाभकर उपयोग अर्थात् वह उपयोग जिसमें अधिकोष को किसी भी प्रकार का लाभ नहीं होता है लेकिन जो व्यापार-संचालन के लिये आवश्यक होते हैं। उदाहरणार्थ : उपस्कर, भू-गृहादि तथा अन्य आवश्यक

वस्तुएँ। इसी में अधिकोपस्थ एवं हस्तस्थ रोक अथवा रोकनिधि का भी समावेश होता है क्योंकि यह रोकड़ अधिकोप को सदैव अपने पास याचित देय के भुगतान के लिये रखना आवश्यक होता है।

२. धन का इस प्रकार का उपयोग जिससे वह लाभ कमा सके। इस प्रकार के उपयोग में याचित एवं अल्पकालीन ऋण, अपहृत विपत्र, प्रतिभूतियों का क्रय तथा ऋण एवं अग्रिम धनों का समावेश होता है।

ये भिन्न भिन्न प्रकार के विनियोग अधिकोप किस प्रकार से करते हैं तथा ये सुरक्षा के किस श्रेणी के साधन हैं इसका उल्लेख अध्याय ३ में किया गया है। परंतु इन सब में महत्वपूर्ण पद एवं प्रथम श्रेणी का सुरक्षा-साधन अधिकोपों की रोकनिधि है, जिसके विषय में हम यहां अधिक विचार करेंगे।

रोकनिधि : रोकनिधि वह रोकड़—हस्तस्थ एवं अधिकोपस्थ—है जो अधिकोप सदैव अपने पास अपने याचित ऋणों (Demand liabilities) के भुगतान के लिये रखता है। क्योंकि अन्य निक्षेपों में स्थायी निक्षेपों के भुगतान सम्बन्धी उसे पूर्ण ज्ञान होता है जिसके लिए उस समय वह अपने पास पर्याप्त रोकड़ रख सकता है। इसी प्रकार संचय निक्षेपों के विषय में भी उसे पर्याप्त जानकारी होती है क्योंकि इन निक्षेपों की रकम प्रति सप्ताह कुछ निश्चित परिमाण में ही निकाली जाती है। किंतु यह बात चल निक्षेपों के लिये लागू नहीं है, जिनकी रकम किसी भी समय किसी भी परिमाण में निकाली जा सकती है अतः इन निक्षेपों का दायित्व महत्वपूर्ण होता है जिसके भुगतान के लिये अधिकोप को पर्याप्त रोकड़ रखनी पड़ती है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह 'पर्याप्त रकम' कौन सी है तथा किस आधार पर निश्चित की जाती है?

अधिकोपों को कितनी रोकनिधि अपने पास रखनी चाहिए इस संबंध में कोई भी विशेष नियम नहीं जिनको पूर्णरूप से सब स्थानों पर काम में लाया जा सके। रोकनिधि कितनी हो यह अधिकोप के पूर्व अनुभव, उसकी दूरदर्शिता तथा उस क्षेत्र की व्यापारिक परिस्थिति पर निर्भर रहता है; परंतु विशेषतः रोकनिधि कितनी रखी जाय इस सम्बन्ध में निम्न बातें विशेषरूप से विचारणीय हैं जिनका यहां उल्लेख करना आवश्यक है[1] :—

१. निक्षेपों का स्वरूप : अधिकोप की रोकनिधि कितनी हो इस सम्बन्ध में निक्षेपों का स्वरूप देखना पड़ता है। जिस स्थान पर विशेषतः निक्षेपों की रकम किसी सूचना द्वारा निकाली जाती है उस स्थान पर अधिकोप को रोकनिधि की कम आवश्यकता होगी। इसके विपरीत अगर

[1] *Banking Law & Practice by M. L. Tannan, Pp. 196-199.*

चल निक्षेपों की रकम अधिक परिमाण में है तो ये याचित दायित्व होने के कारण ऐसी परिस्थिति में रोकनिधि में अधिक रोकड़ रखनी पड़ेगी।

२. ग्राहकों की विशेषता : इसी प्रकार अगर अधिकोष के ग्राहकों में ऐसे ग्राहकों के लेखे अधिक हैं जो परिकाल्पनिक अथवा स्कंध विनिमय व्यवहारों में रत हैं तथा लेखों की रकम में कभी आधिक्य रहता है तो ऐसे लेखों की अवस्था में अधिकोष को अधिक रोकनिधि रखनी पड़ती है। इसी प्रकार उन अधिकोषों को भी, जिनके पास दूसरे अधिकोषों के निक्षेप रहते हैं, अन्य अधिकोषों से अधिक परिमाण में रोकनिधि रखनी होगी।

३. विनिमय माध्यम का स्वरूप : विनिमय माध्यम के लिये मुद्रा का अथवा धनादेश एवं साखपत्रों के उपयोग पर भी रोकनिधि की रकम निर्भर रहेगी। जिस देश में अधिकतर विनिमय मुद्रा के माध्यम से होते हों उस देश के अधिकोषों को रोकनिधि अधिक रखनी पड़ेगी। इसके विपरीत जिस देश में धनादेश का प्रचार हो एवं धनादेशों द्वारा ही बहुतांश विनिमय व्यवहारों का भुगतान होता हो तो ऐसी अवस्था में दैनिक रोकड़ की आवश्यकता भी कम होगी तथा रोकनिधि कम रखनी पड़ेगी।

४. समाशोधन गृहों का विस्तार (Development of Clearing Houses) : समाशोधन गृहों के अस्तित्व से धनादेश द्वारा होनेवाला परस्पर अधिकोषों के दायित्व का आपस में मिलान हो जाता है। अतः जहाँ पर अधिकतर भुगतान धनादेशों द्वारा होता है और समाशोधन गृहों का अच्छा विकास है उस देश में धनादेशों का परस्पर भुगतान आपस में संतुलन से हो जाता है। उदाहरणार्थ: एक अधिकोष पर काटे गए धनादेश १०,००० रुपये के हैं, इसी प्रकार दूसरे अधिकोषों पर काटे गए धनादेश १५,००० रुपये के हैं, जो उसके पास हैं, तो समाशोधन गृहों में १५०००–१०००० अर्थात् कुल ५००० रुपये उस अधिकोष को अन्य अधिकोषों से मिल जायगा तथा बाकी लेना देना आपस में कट जायगा। इस ५००० रुपये के लिए उस अधिकोष को केन्द्रीय अधिकोष पर धनादेश मिल जायगा, जिसकी रकम केन्द्रीय अधिकोष में उसके लेखे में जमा हो जायगी। इस प्रकार वास्तव में केवल ५,००० रुपये की ही आवश्यकता है लेकिन समाशोधन गृह के अभाव में २५,००० रुपये का स्थानांतरण होता। इस प्रकार समाशोधन गृहों के विकास के कारण रोकड़ की आवश्यकता कम पड़ती है, इसलिये ऐसे देशों में रोकनिधि भी कम रखी जाती है।

५. व्यापारिक परिस्थिति : देश की व्यापारिक परिस्थिति का रोकनिधि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस देश में विशेषतः निर्माणी तथा अन्य

प्रकार के व्यापार हैं जिनको दैनंदिन आवश्यकताओं के लिए रोकड़ की आवश्यकता पड़ती है, ऐसे देश के अधिकोषों को रोकनिधि अधिक रखनी पड़ती है। इसके विपरीत जो देश कृषिप्रधान हैं अथवा कृषिप्रधान क्षेत्र में अधिकोषण व्यापार है, ऐसी परिस्थिति में केवल मौसम में ही रोकड़ की आवश्यकता प्रतीत होती है, इसलिये ऐसे स्थानों पर मौसम के समय रोकानाथ अधिक तथा अन्य काल में रोकनिधि कम रखनी पड़ती है।

६. निक्षेपों की औसत रकम : निक्षेपों की औसत रकम जिस स्थान पर अथवा जिस देश में अधिक होती है उस देश में अधिकोष को अधिक रोकनिधि रखनी पड़ती है। क्योंकि चलनिक्षेप में अधिक रकम रखनेवाले ग्राहकों की संख्या कम होती है; इसके विपरीत जहां पर ग्राहक अधिक हैं तथा निक्षेपों की औसत रकम कम होती है तो उस दशा में रोकनिधि कम रखनी पड़ती है क्योंकि पहिली अवस्था में रोकड़ के लिये भी अधिक माँग होगी।

७. अपहृत विपत्रों की रकम तथा अग्रिमों (Advances) का स्वरूप : इस पर भी रोकनिधि की रकम निर्भर रहती है। क्योंकि जो अधिकोष अपने विनियोग प्रथम श्रेणी के विपत्रों के अपहरण के लिये करता है उसको किसी भी समय रोकड़ की आवश्यकता पड़ने पर, उन विपत्रों के पुनः अपहरण द्वारा केन्द्रीय अधिकोष से रकम मिल सकती है; इसलिए ऐसी अवस्था में रोकनिधि कम रखी जाती है। इसके विपरीत अगर अपहृत विपत्रों में कम धन का उपयोग किया जाता है तथा ऋणों के लिए अधिक, तो उस अधिकोष को रोकनिधि अधिक रखनी पड़ती है; क्योंकि ऋणों का तत्काल ही भुगतान उसे नहीं मिल सकता।

८. आठवें, जिस देश के लोग अपने पास कम धन रखना ठीक समझते हैं तथा अधिकाधिक धन विनियोग में अथवा निक्षेपों में रखते हैं तो अधिकोषों के पास सदैव धन निक्षेप रूप में आयेगा तथा कुछ निकाला भी जायगा। इस प्रकार धन के सदैव आते जाते रहने के कारण ऐसी दशा में उसे रोकनिधि कम रखनी होगी। इसके विपरीत जहां के लोग विनियोग करना नहीं चाहते तथा अपनी रोकड़ अपने पास ही अधिक रखते हैं, ऐसे स्थान पर निधि में अधिक रोकड़ रखनी पड़ेगी।

९. अन्य अधिकोषों की रोकनिधि : अधिकोषों की रोकनिधि की रकम अन्य अधिकोषों की रोकनिधि की रकम पर भी निर्भर रहेगी। क्योंकि जिन अधिकोषों के पास रोकनिधि अधिक है उनमें जनता का विश्वास अधिक होगा। इसलिये प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से एवं जन-विश्वास सम्पादन करने की दृष्टि से जिनकी रोकनिधि कम है उनको भी अपनी रोकनिधि उसी परिमाण में अथवा अनुपात में बढ़ानी होगी।

१०. वैधानिक आवश्यकताएँ : अगर रोकनिधि सम्बन्धी उस देश की वैधानिक आवश्यकताएं हैं, तो उसकी भी पूर्ति करनी होगी। उदाहरणार्थः भारत में अनुसूची बद्ध अधिकोषों (Scheduled Banks) को याचित देय के ५% तथा काल देय (Time Liabilities) के २ प्रतिशत रोकनिधि रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के पास रखना अनिवार्य है। इसी प्रकार अन्य अधिकोषों के लिये यह रकम ५% तथा १½ प्रतिशत है। इस रोकनिधि का हेतु यही है कि ग्राहकों के निक्षेपों की सुरक्षा हो सके।

इङ्गलैण्ड के अधिकोषों में रोकनिधि निक्षेपों की १०% से ११ प्रतिशत रहती है। इसको देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि भारत जैसे पिछड़े हुए देश में, जहां अधिकोषण का विकास भी अभी ठीक ढंग पर नहीं हुआ है, हमारे यहाँ का वैधानिक अनुपात बहुत ही कम प्रतीत होता है। जब हम यह देखते हैं कि संयुक्त राष्ट्र जैसे उन्नत राष्ट्र में वैधानिक रोकनिधि के अनुपात विभिन्न अधिकोषों के ७% से १३% तथा काल-देय के लिये यही अनुपात ३% हैं। अतः वैधानिक अनुपात में, सुसंचालित पद्धति पर, भारतीय अधिकोषण का विकास हो, इस दृष्टि से, वृद्धि होनी चाहिये।

इस रोकनिधि से अधिकोष को किसी भी प्रकार से लाभ नहीं होगा किन्तु सुरक्षा की दृष्टि से एवं विश्वास सम्पादन की दृष्टि से इसे अनिवार्यतः रखना पड़ता है, इसलिये यह उपयोग अलाभकर अथवा लाभ न देने वाला है।

लाभकर उपयोग (Profitable Employment) : रोकनिधि तथा संचालन के लिये आवश्यक उपस्करादि के पश्चात् जो (रोकड़) कार्यशील पूंजी बच रहती है उसका उपयोग अधिकोष अपने लाभार्जन के हेतु करते हैं। अधिकोषों को निम्न प्रकार की आय से लाभ होता है :—

१—सब से प्रथम अधिकोष अपनी पूंजी का बहुतांश भाग विभिन्न प्रकार के ऋणों में उपयोग करते हैं जिस पर अधिकोष को व्याज मिलता है, वह लाभ ही है।

२—चल लेखाओं पर अच्छे अधिकोष व्याज नहीं देते, अपितु ग्राहकों से कुल आपवान (Turnover) पर वर्तन (Commission) लेते हैं, तथा यह वर्तन उनका लाभ होता है। कहीं कहीं चल लेखों पर व्याज दिया जाता है।

३—अधिकोष जिस विपत्र को अपहरण करता है उस पर अपहार (Discount) लेता है, यह अपहार उसका लाभ होता है।

४—अधिकोष अपने ग्राहकों को जो अनेक प्रकार की सेवाएं प्रदान

करता है, उसके बदले में वह उनसे वर्तन लेता है, वह भी उसका लाभ होता है।

इस प्रकार जो लाभ अधिकोष कमाता है उसमें से अन्य अधिकोषों को दिया हुआ व्याज, वर्तन आदि, निक्षेपों पर व्याज, कर्मचारियों आदि का वेतन एवं अवमूल्यनादि व्यय निकालने के पश्चात् जो शेष बचता है वह उसका शुद्ध लाभ होता है; जिसमें कुछ भाग संचिति प्रणीवि, आयकर तथा कुछ भाग आगामी वर्ष के लिए अग्रेनीत (Carry forward) करने के उपरांत जो शेष रहता है वह लाभांश के रूप में अंशभागियों में वितरित किया जाता है।

लाभार्जन के हेतु अधिकोष अपने धन का उपयोग निम्न प्रकार से करते हैं :—

१—याचित एवं अल्पकालीन सूचना पर भुगतान होने वाले ऋणों में,

२—विपत्रों के अपहरण तथा क्रय में,

३—विनियोग पत्र, प्रतिभूतियां, ऋण पत्रादि के क्रय में (ये सब प्रतिभूतियां सम्पत्ति पार्श्व में 'विनियोग विपत्र' शीर्षक के अन्तर्गत आती हैं, तथा

४—ऋण एवं अग्रिम देने में,

याचित एवं अल्पकालीन ऋण : इनका विस्तृत विवेचन अध्याय ३ में हो चुका है। भारत में ऐसे ऋणों का परिमाण बहुत ही कम है क्योंकि यहाँ पर विपत्रों की दलाली भी बहुत कम होती है। इसी प्रकार स्कन्ध-विनिमय तथा विपत्र विपणि विकसित नहीं हैं और है व्यापारिक विपत्रों का अभाव। ऐसे ऋण भारत में केवल बड़े बड़े व्यापारिक केन्द्रों में ही दिये जाते हैं जैसे कलकत्ता, बंबई, मद्रास आदि। इस रकम में अधिकोष एक दूसरे से जो ऋण लेते हैं उनका भी समावेश होता है क्योंकि ये ऋण अधिकोष अपने स्थिति विवरण में अपनी आर्थिक स्थिति की मजबूती दिखाने के लिये भी लेते हैं। जैसा कि कहा जा चुका है इस प्रकार के ऋणों पर सूद की दर बहुत कम अर्थात् ½% से ¾% प्रतिवर्ष होती है। ऋण का माँग पर भुगतान न होने पर अधिकोषों के पास ऋण लेने वालों की जो प्रतिभूतियां प्राधिरूप में होती हैं उनको अधिकोष बेचकर रोकड़ में परिवर्तित कर लेता है।

विपत्रों का क्रय एवं आहरण : इस प्रकार के ऋणों में प्रथम श्रेणी के प्रतिज्ञा अर्थपत्र (Promissory notes), व्यापारिक एवं कोष विपत्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय (International) एवं अन्तर्देशीय (Inland)

विपत्रों का समावेश होता है। इन विपत्रों का व्यवहार भी यहां बहुत कम होता है क्योंकि भारत में विकसित विपत्र विपणि का अभाव है। विनिमय अधिकोप अवश्य कुछ हद तक अन्तर्राष्ट्रीय विपत्रों का क्रय-विक्रय करते हैं। प्रतिज्ञा-अर्थ विपत्रों के आधार पर उनके अपहरण द्वारा बहुत कम ऋण भारत में दिये जाते हैं। अधिकोप अधिकतर ऐसे ही विपत्रों का अपहरण करते हैं अथवा खरीदते हैं जो विपत्र किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर केन्द्रीय अधिकोप पुनः अपहृत कर देगा। अथवा जिनको विनिमय स्कन्ध विपणि में बिना किसी प्रकार की हानि के रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार के विनिमय विपत्रों में विनियोग के कारण—जो किसी भी समय बेचकर अथवा पुनः अपहरण द्वारा रोकड़ में परिवर्तित किये जा सकते हैं—अधिकोपों को अपने पास अधिक रोकड़ नहीं रखनी पड़ती। दूसरे इन विपत्रों का अपहरण एवं क्रय भी अधिकोप इस प्रकार से करते हैं जिससे उनका भुगतान एक के बाद एक क्रमशः होता रहे एवं उनके पास रोकड़ का अभाव न रहे।

विनियोग विपत्र:—यह अधिकोप का तीसरा सुरक्षा साधन है। इसमें अधिकोप अपने धन का बहुत बड़े परिमाण में विनियोग करते हैं किन्तु अधिकोप विनियोग पत्रों को खरीदते समय ऐसे ही विनियोग पत्रों का क्रय करते हैं जो परम प्रतिभूतियाँ (Gilt-edged Securities) हैं तथा जिनको किसी भी समय बिना किसी हानि के स्कंध विपणि में बेचकर रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता है अथवा जिनकी प्राधि पर केन्द्रीय अधिकोप से ऋण प्राप्त हो सकता है। इन प्रतिभूतियों पर ऋण की अपेक्षा ब्याज तो कम मिलता है लेकिन इस प्रकार का विनियोग सुरक्षित होता है। विनियोग पत्रों में विनियोग का अनुपात कुल निक्षेपों के ४० प्रतिशत भारत में, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में ६०% तथा इङ्गलैण्ड में २७ प्रतिशत है। इङ्गलैण्ड में विपत्र विपणि एवं मौद्रिक विपणि अन्तर्राष्ट्रीय होने के कारण वहाँ पर अधिकतर विनियोग विपत्रों के अपहरण एवं क्रय में किया जाता है जिसका भारत में अभाव होने के कारण हमारे अधिकोप अधिकतर धन विनियोग परमप्रतिभूतियों, कोप-विपत्रों आदि में करते हैं। दूसरे स्थिति विवरण में इनके अस्तित्व का परिमाण जितना ही अधिक होता है उतनी ही ग्राहकों को उनके निक्षेप सम्बन्धी सुरक्षा प्रतीत होती तथा विश्वास बढ़ता है। तीसरे इस प्रकार के विनियोगों से अधिकोपों को आय स्थायी एवं नियमित रूप से मिलती है। तथा चौथे इस प्रकार के विनियोग पत्रों के मूल्य में स्थायित्व भी रहता है क्योंकि ये परमप्रतिभूतियाँ होती हैं। इसलिये अधिकोप सुरक्षा, स्थायी प्राप्ति, मूल्य के उच्चावचन की कम सम्भावना तथा किसी भी समय उनको परिवर्तित करने की शक्यता के कारण अपना विनियोग प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों (Securities) में करते हैं।

विनियोग विपत्रों का आधार : अब प्रश्न यह उठता है किस आधार पर अथवा किन बातों पर अधिकोष विभिन्न प्रकार के विनियोग विपत्रों का क्रय करता है ? विनियोग विपत्रों का क्रय करते समय, उसको अन्य विनियोगों की भाँति अपने धन की सुरक्षा का विचार तो करना ही पड़ता है इसके साथ ही उससे उसे निश्चित रूप में अधिकाधिक लाभ किन प्रतिभूतियों में होगा यह भी देखना पड़ता है। इस दृष्टि से अधिकोष को विनियोग पत्रों का क्रय करते समय निम्न बातों का विशेष रूप से विचार करना पड़ता है[1] :—

१. सुरक्षा : विनियोग पत्रों को खरीदते समय उसे दूरदृष्टि से काम लेना चाहिये, क्योंकि उसे अपने धन की सुरक्षा और अपने ग्राहकों का विश्वास अडिग रखना पड़ता है। उसे इन पत्रों का क्रय कभी तत्कालीन लाभ की दृष्टि से अथवा परिकाल्पनिक (Speculative) व्यवहारों की दृष्टि से नहीं करना चाहिये। उसको यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि विनियोग पत्रों के धन की सुरक्षा उन व्यक्तियों तथा संस्थाओं की साख एवं आर्थिक परिस्थिति पर निर्भर रहती है जो उनका निर्गमन करते हैं। इस दृष्टि से सरकारी प्रतिभूतियाँ अच्छी होती हैं।

२. विपण्यता (Marketability) : दूसरे जो विनियोग पत्र अथवा प्रतिभूतियां अधिकोष खरीदता है उनको बिना किसी प्रकार की हानि के बेचना भी सम्भव होना चाहिये क्योंकि ये विनियोग पत्र इसलिये खरीदे जाते हैं जिससे कि समय पर उनको रोकड़ में परिवर्तित किया जा सके। इसलिए अगर उनमें विपण्यता नहीं है तो जिस उद्देश्य से इनमें विनियोग किया जाता है वह उद्देश्य ही असफल हो जाता है। इसलिये प्रतिभूतियां आदि खरीदते समय उसे उनकी विपण्यता का ध्यान भी रखना चाहिये।

३. मूल्यस्थायित्व : तीसरे अधिकोष को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिये कि ये प्रतिभूतियां वह केवल लाभार्जन की दृष्टि से न खरीदते हुए अपने धन की सुरक्षा के लिये खरीदता है इसलिये उसको वही प्रतिभूतियां खरीदनी चाहियें जिनके मूल्यों में उच्चावचन की संभावना न हो। क्योंकि इन प्रतिभूतियों का परिकाल्पनिक व्यवहारों की तरह उसे क्रय विक्रय नहीं करना पड़ता बल्कि उसके पास ये सदैव के लिये रहती एवं आवश्यकता पड़ने पर ही इनका विक्रय करना पड़ता है। मूल्यों में अधिक उच्चावचन होने वाली प्रतिभूतियां अगर किसी अधिकोष के पास रहती हैं तो उस अधिकोष से जनता का विश्वास डिग जाता है जिससे उसे हानि की ही सम्भावना अधिक

---

[1] *Banking Law & Practice in India by M. L. Tannan, Pp. 202–204.*

रहती है। इस दृष्टि से उसे स्थायी-मूल्य वाली प्रतिभूतियों में ही विनियोग करना चाहिये।

४. विनियोग आय : चौथे उसको विनियोग पत्र खरीदते समय यह देखना चाहिये कि इस प्रकार विनियोगित धन पर उसे समुचित एवं स्थायी रूप से लाभांश अथवा ब्याज मिलता रहे क्योंकि केवल लाभ कमाना ही उसका मूलभूत उद्देश्य नहीं है। इसलिये उसको अपने धन का परिकाल्पनिक प्रतिभूतियों में विनियोग नहीं करना चाहिये। इसके साथ ही विनियोग पत्रों की आय का गणन (Calculation) भी ठीक से लगाना चाहिये। उदाहरण–६% ब्याज देनेवाली सरकारी प्रतिभूतियां उनके बाह्य मूल्य पर १ अक्तूबर को १००) प्रति प्रतिभूति के दर से खरीदता है, ऐसी दशा में १ अप्रेल से १ अक्तूबर तक ६ महीने का ब्याज उसे, जिससे प्रतिभूतियाँ खरीदी हैं उसे देना पड़ेगा। इस प्रकार उसे साथ ही आय का स्थायित्व देखते हुए आय का हिसाब भी लगाना चाहिये। आय का हिसाब लगाते समय उन पर दिया जाने वाला आयकर, खरीदते समय होने वाले अपहार अथवा प्रव्याजि, इसी प्रकार उनके भुगतान पर मिलने वाली प्रव्याजि अथवा दिये जाने वाले अपहार (अगर ऐसा हो) हो तो उसका भी हिसाब लगाते समय समावेश होना चाहिये।

प्रतिभूतियों का वर्गीकरण : उपर्युक्त आधार पर विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों का वर्गीकरण सुरक्षा की दृष्टि से निम्न क्रम से होगा :—

१. सरकारी प्रतिभूतियां तथा सरकारी ऋण पत्र (Govt. & Public Securities & Debentures) :

इनमें सरकारी कोष विपत्र, प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारों के ऋण पत्रादि का समावेश होता है। सरकारी कोष पत्रों की अवधि बहुधा ३ से ६ महीने की होती है तथा इस प्रकार की प्रतिभूतियों एवं ऋण पत्रों के मूल्यों में उच्चावचन भी सामान्यतः नहीं होते, इसी के साथ उनको किसी भी समय बेचकर रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता है तथा आय में भी स्थायित्व (Stability) रहता है।

२. सम-सरकारी प्रतिभूतियां (Semi-Govt. Securities) : इनमें स्थानीय अधिकारियों (Local Authorities) द्वारा जो प्रतिभूतियां बन्ध (Bonds) आदि निर्गमित किये जाते हैं उनका समावेश होता है। ये प्रतिभूतियाँ नगरपालिका, जिला समिति (District Boards) आदि निर्गमित करती हैं। सरकारी प्रतिभूतियों के बाद ये सबसे अच्छी प्रतिभूतियाँ होती हैं।

३. रेल्वे की प्रतिभूतियां : इसके अनन्तर रेल्वे प्रमंडलों द्वारा निर्गमित, बंध, प्रतिभूतियां तथा ऋण पत्रों का क्रमांक आता है। विशेषतः रेल्वे प्रमंडलों की प्रतिभूतियों पर सरकार की प्रत्याभूति होती है जिसकी वजह से इनका विनियोग भी सुरक्षित होता है तथा इन प्रतिभूतियों के लिये रेल्वे की स्थायी सम्पत्ति प्राधि रूप (as a mortgage) रहती है।

४. जन उपयोगी संस्थाओं तथा प्रमंडलों की प्रतिभूतियां (Public Utility Securities) : इस पद में उन प्रतिभूतियों, ऋण पत्रादि का समावेश होता है जो जनसेवा करने वाले प्रमंडलों द्वारा निर्गमित होती हैं उदा० जल विद्युत प्रमंडल (Water & Electric Coys.) आदि जिनको एक स्थान की पूर्ति का एकाधिकार प्राप्त होता है तथा जिनके पास बहुमूल्य सम्पत्ति एवं यंत्र सामग्री होती है जो प्राधि रूप रहती है। इनका विनियोग भी सुरक्षित होता है क्योंकि एकाधिकार प्राप्त होने के कारण इनको लाभ अवश्य ही होगा, जिसकी वजह से लाभ की आय में भी स्थायित्व रहता है।

५. निर्माणी तथा अन्य प्रकार के सीमित प्रमंडलों के अंश, ऋण-पत्र आदि (Debentures, Shares etc. of Joint Stock Limited Companies) : ये सुरक्षा की दृष्टि से सबसे अन्त में आते हैं क्योंकि इनकी प्रतिभूतियों के मूल्यों में व्यापारिक परिस्थिति के अनुसार उच्चावचन होते रहते हैं। इस प्रकार की प्रतिभूतियों में ऋणपत्र सब से सुरक्षित एवं स्थायी आय देने वाला विनियोग होता है क्योंकि ऋणपत्रों के लिये मंडल की सम्पत्ति प्राधिरूप रहती है इसी प्रकार प्रमंडल की दिवालिया स्थिति में भी ऋणपत्र सन्धारकों की रकम पहिले भुगताई जाती है। ऋण पत्रों के बाद अधिमान्य अंश (Preference Shares), सामान्य अंश (Ordinary Shares) तथा आस्थगित अंश (Defferred) क्रमशः आते हैं। इस प्रकार की प्रतिभूतियां सब से अरक्षित रहती हैं क्योंकि इनका निर्गमन स्थायी सम्पत्ति खरीदने के लिए किया जाता है तथा इनके मूल्यों में भी उच्चावचन होते रहते हैं। अतः इस प्रकार की प्रतिभूतियों में अधिकोष को अपना धन कभी भी नहीं लगाना चाहिये। दूसरे इनके लाभ भी प्रमंडल की लाभार्जन शक्ति के अनुसार घटते बढ़ते रहने के कारण आय में भी स्थायित्व नहीं रहता। किन्तु अगर अधिकोष इन प्रमंडलों की प्रतिभूतियां खरीदता ही है तो ये विशेषतः ऋण पत्र ही होते हैं।

ऋण एवं अग्रिम :—उपर्युक्त विनियोगों के अतिरिक्त अधिकोष के धन का चौथा लाभकर उपयोग अग्रिम तथा ऋण में होता है। ये ऋण जैसा कि हम बता चुके हैं व्यक्ति, सार्थ तथा प्रमंडलों को भिन्न भिन्न रूप में दिये जाते

हैं । ऋण देने के कार्य में अधिकोष का जनता से सीधा सम्बन्ध होता है और इसी समय वह अपनी कुशल नीति एवं समुचित व्यवहार से जनता का विश्वास सम्पादन कर सकता है । इसी के साथ उसकी ऋणनीति भी ऐसी होनी चाहिये जिससे उसे अशोध्य ऋण (Bad Debts) के रूप में किसी प्रकार की हानि भी न उठानी पड़े । अधिकोष को सबसे अधिक लाभ इसी पद से मिलता है क्योंकि ये ऋण ६% से ६% प्रति वर्ष व्याज की दर से दिये जाते हैं। इसलिये अधिकतर रकम का उपयोग ऋण देने के कार्य में किया जाता है। इन ऋणों का अनुपात निक्षेपों के ५० से ६० प्रतिशत रहता है। भारत में भी १६४२ में यह अनुपात ४४·४ प्रतिशत रहा है । किंतु इस प्रकार के ऋणों में अथवा इस प्रकार के विनियोग में उतनी तरलता नहीं होती जितनी ऊपर बताए गए तीन प्रकार के विनियोगों में होती है । इस प्रकार ये ऋण, यद्यपि इस शर्त पर दिये जाते हैं कि मांग पर भुगतान हो, फिर भी संकटकाल में ऐसा भुगतान केवल असम्भव ही नहीं होता अपितु आर्थिक संकट को घोरतम बना देता है जिससे अधिकोष की आर्थिक स्थिति भी भयावह हो जाती है। इसीलिये इस पद में अपना विनियोग करते समय अधिकोष को सुरक्षा एवं तरलता का ध्यान तो रखना ही पड़ता है, किंतु इसके साथ ही साथ माँग पर उनका भुगतान करने की ऋणकर्ता की शक्ति को भी ध्यान में रखना पड़ता है; इसी के साथ उसको लाभ किस प्रकार से अधिक मिलेगा यह भी देखना पड़ता है । इस प्रकार ऋण एवं अग्रिम देते समय निम्न बातों पर विशेषरूप से ध्यान देना पड़ता है :—

१. ऋण की सुरक्षा,

२. ऋण की तरलता,

३. ऋण से अधिक लाभ की सम्भावना,

४. माँग के होने पर ऋणों का भुगतान प्राप्त होने की सम्भावना, तथा,

५. ऋण का समुचित वितरण जिससे ऋण का एक ही उद्योग में अथवा एक ही व्यापार में केन्द्रीकरण न हो ।

ऋण के प्रकार एवं स्वरूप : अधिकोष अपने ऋण दो रूप में देते हैं; एक प्रतिभूत (Secured) ऋण तथा दूसरे अप्रतिभूत ऋण (Unsecured-Loans) ।

प्रतिभूत ऋण अधिकोष किसी न किसी प्रकार की सामपार्श्विक प्रतिभूतियों (Collateral Securities) की जमानत पर अथवा अन्य किसी सम्पत्ति के रहन पर देते हैं । जैसा कि हम पहिले बता चुके हैं व्यापारिक अधिकोष

केवल अल्पकालीन ही ऋण देते हैं परंतु उन अल्पकालीन ऋणों की सुरक्षा के लिये वे किसी न किसी प्रकार की जमानत अवश्य लेते हैं। जिन ऋणों पर वैयक्तिक जमानत होती है उन्हें अप्रतिभूत ऋण अथवा सामान्य अग्रिम (Clean Advances) कहते हैं। तथा जिन ऋणों के लिये सामपार्श्विक प्रतिभूतियाँ अथवा अन्य किसी प्रकार की सम्पत्ति रहन में होती है उन्हें प्रतिभूत ऋण कहते हैं।

ये ऋण अधिकोष भिन्न भिन्न प्रकार से देते हैं तथा इन पर व्याज की दर भी भिन्न होती है। प्रतिभूत ऋणों पर अधिकोष कम व्याज लेता है क्योंकि उनसे हानि की संभावना बहुत कम होती है तथा उनके समय पर भुगतान न होने पर अधिकोष प्रतिभूतियों को बेचकर रोकड़ में परिवर्तित कर सकता है। इसके विपरीत अप्रतिभूत ऋणों पर अधिकोष अधिक व्याज लेता है।

अप्रतिभूत ऋण विशेषत: दो प्रकार से दिये जाते हैं: (१) जो ऋण लेने वाला है उसके प्रतिज्ञा अर्थ पत्र के आधार पर, तथा (२) ऋण देने वाले के प्रतिज्ञा अर्थ पत्र पर किसी अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर के आधार पर, जो उस ऋण के भुगतान की प्रत्याभूति (Guarantee) दे। भारत में पहिले प्रकार के ऋण विशेषतः नहीं दिये जाते किंतु पाश्चात्य देशों में ऐसे ऋणों का प्रचार बहुत अधिक है। इसी तरह दूसरे प्रकार के द्विनामधारी प्रतिज्ञार्थपत्रों के आधार पर भी हमारे यहां ऋण देने की तथा प्रचलित नहीं है। द्विनामधारी पत्रों (Two names Paper) के आधार पर तथा सामपार्श्विक प्रतिभूतियों की रहन के आधार पर ऋण दिया जाता है। इसके मुख्य चार कारण हैं:—

(१) हमारे यहाँ ऐसी साख संस्थाएं एवं व्यापारिक संस्थाएं नहीं हैं जो ऋणकर्त्ताओं की आर्थिक स्थिति की जानकारी दे सकें, इसी लिए अधिकोषों को ऋण देने की नीति में अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। ऐसी संस्थाएं विदेशों में होने के कारण एक-नामधारी पत्रों के आधार पर भी ऋण दिये जाते हैं।

(२) 'एक आदमी एक अधिकोष' की नीति का अभाव अर्थात् एक व्यक्ति का लेखा एक ही अधिकोष में हो तथा उस व्यक्ति के सब आर्थिक व्यवहार उसी अधिकोष के मार्फत हों तो उसे ग्राहक की आर्थिक स्थिति की जानकारी पूर्णरूपेण रहती है।

(३) उपर्युक्त कारण की वजह से मौद्रिक विपणि में ऋण लेने वाले तथा देने वालों में परस्पर सम्पर्क का अभाव रहता है।

(४) भारतीय अधिकोषों की प्रवृत्ति–जिसकी वजह से प्रबंध अभिकर्तृत्व

पद्धति (Managing Agency System) का विकास हुआ। अर्थात् बड़े-बड़े प्रमंडलों को भी अधिकोष, प्रबंध अभिकर्त्ता के हस्ताक्षर बिना ऋण नहीं देते जिसकी वजह से आर्थिकक्षेत्र में इनका महत्त्व बढ़ गया है।

भारत में अधिकतर ऋण प्रतिभूत होते हैं तथा अप्रतिभूत ऋण दो प्रकार से दिये जाते हैं :—(१) रोक ऋण (Cash Credit)। (२) अधिविकर्ष (Overdraft), इसके अतिरिक्त प्रतिभूत ऋण दिये जाते हैं जो साम-पार्श्विक प्रतिभूतियों के आधार पर, संपत्ति के आधार पर अथवा व्यापारिक माल के रहन पर दिये जाते हैं :—

रोक ऋण तथा अधिविकर्ष : ये दो प्रकार के ऋण अधिकोष द्वारा विशेषतः अपने ग्राहकों को दिये जाते हैं जिनका चल-लेखा (Current a/c.) उनके पास होता है। वास्तव में ये दोनों ही प्रकार के ऋण एकसे होते हैं और इस प्रकार के ऋणों में जितनी रकम ग्राहकों को आवश्यक होती है उतनी रकम अधिकोष से वे समय-समय पर आवश्यकतानुसार धनादेशों द्वारा निकाल सकते हैं। जितनी रकम वह निकालता है उस पर अधिकोष व्याज लेता है। परंतु जब अधिकोष ग्राहक को यह सुविधाएँ देता है उस समय उसे रोकनिधि अधिक रखनी पड़ती है, इसके लिए कुछ न्यूनतम रकम – जो कुल ऋण की रकम में ३३% प्रतिशत होती है – पर व्याज लेता ही है।

भारतीय व्यापारियों में तथा अधिकोषों में रोक ऋण (Cash Credits) विशेषरूप से चलन में हैं, ये रोक ऋण, ऋण करने वाले के प्रतिज्ञार्थ पत्र तथा दो अन्य व्यक्तियों की प्रत्याभूति पर दिये जाते हैं। कभी-कभी इस प्रकार की सुविधा देने के लिए सम्पत्ति अथवा व्यापारिक माल भी रहन रखते हैं।

अन्य ऋण : अन्य प्रकार के ऋण, अधिकोष केवल प्रतिभूतियों के आधार पर ही देता है। इस ऋण में तथा रोकऋण और अधिविकर्ष में मूल भेद यह है कि साधारण ऋण में उस व्यक्ति के ऋण लेखे में यह रकम विकलित (debit) कर दी जायगी और ऋण लेने वाला इस रकम को रोकड़ में ले लेगा। इस ऋण पर ऋण लेने वाले को पूर्ण रकम पर व्याज देना होगा। यह ऋण ली हुई रकम ऋण लेने वाले सदैव अपने पास ही रखें ऐसी बात नहीं है, विशेषतः इस रकम को ऋण लेने वाले अधिकोष में अपने खाते में जमा करते हैं तथा आवश्यकतानुसार उस रकम पर धनादेश आहरित करते हैं; इसीलिये ग्राहक की दृष्टि से रोकऋण तथा अधिविकर्ष ही अधिक लाभकर होते हैं। दूसरे रोकऋण तथा अधिविकर्ष से दिये जाने वाले ऋण अल्पकालीन होते हैं तथा अन्य ऋण दीर्घकालीन होते हैं। तीसरे रोकऋण अधिविकर्ष

में अन्य ऋण से यह अन्तर है कि अन्य ऋणों का भुगतान होने पर फिर अगर धन की आवश्यकता होती है तो दूसरा ऋण लेना पड़ता है परन्तु अधिविकर्ष अथवा रोक ऋण में अगर १०००० रु० का ऋण लिया जाता है तो इस ऋण की रकम पर जब तक उसकी मियाद पूरी नहीं होती तब तक धनादेश आहरित किये जा सकते हैं तथा लेखे में समय समय पर रकम भी जमा की जाती है।

भारत में जैसा कि ऊपर बताया गया है, अधिविकर्षादि सब प्रकार के ऋण अधिकोष बिना दो अन्य व्यक्तियों की प्रत्याभूति के नहीं देते, इतना ही नहीं, अपितु कभी कभी इन ऋणों की सुरक्षा के लिये ऋणकर्ताओं को प्रतिभूतियां स्वर्ण, व्यापारिक माल अथवा ऐसे अन्य वस्तु-अधिकार-पत्र (Documents-of Title to Goods) आदि भी रहन रखने पड़ते हैं। इस प्रकार अधिकोष के अप्रतिभूत (Unsecured) ऋण ऋणकर्ता की साख, उसके व्यापार की परिस्थिति आदि का पूर्ण विचार करने के पश्चात् ही दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अपने ऋणों की सुरक्षा की दृष्टि से गत वर्षों का स्थितिविवरण भी अध्ययन करते हैं तथा अन्य मार्गों से उसकी बाजार में साख कितनी है एवं किस प्रकार का व्यवहार है इसकी भी जानकारी प्राप्त करते हैं। परन्तु भारत में ऐसी कोई भी संस्था नहीं है जो विभिन्न क्षेत्रों के व्यापारियों की साख एवं परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान दे सके, इसीलिये हमारे यहाँ इस प्रकार के ऋण भी बिना किसी अन्य व्यक्ति की प्रत्याभूति (Guarantee) के नहीं दिये जाते।

व्यक्तिगत प्रत्याभूति के अतिरिक्त सामपार्श्विक प्रतिभूतियां भी रहन रखी जाती हैं। जिससे किसी भी कारण से अगर ऋण का भुगतान न हो तो अधिकोष इन प्रतिभूतियों को बेचकर अपना ऋण चुका लेता है। भारत में अधिकतर ऋण इस प्रकार की प्रतिभूतियों के आधार पर ही दिये जाते हैं।

प्रश्न संग्रह

१—अधिकोष अपनी कार्यशील पूंजी का विनियोग किस प्रकार से करते हैं? अधिकोष को ग्राहकों को अग्रिम (ऋण) देते समय क्या सावधानी रखनी चाहिये।

२—रोकनिधि से आप क्या समझते हैं? इसका अधिकोषण में महत्त्व बतलाते हुए यह भी लिखिये कि किन किन बातों से रोकनिधि की रकम निश्चित होती है।

३—"यशस्वी अधिकोपिक वही है जो विनिमय विपत्र तथा प्राधि का अन्तर जान सके" इस उक्ति का पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण कीजिए।

४—अधिकोष की विनियोग नीति का आधार क्या है ? अधिकोष के लाभकर विनियोग कौन से हैं ? उनकी श्रेष्ठता के अनुसार बताइये ?

५—प्रतिभूतियां कितने प्रकार की होती हैं ? प्रतिभूतियां खरीदते समय अधिकोष को कौनसी बातें विशेष रूप से देखनी चाहियें और क्यों ?

६—अधिकोष कितने प्रकार के ऋण देते हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? पूर्णरूप से टिप्पणी कीजिये।

७—"लाभकर विनियोग" से क्या तात्पर्य है ? अधिकोष किन पत्रों पर इस प्रकार के विनियोग करता है और क्यों ? सकारण लिखिये।

अध्याय ५

प्रत्याभूति संविदा तथा सामपार्श्विक प्रतिभूतियाँ

पिछले अध्याय से यह स्पष्ट हो जाता है कि अप्रतिभूत ऋण में अधिकोष को ऋण लेने वाले की साख पर निर्भर रहना पड़ता है, इसका यह अर्थ नहीं कि वह ऋण की सुरक्षा नहीं देखता। यह सुरक्षा वह ऋण लेने वाले की साख बाजार में कितनी है इसके आधार पर निश्चित करता है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, भारत में ऐसी संस्थाओं की कमी है जो विभिन्न व्यापारियों की साख एवं आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी दे सकें। इसलिये अधिकोष व्यक्तिगत प्रतिभूति पर ऋण कम देते हैं तथा इन ऋणों की सुरक्षा के लिये अन्य व्यक्तियों की प्रतिभूति अथवा विनियोग पत्रों आदि का रहन माँगते हैं।

अधिकोष ऋण लेने वाले की साख का पता उसके व्यापारिक व्यवहार, गत वर्षों के स्थिति विवरणों का अध्ययन तथा उसके व्यापार में लगी हुई पूँजी एवं व्यापारिक उन्नति के साधन, इन बातों के समुचित विश्लेषण से लगाते हैं। फिर भी यदि अधिकोष ऋण लेने वाले की प्रतिभूति यथेष्ट नहीं समझते तो वे अन्य व्यक्तियों की—जिनकी साख में अधिकोष को विश्वास होता है—प्रतिभूति मांगते हैं, जिससे ऋणकर्ता अगर निश्चित समय पर ऋण का भुगतान न करे तो प्रतिभूति देनेवाले व्यक्ति को रुपया चुकाना पड़ता है। फिर भी बहुतांश ऋणों की सुरक्षा के लिये अधिकोष प्रतिभूतियों, विनियोग विपत्रों आदि का रहन मांगते हैं, जो या तो ऋण लेने वाला व्यक्ति रहन रखता है अथवा जो अन्य व्यक्ति उस ऋण को प्रत्याभूति (Guarantee) देता है वह रखता है। ऋण की प्रत्याभूति देने वाला अथवा ऋणकर्ता व्यक्ति जो विनियोग पत्र आदि रहन रखता है उन्हें सामपार्श्विक प्रतिभूतियाँ कहते हैं।

इस प्रकार प्रतिभूति दो प्रकार की होती है :—

१—वैयक्तिक प्रतिभूति (Personal Security) : जब ऋण लेने वाला व्यक्ति अपने प्रतिज्ञार्थ पत्र के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों की प्रत्याभूति अधिकोष को देता है, तब उसे वैयक्तिक प्रतिभूति कहते हैं।

२—सामपार्श्विक प्रतिभूति (Collateral Security) : व्यक्तिगत प्रत्याभूति के अतिरिक्त जब ऋण लेने वाला व्यक्ति प्रमंडलों के अंश, ऋण पत्र, अथवा किसी प्रकार की प्रतिभूतियां आदि अधिकोष के पास जमानत के रूप में रखता है, तब उन्हें सामपार्श्विक प्रतिभूतियाँ कहते हैं, इन्हें हम आनुसंगिक प्रतिभूतियां भी कह सकते हैं।

अब हम विस्तार पूर्वक इनका अध्ययन करेंगे :—

प्रत्याभूति संविदा :

वैयक्तिक प्रतिभूति : इस प्रकार की प्रतिभूति में प्रत्याभूतिबंध अथवा प्रतिभूतिबंध या तो ऋण लेनेवाला देता है अथवा उसके मार्फत किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दिया जाता है। इस प्रकार की प्रत्याभूति दो प्रकार की होती है। विशिष्ट प्रत्याभूति (Specific Guarantee) जिसमें प्रत्याभूति देने वाला व्यक्ति किसी विशिष्ट एवं निश्चित रकम की ही प्रत्याभूति देता है। दूसरे चल प्रत्याभूति (Continuing Guarantee) जिसमें ऋण लेने वाले की प्रत्याभूति पूर्ण रकम के लिये उसके उच्चावचन शेष के लिए दी जाती है अर्थात् इस प्रकार की प्रत्याभूति में जमानतदार (Guarantor) को ऋण भुगतान की पूर्ण जिम्मेदारी रहती है, किसी निश्चित रकम की नहीं।

भारतीय विधान के अनुसार यह प्रत्याभूति जो अधिकोष लेता है वह मौखिक तथा लिखित (Oral or Express) हो सकती है किन्तु अधिकोष को सदैव लिखित प्रत्याभूति ही लेनी चाहिये जिससे प्रत्याभूति की शर्तों में परिवर्तन न हो सके। इसके साथ ही अधिकोष को प्रत्याभूति मान्य करने के पूर्व जमानतदार की साख एवं आर्थिक स्थिति की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये।

भारतीय संविदा विधान (१८७२) के अनुसार प्रत्याभूति संविदा उसे कहते हैं "जिसमें किसी तीसरे व्यक्ति के दोषी रहने पर उसका वायदा पूर्ण करने की, अथवा उसके देय के भुगतान की जिम्मेदारी कोई व्यक्ति लेता है।[1]"

---

[1] *A contract to perform or discharge the liability of a third person in case of his default.*

अगर इस प्रकार के संविदाओं में अधमर्ण की ओर से किसी ऋण का भुगतान जमानतदार करता है तो उसको उत्तमर्ण के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मूल अधमर्ण से वह अपनी रकम का भुगतान कानून से ले सकता है। इस प्रकार के संविदाओं में जो व्यक्ति जमानत अथवा प्रत्याभूति देता है उसे प्रतिभूत (Surety) अथवा जमानतदार, जिसके लिये प्रत्याभूति दी जाती है उसे अधमर्ण तथा जिसको प्रत्याभूति दी जाती है उसे अर्थात् अधिकोष को उत्तमर्ण कहते हैं। इस प्रकार के प्रत्याभूति संविदाओं (Contracts of Guarantee) में जमानतदार की जिम्मेदारी तभी उत्पन्न होगी जब मूल ऋण लेने वाला व्यक्ति दोषी है। इसलिये प्राथमिक जिम्मेदारी मूल अधमर्ण की तथा गौण जिम्मेदारी जमानतदार की होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के संविदाओं अथवा कंमाटों में तीन पक्ष होते हैं : अधमर्ण जिसकी उत्तमर्ण के प्रति मूल एवं प्राथमिक जिम्मेदारी होती है तथा तीसरा जमानतदार।

ये संविदा अथवा कंमाट क्षतिपूर संविदाओं (Indemnity Contracts) से भिन्न होते हैं क्योंकि क्षतिपूर संविदाओं में किसी भी प्रकार की हानि की पूर्ति प्रतिभूति अथवा जमानतदार को करनी पड़ती है तथा इस प्रकार की हुई पूर्ति को उसे मूल दोषी व्यक्ति से वसूल करने का अधिकार नहीं मिलता। दूसरे क्षतिपूर कंमाटों में दो ही पक्ष हो सकते हैं अथवा तीन भी परन्तु प्रत्याभूति संविदाओं में तीन पक्षों का होना आवश्यक है। तीसरे प्रत्याभूति संविदाओं में हानि पूरण की जिम्मेदारी प्रत्याभूति पर तभी आती है जब मूल ऋण कर्ता दोषी हो परंतु क्षतिपूर संविदाओं में ऐसा नहीं होता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिभूति अथवा जमानतदार की जिम्मेदारी तभी उत्पन्न होगी जब अधमर्ण एवं उत्तमर्ण में ऋण संबंधी प्राथमिक कंमाट हो गया है।

प्रत्याभूतिबंध लेखन : इसलिये अधिकोष को अपने ऋण की सुरक्षा की दृष्टि से प्रत्याभूति पत्र (Form of Guarantee) अच्छे ढंग से—जिससे उसमें किसी प्रकार का वैधानिक दोष न रहे—बनाना चाहिये। जहां तक संभव हो इस पत्र में प्रतिभूत रकम साफ साफ होनी चाहिये जिससे यह स्पष्ट मालूम हो सके कि प्रत्याभूति अधमर्ण के पूर्ण ऋण के लिये अथवा ऋण के किसी विशिष्ट भाग के लिये दी गई है, अथवा उसकी क्या मर्यादा है। यथासम्भव इस प्रकार की प्रत्याभूति अधमर्ण के पूर्ण ऋण के लिए लेनी चाहिये जिससे अधिकोपिक अधमर्ण की मृत्यु पर अथवा उसके दिवालिया होने पर जमानतदार से ऋण को पूर्णतः ले सके। इसलिये आजकल अधिकोष विशेषतः मुद्रित प्रत्याभूति पत्र अपने पास रखते हैं। जिस पर ही प्रत्याभूति बंध

(Guarantee), प्रतिभूति अथवा जमानतदार द्वारा भरवाया जाता है, जिससे जमानतदार अपनी जिम्मेदारी से, प्रत्याभूति बंध के दोष से—किसी भी प्रकार मुक्त न हो सके।

प्रत्याभूति लेते समय सावधानी : प्रत्याभूति स्वीकृत करते समय अधिकोष को प्रतिभूत व्यक्ति की साख एवं आर्थिक स्थिति की जांच पूर्णरूप से करा लेनी चाहिये जिससे उसको किसी भी प्रकार की हानि की संभावना न रहे।

प्रत्याभूति लेते समय अधिकोषिक को यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि भारतीय संविदा विधान १८७२ के अनुसार नाबालिग, पागल तथा जिनका संविदा के समय दिमाग खराब था, ऐसे व्यक्तियों के साथ हुए कंमाट इन लोगों की ओर से टाले जा सकते हैं। अतः ऐसे व्यक्तियों की प्रत्याभूति अधिकोष को मान्य नहीं करनी चाहिये। अधिकोष विशेषतः विवाहित स्त्रियों की भी प्रत्याभूति स्वीकार नहीं करते क्योंकि वे इस प्रकार के कंमाटों को दबाव के कारण प्रत्याभूति दी, इस बहाने से टाल सकती हैं; अतः विवाहित स्त्रियों की प्रत्याभूति स्वीकृत करते समय भी उसे यह सावधानी रखनी चाहिये कि प्रत्याभूति किसी भी प्रकार के दबाव के कारण नहीं दी गई है और इस प्रकार का स्पष्ट उल्लेख प्रत्याभूतिबंध (Guarantee Bond) में भी होना चाहिये। दूसरे इस प्रकार की प्रत्याभूति उसी विवाहित स्त्री की होनी चाहिये जिसके पास स्वतंत्र निजी संपत्ति हो एवं जिसके ऊपर उसका ही पूर्ण अधिकार हो जैसे भारत में 'स्त्री-धन'।

इसी प्रकार भागिता सार्थों की (Partnership Firms) प्रत्याभूति स्वीकृत करने के पूर्व अधिकोष को यह देख लेना होगा कि उनका व्यापार स्वरूप क्या है? क्या वह सार्थ अपने सामान्य-व्यापार में प्रत्याभूति संविदाएं कर सकता है? अगर नहीं तो ऐसे सार्थों से प्रत्याभूति लेते समय प्रत्येक भागी के हस्ताक्षर प्रत्याभूतिबन्ध पर होने आवश्यक हैं। और अगर कोई एक विशिष्ट भागी सार्थ की ओर से ऐसे हस्ताक्षर करता है तो उसे इस प्रकार के संविदाओं पर हस्ताक्षर करने का अधिकार है अथवा नहीं, यह भी देख लेना चाहिये। अगर ऐसा अधिकार है तो उस संबंध में अधिकोष को इस आशय का पत्र सार्थ से ले लेना चाहिये। दूसरे भागिता विधान के अन्तर्गत किसी भागी की मृत्यु अथवा बहिर्गमन (Retirement) से भागितासार्थ का विधान (Constitution) भी बदल जाता है, इसलिये उसे किसी भी भागी की मृत्यु अथवा बहिर्गमन की सूचना मिलते ही उस सार्थ से नया

प्रत्याभूति बंध लेना चाहिये और जब तक यह नहीं मिलता तब तक मूल अधमर्ण का लेखा-बंद कर देना चाहिये।

जहाँ पंजीयित प्रमंडलों (Registered Companies) से प्रत्याभूति ली जाती है वहां पर अधिकोष को प्रमंडल के पार्षद-सीमा-नियम (Memorandum of Association) तथा पार्षद अन्तर्नियमों (Articles of Association) को देख लेना चाहिये कि इस प्रकार का अधिकार प्रमंडलों को है अथवा नहीं, क्योंकि अगर उनको इस प्रकार का अधिकार नहीं होगा तो प्रत्याभूति के लिए केवल प्रमंडल के संचालक (Directors) ही जिम्मेदार रहेंगे न कि प्रमंडल। इसलिये यह देख लेना चाहिये कि इन नियमों के अन्तर्गत प्रमण्डल को 'ऋण दिलाने की अथवा दूसरे प्रमण्डलों, व्यक्तियों को ऋण प्राप्त करने की सहायता देने, के अधिकार संबंधी स्पष्ट उल्लेख है, ऐसा होने पर ही प्रमंडलों की प्रत्याभूति उसे स्वीकृत करना चाहिये अन्यथा नहीं।

अधिकोष का उत्तरदायित्व :

प्रत्याभूति संविदाओं में प्रतिभूत अथवा जमानतदार को, जहाँ तक इस संविदा का संबंध है किसी भी बात को छिपाना नहीं चाहिये और न इस प्रकार का कोई व्यवहार अधिकोष करे जिससे जमानतदार को गलत धारणा (Misrepresentation) हो जाय क्योंकि ऐसी परिस्थिति में उस संविदा से जमानतदार जिम्मेदारी की पूर्ति के लिये विधान द्वारा बाध्य नहीं होता। वास्तव में अधिकोष को अधमर्ण की परिस्थिति के विषय में प्रतिभूत को किसी भी प्रकार की माहिती (Information) देने की आवश्यकता नहीं है फिर भी ऐसी बातें जो उस संविदा के लिये महत्वपूर्ण है उनका प्रतिभूत को मालूम होना आवश्यक है। इसलिये ऐसी माहिती जो प्रत्याभूति संविदा से प्रत्यक्ष संबंधित है एवं महत्त्व की है उसे प्रतिभूत को बताने की जिम्मेदारी अधिकोष की है। दूसरे अगर अधमर्ण की आर्थिक स्थिति के बारे में जमानतदार किसी भी माहिती को अधिकोष से पूछता है तो वह भी उसे इस प्रकार बताना चाहिये जिससे अधमर्ण की साख को धक्का न पहुंचे तथा वास्तव स्थिति का ज्ञान भी प्रतिभूत को हो जाय। तीसरे प्रत्याभूति में जमानतदार की अनुमति बगैर अगर किसी भी प्रकार का परिवर्तन किया जाता है तो जमानतदार, जिस दिन से ऐसा परिवर्तन किया गया है उसके बाद के ऋणों के ऊपर एवं व्यवहारों के दायित्व से मुक्त हो जाता है। इसलिये प्रत्याभूति में किसी प्रकार के परिवर्तन प्रतिभूत को सूचना दिये बिना तथा उसकी सम्मति प्राप्त किये बिना नहीं होना

चाहिये। परन्तु अगर इस प्रकार परिवर्तन करने का अधिकार प्रतिभूत द्वारा अधिकोष को दिया गया हो तो इस प्रकार प्रत्याभूति में परिवर्तन हो सकते हैं।

अधिकोष को अपने ऋणकर्ता को ऋण से किसी भी प्रकार मुक्त न करना चाहिये और न ऐसा कोई लोपन-कार्य (Act of Omission) करना चाहिये जिससे वह मुक्त हो सके क्योंकि ऐसी परिस्थिति में जमानतदार का दायित्व भी पूर्ण हो जाता है। किंतु न्यायालय से किसी ऋणकर्ता के दिवालिया हो जाने पर ऋण से मुक्ति मिलने पर भी जमानतदार ऋण के लिए जिम्मेदार रहेगा। दूसरे भारतीय संविदा विधान की धारा १३५ के अनुसार अगर अधिकोष ऋण के भुगतान की कालमर्यादा बढ़ा देता है अथवा भुगतान के लिये अन्य किसी भी प्रकार की सुविधाएँ, जमानतदार की अनुमति प्राप्त किए बिना देता है तो जमानतदार अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। तीसरे ऋणकर्ता की जमानत रखी हुई प्रतिभूतियों के सम्बन्ध में अधिकोष अगर कोई भी ऐसा व्यवहार करता है जिससे उनका अवमूल्यन हो जाता है तो ऐसी परिस्थिति में जितने का अवमूल्यन होता है उतनी रकम से जमानतदार का दायित्व कम हो जाता है। इसी प्रकार अगर जमानत रखी हुई प्रतिभूतियों को अथवा उनके कुछ अंश को ऋणकर्ता को अधिकोष लौटा देता है, तो ऐसी परिस्थिति में भी प्रतिभूत (Guarantor) का उत्तरदायित्व उतने अंश से कम हो जाता है। चौथे अगर अधिकोष की गलती से कोई भी ऐसा कार्य होता है जिससे अधमर्ण ऋण का भुगतान नहीं करता तो इस दशा में जमानतदार दायित्व से मुक्त हो जाता है। पाँचवें, जहाँ पर प्रत्याभूति संविदा सामूहिक तथा वैयक्तिक (Joint and Several) है ऐसी दशा में ऋणकर्ता के ऋण का भुगतान न करने पर अधिकोष को कुल जमानतदारों के विरुद्ध न्यायालय में कार्यवाही करनी चाहिये। अथवा प्रत्येक के विरुद्ध अलग अलग कार्यवाही करनी चाहिये जब तक कि वह ऋण की पूर्ण रकम प्राप्त न करले। परन्तु सामूहिक प्रत्याभूति में उसको सब जमानतदारों के विरुद्ध ही कार्यवाही करनी होगी क्योंकि अगर सबके विरुद्ध कार्यवाही न करते हुए एक के विरुद्ध ही की जाती है तो अधिकोष अन्य जमानतदारों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही नहीं कर सकता; जिससे उसका पूर्ण ऋणशोधन न होने पर हानि की संभावना रहती है। छटवें अगर किसी ऋण का भुगतान समय पर नहीं होता तो अधिकोष को काल-मर्यादा विधान (Law of Limitation) द्वारा निश्चित समय के अन्दर ही ऋणकर्ता के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही करनी चाहिये, क्योंकि अगर वह ऐसा नहीं करता तो प्रतिभूत अथवा जमानतदार की ऋण भुगतान की जिम्मेदारी नहीं रहती। सातवें अधमर्ण (Debtor)

होता है। उसी प्रकार ऋण के पूर्ण भुगतान पर प्राधायक को उस प्राधित (Mortgaged) सम्पत्ति पर पुनः पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राधायक के पुनर्अधिकार को "भुगतान अथवा शोधनकी समता" (Equity of Redemption) कहते हैं। न्याय्य प्राधि (Equitable Mortgage) में प्राधित वस्तु का अधिकार प्राधायक (अधमर्ण) के पास ही रहता है किंतु न्यायालय से विक्रयपत्र प्राप्त करने पर ही प्राधिमान (Mortgagee) अधिकोष प्राधित संपत्ति को बेच सकता है। इस प्रकार का न्याय प्राधि वस्तु अधिकार प्रलेख अथवा किसी स्थायी संपत्ति के अधिकार प्रलेख को जमानत के रूप में रखने से निर्माण होता है जिससे उसकी जमानत अथवा प्रतिभूत ली जा सके। इस प्रकार के न्याय्य प्राधि प्रलेखों की स्वीकृति के लिये १००) रु० अथवा इससे अधिक ऋण के लिये मुद्रांक कर लगता है तथा दो साक्षियों के हस्ताक्षर भी आवश्यक होते हैं। इस प्रकार अस्थायी सम्पत्ति का न्याय्य प्राधि अधिक परिमाण में अधिकोष को स्वीकृत नहीं करना चाहिये क्योंकि इसमें उसकी अधिक रकम का विनियोग होने से सुरक्षा की सम्भावना कम हो जाती है।

भारतीय सम्पत्ति हस्तान्तरण विधान (Indian Transfer of Property Act) के अन्तर्गत तीन प्रकार के प्राधि को मान्यता दी गई है। १. सामान्य प्राधि, २. सशर्त विक्रय प्राधि (Mortgage by Conditional Sale) तथा ३. ऋण शोधनार्थ प्राधि (Usufructuary Mortgage)।

सामान्य प्राधि : में कोई विशिष्ट प्रकार की सम्पत्ति न तो प्राधित होती है और न किसी सम्पत्ति का हस्तांतरण होता है, किन्तु प्राधिमान् प्राधायक के विरुद्ध ऋण शोधन के लिए दावा कर सकता है एवं उसे प्राधित सम्पत्ति से प्राप्त कर सकता है।

सशर्त विक्रय प्राधि : इस प्रकार की प्राधि में प्राधित सम्पत्ति का विक्रय तभी पूर्ण होगा जब प्राधायक निश्चित तिथि को ऋण का भुगतान न करे, अथवा ऋण का भुगतान होने पर विक्रय रद (Void) हो जायगा अथवा उस सम्पत्ति का अधिकार प्राधायक को प्राप्त होकर उसे मिल जायगी।

ऋण शोधनार्थ प्राधि : इस प्रकार की प्राधि में प्राधित सम्पत्ति का हस्तान्तरण प्राधिमान को हो जाता है तथा ऋण का पूर्ण भुगतान होने तक उसे रखने का अधिकार होता है। ऋण के भुगतान होने तक प्राधित सम्पत्ति से जो आय होती है उसे वह ऋण के व्याज अथवा मूल धन के भुगतान अथवा दोनों के भुगतान के लिये लेने का अधिकारी है। इसलिये इस प्रकार की प्राधि में प्राधिकाल प्रारम्भ होते ही ऋण का भुगतान भी प्रारम्भ हो जाता है।

बन्धक (Pledge): भारतीय संविदा विधान के अनुसार बन्धक उस संविदा को कहते हैं जिस में किसी वचन की पूर्ति के लिए अथवा ऋण के भुगतान के लिए वस्तुओं की जमानत प्रतिभूति के रूप में रखी जाती है।[1] इस प्रकार के बन्धक संविदाओं में सम्पत्ति अथवा प्रतिभूतियों का अधिकार बन्धक दाता (Pledgor) के पास रहता है किंतु संपत्ति बन्धकी (Pledgee) के पास जमानत के रूप में रहती है। इस प्रकार के संविदाओं में वस्तुओं का बन्धकी के पास जमानत की तरह रहना आवश्यक है। इस प्रकार के बन्धक में बन्धकी निश्चित तिथि के बाद अपने ऋण के भुगतान के लिये समुचित सूचना के उपरान्त बन्धक सम्पत्ति को बेच सकता है अथवा ऋण के भुगतान के लिए बन्धक दाता अधमर्ण के ऊपर दावा कर सकता है, जिस दशा में सम्पत्ति उसी के अधिकार में रहनी चाहिये। अगर ऋण के भुगतान के लिये सम्पत्ति का मूल्य कम पड़ता है तो शेष रकम का भुगतान अधमर्ण अथवा बन्धकदाता को करना होगा और अगर वास्तविक ऋण से अधिक रकम (सम्पत्ति के विक्रय से) प्राप्त होती है तो बन्धकी को वह रकम बन्धकदाता को लौटानी होगी किंतु अगर इस प्रकार की बंधक सम्पत्ति पर उसे ग्रहणाधिकार प्राप्त है तो इस अतिरिक्त रकम को वह अन्य ऋणों के भुगतान के लिये उपयोग में ले सकता है।

उपप्राधीयन : उपर्युक्त तीन प्रकार की प्रतिभूतियों के अतिरिक्त उपप्राधीयित प्रतिभूति भी अधिकोषों को दी जाती है। उपप्राधीयन (Hypothecation) का बन्धक से बहुत कुछ साम्य है। इसमें न तो स्वामित्व और न अधिकार ही उत्तमर्ण को दिया जाता है किंतु उपप्राधीयन पत्र (Letter of Hypothecation) द्वारा अधिकोष को उपप्राधीयित वस्तुओं का प्रभार (Charge) दिया जाता है। इस प्रकार की प्रतिभूति अथवा जमानत में उत्तमर्ण को समान प्रभार मिलता है क्योंकि इन वस्तुओं से विक्रय द्वारा उत्तमर्ण अपने ऋण का भुगतान प्राप्त कर सकता है। अगर वस्तु का मूल्य ऋण के भुगतान के लिए अपूर्ण रहे तो अधमर्ण को कमी पूरी करनी पड़ती है।

आनुसंगिक प्रतिभूतियों के प्रकार :

हम यह बता चुके हैं कि अधिकोष को अपने दैनिक व्यवहार में अनेक प्रकार की प्रतिभूतियों का आदान प्रदान करना पड़ता है तथा विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों को प्रतिभूतियों के क्रय में अथवा उनको स्वीकार करने के

---

[1] *"As a bailment of goods as security for payment of a debt or performance of a promise"* —*Indian Contract Act 1892.*

पूर्व प्रतिभूतियों के मूल्य-स्थायित्व, धन की सुरक्षा, विपण्यता, तथा आय इन बातों पर विचार करना होता है। किन्तु जो प्रतिभूतियाँ वह ऋण की प्रतिभूति अथवा जमानत के लिये स्वीकृत करता है उसमें भी उसे अनेक बातों की सावधानी रखनी होती है। जो निम्न हैं :—

१. उपाधि की सहजता (सुगमता) (Simplicity of Title): अर्थात् जो प्रतिभूतियां अधिकोष स्वीकृत करता है वे ऐसी हों जिनकी उपाधि अथवा जिन पर बिना किसी प्रकार की अड़चनों के उसको स्वामित्व प्राप्त हो सके। क्योंकि जो व्यक्ति ऐसी प्रतिभूतियां प्रतिभूत रखता है उसकी उपाधि में अगर किसी प्रकार का सन्देह है अथवा वे प्रतिभूतियाँ उसने अवैधानिक मार्ग से हस्तगत की हैं तो अधिकोष को उनपर अपनी उपाधि प्रमाणित करने में अड़चन होगी। इसलिये उपाधि की सुगमता की ओर ध्यान रखना होता है।

२. हस्तान्तरण की सुगमता (Ease and Facilityof transfer): प्रतिभूतियाँ ऐसी होनी चाहियें जो उसके नाम पर अथवा किसी अन्य के नाम पर बिना किसी प्रकार के व्यय अथवा अड़चनों के सुगमता से हस्तान्तरित हो सकें।

३. समुचित मूल्य स्थायित्व (Reasonable Steadiness of value) : प्रतिभूतियां जो प्रतिभूति में स्वीकृत की जायँ वे इस प्रकार की हों जिनके मूल्य में स्थायित्व रहे तथा जिनमें अवमूल्यन की सम्भावना कम हो। क्योंकि प्रतिभूतियों के अवमूल्यन से अधिकोष को हानि की सम्भावना रहती है। विधानतः वह अधमर्ण से पूर्ण ऋण लेने का अधिकारी होता ही है फिर भी किन्हीं असम्भाव्य कारणों से अवमूल्यन से हानि हो जाती है।

४. विपण्यता (Ready Marketability) : अधिकोष अपने पास जो प्रतिभूतियाँ जमानत में रखता है उन्हें ऋण के भुगतान न होने पर अपने पास न रखते हुए बेचता है जिससे वह ऋण दी हुई रकम प्राप्त कर सके। इस दृष्टि से उसके पास प्रतिभूति रखी हुई प्रतिभूतियाँ ऐसी होनी चाहियें जो विपणि अथवा बाज़ार में बिना किसी प्रकार की हानि के तथा सुगमता से बेची जा सकें; अन्यथा अधिकोष को उन्हें बेचने में असुविधाएँ होंगी।

५. उद्धार-प्रतिभूति-अन्तर (Difference between Loan & Security) पर्याप्त हो : ऋण में तथा प्रतिभूत रखी हुई प्रतिभूतियों के मूल्य में पर्याप्त अन्तर होना आवश्यक है जिससे अवमूल्यन आदि से होने वाली हानि की पूर्ति हो सके। इसलिये प्रतिभूतियाँ स्वीकृत करते समय उनका मूल्यांकन (Valuation) सावधानी से होना चाहिये। और यह अन्तर

इतना हो जिससे मूल धन तथा ब्याज दोनों की सुरक्षा हो सके। अगर प्रतिभूति रखी हुई वस्तुओं के मूल्य एवं विपणि में स्थायित्व है तो ऐसी वस्तुओं की प्रतिभूति में अन्तर अधिक न होने से भी काम चल सकता है। यह अन्तर स्वर्ण की प्रतिभूति में १० से १५ प्रतिशत, चांदी में की प्रतिभूति १५ से २० प्रतिशत, रेल्वे प्रमण्डलों की प्रतिभूतियों में २२ से २५%, औद्योगिक प्रतिभूतियों के लिये उनके मूल्य स्थायित्व के अनुसार ५०% तक, वस्तुओं (Goods) तथा वस्तु अधिकार प्रलेख की प्रतिभूति में ४० से ६० प्रतिशत पर्याप्त समझा जाता है। रिजर्व बैंक की प्रतिभूतियों पर १५% तथा इम्पीरियल बैंक की प्रतिभूतियों पर २०% पर्याप्त अन्तर समझा जाता है।

६. दायित्व का अभाव (Absence of Liability) : प्रतिभूत रखी हुई प्रतिभूतियाँ अन्य किसी प्रकार के प्रभार (Charges) से मुक्त होनी चाहियें जिससे अधिकोषिक को उन प्रतिभूतियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो सके। इसलिये अंश, ऋण पत्र आदि स्वीकृत करते समय उसे यह देख लेना चाहिये कि वे अंश अथवा ऋण पत्र पूर्ण दत्त (Fully paid up) है अथवा स्थायी सम्पत्ति की प्रतिभूति में वे किसी अन्य व्यक्ति के पास प्रतिभूत नहीं रखी गई हैं।

७. उपाधि की सुरक्षा (Safety of title) : किन्हीं भी प्रतिभूतियों पर जो उपाधि अधिकोष को प्राप्त होती हैं वह पूर्णतः वैधानिक है यह भी देखना चाहिये क्योंकि यदि किन्हीं प्रतिभूतियों में ग्राहक की अथवा अधमर्ण की उपाधि सदोष है, तो उनके हस्तान्तरण से सदोष उपाधि ही अधिकोष की रहेगी। इसलिये अपनी उपाधि की पूर्ण सुरक्षा की ओर ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

उपर्युक्त सावधानी अधिकोषिक को प्रतिभूतियाँ रखते समय सामान्यतः ध्यान में रखनी होती हैं फिर भी कुछ प्रतिभूतियाँ ऐसी होती हैं जिनमें उनकी भिन्नता के साथ कुछ विशेष बातें विचारणीय (Considerable) होती हैं, जिनका अब हम विस्तार पूर्वक विवेचन करेंगे।

१. विनिमय स्कन्ध प्रतिभूतियाँ :

इन प्रतिभूतियों में उन सब परम प्रतिभूतियों का समावेश होता है जो सरकार द्वारा, समसरकारी संस्थाओं, स्थानीय अधिकारियों द्वारा निर्गमित होती हैं तथा प्रमण्डलों के अंश, ऋणपत्र आदि औद्योगिक संस्थाओं द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियों का समावेश होता है। इस प्रकार की प्रतिभूतियां अधिकोष के पास प्रतिभूति के रूप में अधिक परिमाण में जमा की जाती हैं। इस प्रकार की प्रतिभूतियां बड़े बड़े व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्रों में महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि

इनका विक्रय आवश्यकता के समय शीघ्र हो सकता है। अतः विपण्यता की दृष्टि से अधिकोष इस प्रकार की प्रतिभूतियों को विशेष रूप से स्वीकृत करता है। दूसरे इन प्रतिभूतियों के हस्तान्तरण में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती तथा उपाधि दोष भी शीघ्र ही जाना जा सकता है। तीसरे प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों के मूल्यों में भी उच्चावचन कम होते हैं तथा ऐसी प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर, अधिकोष द्वारा आवश्यकता पड़ने पर अन्य अधिकोषों से ऋण भी प्राप्त किया जा सकता है।

विनिमय स्कंध प्रतिभूतियां सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं: १. परक्राम्य प्रतिभूतियां (Negotiable Securities) तथा २. अपरक्राम्य प्रतिभूतियां (Not negotiable securities)। परक्राम्य प्रतिभूतियां केवल प्रदान से, (by delivery) हस्तान्तरित की जाती हैं अतः वे प्रतिभूतियां आदर्श प्रतिभूति मानी जाती हैं उदा० वाहक बन्ध (Bearer bonds), अंश आदि। अपरक्राम्य प्रतिभूतियां केवल उनके प्रदान से हस्तान्तरित नहीं की जाती और न उनके प्रदान से अधिकोष को अथवा अन्य किसी व्यक्ति को उन पर स्वामित्व ही मिलता है।

अपरक्राम्य प्रतिभूतियां भी दो प्रकार की होती हैं १. अन्तर्लेखित तथा २. पंजीयित। अन्तर्लेखित प्रतिभूतियों को अथवा स्कन्ध (Stocks) का हस्तान्तरण जिसके स्कंध होते हैं वह व्यक्ति अथवा अधिकृत अभिकर्ता स्वयं करता है क्योंकि ऐसे स्कंध की प्रविष्टि सरकार की पुस्तकों में अथवा निर्गमन करने वाले प्रमण्डल की पुस्तकों में होती है तथा उसकी रसीद स्कंध संधारक (Stock-holder) को दी जाती है, जो प्रतिभूति कार्यों के लिये बेकार है। इसलिये उस स्थान पर संधारक अथवा अधिकृत अभिकर्ता को उसके स्कंध विक्रय अथवा हस्तान्तरण की प्रविष्टि कराना अनिवार्य होता है।

पंजीयित प्रतिभूतियों अथवा स्कन्धों की वैधानिक उपाधि प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि उनका पंजीकरण निर्गमन करने वाले प्रमण्डलों के हस्तान्तरण पंजी (Transfer register) में हो क्योंकि इन स्कन्धों की उपाधि का प्रमाणपत्र प्रमण्डल द्वारा दिया जाता है जो प्रमाणपत्र उस उपाधि की साक्ष्य है। ऐसे हस्तान्तरित स्कन्धों का पंजीकरण (Registration) हस्तान्तरण पत्रों (Transfer form) द्वारा हो सकता है।

अतः अपरक्राम्य स्कन्धों की वैधानिक उपाधि प्राप्त करने के लिये उनका अन्तर्लेखन अथवा पंजीयन होना आवश्यक है। इस प्रकार का हस्तान्तरण होने के पूर्व अधिकोष को यह देख लेना चाहिये कि हस्तान्तरण प्रलेख पर संधारक के हस्ताक्षर जाली न हों तथा उन स्कन्धों पर किसी प्रकार का दायित्व न हो

क्योंकि जाली हस्तान्तरण की दशा में अधिकोष को मूल संधारक की हानि पूर्ति करनी पड़ेगी तथा दायित्व होने पर, वह उस दायित्व के लिए जिम्मेदार रहेगा।

विनिमय स्कन्ध प्रतिभूतियों के लाभ : इस प्रकार की प्रतिभूतियों की प्रतिभूति से निम्न लाभ होते हैं :—

अ. स्कन्ध विनिमय प्रतिभूतियाँ स्कन्ध विनिमय विपणि में सुगमता से किसी भी समय बेची जा सकती हैं, विशेषतः परम प्रतिभूतियाँ, अच्छे प्रमण्डलों के अंश, ऋणपत्र आदि। इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर इनकी जमानत पर अन्य अधिकोषों से ऋण प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार की सुविधा अन्य वस्तुओं की प्रतिभूति में नहीं रहती।

ब. स्कन्ध विनिमय विपणि में विभिन्न प्रतिभूतियों के दर-जो दैनिक पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं—जाने जा सकते हैं क्योंकि ये प्रतिभूतियाँ नियमित रूप से बाजार में खरीदी अथवा बेची जाती हैं। इस प्रकार इनके सदैव क्रय विक्रय होने के कारण उनके मूल्यों की उच्चावचन की सीमा भी मालुम हो सकती है। अच्छी प्रतिभूतियों के मूल्यों में उच्चावचन भी बहुत कम अथवा सीमित मात्रा में होते हैं जिससे अधिकोष को उद्धार प्रतिभूति अन्तर का निश्चय करने में भी सुगमता होती है।

क. ऐसी प्रतिभूतियों की उपाधि स्पष्ट होने के कारण अधिकोष की भी उपाधि की सुरक्षा रहती है और परक्राम्य प्रतिभूतियों के विषय में जमानतदार की उपाधि सदोष रहते हुए भी अधिकोष मूल्य का संधारक (Holder for value) होने की वजह से उसकी उपाधि में कोई भी दोष नहीं आता अथवा उसको पूर्ण एवं वैधानिक उपाधि प्राप्त होती है। इसी प्रकार अपरक्राम्य प्रतिभूतियों के हस्तान्तरण में भी विशेष असुविधाएँ नहीं आतीं क्योंकि उनका हस्तान्तरण हस्तान्तरण पत्र अथवा प्रलेख द्वारा किया जा सकता है तथा जमानतदार की उपाधि सदोष अथवा निर्दोष है इसका भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

ड. उपर्युक्त गुणों की दृष्टि से ये प्रतिभूतियाँ अधिकोष के ऋणों के लिए एक अच्छे सुरक्षा के साधन का कार्य करती हैं।

परन्तु उपर्युक्त लाभों के होते हुए भी इन प्रतिभूतियों में निम्न दोष हैं :—

(अ) अगर इस प्रकार की प्रतिभूतियां अंशतः दत्त हैं तो उनमें अदत्त भाग की रकम याचना (Call) पर अधिकोष को देनी पड़ेगी। अतः जैसा कि पहिले बताया गया है अधिकोष को पूर्णतः दत्त प्रतिभूतियाँ ही स्वीकार करनी चाहियें।

(ब) अधिकोप प्रतिभूतियों का हस्तान्तरिती (Transferee) होने के कारण अगर हस्तान्तरक (Transferor) के हस्ताक्षर जाली हों तो अधिकोप क्षतिपूर्ति का उत्तरदायी होता है। इसलिये अधिकोप को हस्तान्तरक के हस्ताक्षर हस्तान्तरण प्रलेख पर अपने कार्यालय में करवाने चाहियें।

(क) अधिकोप के पास प्रतिभूतियाँ आते ही अगर अधिकोप अपने ग्रहणाधिकार की सूचना प्रतिभूतियों के निर्गमन करने वाले प्रमंडल को नहीं देता तो उसका ग्रहणाधिकार प्रमंडल के ग्रहणाधिकार से बाधित हो जाता है। प्रमंडल को ग्रहणाधिकार याचित पूंजी (Called Capital) के शोधन आदि न होने पर पार्षद अन्तर्नियम के द्वारा रहता है। इसलिये ऐसे अंशों की प्रतिभूति स्वीकृत करते समय अधिकोप को अपने ग्रहणाधिकार की सुरक्षा के लिए, ग्रहणाधिकार की सूचना प्रतिभूति निर्गमक प्रमण्डल (Issuing Company) को देनी चाहिये।

(उ) जिन प्रतिभूतियों के मूल्यों में उच्चावचन होते हैं उन प्रतिभूतियों पर उद्धार-प्रतिभूत अन्तर अधमर्ण द्वारा पर्याप्त रखा जा रहा है, यह भी उसे देखना चाहिये, अन्यथा इस अन्तर की कमी से भी उसे हानि होने की संभावना रहती है। इस दृष्टि से अधिकोप को ऐसे प्रमंडलों की प्रतिभूतियां, जिनके मूल्यों में अधिक उच्चावचन होते रहते हैं—अस्वीकार करनी चाहियें। दूसरे उद्धार-प्रतिभूत अन्तर पर्याप्त रखने के लिये उसको प्रतिभूति के मूल्याङ्कन में सावधानी से काम लेना चाहिये।

(ग) अपरक्राम्य प्रतिभूतियों के हस्तान्तरण के समय अगर हस्तान्तरक की उपाधि सदोष है तो हस्तान्तरिती की उपाधि भी उसी प्रकार सदोष रहती है। अतः प्रतिभूति लेते समय इस सम्बन्ध में भी सावधानी बरतनी चाहिये।

वस्तु अथवा वस्तु-अधिकार प्रलेखों की प्रतिभूति :—

व्यापारिक केन्द्रों में अथवा आयात-निर्यात व्यापार केन्द्रों में अधिकोप विशेषतः उत्पादन (Produce), वस्तु (Goods) अथवा वस्तु अधिकार प्रलेख (Documents of Title to Goods) आदि की प्रतिभूति पर ऋण देते हैं। इस प्रकार की प्रतिभूति स्वीकृत करने के लिए अधिकोप को इनके विशेष अनुभव एवं ज्ञान की आवश्यकता होती है। इन प्रतिभूतियों पर ऋण देने में अधिकोप को विशेषरूप से सावधान रहना पड़ता है क्योंकि वस्तुओं के मूल्य उनके गुण (Quality) पर, हानि तथा अवमूल्यनादि पर निर्भर रहते हैं। इसलिये अधिकौषिक को ऐसी प्रतिभूतियाँ स्वीकार करने के पूर्व निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिये :—

१. वस्तु का गुण (Quality of Goods) : किस प्रकार की वस्तु है यह अधिकोपिक को देखना चाहिये परन्तु अधिकोष किसी भी वस्तु के प्रत्येक संवेष्ट (Package) को नहीं देख सकता और न देखने के लिए उसके पास समय ही रहता है। अतः अधिकोष को देखना चाहिये कि उसका भावी अधमर्ण जो इन वस्तुओं की प्रतिभूति दे रहा है ईमानदार है तथा उसकी साख अच्छी है। ऐसी वस्तुओं को स्वीकार करते समय प्रत्येक संवेष्ट का संवेष्टन-पत्र (Packing Note) देख लेना चाहिए। अच्छे प्रमण्डल माल भेजते समय इस प्रकार के संवेष्टन-पत्र अथवा बीजक की प्रति (Invoice.) प्रत्येक संवेष्ट में रखते हैं।

२. वस्तुएँ ऐसी हैं जिन में किसी भी प्रकार से गुण हानि होने की सम्भावना नहीं है, यह जानने के लिये उसे उत्पादन-विपणि (Produce markets) से सम्पर्क में रहना चाहिए तथा उनके मूल्यों की भी जानकारी रखनी चाहिए जिससे अवमूल्यन से हानि की सम्भावना न रहे। इसलिए उसे विशेषतः ऐसी वस्तुओं की प्रतिभूति लेनी चाहिए जिनमें विपण्यता हो एवं माँग की लोच न हो।

३. वस्तुओं के वास्तविक मूल्य की भी उसे जानकारी होनी चाहिए, जिससे प्रतिभूति का मूल्यांकन समुचित हो तथा ऐसी वस्तुओं का मूल्याङ्कन सामयिक होना चाहिए जिससे हानि की सम्भावना कम रहे।

४. अधिकोष को वस्तुओं पर पूर्ण वैधानिक उपाधि प्राप्त कर लेनी चाहिए तथा अगर वे वस्तुएँ अधमर्ण के पास रहती हैं तो कोष्ठ-गृह (Go-downs) की व्यवस्था समुचित है या नहीं, यह भी देख लेना चाहिए, जिससे किसी भी प्रकार से वस्तु की गुण-हानि (Deterioration in quality) न हो। विशेषतः अधिकोष को बन्धक वस्तुएँ अपने कोष्ठ-गृहों में ही रखनी चाहिएँ। अगर यह सम्भव न हो तो अधमर्ण के कोष्ठ-गृह की कुञ्जी अपने अधिकार में लेनी चाहिए तथा ताले पर अपनी मुद्रा लगानी चाहिए जिससे किसी भी प्रकार की हानि न हो।

५. इस प्रकार के व्यवहार वस्तुओं के स्वामी के साथ अथवा उसके अधिकृत अभिकर्ता के साथ ही होने चाहिएँ।

६. वस्तु की अधिकार-मुक्ति का निरीक्षण (Supervision of Releases of Goods) : जो वस्तुएँ अधिकोष के पास रखी हुई हैं उनको देते समय उसको यह देख लेना चाहिए कि अधमर्ण से उसके ऋण का भुगतान हो चुका है तथा शेष वस्तुएँ शेष ऋण के भुगतान के लिए पर्याप्त हैं।

उसी समय लौटानी पड़ती है क्योंकि यदि वह ऐसा नहीं करता तो धनादेश के अनादरण से ग्राहक की साख गिरती है जिससे ग्राहक को होनेवाली हानि की पूर्ति अथवा अन्य क्षतिपूर्ति अधिकोष को करनी पड़ती है। अतः वैधानिक दृष्टि से अधिकोष निक्षेप रूप में लिये हुए ऋण के भुगतान के लिए तभी उत्तरदायी होता है, जब ग्राहक की ओर से धनादेश आदि द्वारा ऋण की माँग की जाय। तीसरे, अधिकोष द्वारा निक्षेप रूप में लिए हुए ऋणों को अन्य ऋणों की भांति काल-मर्यादा नियम (Law of Limitation) लागू नहीं होता। इस प्रकार ग्राहक के लेखे में कितनी भी राशि, किसी भी समय तक रह सकती है एवं मांग करने पर ग्राहक उसे प्राप्त कर सकता है। चौथे, ऋण की अधिकोष से मांग होने पर, यदि धनादेश का आहरण नियमित है तो अधिकोष उसका अनादरण नहीं कर सकता क्योंकि लेखा खोलते समय वह इस बात का दायित्व स्वीकार करता है। अतः ग्राहक को भी चाहिये कि धनादेशों का आहरण नियमी प्ररूप (Form) में किया जाय, जिससे उनका अनादरण न हो।

इस प्रकार निक्षेप रूप में प्राप्त ऋण का अधिकोष किसी भी प्रकार से विनियोग कर सकता है क्योंकि इस प्राथमिक संबंध में अधिकोष प्रन्यासी (Trustee) नहीं होता और न अधिकोष के पास रखे हुए निक्षेप किसी विशिष्ट कार्य के लिए दिये जाते हैं। इसी प्रकार अधिकोष इस संबंध में ग्राहक का अभिकर्ता भी नहीं होता, जब तक ग्राहक उसे विशेष अधिकार पत्र (Authority Letter) द्वारा प्रन्यासी अथवा अभिकर्ता का कार्य करने के लिए तथा किसी विशिष्ट हेतु से ही उसके धन का उपयोग करने के लिए अधिकार न दे। यदि अधिकोष को प्रन्यासी के रूप में एवं किसी विशिष्ट कार्य के लिए कोई राशि ग्राहक देता है तो उस राशि का उपयोग ग्राहक के आदेशित कार्यों के लिए ही उसे करना पड़ेगा, अन्य कार्यों के लिए नहीं अन्यथा ग्राहक की किसी प्रकार की हानि होने से उसकी क्षतिपूर्ति का उत्तरदायित्व अधिकोष का होगा।

किन्तु जहाँ तक स्थायी निक्षेपों का संबंध है उनमें अधिकोष अधमर्ण तथा ग्राहक उत्तमर्ण होते हैं। ऐसे लेखों में अधिकोष अधिविकर्ष की सुविधा नहीं देता अतः इन लेखों में अधिकोषों और ग्राहकों का संबंध उलटा नहीं हो सकता, जैसा कि चल निक्षेपों में होता है अर्थात् अधिकोष उत्तमर्ण की स्थिति तथा ग्राहक अधमर्ण की स्थिति में नहीं हो सकता। दूसरे ऐसे लेखों के संबंध में अधिकोष माँग पर राशि देने के लिए उत्तरदायी नहीं होता। किन्तु संचय निक्षेपों की राशि का परिमाण एवं साप्ताहिक आहरण भी निश्चित होता

है, उसी प्रकार स्थायी निक्षेपों की राशि अवधि की समाप्ति बाद अन्यथा निश्चित सूचना देने पर ही आहरित की जा सकती है। तथा इन नियमों के पालन के लिए ग्राहक बाध्य होता है।

ग्राहक और अधिकोष के पारस्परिक संबंध की विशेषता : ग्राहक और अधिकोष के इस परस्पर संबंध की कार्य प्रणाली की अनेक विशेषताएं होती हैं तथा अनेक ऐसे कार्य होते हैं जिनको इस संबंध के परिणाम स्वरूप अधिकोष करने के लिए बाध्य है। इस संबंध की विशेषता अथवा इस संबंध के निम्नलिखित विशेष लक्षण (Special Features) हैं :—

अ. निक्षिप्त राशि का नियोजन (Appropriation of Deposits) : यदि किसी ग्राहक के एक ही अधिकोष में अनेक खाते हैं तो उस दशा में ग्राहक को अपनी राशि जमा करने के लिए भेजते समय तथा धनादेश आदि संग्रहण के लिए भेजते समय, वह राशि किस लेखे में जमा की जाय इस आशय का आदेश देना चाहिये। ऐसा आदेश प्राप्त होने पर अधिकोष उस आदेश की पूर्ति करने के लिए बाध्य है। किन्तु इस प्रकार का कोई आदेश अधिकोष को न दिया जाय तो अधिकोष को ऐसी संग्रहित राशि पर अथवा अन्य जमा के लिए भेजी गई राशि पर सामान्य ग्रहणाधिकार (Right of Lien) प्राप्त होता है, जिसके अनुसार वह उस राशि का ग्राहक के लिए हुए ऋणों के भुगतान के लिए उपयोग कर सकता है, फिर यह ऋण कितना ही पुराना अथवा काल मर्यादा नियम से बाध्य क्यों न हो गया हो ?

इसी प्रकार ग्राहक के चल लेखे के शेषों पर ग्राहक द्वारा सामान्य अधिकोषण व्यवहारों में रखी हुई प्रतिभूतियों आदि पर भी सामान्य ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है। अधिकोष के चल लेखों के लिए क्लेटन का नियम (Clayton's Rule) लागू होता है जिसके अनुसार पहिले जमा की हुई राशि का प्रतिसाद (Set off) पहिली समाकलित अथवा दी हुई राशि के साथ हो जाता है। इस प्रकार पहिले दिये हुए ऋण के भुगतान के लिए पहिली जमा राशि का प्रतिसाद तथा उपयोग होता है। यह नियम केवल चल लेखों पर ही लागू होता है। इस प्रकार अधिकोष जिस राशि का प्रतिसाद करे अथवा नियोजन करे, उसकी सूचना ग्राहक को अवश्य दी जानी चाहिये। इसी प्रकार यदि ग्राहक के—एक ही ग्राहक के यदि विभिन्न लेखे एक ही अधिकोष में हों, और विभिन्न लेखों के विशिष्ट हेतु न हों तो अधिकोष ग्राहक को समुचित सूचना देने के उपरान्त उनका नियोजन उसको दिये हुए ऋणों के भुगतान के लिए कर सकता है। उसी प्रकार इन विभिन्न

लेखों को वह एकत्रित भी कर सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक ही ग्राहक के अधिकोष में दो लेखे हैं जिन में से एक उसका वैयक्तिक लेखा है तथा दूसरा भागिता सार्थ की ओर से है तो ये दोनों लेखे एकत्रित नहीं किये जा सकते क्योंकि ये दोनों लेखे एक ही व्यक्ति के वैयक्तिक उपयोग के लिए नहीं हैं और न एक ही स्वरूप के हैं अतः ऐसे दो लेखों का परस्पर प्रतिसाद अधिकोष नहीं कर सकता।

(ब) ग्राहक द्वारा आहरित धनादेशों का आदरण अथवा भुगतान (Payment of Customer's Cheques) : ग्राहक द्वारा आहरित धनादेशों का भुगतान करने के लिए भी अधिकोष बाध्य होता है किन्तु यह भुगतान वह तभी तक करने के लिए बाध्य है, जब तक ग्राहक के लेखे में पर्याप्त राशि जमा है अथवा यदि अधिविकर्ष दिया गया है तो अधिविकर्ष की रकम समाप्त नहीं हुई है, धनादेश बीतकालीय (Stale) नहीं है एवं धनादेश नियमी प्ररूप में ग्राहक द्वारा आहरित किया गया है तथा ग्राहक के हस्ताक्षर उसके अधिकोष मे जो निदर्शन (Specimen) हस्ताक्षर हैं उनसे मिलते हैं। इसी प्रकार धनादेश भुगतान के लिए यथाविधि तथा अधिकोष के कार्यालय-समय में उपस्थित किया जाना चाहिये। यदि इनमें से किसी भी बात में दोष रहता है तो अधिकोष बिना किसी प्रकार के उत्तरदायित्व के धनादेशों का अनादरण कर सकता है एवं करता भी है। अधिकोष सामान्यतः ग्राहक से संग्रहण के लिए प्राप्त विपत्रों का, धनादेश आदि की राशि को ग्राहक के लेखे में तब तक जमा नहीं करता जब तक उनका संग्रहण न हो जाय। अतः इन विपत्रों का संग्रहण हो गया है ऐसा समझ कर यदि ग्राहक धनादेश आदि उस राशि पर आहरित करता है तो वे धनादेश अधिकोष 'संग्रहण नहीं हुआ' (Effects not cleared) यह लिखकर लौटा देता है—अनादरित करता है। इसलिये ऐसी राशि पर ग्राहक को धनादेश तब तक आहरित नहीं करना चाहिये जब तक उनके संग्रहण के लिए समुचित समय न दिया गया हो अथवा संग्रहण की सूचना उसे ग्राहक-पुस्तिका से प्राप्त न हो जाय। इसी प्रकार ग्राहक के धनादेशों का अनादरण ग्राहक की मृत्यु की, पागलपन की सूचना पाने के उपरान्त अथवा प्राधमर्ण आदेश (Garnishee's Order) प्राप्त होने पर अधिकोष बिना किसी उत्तरदायित्व के कर सकता है।

(क) ग्राहक की आर्थिक परिस्थिति विषयक गौप्य (Secrecy) : ग्राहक की आर्थिक परिस्थिति के विषय में गौप्य रखने की जिम्मेदारी भी अधिकोष की होती है। अर्थात् ग्राहक की आर्थिक परिस्थिति अथवा ग्राहक के

लेखे का ज्ञान, वह विना किसी उचित कारण के किसी भी अन्य व्यक्ति को नहीं दे सकता है, ऐसा करने के लिए वह केवल कायदे से ही बाध्य किया जा सकता है अथवा जब अधिकोप को अपनी दी हुई ऋण-राशि प्राप्त करने के लिये गोप्य स्फोट आवश्यक हो तभी वह यह बात कर सकता है, अन्यथा ग्राहक को गोप्य स्फोट से होने वाली हानि की पूर्ति के लिए वह उत्तरदायी होता है। वह ग्राहक की अनुमति से उसके लेखे का अथवा आर्थिक स्थिति का ज्ञान किसी व्यक्ति को दे सकता है तथा इस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता आज कल व्यापारियों को अपने भावी ग्राहक से व्यवहार करने के पूर्व प्रतीत होती है जिसके लिए भावी ग्राहक उन्हें अपने अधिकोप का संदर्भ (Reference) देता है। जब अधिकोपों से इस प्रकार की सम्मति माँगी जाती है उस समय ऐसी सम्मति देते समय अधिकोप को पूर्ण विश्वास एवं सद्भावना से कार्य करना चाहिये। उसे ग्राहक के लेखे का किसी भी प्रकार का ज्ञान न देते हुए केवल उसकी आर्थिक परिस्थिति की समुचित जानकारी, उसके आर्थिक व्यवहार किस प्रकार के हैं, यह स्पष्ट करते हुए अपनी सम्मति देनी चाहिये, जो गुप्त-रूप से आवश्यक व्यक्ति को ही मिले यह भी सावधानी उसे रखनी चाहिये।

इस प्रकार अधिकोप विना किसी प्रकार के उत्तरदायित्व के निम्न परिस्थिति में ग्राहक की आर्थिक परिस्थिति की अथवा उसके लेखे की जानकारी दे सकता है :—

(i) न्यायालय से जब किसी ग्राहक के लेखे का विवरण भेजने के लिए आदेश होता है।

(ii) सरकार, देश एवं सामाजिक हित के लिए किसी ग्राहक के लेखे का ज्ञान देना अवश्यक है।

(iii) जब अधिकोप का संदर्भ किसी व्यक्ति को दिया गया है तब उसके पूछने पर, लेकिन इस प्रकार से जानकारी देते समय उसे ग्राहक के लेखे का विवरण अथवा आर्थिक परिस्थिति का ज्ञान इस सावधानी से देना चाहिये, जिससे ग्राहक की साख अबाधित रहते हुए उसकी वास्तविक आर्थिक परिस्थिति का ज्ञान हो।

(iv) उसके द्वारा दिये गए ऋण की प्राप्ति के लिये अथवा उसके हित के लिए गोप्य स्फोट आवश्यक है। उदा० यदि ग्राहक के विरुद्ध अधिकोप का न्यायालय में मुकदमा चल रहा हो और ग्राहक के लेखे का वहाँ दिखाना आवश्यक है।

(ङ) अधिकोष का ग्रहणाधिकार ध्वनित बंधक है (' Banker's

अथवा ताला लगी हुई पेटी में ग्राहक देता है तथा उस आवेष्टन अथवा पेटी में ग्राहक ने क्या रखा है इसका ज्ञान भी अधिकोप को नहीं होता। ऐसी जो वस्तुएँ आदि अधिकोप अपने पास ग्राहक की ओर से रखता है उन्हें सुरक्षा-निक्षेप (Safe Custody Deposits) कहते हैं। इन वस्तुओं को स्वीकृत करने पर अधिकोप का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह ग्राहक को वही वस्तुएँ उसी दशा में जिस दशा में वे रखी गई थीं—लौटावे। जिस समय ऐसे सुरक्षा-निक्षेप अधिकोप स्वीकृत करता है उस समय अधिकोप ग्राहक का न्यासी होता है एवं उन वस्तुओं का स्वामित्व ग्राहक का ही होता है। जिस समय वस्तुएं सुरक्षा के लिए अधिकोप ग्राहक से स्वीकारता है उस समय अधिकोप ग्राहक को सुरक्षा-निक्षेप की प्राप्ति (Receipt) देता है तथा यह प्राप्ति देते समय प्राप्ति-पुस्तिका (Receipt Book) की अनुपर्णी (Counterfoil) पर वह निक्षेपक ग्राहक से हस्ताक्षर करा लेता है एवं जब वे वस्तुएँ ग्राहक को लौटाई जाती हैं उस समय ग्राहक को वह प्राप्ति अधिकोप को लौटाकर उसपर वस्तुओं की प्राप्ति के हस्ताक्षर करने पड़ते हैं।

इन वस्तुओं की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अधिकोप का होता है अतः ये वस्तुएँ अधिकोप अपने भवन में ही रखता है और यथासम्भव अधिकोप इन वस्तुओं की सुरक्षा के लिए पूर्ण सावधानी एवं तत्परता करता है। किन्तु यदि फिर भी वे खो जायँ अथवा उनको किसी प्रकार की क्षति पहुँचे तो उसकी पूर्ति का उत्तरदायित्व अधिकोप का नहीं होता। अधिकोप उसी दशा में सुरक्षा-निक्षेपों की हानि अथवा क्षति-पूर्ति के लिए ग्राहक के प्रति उत्तरदायी होगा जब उसने उनकी सुरक्षा में किसी भी प्रकार की उपेक्षा की हो। इसके विपरीत, यदि अधिकोप सुरक्षा निक्षेपों को अपने भवन में न रखते हुए किसी अन्य स्थान पर रखता है तो उनकी किसी प्रकार की क्षति अथवा हानि, आदि के लिए अधिकोप उत्तरदायी होगा, फिर भले ही उसने पूर्ण सावधानी से काम किया हो अथवा किसी प्रकार की उपेक्षा न की हो। क्योंकि इस प्रकार अपने भवन में सुरक्षा के लिए स्वीकृत वस्तुओं को वह अन्य स्थान पर रखकर ग्राहक और स्वयं के बीच जो सुरक्षा-निक्षेप अनुबन्ध होता है, उसके आवश्यक निर्बन्ध का उल्लंघन तथा अवहेलना करता है।

इस सेवा-कार्य के लिए विशेषतः अधिकोप भारत में शुल्क लेते हैं परन्तु पाश्चात्य राष्ट्रों में ये सुविधा विशेषतः निःशुल्क ही की जाती है। परन्तु अधिकोश ये सेवाएँ निःशुल्क देता है अथवा नहीं यह विवादग्रस्त प्रश्न है। कुछ अर्थशास्त्रज्ञों की धारणा है कि अधिकोप ये सुविधाएँ अपने ग्राहकों को

निशुःल्क देता है जिससे उसकी ख्याति बढ़े तथा उसकी ग्राहक संख्या में वृद्धि हो। कुछ व्यक्तियों की धारणा इसके विपरीत है, उनका कहना है कि अधि-कोष ये सेवाएँ निःशुल्क नहीं देता अपितु ग्राहकों के लेखों पर उसे लाभ होता है इसलिए देता है। अतः वह ग्राहकों का सशुल्क-अन्यासी (Paid Trustee) है और इसलिये सुरक्षा-निक्षेपों की सुरक्षा के लिए वह पूर्ण रूप से उत्तरदायी है। क्योंकि यदि वह ये सुविधाएँ ग्राहकों को न दे तो ग्राहक अपने लेखे उसी अधिकोष में खोलेंगे जहाँ पर उन्हें सुरक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ मिलती हैं जिससे उसकी ग्राहक संख्या कम हो जायगी तथा लाभ भी घटेगा। ऐसा होते हुए भी हमको यह ध्यान में रखना चाहिये कि कई अधिकोष इन सुविधाओं के लिए शुल्क लेते हैं और कई अधिकोष नहीं भी लेते।

प्रधान एवं अभिकर्ता का संबंध : अधिकोष और ग्राहक के बीच तीसरा संबंध अभिकर्ता तथा प्रधान का होता है। हम यह बता चुके हैं कि अधिकोष ग्राहक से अधिकार-पत्र (Authority Letter) पाने पर ग्राहक की ओर से उसके लिए प्रतिभूतियां अंश आदि का क्रय-विक्रय करता है, उसके आयकर का, आगोप प्रध्याजि का अथवा चंदा आदि का भुगतान करता है। इस प्रकार के कार्य वह ग्राहक की ओर से एवं उसके अधिकार से करता है। अतः इस दशा में वह ग्राहक का अभिकर्ता होता है एवं ग्राहक अधिकोष का प्रधान। ऐसे कार्य करने के पूर्व अधिकोष को ग्राहक से लिखित अधिकार-पत्र लेना चाहिये तथा उसे वे ही कार्य ग्राहक की ओर से करने चाहियें जो अधिकार-पत्र के अंतर्गत समाविष्ट हों अन्यथा वह अपने कार्यों के लिए अपने प्रधान को—ग्राहक को—उत्तरदायी नहीं बना सकता। जिस समय अधिकोष ग्राहक के विपत्र, धनादेश आदि का संग्रहण करता है उस समय भी वह अभिकर्ता का कार्य ही करता है तथा इन सब कार्यों के लिए उसका प्रधान—ग्राहक—उत्तरदायी रहेगा।

उपर्युक्त पारस्परिक संबंध सामान्यतः अधिकोष और ग्राहक के बीच होते हैं परन्तु अनेक ग्राहक ऐसे होते हैं जैसे प्रमंडल, भागिता सार्थ आदि जिनके लेखों में अधिकोष को ये संबंध पूर्ण करने में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है; इन ग्राहकों का विवेचन अन्यत्र किया गया है।

प्रश्न संग्रह

१. अधिकोष का ग्राहक के प्रति क्या उत्तरदायित्व (Obligations) होता है तथा किस परिस्थिति में वह ग्राहक के लेखों की गोपनीयता की अवहेलना बिना किसी प्रकार के दायित्व के कर सकता है ?

(आगरा बी. कॉम. १९४७)

२. ग्राहक के प्रति अधिकोष का क्या उत्तरदायित्व तथा अधिकार होता है विवेचन कीजिये ? (बी. कॉम. आगरा १९४६)

३. अधिकोष एवं ग्राहक के पारस्परिक संबंध का विवेचन कीजिए। (बी. कॉम. आगरा १९४३)

४. अधिकोष एवं ग्राहक का पारस्परिक संबंध क्या है ? इस संबंध की कौनसी विशेषता है ? उद्‌बोधक विवेचन कीजिये ?

अध्याय ८

साख तथा साखपत्र

अधिकोष के कार्यों का विवेचन करते समय हमने यह देखा था कि अधिकोष साख निर्माण कार्य करते हैं जिससे जनता की वित्त-शक्ति का संचार होता है, तथा अनुपयुक्त पूँजी को उत्पादन कार्य में लगाया जाता है, परिणामतः देश में औद्योगिक एवं व्यापारिक उन्नति होती है। यह साख अधिकोष अपनी कार्यशील पूँजी को ऋण देने के कार्य में लगाकर करते हैं। यह कार्य अधिकोष किस प्रकार से करता है यह देखने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साख क्या होती है, साख किसे कहते हैं ?

परिभाषा : साख किसी भी व्यक्ति की वह शक्ति है जिसके प्रलोभन से कोई अन्य व्यक्ति अपनी आर्थिक वस्तुओं का उपयोग अथवा धनराशि का उपयोग करने की उस व्यक्ति को अनुज्ञा देता है; तथा वह व्यक्ति उन आर्थिक वस्तुओं को दाता अथवा उत्तमर्ण को भविष्य में किसी निश्चित अवधि में लौटाने की प्रतिज्ञा करता है। अर्थात् किसी भी व्यक्ति की वह परिस्थिति, जिसके बल पर वह अन्य व्यक्तियों से धन-राशि अथवा आर्थिक वस्तुएं किसी अवधि के उपयोग के लिए लेता है, इस शक्ति को उस व्यक्ति की साख कहते हैं। इस प्रकार साख किसी भी व्यक्ति की विशेषता है, जिसके आधार पर वह अन्य व्यक्तियों से निश्चत अवधि के लिए उनकी आर्थिक वस्तुओं का उपयोग ले सकता है तथा जिन्हें वह उस अवधि की समाप्ति के बाद लौटाता है। जिस व्यक्ति को यह साख प्राप्त होती है उसे अधमर्ण एवं जो व्यक्ति साख देता है उसे उत्तमर्ण कहते हैं। उदाहरणार्थ अ ने ब से ५०० रु० की साख प्राप्त की अर्थात् अ ने ब से ५०० रु० ऋण लिए, इसमें अ अधमर्ण तथा ब उत्तमर्ण है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साख विनिमय हम विनिमय के उन व्यवहारों को कहेंगे जिनमें वर्तमान आर्थिक वस्तुओं का विनिमय भविष्यत् आर्थिक वस्तुओं के साथ होता है। किन्तु रोक व्यवहार में ऐसा न होते हुए वर्तमान वस्तुओं का विनिमय रोकड़ के बदले होता है। इस प्रकार

रोक व्यवहारों में तथा साख व्यवहारों में यह मूल भेद है कि रोक व्यवहारों में रोकड़ के बदले वस्तुएँ दी जाती हैं परन्तु साख व्यवहारों में वर्तमान वस्तुओं का भुगतान किसी आगामी काल में—जो निश्चित होता है—किया जाता है; जिससे साख व्यवहारों में समय का तत्त्व (Element of Time) निहित है।

ये साख-व्यवहार वस्तुओं के भी हो सकते हैं तथा रोकड़ के भी। जहाँ वस्तुएँ खरीद कर उनका भुगतान आगामी काल में किया जाता है उन्हें केवल 'साख व्यवहार' कहते हैं। दूसरे जहाँ धनराशि वर्तमान उपयोग के लिये प्राप्त की जाती है एवं जिसका शोधन (Payment) भविष्य में किया जाता है उन व्यवहारों को ऋण व्यवहार, रोक ऋण कहते हैं।

साख के तत्त्व: अब इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साख में अनेक तत्व निहित हैं क्योंकि साख केवल उसी व्यक्ति को मिलती है जिसकी आर्थिक परिस्थिति में विश्वास किया जा सकता है एवं वह व्यक्ति ईमानदार है, अर्थात् साख प्राप्ति के लिये पहिले उस व्यक्ति की आर्थिक स्थिति, ईमानदारी तथा ऋण भुगतान की योग्यता में उत्तमर्ण का विश्वास होना आवश्यक है। इस विश्वास की आवश्यकता (Credit) इस शब्द की उत्पत्ति से भी स्पष्ट है, जिस शब्द की उत्पत्ति 'Credo' (अर्थात् विश्वास) इस शब्द से हुई। दूसरे साख में समय का तत्व निहित होता है अर्थात् साख हम तभी कह सकते हैं जब वर्तमान आर्थिक वस्तुओं का भुगतान भविष्य की आर्थिक वस्तुओं से किया जाय और यह भुगतान अवधि अधमर्ण और उत्तमर्ण में साख प्राप्त करते समय निश्चित हो जाती है। तीसरे साख कितनी चाहिये अथवा साख में कितनी राशि का आदान प्रदान होता है वह राशि भी मालूम होनी चाहिये। इस प्रकार साख में तीन मूल-तत्व निहित होते हैं अथवा तीन बातों की आवश्यकता होती है :—

१. वर्तमान आर्थिक वस्तुओं का भविष्यत् भुगतान की प्रतिज्ञा पर विनिमय होता है अर्थात् समय-तत्त्व होना आवश्यक है।

२. निश्चित राशि—कितनी राशि की अथवा कितने मूल्य की साख दी जाती है अथवा प्राप्त की जाती है, यह भी निश्चित होता है।

३. विश्वास, जो अधमर्ण की आर्थिक परिस्थिति एवं ऋण भुगतान करने की क्षमता पर निर्भर रहता है।

इसके अतिरिक्त जहाँ तक अधिकोषण साख-व्यवहारों में आज कल किसी न किसी प्रकार की प्रतिभूति की आवश्यकता होती है हम यह कह सकते हैं कि साख में प्रतिभूति (Security) का चौथा तत्त्व भी निहित होता है। परन्तु इस तत्त्व का होना आवश्यक नहीं है क्योंकि सामान्यतः अधिकोष भी

अधमर्ण की वैयक्तिक प्रतिभूति पर ऋण देते हैं, दुकानदार अपने ग्राहक की वैयक्तिक साख पर उसे उधार देता है। अतः प्रतिभूति का साख-व्यवहार में आवश्यक महत्त्व नहीं है।

साख दो कार्यों के लिए प्राप्त की जाती है। जिस समय साख का उपयोग उपभोग कार्यों के लिए होता है वह उपभोग्य साख (Consumption Credit) होती है। तथा जिस साख का उपयोग व्यापारिक अथवा औद्योगिक प्रगति के लिए होता है एवं जिससे उत्पादन बढ़ता है, उस साख को उत्पादी-साख (Production Credit) कहते हैं। उपभोग्य-साख का निर्माण अथवा संचार जहां तक उत्पादन कार्यों में सहायक होता है वहीं तक हम उपभोग्य-साख का दिया जाना उचित समझते हैं। जैसे क्रय-विक्रय पद्धति (Hire Purchase System) अथवा प्रभाग पद्धति (Instalment System)। परंतु अन्य साख जिससे उत्पादन कार्य में सहायता नहीं मिलती वह देशहित में प्रमाणित नहीं होती। साख के उपयोग एवं प्राप्ति के लिए अधमर्ण उत्तमर्ण को कुछ शुल्क देता है जिसे ब्याज कहते हैं जैसे ५००० रु० आज लेकर यदि तीन मास बाद ५०१० रुपये का भुगतान किया जाय तो १० रु० ब्याज होगा।

साख के प्रकार : साख अनेक प्रकार की होती है। जब कोई भी व्यक्ति अपनी व्यावसायिक साख के आधार पर माल उधार खरीदता है अथवा किसी अन्य व्यक्ति को उसकी व्यापारिक साख पर माल उधार देता है तब उसे व्यापारिक-साख (Commercial Credit) कहते हैं। यह साख सीमित रहती है तथा उसी क्षेत्र तक सीमित रहती है, जिस क्षेत्र में उन व्यापारियों का विशेष आदान प्रदान होता है। इसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में औद्योगिक कार्यों के लिए जो साख का आदान प्रदान होता है उसे औद्योगिक साख (Industrial Credit) कहते हैं। इसी प्रकार सरकारी-साख (National Credit) उस साख को कहते हैं जिसके आधार पर सरकार जनता से ऋण आदि लेती है एवं उनके बदले में अपने विपत्र आदि देती है। सरकार की इस साख को सरकारी साख कहते हैं तथा जिन पत्रों को देकर सरकार यह राशि उधार लेती है उन पत्रों को साख विलेख (Credit Instruments) कहते हैं। सरकार की साख वैयक्तिक साख से अधिक एवं महत्त्वपूर्ण होती है। चौथे अधिकोष साख (Bank Credit) इन सब में अधिक महत्त्वपूर्ण होती है तथा जब व्यापारी अपनी साख बढ़ाने के लिए अपनी साख बेचकर अधिकोष से साख प्राप्त करते हैं उस समय उस व्यापारी की साख अधिकोष की साख के कारण अधिक बढ़ जाती है।

अधिकोष का साखनिर्माण: साख के क्रय विक्रय की इस क्रिया को ही अधिकोष का साख-निर्माण कार्य कहते हैं। तथा यह कार्य वह अपने निक्षेपों के आधार पर करता है क्योंकि अधिकोष यह जानता है कि उसके पास जो जनता के निक्षेप हैं वे सब निक्षेप एक ही बार आहरित नहीं किये जायेंगे किन्तु बहुतांश निक्षेप उसके पास पड़े रहेंगे तथा केवल थोड़े से निक्षेपों की राशि ही जनता निकालेगी। चूँकि निक्षेपों का माँग पर भुगतान करने का उत्तरदायित्व होता है इसलिये वह इन भुगतानों के लिए रोक अपने पास रखता है—जिसे रोकनिधि (Cash Reserve) कहते हैं तथा शेष रुपया वह अपने पास न रखते हुए लाभकर विनियोगों में लगाता है। अब उसे केवल निक्षेपों के कुछ भाग के भुगतान के लिए ही राशि रखनी पड़ती है तथा शेष राशि का विनियोग वह ऋण आदि देने के कार्य के लिए कर सकता है। इस भुगतान के लिए जो मुद्राराशि अधिकोष अपने पास रखता है उस राशि की आवश्यकता और भी कम हो जाती है यदि धनादेशों का देश में प्रचार है तथा उनसे भुगतान होते हैं। इस प्रकार मुद्रा की आवश्यकता कम होती है तथा अतिरिक्त मुद्राराशि का उपयोग वह साख-निर्माण कार्य में अथवा व्यापारियों को ऋण तथा साख की सुविधाएँ देने में कर सकता है। परन्तु ये निक्षेप माँग पर देय होने के कारण उनका उपयोग वह अल्पकालीन ऋण अथवा साख देने के लिए ही करता है। प्राथमिक निक्षेप जो अधिकोष के पास रहते हैं वे रोकड़ में जनता द्वारा जमा किये जाते हैं जिनके आधार पर अधिकोष अपने निक्षेप बढ़ाता है। कैसे ? मान लीजिये कि हमारे देश में एक ही अधिकोष है जिसके पास कुल निक्षिप्त राशि १५००० रु० है। अब अधिकोष यह जानता है कि उसको इस राशि पर निक्षेपकों को व्याज देना पड़ेगा जिसके लिए उसे लाभ कमाना भी आवश्यक है। दूसरे यह भी वह जानता है तथा अपने अनुभव से सीखता है कि उसे प्रतिमास निक्षेपों का भुगतान करने के लिए केवल १५०० रु० की आवश्यकता होती है जिससे अतिरिक्त धन वह अपने पास नहीं रखेगा अर्थात् १३,५०० रुपये वह अन्य कार्यों के लिए उपयोग करेगा। यह अन्य कार्य ही ऋण देने का कार्य है। मान लीजिये अधिकोष को १३,५०० रुपये अल्पकालीन ऋणों के लिये व्यापारियों एवं उद्योगपतियों को देना है। उद्योग-पति अथवा व्यापारियों को भी सब राशि की एक ही समय आवश्यकता नहीं पड़ेगी और न वे सब राशि को अपने पास ही रखेंगे, अपितु इस राशि को वे अधिकोष में जमा कर देंगे तथा अपना निक्षेप लेखा खोलेंगे और उस लेखे से समय समय पर आवश्यकतानुसार धनादेशों द्वारा आहरण करते रहेंगे। इस प्रकार यह हम

देखते हैं कि १५,००० रु० के मूल निक्षेपों के आधार पर अधिकोष ने १३,५०० रु० से अपनी निक्षिप्त राशि घटा ली तथा उसके पास अब २८५०० रु० के निक्षेप हो गये। इस प्रकार अधिकोष ऋण देकर अपने निक्षेपों में वृद्धि करता है। इसलिये यह कहा जाता है कि ऋण निक्षेप के बच्चे हैं तथा निक्षेप ऋणों के बच्चे हैं अथवा निक्षेपों से ऋणों की निर्मिति तथा ऋणों से निक्षेपों की निर्मिति होती है। क्योंकि प्रत्येक निक्षेप से ऋण दिये जाते हैं जो अन्ततः इस अधिकोष के पास अथवा किसी न किसी अन्य अधिकोष के पास निक्षेप लेखे में रखे जाते हैं। इस प्रकार अधिकोष के पास जो निक्षेप लेखे होते हैं वे दो प्रकार के होते हैं:—

१. रोक निक्षेप : जिनकी राशि अधिकोष को ग्राहकों से प्राप्त होती है; तथा

२. साख निक्षेप (Credit Deposits) : जो अधिकोष अन्य व्यापारियों को ऋण देते हैं उनकी राशि से जो निक्षेप लेखे खोले जाते हैं उन्हें साख निक्षेप कहते हैं

यह ऋण अधिकोष ग्राहक को अधिविकर्ष, रोकऋण अथवा ग्राहक की अन्य प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर देते हैं। इस प्रकार अधिकोष साख का निर्माण ऋणों द्वारा निक्षेपों की वृद्धि कर करते हैं जिससे ग्राहक धनादेशों द्वारा आहरण करता है। और जहां तक ये धनादेश भुगतान का कार्य करते हैं अधिकोष की साख-निर्माण शक्ति बढ़ जाती है। इतना ही नहीं, अपितु जिन देशों में धनादेशों का अधिक उपयोग होता है वहां पर यह साख-निर्माण शक्ति बहुत बढ़ी हुई होती है और भुगतान विशेषतः धनादेशों द्वारा ही किये जाते हैं। हार्टले-विदर्स के अनुसार "आधुनिक अंग्रेजी वाणिज्य एवं अर्थ की मुद्रा धनादेश हैं तथा लंदन मुद्रा विपणि में जिस साख का व्यवहार होता है वह है धनादेश-आहरण करने का अधिकार"[1] इसी के साथ रोक निक्षेप एवं साख निक्षेपों के विषय में यही लेखक कहता है कि यह साख-निर्माण व्यापारियों को ऋण देकर अपने साख-निक्षेप की वृद्धि से किया जाता है; जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं। आधुनिक व्यापार में अधिकोष के निक्षेप अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि विशेषत: धनादेशों द्वारा भुगतान करने की सुविधा ग्राहक को प्राप्त होती है तथा मुद्रा के उपयोग में भी मितव्ययिता होती है तथा ये विनिमय माध्यम के आनुसंगिक (Additional) साधन का कार्य भी करते हैं जिससे मुद्रा

[1] *The money of modern English Commerce & Finance is the cheque and the credit dealt in the London Money Market is the right to draw a cheque"* *Hartley Withers—Meaning of Mone*

की गति बढ़ती है। इस प्रकार अधिकोष अपने निक्षेपों से ऋण तथा ऋणों से निक्षेप बढ़ाने का चक्र सदैव घुमाता रहता है जिससे साख-निर्माण होता रहता है तथा जनता में वित्त-शक्ति का संचार होकर मुद्रा की गतिशीलता बढ़ती है तथा अधिकोष इन सुविधाओं से केवल धनादेश तथा अन्य साख पत्रों में ही व्यवहार करते हैं जैसा कहा भी है कि आधुनिक अधिकोष "मुद्रा प्राप्ति अधिकार" का क्रय विक्रय करते हैं।

दूसरे देश का केन्द्रीय अधिकोष अपनी मुद्राओं के चलन से भी साख निर्माण करता है।

आजकल विश्व के बहुतांश देशों में केंद्रीय अधिकोष की स्थापना हो चुकी है जो अधिकोष देश के अन्य अधिकोषों के निक्षेप अपने पास रखता है तथा उनको आवश्यकता के अनुसार ऋण आदि प्राप्त करने की सुविधाएं देता है, विपत्रों के अपहरण की भी सुविधाएं देता है जिससे अधिकोषों की साख-निर्माण शक्ति बढ़ जाती है।

साख-निर्माण शक्ति की सीमा: अब यह प्रश्न उठता है कि क्या यह साख-निर्माण अधिकोष अपरिमित मात्रा में कर सकते हैं अथवा उनकी यह शक्ति सीमित होती है ? हम यह बता चुके हैं कि अधिकोषों को निक्षेपों के भुगतान के लिए कुछ अंश में रोकनिधि रखनी पड़ती है तथा इस रोकनिधि के परिमाण से अधिकोष की साख निर्माण शक्ति भी सीमित हो जाती है। दूसरे देश के प्रत्येक अधिकोष को अपने याचित एवं काल निक्षेप का कुछ भाग केन्द्रीय अधिकोष के पास रोकनिधि के लिए रखना पड़ता है जो निक्षेपों की गिरावट एवं वृद्धि के साथ कम या अधिक होना चाहिये। अतः इस वैधानिक रोकनिधि से भी अधिकोष की साख निर्माण शक्ति सीमित है। तीसरे केन्द्रीय अधिकोष के साख-नियंत्रण साधनों से भी यह शक्ति मर्यादित होती है क्योंकि केन्द्रीय अधिकोष अपनी विभिन्न क्रियाओं—विवृत विपणि क्रिया, अधिकोष दर, रोकनिधि अनुपात का परिवर्तन आदि से भी देश की साख का संकोच अथवा प्रसार करता है। चौथे पत्र मुद्रा-चलन द्वारा साख निर्माण, पत्र मुद्रा के परिवर्तन के लिए जो धातुनिधि रखनी पड़ती है, उसकी मात्रा से सीमित रहता है। पाँचवें लीफ के अनुसार अधिकोष की यह शक्ति निक्षेपकों की इच्छा पर निर्भर रहती है क्योंकि यदि निक्षेपक निक्षेप रखना बंद कर दे तो अधिकोष साख निर्माण कर ही नहीं सकते,,[1] इतना ही नहीं अपितु एक

---

[1] *The banks can lend no more than they can borrow—in fact not nearly so much. If anyone in the deposit banking system can be called a* creator of credit *it is the depositor; for the banks are strictly limited in their lending operations by the amount which the depositor thinks fit to leave with them .. .. The creation*

ऋण का निर्माण दूसरे ऋण का भुगतान कर उसे रद्द कर देता है। तथा क्योंकि अधिकतर ऋण विशेषतः प्रतिभूतियों की जमानत पर दिये जाते हैं अतः प्रतिभूतियां किस प्रकार की हैं, इससे भी अधिकोष की साख निर्माण शक्ति सीमित होती है।[१]

उपर्युक्त सीमाओं एवं मर्यादाओं को देखते हुए यह ठीक ही कहा गया है कि अधिकोष साख का निर्माता नहीं है और न वह मुद्रा का निर्माता ही है किन्तु वह उन व्यक्तियों की राशि को, जो उसका समुचित उपयोग नहीं कर सकते उनसे लेकर अन्य व्यक्तियों को जो उसका उत्पादनकार्य के लिए उपयोग कर सकते हैं उनको ऋण की सुविधा देने वाला व्यक्ति है (प्रो० केनन)

साख ही पूंजी है : यह तो हम देख ही चुके हैं कि आधुनिक व्यापार, वाणिज्य एवं निर्माणी क्षेत्र में उत्पादन से उपभोग तक की सब क्रियाएं साख पर ही निर्भर हैं अतः कतिपय अर्थशास्त्रज्ञों को यह भ्रम होगया है कि 'साख ही पूंजी है।' इतना ही नहीं, अपितु मैक्लॉइड का कथन है कि साख पूंजी का निर्माण करती है। साख एवं मुद्रा दोनों ही पूंजी हैं; व्यापारिक साख व्यापारिक पूंजी है।[२] किन्तु यह केवल भ्रम है सत्य नहीं, क्योंकि साख की वजह से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की धन-राशि अथवा वस्तुएं अपने उपयोग के लिए प्राप्त कर सकता है। परन्तु यदि वे वस्तुएं उसे प्राप्त न हों तो उसकी साख उसको उत्पादन में विशेष सहायक नहीं हो सकती। अर्थात् उत्पादन के अन्य घटकों की भांति केवल साख उत्पादन नहीं कर सकती और न किसी वस्तु का निर्माण क्योंकि साख उत्पादन का स्वतंत्र घटक नहीं है। अपितु साख से मनुष्य अन्य व्यक्ति से उत्पादन के साधन प्राप्त कर सकता है। अतः साख साधन है साध्य नहीं है। साख अन्य व्यक्ति की पूँजी उपयोग करने की अनुज्ञा है, पूँजी नहीं। प्रो० मिल ने इसको प्रमाणित करते हुए कहा है कि "ऋण प्रदान से नई पूंजी का निर्माण नहीं होता किन्तु ऋणदाता की पूँजी अधमर्ण के पास हस्तांतरित होती है"[३] इस हस्तांतरण से यह नहीं कहा जा सकता कि

---

of credit in one direction is only made possible by a corresponding cancellation of credit in another"—Banking by Walter Leaf, Pp. १०१

[१] *"It may be contended that these banking credits are manufactured, not by the banks, but by the customers who apply to them, and by the security that the customer's bring"*

[२] "Both Money and *Credit are Capital. Mercantile credit is mercantile capital'* *Elements of Banking - Macleod*

[३] *"New capital is not created by mere fact of lending, only the capital that was in the hands of the lender is now transferred to the hands of the borrower"—Mill*

देश की पूँजी दुगुनी हो गई है। हाँ, साख उत्पादन के साधन प्राप्त करने के लिए देश की पूँजी बढ़ाने के लिए सहायक अवश्य होती है। प्रो० रिकार्डो ने भी कहा है कि "साख पूँजी का निर्माण नहीं करती, उससे केवल यह निश्चित होता है कि पूंजी का उपयोग किसके द्वारा होगा"[1]। अतः साख ही पूंजी है, अथवा साख से पूंजी का निर्माण होता है यह धारणा भ्रममूलक है। इतना ही नहीं अपितु किसी व्यक्ति अथवा व्यापारी की साख उसकी धन-राशि पर अथवा पूंजी पर निर्भर रहती है तथा उसकी हानि होने से उसकी साख भी घट जाती है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि साख पूँजी न होते हुए, किसी अन्य व्यक्ति की पूँजी का उपयोग करने की अनुज्ञामात्र है।

साख से लाभ : १. पूँजी की उत्पादन शक्ति साख से बढ़ती है : क्योंकि अनेकों ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनके पास पूंजी होती है परन्तु वे उसका समुचित उपयोग नहीं कर सकते अथवा उनमें उत्पादन क्षमता का अभाव रहता है। साख के कारण ऐसी निष्क्रिय पूंजी उन व्यक्तियों को उपयोग के लिए प्राप्त हो जाती है जो उसका महत्तम उपयोग, उत्पादन कार्यों के लिए कर सकते हैं अतः साख से पूंजी की उत्पादन शक्ति बढ़ती है तथा जो पूँजी निष्क्रिय रहती है उसका उत्पादन कार्यों में उपयोग होकर देश की पूंजी में भी वृद्धि होती है।

२. साख पूँजी की वृद्धि करती है : अधिकोप आदि साख-संस्थाएं विनियोग के विभिन्न साधनों को खोज कर विनियोग साधन बढ़ाते हैं तथा उनको अधिक प्रभावी करते हैं, जिससे जनता को अपनी संचित राशि का विनियोग करने की पर्याप्त सुविधाएं मिलती हैं तथा वे विनियोग करने के लिए अधिक मात्रामें धन संचय करते हैं जिससे पूंजी की वृद्धि होती है।

३. साख से विनिमय-माध्यम में वृद्धि होती है तथा मुद्रा की मितव्ययिता होती है : क्योंकि साख की वजह से जनता विशेषतः अपना भुगतान धनादेश आदि साख विलेखों द्वारा करती है जिससे मुद्राराशि की आवश्यकता कम होती है तथा मुद्रा एवं साख की गति (Velocity) भी बढ़ती है। उसकी वजह से आधुनिक व्यापार एवं उद्योग की अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है, जो स्वर्ण अथवा अन्य किसी प्रकार

---

[1] *Credit does not create capital, it only determines by whom that capital shall be employed.*

की धातुमुद्रा में सम्भव न होती। इसी के साथ साख की वृद्धि की वजह से एवं उपयोग से धनादेशादि पत्रों का उपयोग होता है तथा धातुमुद्रा की आवश्यकता कम होती है जो अन्य उपयोगी कार्यों में तथा उत्पादन वृद्धि में उपयोग में आती है।

४. साख निर्माण से स्थगित भुगतान (Deferred Payments) करना सम्भव होता है जिससे अधमर्ण एवं उत्तमर्ण दोनों को ही सुविधाएँ होती हैं।

५. बड़ी बड़ी राशियों का भुगतान करने के लिये साखपत्र सुगम एवं सुग्राह्य साधन होते हैं जिनकी प्राप्ति साख-निर्माण से जनता एवं देश को मिलती है। इस सुविधा की प्राप्ति से देश के वाणिज्य, व्यवसाय एवं उद्योगों की प्रगति होती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय एवं विदेशी व्यापार में भी प्रगति होती है।

साख से हानि: साख का उपयोग उत्पादन कार्यों के लिये अधिक उपयोगी होता है किन्तु यदि उपभोग्य कार्यों के लिये साख का उपयोग किया जाय तो हानि होने की अधिक सम्भावना रहती है। ऐसा होने के अतिरिक्त भी साख का अधिक निर्माण एवं सुगमता देश के लिये हानिकर ही होती है क्योंकि उससे अनेक दुष्परिणाम होते हैं; इसलिये देशहित के लिये साख का आवश्यकतानुसार—संकोच एवं प्रसार—नियंत्रण होना आवश्यक है। यह कार्य केन्द्रीय अधिकोष प्रत्येक देश में करते हैं जिससे साख का देशहित के लिये अधिकतम उपयोग हो सके।

साख के निम्न दोष हैं :—

१. उपभोग्य कार्यों के लिये साख प्राप्त होने से समाज में फिजूल ख़र्ची बढ़ती है जिससे समाज में कूटकर्मों की ओर एवं 'असत्य व्यवहारों की ओर प्रवृत्ति होकर समाज का तथा उसी प्रकार व्यापारियों आदि का नैतिक स्तर गिर जाता है।

२. इसी प्रकार उत्पादन कार्यों के लिये भी साख आवश्यकतानुसार एवं सीमित परिमाण में अगर न दी जाय तो व्यापारियों एवं उद्योगपतियों में परिकाल्पनिक व्यवहारों की ओर प्रवृत्ति होती है, जिसकी वजह से व्यापारियों एवं उद्योगपतियों को वैयक्तिक हानि तो होती ही है अपितु उससे देश के अनेक उद्योग एवं व्यवसायों का विलीयन होता है जिससे देश को आर्थिक हानि होती है।

३. अधिक मात्रा में साख मिलने से देश का उत्पादन बढ़ता तो है परन्तु कभी-कभी वह इतना अधिक हो जाता है जिससे उत्पादनाधिक्य (Over-production) हो जाता है, जिससे मूल्य स्तर गिरने से देश का आर्थिक ढांचा अस्त व्यस्त हो जाता है।

४. साख की प्राप्ति से अनेक अयोग्य व्यापारी एवं उद्योगपति भी व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में आते हैं जिससे उत्पादन कार्यों में वस्तुओं का क्षोप्यक (Wastage) अधिक होता है। इसके साथ ही साख की वजह से पूँजी का केन्द्रीकरण भी कुछ इने गिने व्यक्तियों के हाथ में हो जाता है जिससे देश में संयोग (Combinations) एवं एकाधिकार की ओर प्रवृत्ति बढ़ जाती है जो साधारण जनहित के लिए हानिकर होती है और अगर यही प्रवृत्ति बढ़ती रही तो देश की सरकार का नियंत्रण भी ये ही लोग अपनी इच्छानुसार करने में कृतकार्य होते हैं, उदा० अमेरिका में देखिये।

५. अयोग्य एवं अदक्ष व्यापारियों को एवं उद्योगपतियों को साख की सुविधाएं प्राप्त होने से वे ऋण द्वारा प्राप्त पूंजी पर अपना व्यापार चलाते रहते हैं, जिससे देखने में तो आर्थिक प्रगति होती है परन्तु वह खोखली रहती है। मंदी के समय में देश को आर्थिक संकट (Financial C[illegible]) का सामना करना पड़ता है। उदा० न्यूयॉर्क का आर्थिक संकट।

अतः इन सब त्रुटियों से बचने के लिये देशहित के लिये साख का व्यापारिक एवं औद्योगिक आवश्यकतानुसार नियंत्रण होना आवश्यक है।

साखपत्र अथवा साख विलेख :

साखपत्र: साख को पूर्ण रूप से एवं महत्तम उपयोग में लाने के लिये साखपत्रों का उपयोग किया जाता है। साखपत्र वे पत्र होते हैं जिनके आधार पर ऋण का आदान प्रदान होता है। ये साखपत्र दो प्रकार के होते हैं— अपरक्राम्य विलेख (Not negotiable) तथा परक्राम्य विलेख (Nego-tiable Instruments)। यहां पर हम केवल उन विलेखों का ही विचार करेंगे जो अधिकोप के व्यापार में विशेष रूप से उपयोग में आते हैं।

परक्राम्य साख पत्र वे विलेख होते हैं जिनका स्वामित्व अथवा स्वामित्व सम्बन्धी पूर्ण अधिकार उन पत्रों के किसी व्यक्ति को देने से तथा पृष्ठांकन से अथवा केवल प्रदान से ही, जिस व्यक्ति को वह दिया जाता है, उसको मिल जाय। अर्थात् परक्राम्य विलेख के हस्तांतरी को अथवा पृष्ठांकिकी को उस विलेख के पूर्ण अधिकार मिल जाते हैं परन्तु अपरक्राम्य विलेख अथवा साधारण विलेख में ऐसे नहीं होता, उदा० मैंने घोड़ा 'अ' से खरीद लिया तथा

उसका मूल्य ५००० रु० उसे चुका दिया परन्तु यदि बाद में यह साबित हो गया कि 'अ' चोर है तथा उसने घोड़ा चुराया है तो वह घोड़ा मुझे घोड़े के स्वत्वधारी स्वामी को लौटाना होगा। लेकिन परक्राम्य साख विलेखों में यह बात नहीं होती। परक्राम्य विलेख विधान के अनुसार—"परक्राम्य विलेख एक लिखित विलेख होता है, जिसकी सम्पत्ति हस्तांतरण एवं पृष्ठांकन से अथवा केवल हस्तांतरण से किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित होती है जो हस्तांतरक की उपाधि की सदोषता के बावजूद एवं पूर्ण सद्भावना से उसे स्वीकार करता है एवं जिसका यथाविधि धारी अपने नाम पर उसकी सम्पत्ति के लिये न्यायालयीन कार्यवाही कर सकता है।"

इससे यह स्पष्ट है कि परक्राम्य विलेख लिखित होना चाहिये। दूसरे विलेख के केवल प्रदान से अथवा पृष्ठांकना एवं प्रदान दोनों से उनकी सम्पत्ति का स्वामित्व हस्तांतरिती एवं पृष्ठांकिकी व्यक्ति को प्राप्त होता है। परक्राम्य साख प्रलेखों में हस्तांतरित व्यक्ति को यह अधिकार होता है कि वह उस धनादेश के लिये संधारक (Holder) होने के नाते दावा कर सकता है। दूसरे हस्तांतरक (Transferor) की उपाधि सदोष होते हुए भी उस प्रलेख का स्वत्व तो मूल्य के संधारक (Holder for Value) को बिना अन्य किसी के अधिकार के प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ अगर मैंने एक घोड़ा बेचा जिसका भुगतान मुझे धनादेश द्वारा किया गया, जो धनादेश वाहक-धनादेश (Bearer cheque) था, बाद में ऐसा मालूम हुआ कि वह धनादेश उस व्यक्ति का चुराया हुआ था, तो उस दशा में उस व्यक्ति के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही होगी परन्तु मेरे विरुद्ध नहीं होगी क्योंकि उस धनादेश का मूल्य अर्थात् अपना घोड़ा मैंने उसे दिया है। इस प्रकार परक्राम्य प्रलेखों में हस्तांतरिती (Transferee) व्यक्ति को पूर्ण उपाधि मिलती है चाहे हस्तांतरक (Transferor) की उपाधि सदोष क्यों न हो।

यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि संधारक तथा यथाविधि-धारी (Holder in Due Course) कौन होता है?

संधारक : किसी भी परक्राम्य विलेख का संधारक वह व्यक्ति है जिसको उस विलेख की सम्पत्ति का अधिकार अपने नाम प्राप्त हो तथा उसके पक्षकारों से उसकी सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार हो। किन्तु केवल किसी विलेख का किसी व्यक्ति के पास होना उसको संधारक नहीं बनाता जब तक कि उसकी सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार उसे प्राप्त नहीं है। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति जिसे खोया हुआ विलेख, जो वाहक है, मिला है वह उस विलेख का संधारक नहीं हो सकता अथवा चोरी किया हुआ विलेख जिस व्यक्ति के पास है वह

भी संधारक नहीं कहलाता क्योंकि उसका न तो उस पर वैधानिक अधिकार ही है और न वह उस विलेख पक्षकारों से उसकी सम्पत्ति ही प्राप्त कर सकता है। कोई भी व्यक्ति जब तक वह विलेख का स्वत्वधारी स्वामी नहीं है, अथवा जो आदाता नहीं है अथवा पृष्ठांकन में आदाता नहीं बनाया गया है अथवा वाहक विलेख में वाहक आदाता नहीं है तो वह विलेख के पक्षकारों (Parties) के विरुद्ध सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये वैधानिक कार्यवाही नहीं कर सकता। परक्राम्य विलेख विधान की धारा ८ के अनुसार "किसी प्रतिज्ञार्थ पत्र, विनिमय विपत्र अथवा धनादेश का संधारक वह व्यक्ति है जिसका अपने ही नाम से उस पर अधिकार है तथा उसके पक्षकारों से वह राशि प्राप्त एवं प्रत्यादान (Recover) कर सकता है"[1]। इस परिभाषा के अनुसार संधारक वही व्यक्ति है जिसको निम्न अधिकार हैं :—

१. उसको उस विलेख की सम्पत्ति की प्राप्ति एवं प्रत्यादान का अधिकार हो।

२. उसको आदाता, वाहक तथा पृष्ठांकिती के नाते विलेख के पक्षकारों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त हो।

३. उसकी उपाधि वैधानिक रीति से उसे प्राप्त हुई हो।

यथाविधि-धारी: इसके विपरीत, किसी धनादेश, विनिमय विपत्र अथवा प्रतिज्ञार्थपत्र का यथाविधि-धारी वह व्यक्ति है जो किसी प्रतिफल के लिये अधिकारी होता है यदि ये वाहक हैं अथवा आदेश विलेखों में वह आदाता अथवा पृष्ठांकिती होता है तथा यह अधिकार उसे इन विलेखों के भुगतान होने के पूर्व एवं ऐसे व्यक्ति से प्राप्त हुआ हो जिसकी उपाधि सदोष होने के लिये कोई विश्वसनीय कारण न हो। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि यथाविधि-धारी के लिये निम्न बातों का होना आवश्यक है :—

१. विलेखों के अनादरण एवं भुगतानावधि के पूर्व उसने यह अधिकार प्राप्त किया हो।

२. उसने पूर्ण सद्भावना से एवं किसी मूल्य के विनिमय में विलेखों को प्राप्त किया हो।

---

[1] *"The holder of a Promissory note, Bill of Exchange or cheque means any person entitled in his own name to the possession thereof and to receive or recover the amount due thereon from the Parties thereto"*

—*Sec. 8 of the Negotiable Instruments Act*

३. जिस समय विलेख का परक्रामण हुआ उस समय परक्रामक की उपाधि किसी प्रकार से दूषित (Defective) होने का ज्ञान उसे नहीं था।

४. विलेख की प्राप्ति किसी प्रतिफल के हेतु की गई हो एवं यह प्रतिफल मूल्यवान हो।

५. ये विलेख पूर्ण एवं नियमी (Regular) प्रपत्र (Form) में हो।

इस प्रकार से अगर किसी विलेख पर अधिकार प्राप्त किया गया है तो वह व्यक्ति यथाविधि-धारी होगा तथा उसे उन विलेखों की सम्पत्ति के लिये अपने नाम पर अन्य पक्षकारों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही करने का अधिकार प्राप्त होगा।

किन्तु आदेश विलेखों का हस्तांतरण तथा पृष्ठांकन, जो कपट तथा चोरी अथवा अन्य अवैधानिक मार्गों से प्राप्त किये गए हों, किसी भी प्रकार से हस्तांतरिती को अथवा पृष्ठांकिती को हस्तांतरक एवं पृष्ठांकक से अच्छी उपाधि प्राप्त नहीं होती।[1] इसके विपरीत वाहक विलेखों में अगर हस्तांतरिती विलेखों को सद्भावना एवं मूल्य के विनिमय में लेता है तो उसकी उपाधि में कोई भी दोष नहीं रहता।

परक्राम्य साख प्रलेखों में धनादेश विनिमय विपत्र, देशी हुंडियां, तथा प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों का समावेश होता है जिनका विवेचन हम यहाँ करेंगे।

धनादेश :

धनादेशों का व्यवहार अधिकोष विशेष रूप से करते हैं। इस प्रकार के धनादेशों द्वारा चल लेखे से अपना रुपया निकालने का अधिकार अधिकोष अपने ग्राहकों को देता है। तथा अनेक अधिकोष संचय-निक्षेप लेखों पर भी धनादेश आहरित करने की सुविधा देते हैं।

परिभाषा : परक्राम्य प्रलेख विधान १८८१ के अनुसार "धनादेश अधिकौषिक पर आहरित किया गया विनिमय पत्र है, जो माँग पर भुगताया जायगा।"

---

[1] *(Sec. 58 of the Negotiable Instruments Act) : When a negotiable instrument has been lost or has been obtained from any maker, acceptor or holder thereof by means of an offence or fraud or for an unlawful consideration, no possessor or endorsee, who claims through the person who found or so obtained the instrument, is entitled to receive the amount due thereon from such maker, acceptor or holder unless such possessor or endorsee is, or some person through whom he claims was a holder thereof in-due course.*

"इस धारा में जिन अपवादों का नियोजन किया गया है, उसके अतिरिक्त याचना पर भुगतान होने वाले विनिमय पत्रों की सब धाराएँ धनादेशों को भी लागू होंगी" [१] लेकिन विनिमय विपत्र क्या होता है—"विनिमय विपत्र लेखक का किसी व्यक्ति के लिये वह अनिर्बन्ध लिखित आदेश होता है जिसमें किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा उसके वाहक (Bearer) को निश्चित मुद्रायें दे तथा लेखक इस पर हस्ताक्षर करता है।" [२]

इन दोनों परिभाषाओं के समन्वय से यह स्पष्ट हो जाता है कि धनादेश एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को—जो दूसरा व्यक्ति अधिकोषिक ही हो—दिया हुआ लिखित अनिर्बन्ध (Unconditional) आदेश होता है जिस पर बनाने वाले के हस्ताक्षर होते हैं, जिसमें कोई निश्चित रकम किसी निश्चित व्यक्ति को, अथवा उसके आदेशानुसार अथवा वाहक को देने के लिये आदेश दिया जाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि हम केवल उसी प्रलेख को धनादेश कह सकते हैं जिसमें निम्न विशेषता हो :—

१. लिखित आदेश हो; २. यह आदेश अनिर्बन्ध अथवा बिना किसी प्रकार की शर्त अथवा निर्बन्ध के हो; ३. यह आदेश किसी निश्चित व्यक्ति को (जो अधिकोष हो) हो; ४. भुगतान मांग पर दिये जाने की जिम्मेदारी हो; ५. जो व्यक्ति उसे लिखता अथवा बनाता है उसके हस्ताक्षर उस पर हों; ६. भुगतान जितनी रकम का होना है वह रकम निश्चित रूप से दी गई हो; तथा ७. जिसका भुगतान किसी निश्चित व्यक्ति को, अथवा उसके आदेशानुसार अथवा वाहक को हो। [Banking Law & Practice in India by M. L. Tannan]

धनादेश लिखित आदेश होना चाहिये : इसका अर्थ यही है कि धनादेश बिना लिखे किसी व्यक्ति के केवल जबानी आदेश से धनादेश नहीं हो सकता। यह आदेश किसी भी कागज के टुकड़े पर पेंसिल से अथवा स्याही

---

[१] *A Bill of exchange is an instrument in writing containing an unconditional order signed by the maker directing a certain person to pay a certain sum of money only to, or to the order of a certain person or to the bearer of the instrument.* —*Sec. 5.*

[२] *"A cheque is a Bill of Exchange drawn on a banker payable on demand. "Except as otherwise provided in this part, the provisions of this act as applicable to a Bill of Exchange apply to a cheque"* —*Sec. 73.*

से लिखा हुआ होना चाहिये। यह आदेश टंकमुद्रित (Type-written) अथवा मुद्रित भी हो सकता है। किन्तु अपनी सुरक्षा की दृष्टि से अधिकोष धनादेशों के मुद्रित-प्रपत्र (Printed forms) रखते हैं जिन पर ही धनादेश आहरित किये जा सकते हैं। इसी प्रकार ग्राहक का हिसाब खोलते समय यह भी निर्बन्ध डालते हैं कि धनादेश का आहरण स्याही से लिखकर अथवा टंक-मुद्रण से किया जाय। इसलिये प्रत्यक्ष प्रयोग में यह लिखित आदेश स्याही अथवा टंकमुद्रण से दिया जाता है।

दूसरे : यह आदेश अनिर्बन्ध आदेश हो : अर्थात् जिसको आदेश दिया गया है उस पर भुगतान करने सम्बन्धी किसी प्रकार का निर्बन्ध न हो, उदाहरणार्थ किसी भुगतान के लिये प्राप्ति प्रलेख आदि लेने का अथवा किसी निश्चित रकम से भुगतान करने का निर्बन्ध लगा दिया जाय तो वह प्रलेख धनादेश नहीं होगा। इसलिये यह आदेश अनिर्बन्ध होना चाहिये।

तीसरे : यह आदेश किसी निश्चित व्यक्ति पर, जो अधिकौषिक हो—होना चाहिये। जिससे यह स्पष्ट है कि यह आदेश अधिकौषिक के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता। दूसरे वह अधिकोष जिसके नाम से आदेश दिया गया हो निश्चित होना चाहिये। उदाहरणार्थ 'इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया' पर आहरित धनादेश से इम्पीरियल बैंक का कौनसा कार्यालय है यह निश्चित बोध नहीं होता अतः यह निश्चितता लाने के लिये उस अधिकोष का पूर्ण नाम तथा पता होना आवश्यक है।

चौथे : माँग पर भुगतान मिलने वाला आदेश हो : इससे तात्पर्य यही है कि इसमें कोई बात ऐसी न हो जिससे उस आदेश का भुगतान, जिस समय धनादेश अधिकोष को भुगतान के लिये दिया जाय, न हो। इसमें यह आवश्यक नहीं कि 'माँग पर भुगतान हो' यह लिखा जाय।

पाँचवें : जो व्यक्ति धनादेश आहरित करता हो उसके हस्ताक्षर उस पर होने चाहियें नहीं तो उस आदेश का कोई मूल्य ही नहीं रहेगा और न वह आदेश होगा।

छटवें : जितनी रकम के भुगतान के लिये आदेश हो वह राशि (Amount) निश्चित होनी चाहिये। इसलिये मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु के भुगतान का आदेश दिया हो तो उसमें निश्चितता नहीं होगी और न ऐसा आदेश धनादेश ही होगा। अगर धनादेश किसी विदेशी अधिकोष को दिया जाता है और उसमें कोई विशिष्ट विनिमयदर का उल्लेख नहीं किया गया है, तो उसका तात्पर्य यही है कि उसका भुगतान तत्क्षण विनिमय

दर से होगा, जो बात निश्चित है अर्थात् जिससे रकम का भुगतान उस समय निश्चित रूप से जाना जा सकता है । इसी प्रकार भारतीय परक्राम्य प्रलेख विधान के अन्तर्गत अगर विदेशी मुद्रा में धनादेश हो एवं उसका विनिमय दर दिया गया हो अथवा उसमें भविष्य का ब्याज भी समाविष्ट करना हो तो उसकी दर दी हुई हो, तो इस दशा में भी इन सब बातों की निश्चितता होने के कारण से आदेश की रकम भी निश्चित होती है और इसलिये वह आदेश धनादेश ही होगा।

सातवें : भुगतान जिस व्यक्ति को करना हो उसका भी निश्चित उल्लेख होना चाहिये, अथवा उसके आदेशानुसार अथवा वाहक को होगा; यह भी निश्चित होना चाहिये जिसके अनुसार आदाता (Payee) की निश्चितता हो जाय।

इस प्रकार नियमी धनादेश (Regular Cheque) की निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। अगर इनमें से किसी भी बात में अनिश्चितता अथवा गड़बड़ी होती है तो उस धनादेश का अधिकोष अनादरण कर देगा :—

तिथि : धनादेश पर जिस तिथि को वह आहरित किया गया है वह तारीख होनी चाहिये क्योंकि इस तिथि के अभाव में अधिकोष ऐसे धनादेशों को "तिथि विरहित" (Undated) लिखकर लौटा देते हैं। वैसे तो धनादेशों के ऊपर तिथि न हो तो अधिकोष अथवा संधारक उसपर तिथि डाल सकता है किन्तु अधिकोष सामान्य रूप से ऐसे धनादेशों का भुगतान नहीं करते। धनादेश उत्तर-तिथीय अथवा पूर्व-तिथीय भी होते हैं। पूर्व-तिथीय (Antedated) धनादेश वे होते हैं जिन पर जिस दिन वे भुगतान के लिए उपस्थित (Present) किये जाते हैं उससे पहिले की तिथि होती है। इस दशा में उनका भुगतान होता है किन्तु अगर वह तिथि उपस्थिति के पूर्व ६ महीने की है तो अधिकोष उनका भुगतान नहीं करेगा क्योंकि वे बीतकाल (Stale) हो जाते हैं। उत्तर-तिथीय (Postdated) धनादेशों का भुगतान अधिकोष उस तिथि के पहले नहीं करते। वास्तव में ऐसे उत्तर तिथीय-धनादेश (अर्थात् वे धनादेश जिन पर आहर्ता ने आहरण करने के बाद की तिथि डाली है) धनादेश नहीं कहे जा सकते क्योंकि उपस्थिति पर उनका भुगतान निर्दिष्ट तिथि से पहले नहीं हो सकता। किन्तु ऐसे उत्तर तिथीय धनादेश अगर उस तिथि को अथवा उसके बाद भुगतान के लिए उपस्थित किये जाते हैं तो उनका भुगतान करने में अधिकोष को कोई आपत्ति नहीं होती।

आदाता का नामः भी धनादेश पर स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिये, उस पर आदाता की उपाधियाँ जैसे राय साहब, राय बहादुर आदि लिखने की कोई आवश्यकता नहीं होती। यह आदाता का नाम धनादेश में (Pay to) 'भुगतान करो' इस आदेश के आगे जो रेखा (Line) होती है उस पर लिखा जाता है। अवैयक्तिक आदाताओं के नाम दिये जाने वाले धनादेश सामान्यतः वाहक धनादेश होते हैं, किन्तु वैधानिक व्यक्तियों (Legal or Corporate Persons) के नाम दिये जाने वाले धनादेश विशेषतः आदेश धनादेश (Order Cheques) होते हैं। वाहक धनादेशों में धनादेश पर दिये हुए "आदेश/वाहक" इन शब्दों में से 'आदेश' इस शब्द को काट देना चाहिये, इसी प्रकार आदेश धनादेशों पर से वाहक शब्द को काट देना चाहिये। किन्तु अगर धनादेश केवल किसी निर्दिष्ट व्यक्ति के भुगतान के लिये ही हो तो उस 'भुगतान करो' इसके आगे की रेखा पर आदाता के नाम के साथ 'केवल' इस शब्द को लगा देना चाहिये तथा 'आदेश/वाहक' इनमें से दोनों शब्दों को काट देना चाहिये।

राशि : धनादेश पर राशि के लिये दो स्थान होते हैं जिनमें से एक पर अङ्कों में तथा दूसरे स्थान पर शब्दों में राशि लिखी जाती है। यह दोनों राशियाँ लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उसमें किसी प्रकार का अन्तर न हो तथा राशि दोनों स्थान पर लिखी जायँ। अन्यथा धनादेश 'नियमी' (Regular) न होने की वजह से उसका भुगतान नहीं होगा। राशि इस प्रकार से लिखी जानी चाहिये जिससे कोई भी अन्य व्यक्ति राशि को बढ़ा न सके क्योंकि अगर ग्राहक की भूल से ऐसी जगह रह जाय तथा व्यक्ति 'दो सौ रुपये' इसके पहिले 'एक हजार' शब्द बढ़ाकर "एक हजार दो सौ" करदे और अधिकोप पूर्ण सावधानी रखते हुए भी इस परिवर्तन को न पकड़ सके तो उस भुगतान से ग्राहक का लेखा वह विकलित कर सकता है। इसलिये इस सम्बन्ध में भी ग्राहक को राशि लिखते समय सावधानी रखनी चाहिये। अधिकोप को अधिकार है कि अगर शब्दों में राशि लिखी हुई है और अङ्कों में नहीं लिखी गई है तो वह शब्दों में लिखित राशि का भुगतान कर सकता है परन्तु अधिकोप अपनी सुरक्षा की दृष्टि से ऐसा न करते हुए धनादेशों को 'राशि-अन्तर' (Amounts Differ) ऐसा लिखकर लौटा देते हैं।

आहर्ता के हस्ताक्षर : आहर्ता के हस्ताक्षर अधिकोप के पास जो निदर्शन हस्ताक्षर होते हैं उसी प्रकार होने चाहिये। धनादेश के ऊपर आहर्ता स्वयं हस्ताक्षर करता है अथवा उसका अधिकृत अभिकर्ता हस्ताक्षर करता

है। जो कोई भी धनादेशों पर हस्ताक्षर करे, उसके हस्ताक्षर निदर्शन हस्ताक्षर के सदृश होने चाहियें तभी अधिकोष उनका भुगतान करेगा। जैसा कि हम पहिले बता चुके हैं जिस व्यक्ति को धनादेशों पर हस्ताक्षर करने का अधिकार होता है उसके निदर्शन हस्ताक्षर अधिकोष के पास रहते हैं। ऐसे हस्ताक्षर अधिकृत व्यक्ति को स्वयं ही करने पड़ते हैं; हस्ताक्षर की मोहर लगाने से काम नहीं चलता तथा ऐसे हस्ताक्षर पेंसिल से भी नहीं होने चाहियें क्योंकि अधिकोष विशेषत: ऐसे हस्ताक्षर को मान्य नहीं करता।

धनादेशों पर किसी भी प्रकार के परिवर्तन नहीं करने चाहियें और अगर ऐसे कोई परिवर्तन किये जांय तो उनको आहर्ता द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिये अन्यथा ऐसे धनादेश जिनमें किसी प्रकार के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, अधिकोष अनादरित कर देगा। किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किये हुए परिवर्तनों की जांच करने के लिये धनादेश प्रपत्रों के लिए एक विशेष प्रकार का कागज उपयोग में आता है, जिसको देखने से धनादेश में परिवर्तन हुआ है अथवा नहीं इसका ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार अधिकोष धनादेशों के ऊपर कुछ विशेष अंक मुद्रित कर देते हैं जो प्रत्येक ग्राहक के लिये भिन्न २ होते हैं एवं इन अंकों से ग्राहक का नाम तथा प्रपंजी पत्र (Ledger Folio) शीघ्र ही मालूम किया जा सकता है। अनपढ़ ग्राहकों की अँगूठे की मुद्रा (Thumb Impression) अधिकोष मान्य करते हैं किंतु इस मुद्रा की साक्षी के लिये अधिकोष किसी अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर करवाते हैं। इसी प्रकार अगर कोई ग्राहक बीमारी की हालत में है एवं अपने हस्ताक्षर ठीक नहीं कर सकता, उस समय उसके हस्ताक्षर उसके वैद्य के हस्ताक्षर से प्रमाणित किये जाते हैं।

धनादेश के पक्ष : इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि धनादेश में तीन पक्ष होते हैं : १. आहर्ता, २. आदाता तथा ३. आहार्यी। आहर्ता वह व्यक्ति होता है जो धनादेश लिखकर आदेश देता है, जिस व्यक्ति को यह आदेश दिया जाता है उस अधिकोषिक को आहार्यी तथा जिस व्यक्ति को उस आदिष्ट (Ordered) राशि का भुगतान किया जाता है अथवा जिस व्यक्ति के नाम धनादेश काटा जाता है उसे आदाता कहते हैं। धनादेश का आहर्ता आहार्यी अधिकोष का ग्राहक होना आवश्यक है तथा इसलिये उसका अधिकोष में चल लेखा भी होना चाहिये जिससे उसके आदेशों का पालन किया जा सके।

कोई भी व्यक्ति जो संविदा करने की योग्यता रखता है परक्राम्य पत्रों का पक्षकार हो सकता है, उसी प्रकार परक्राम्य विलेखों को वह पृष्ठाङ्कित तथा हस्तांतरित कर सकता है।

प्रतिफल : प्रत्येक परक्राम्य विलेख (Negotiable Instrument) का आधार किसी न किसी प्रकार का प्रतिफल होता ही है और बिना प्रतिफल के किये हुए किसी भी विलेख का आहरण, पृष्ठांकन एवं हस्तांतरण किसी व्यवहार के पक्षकारों को किसी प्रकार से उत्तर-दायी नहीं बनाता। विधान के अनुसार यह प्रतिफल भी वैधानिक होना चाहिये। इस प्रकार धनादेश के आहरण, हस्तांतरण एवं पृष्ठांकन के लिए भी प्रतिफल होना आवश्यक है।

इस प्रकार धनादेशों में मूल दायित्व आहार्यी का होता है परंतु उस धनादेश का प्राथमिक दायित्व आहर्ता का होता है क्योंकि आहार्यी द्वारा अनादरण होने पर उसका भुगतान आहर्ता को ही करना होगा। अथवा अगर वह धनादेश पृष्ठांकन द्वारा अन्य पक्षकारों के हाथ में होगा तो यथाविधि धारी (Holder in Due Course) को यह अधिकार होगा कि उस धनादेश के मूल्य का दायित्व वह आहर्ता तथा प्रत्येक पूर्व पृष्ठांकक पर प्रमाणित कर सकता है। लेकिन इसमें यह निर्बन्ध है कि अनादरण यथाविधि धारी द्वारा धनादेश की उपस्थिति सदोष पूर्ण होने के कारण अथवा आहर्ता के लेखे में अपर्याप्त धन के कारण न हुआ हो। इसी प्रकार अनादरण होने पर अनादरण की सूचना धनादेश के सब पृष्ठांककों एवं पक्षकारों को यथाविधि धारी को देनी चाहिये। किन्तु यदि धनादेश सदोष पूर्ण उपस्थिति के कारण अनादरित होता है तो उसकी जिम्मेदारी उसी व्यक्ति की होगी तथा आहर्ता अथवा पृष्ठांककों का किसी प्रकार का दायित्व न होगा।

महत्त्वपूर्ण परिवर्तन (Material alterations) : हम ऊपर बता चुके हैं कि धनादेश में किसी भी प्रकार के परिवर्तनों पर आहर्ता के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। अगर यह परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है तथा जिससे धनादेश की राशि में, भुगतान के स्थान में, अथवा किसी महत्त्वपूर्ण विषय में परिवर्तन किया जाता है तथा जिस परिवर्तन के लिये आहर्ता ने हस्ताक्षर नहीं किये तो उस धनादेश का अधिकोष अनादरण कर देगा क्योंकि इस प्रकार के परिवर्तन से धनादेश का स्वरूप ही बदल जाता है। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण परिवर्तन उसे कहते हैं जिससे धनादेश की मूल वैधानिक भाषा में परिवर्तन हो जाता है अथवा जिससे पक्षकारों के दायित्व में परिवर्तन हो जाता है—चाहे ऐसा परिवर्तन आदाता की दृष्टि से हानिकर हो अथवा न हो। इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निम्न हैं :—

१. तिथि का परिवर्तन : जिससे भुगतान का समय अथवा अवधि बढ़ाई जा सके।

२. स्थान का परिवर्तन,

३. राशि परिवर्तन—इसमें राशि का घटाना अथवा बढ़ाना, माध्यम (Medium of Payment) अर्थात् पौंड की जगह रुपया अथवा डॉलर का परिवर्तन, विनिमय दर अगर दी हुई है तो उस दर का परिवर्तन तथा ब्याज की दर दी हुई है तो उस दर में परिवर्तन, इनका समावेश होता है।

४. आदाता का परिवर्तन : अर्थात् आदाता की संख्याओं में वृद्धि करना अथवा इस प्रकार का परिवर्तन करना जिससे उनके वैधानिक संबंध प्रभावित होते हों, ऐसे परिवर्तनों का समावेश होता है।

इस प्रकार के परिवर्तन धनादेश के मूल स्वरूप को बदल देते हैं। इस प्रकार के मूल स्वरूप बदलने वाले महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों में 'विशेष रेखांकित धनादेश' का 'सामान्य रेखांकित धनादेश' बनाना अथवा आदेश धनादेश को वाहक धनादेश बनाना भी सम्मिलित हैं।

इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन धनादेश के सब पक्षकारों की सम्मति से किये जा सकते हैं तथा इन परिवर्तनों पर आहर्ता के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। किन्तु अगर किसी धनादेश की सुरक्षा की दृष्टि से यदि सामान्य पृष्ठाङ्कन अथवा रेखांकन का विशेष पृष्ठाङ्कन अथवा रेखांकन में परिवर्तन किया जाता है तो वह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होता क्योंकि उससे वैधानिक संबंध अथवा भाषा में परिवर्तन नहीं होता। इसलिए अधिकोष को किसी भी धनादेश का भुगतान करने के पूर्व महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तो नहीं किये गये हैं—यह देख लेना आवश्यक है जिससे उस पर किसी प्रकार का दायित्व न रहे; परन्तु यदि महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ऐसा है जो सूक्ष्म परीक्षण एवं अवलोकन के उपरान्त भी नहीं जाना जा सकता तथा उसका भुगतान पूर्ण सावधानी एवं सद्भावना से अधिकोष करता है, तो वह भुगतान यथेष्ट समझा जायगा।

धनादेशों का वर्गीकरण : धनादेश विशेषतः दो प्रकार के होते हैं; एक आदेश धनादेश, तथा दूसरे वाहक धनादेश। आदेश धनादेश की राशि आदाता को अथवा आदाता के आदेश पर किसी अन्य व्यक्ति को आहार्यी अधिकोष द्वारा दी जाती है। किंतु आदेशित व्यक्ति को भुगतान तभी हो सकता है जब मूल आदाता द्वारा उस व्यक्ति के नाम पृष्ठांकन (Endorsement) हस्तांतरण किया गया हो। वाहक आदेश की राशि किसी भी व्यक्ति को जिसके पास धनादेश हो एवं जो इसे भुगतान के लिए आहार्यी अधिकोष के पास उपस्थित करे, दी जाती है, किन्तु ऐसे धनादेशों पर भी अधिकोष राशि लेने वाले के हस्ताक्षर करा लेते हैं।

इसी प्रकार दूसरे वर्गीकरण के अनुसार धनादेश दो प्रकार होते हैं—एक विवृत धनादेश (Open Cheque), दूसरे रेखित धनादेश। विवृत धनादेश उन धनादेशों को कहते हैं जो आहार्यी अधिकोष के कार्यालय में जाकर आदाता द्वारा अथवा उसके अभिकर्ता अथवा प्रतिनिधि द्वारा भुनाये जा सकते हैं। ऐसे धनादेश खो जाने पर कोई भी पाने वाला व्यक्ति उनकी राशि ले सकता है यदि वह वाहक धनादेश है। इसी प्रकार आदेश धनादेश होने पर भी आदाता अथवा पृष्ठांकित (Endorsee) व्यक्ति के कूट हस्ताक्षर (Forged signature) द्वारा उनका भी भुगतान लिया जा सकता है। अतः विवृत धनादेश यातायात के लिए असुविधाजनक हैं क्योंकि उनमें कपट (Fraud) की संभावना बनी रहती है।

रेखित धनादेश वे धनादेश होते हैं जिन पर दो समानांतर रेखाएँ खींची जाती हैं तथा जिसका भुगतान आदाता द्वारा किसी अधिकोष के माध्यम से उपस्थित होने पर ही मिल सकता है।

रेखांकन : यह रेखांकन दो प्रकार का होता है—सामान्य रेखांकन तथा विशेष रेखांकन। सामान्य रेखांकन में धनादेश पर केवल दो समानांतर रेखाएं खींची जाती हैं जिससे उसका भुगतान आदाता को केवल किसी अन्य अधिकोष के द्वारा ही मिल सकता है। इस प्रकार की रेखाओं के बीच कभी कभी ' & Company ' ये शब्द लिख दिये जाते हैं। इस प्रकार के रेखांकन से धनादेश का भुगतान ऐसे किसी भी व्यक्ति का नहीं हो सकता जिसको उस धनादेश का वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है। रेखांकन से अधिकोष को केवल यह संदिग्ध आदेश होता है कि वह उसका भुगतान किसी अन्य अधिकोष के द्वारा ही करे। ऐसे रेखांकन में कभी कभी 'अपरिक्राम्य' (Not negotiable) ये शब्द भी लिख दिये जाते हैं। इस प्रकार के अपरिक्राम्य रेखांकन से यह तात्पर्य है कि इस धनादेश का हस्तांतरक हस्तांतरिती को अपनी उपाधि से अच्छी उपाधि नहीं दे सकता अर्थात् इन शब्दों के लिख देने से धनादेश का हस्तांतरण हो सकता है किन्तु परक्राम्यता नहीं रहती उदाहरणार्थ यदि किसी हस्तांतरक ने धनादेश चुराया हुआ है और किसी माल के भुगतान में वह धनादेश हस्तांतरिती को देता है तो हस्तांतरिती उसको मूल्य के बदले, एवं पूर्ण सद्भावना से लेते हुए भी अच्छी उपाधि प्राप्त नहीं कर सकता। तथा इस कपट का ज्ञान होने पर उस धनादेश की रकम उस धनादेश के स्वत्वधारी (Rightful) स्वामी (Owner) को लौटानी होगी। इसलिये अपरक्राम्य रेखित धनादेश केवल परिचित व्यक्तियों में ही हस्तांतरित हो सकता है।

विशेष रेखांकन (Special Crossing) में धनादेश पर समानांतर रेखाओं के बीच किसी अधिकोष विशेष का नाम लिख दिया जाता है, जिससे यह तात्पर्य होता है कि उस धनादेश का भुगतान केवल उस अधिकोष के द्वारा ही हो सकता है। यह अधिकोष का नाम तभी लिखा जाता है जब आहर्ता अथवा पृष्ठाङ्कक को आदाता अथवा पृष्ठांकिती (Endorsee) के अधिकोष का नाम ज्ञात होता है। दूसरे इन समानान्तर रेखाओं के बीच (A/c Payee only) ये शब्द लिख दिये जाते हैं, जिससे यह तात्पर्य होता है कि इस धनादेश की रकम को केवल आदाता के अधिकोष के निक्षेप लेखे में ही समाकलित की जानी है, उसकी रोक राशि उसको नहीं मिल सकती। विभिन्न रेखांकनों के उदाहरण नीचे दिये गए हैं :—

रेखांकन के उदाहरण

सामान्य रेखांकन

धनादेश—१

धनादेश—२

& Company

धनादेश—३

अपरिक्राम्य
(Not Negotiable)

धनादेश—४

आदाता के लेखे में
Payee's account

रेखांकन कौन कर सकता है ?—धनादेशों पर रेखांकन आहर्ता कर सकता है अथवा यदि वह धनादेश रेखित नहीं है तो आदाता अथवा पृष्ठांकक भी उसका रेखांकन कर सकता है। यदि कोई धनादेश सामान्य रेखित (Generally Crossed) है तो उस धनादेश का विशेष रेखांकन आदाता अथवा पृष्ठांकक कर सकता है। इसी प्रकार विशेष-रेखांकित धनादेश को कोई भी पृष्ठांकक अपरक्राम्य रेखांकन में परिवर्तित कर सकता है। इसी प्रकार विशेष रेखांकित धनादेश को कोई भी अधिकोष दूसरे अधिकोष के नाम—जो उसका संग्राहक अभिकर्ता है (Collecting Agent)—उसके नाम पुनः विशेष रेखांकित कर सकता है। परन्तु इस प्रकार का रेखांकन एक अधिकोष द्वारा उसके संग्राहक अभिकर्ता के नाम ही से पुनः हो सकता है।

रेखांकित धनादेशों का भुगतान अधिकोष को रेखांकन के अनुसार ही करना चाहिये अन्यथा आहार्या अधिकोष स्वत्वधारी आदाता (Rightful Payee) के प्रति उत्तरदायी होता है। इसलिये रेखांकित धनादेश अगर किसी ऐसे व्यक्ति को प्राप्त होता है जिसका अधिकोष में लेखा नहीं है, तो उसे वह धनादेश ऐसे व्यक्ति को हस्तांतरित करना चाहिये जिसका लेखा अधिकोष में हो।

विशेष रेखांकन :

धनादेश—१

अलाहाबाद बैंक लिमिटेड

धनादेश—२

अलाहाबाद बैंक लिमिटेड

धनादेश—३

अलाहाबाद बैंक लिमिटेड
केवल आदाता के लेखे में

धनादेश—४

अपरक्राम्य
अलाहाबाद बैंक लिमिटेड

इस प्रकार जो व्यक्ति हस्ताक्षर करता है उसे पृष्ठाङ्कक तथा जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठांकना की जाती है उसे पृष्ठाङ्किकी कहते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि पृष्ठाङ्कना वह क्रिया है जिससे कोई व्यक्ति धनादेश अथवा किसी भी परक्राम्य विलेख की सम्पत्ति का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को देने के हेतु उस पर हस्ताक्षर करता है और हस्ताक्षर करने के समय वह स्वयं उस विलेख का स्वत्वधारी स्वामी तथा संधारक है। पृष्ठांकना से परक्राम्य विलेख का परक्रामण होता है जो केवल हस्तांतरण से नहीं होता अथवा परक्रामण से किसी परक्राम्य विलेख को लेनेवाला व्यक्ति उसका वैधानिक अधिकारी हो जाता है किन्तु हस्तांतरण से विलेख की सम्पत्ति का वैधानिक अधिकार हस्तांतरिती को नहीं मिलता।

विशेषतः यह पृष्ठांकन धनादेश के पीछे किया जाता है तथा पृष्ठांकना से धनादेश भर जाने पर धनादेश के आकार का अन्य कागज चिपका कर उस पर पृष्ठांकना की जा सकती है। जिस समय कागज चिपका कर पृष्ठांकना की जाती है उस समय पृष्ठांकक को चाहिये कि वह अपने हस्ताक्षर इस प्रकार करे जिससे धनादेश एवं कागज दोनों पर उसके हस्ताक्षर हों। ऐसा करने से किसी प्रकार के कूट कार्यों (Forged Acts) की सम्भावना नहीं रहती। इस प्रकार चिपकाये हुए कागज को अनुपर्णी (Allonge) कहते हैं।

पृष्ठांकना कौन कर सकता है? किसी भी परक्राम्य विलेख का आदाता (अथवा संधारक) व्यक्तिशः पृष्ठांकन कर सकता है अथवा उसका अधिकृत अभिकर्ता पृष्ठांकना कर सकता है। अधिकृत अभिकर्ता को सदैव पृष्ठांकना करते समय अपने 'प्रधान के लिये' (For...Principal) लिख कर पृष्ठांकन करना चाहिये जिससे ऐसे पृष्ठांकित विलेख का किसी भी प्रकार का दायित्व उस पर नहीं रहता। इसी प्रकार संस्थाओं द्वारा पृष्ठांकन उनके अधिकृत व्यक्तियों द्वारा होना चाहिये। यह पृष्ठांकन करते समय आदाता को उसी प्रकार हस्ताक्षर करना चाहिये जिस तरह विलेख के आहर्ता ने उसका नाम लिखा हो, उदाहरणार्थ यदि धनादेश पर आदाता का नाम "पी० एल० गोलवालकर" लिखा है तो पृष्ठांकन करते समय भी 'पी० एल० गोलवालकर' ही लिखना चाहिये। अगर पृष्ठांकन करते समय 'पी० एल० गोलवलकर' इस प्रकार हस्ताक्षर किये गये तो धनादेश पर पृष्ठांकन ठीक नहीं माना जायगा क्योंकि नाम में अन्तर पड़ जाता है। किन्तु अगर आदाता का गलत नाम लिखा गया है तो पहिले गलत हस्ताक्षर करने के बाद नीचे अपने सही हस्ताक्षर किये जा सकते हैं। दूसरे पृष्ठांकन स्याही से अथवा पेन्सिल से हो सकता है परन्तु पेन्सिल की पृष्ठांकना में कूट की सम्भावना होने से अधिकोष-सामान्यतः पेन्सिल की पृष्ठांकना स्वीकार नहीं करते।

पृष्ठांकना के प्रकार : सामान्यतः पृष्ठांकना के निम्न प्रकार हैं :—

१. सामान्य पृष्ठांकना (Blank Endorsement): इसमें पृष्ठांकक केवल अपने हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार की पृष्ठांकना से धनादेश का मूल स्वरूप बदल कर वह वाहक-धनादेश हो जाता है तथा उसके भुगतान के लिये किसी अन्य व्यक्ति की पृष्ठांकना की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि इस प्रकार की पृष्ठांकना आदेश-धनादेश पर की जाय तो वह धनादेश भी वाहक-धनादेश हो जायेगा। ऐसे धनादेश का परक्रामण बिना किसी की पृष्ठांकना के हो सकता है।

२. विशेष पृष्ठांकना (Special Endorsement): इसमें पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षर के अतिरिक्त पृष्ठांकिकी का नाम जिसको वह सम्पत्ति का परक्रामण करता है अथवा जिसको वह सम्पत्ति का वैधानिक अधिकारी बनाता है, उसका नाम भी अपने हस्ताक्षर के पूर्व लिख देता है। उदा०

Pay to Harihar Nath or order	हरिहरनाथ अथवा उनके आदेश पर भुगतान हो
P. L. Golwalkar.	पी० एल० गोलवलकर
10–1–51	१०–१–५१

इस प्रकार से पृष्ठांकित धनादेश का आगे परक्रामण (Negotiation) एवं हस्तांतरण (Transfer) होने के लिये इस धनादेश पर हरिहरनाथ द्वारा पृष्ठांकना की आवश्यकता होगी। उसी प्रकार अगर हरिहर नाथ स्वयं ही भुगतान लेना चाहें तब भी उनको हस्ताक्षर करने पड़ेंगे।

३. विशेषित पृष्ठांकना (Restrictive Endorsement): यदि पृष्ठांकक द्वारा किसी व्यक्ति विशेष के नाम की पृष्ठांकना की जाती है, जिससे उस धनादेश का परिक्रामण नहीं हो सकता, तो ऐसी पृष्ठांकना को विशेषित पृष्ठांकना कहेंगे। उदाहरणार्थ—

Pay to Harihar Nath only	केवल हरिहर नाथ को ही भुगतान हो
P. L. Golwalkar.	पी० एल० गोलवलकर
10–1–51	१०–१–५१

इस धनादेश को हरिहर नाथ अब किसी अन्य व्यक्ति के नाम पृष्ठांकित नहीं कर सकते।

४. दायित्व रहित पृष्ठांकना (Sans Recourse Endorsement): में पृष्ठांकक धनादेश के अनादरण से आने वाला दायित्व जब

अपने ऊपर नहीं लेना चाहता, उस समय वह 'दायित्व रहित' अथवा 'बिना दायित्व के' ये शब्द लिखकर अपने हस्ताक्षर करता है। इस प्रकार के पृष्ठांकन में पृष्ठांकक धनादेश का अनादरण हो जाने पर किसी प्रकार से दायी नहीं रहता किन्तु इसके पूर्व के सब पृष्ठाङ्ककों तथा आहर्ता का दायित्व रहता है। उदाहरणार्थ—

Sans Recourse	'दायित्व रहित'
P. L. Golwalkar	पु० ल० गोलवलकर
10–1–51	१०–१–५१

अथवा

Without Recourse to me	बिना मेरे दायित्व के
P. L. Golwalkar	पु० ल० गोलवलकर

५. ऐच्छिक पृष्ठांकना (Facultative Endorsement) : इस प्रकार की पृष्ठांकना चलन में नहीं है। इस पृष्ठांकना में पृष्ठांकक अपने हस्ताक्षर करने के पूर्व 'अनादर की सूचना अनावश्यक' ऐसे शब्द लिख देता है जिससे धनादेश का अनादर हो जाने पर ऐसे पृष्ठाङ्कक को अनादरण की सूचना, जो नियमानुसार संधारक को सब पक्षकारों को देनी चाहिये, देने की आवश्यकता नहीं रहती। फिर भी ऐसे पृष्ठांकक की उस धनादेश की आकस्मिक देयता (Liability) रहती है। उदा०

Notice of Dishonour waived	अनादरण की सूचना अनावश्यक
P. L. Golwalkar.	पु० ल० गोलवलकर

पृष्ठांकना करते समय सावधानी : पृष्ठांकक को किसी भी परक्राम्य विलेख पर पृष्ठाङ्कना करते समय निम्न सावधानी रखनी चाहिये :—

१. पहिले उसका नाम जिस प्रकार से लिखा गया हो उसी प्रकार वह हस्ताक्षर करे। परन्तु यदि वह चाहे तो नीचे अपने सही हस्ताक्षर भी कर सकता है।

२. पृष्ठांकना उसी विलेख पर अथवा अनुपर्णी (Allonge) पर ही करनी चाहिये।

३. यदि सामूहिक आदाता हैं तो पृष्ठांकना करते समय सब व्यक्तियों के हस्ताक्षर होने चाहियें।

४. किसी प्रमण्डल अथवा संस्था के नाम आये हुए धनादेशों पर पृष्ठाङ्कना करते समय प्रमण्डल के नाम के साथ 'के लिए' लिखकर अपने हस्ताक्षर एवं पद (Designation) का उल्लेख करना चाहिये, उदाहरणार्थ

'जयाजी राव कॉटन मिल्स लि०, ग्वालियर' के अभिकर्ता को हस्ताक्षर निम्न प्रकार से करना चाहिये :

Per Pro or for { Jayaji Rao Cotton Mills Ltd., — जयाजी राव कॉटन मिल्स लि. के लिये,

D. P. Mandelia — डी. पी. मंडेलिया

Managing Director — व्यवस्था संचालक

५. यदि धनादेश में ऐसी स्त्री 'आदाता' है जिसका अब विवाह हो चुका है परंतु धनादेश-प्राप्ति के समय वह अविवाहिता थी तो उसे अपने हस्ताक्षर विवाहित नाम से करने चाहिये तथा साथ ही में अपना पूर्व नाम देना चाहिये।

उदाहरण, रमा गोखले जिसका विवाहित नाम उषा दांडेकर है उसको "उषा दांडेकर (उर्फ रमा गोखले) " इस प्रकार हस्ताक्षर करना चाहिये।

६. पृष्ठांकना के समय उपाधियां नहीं लिखनी चाहियें।

७. विवाहिता स्त्री को पृष्ठांकना करते समय अपने नाम से हस्ताक्षर करने चाहिये और बाद में वह किसकी पत्नी है इसका उल्लेख कर देना चाहिये, उदाहरण :—

Rama Gokhale — रमा गोखले

(Wife of G. D. Gokhale) — (श्री. गो. दा. गोखले की पत्नी)

७. सामूहिक आदाता के नाम के धनादेश की कोई एक व्यक्ति अगर वह अधिकृत है तो पृष्ठांकना अपने हस्ताक्षरों से कर सकता है। इसी प्रकार अपने प्रधान की जगह अधिकृत अभिकर्ता पृष्ठांकना कर सकता है।

सामने के पृष्ठ पर पृष्ठांकना के कुछ उदाहरण दिये हैं।

उपर्युक्त सावधानी के साथ किसी भी परक्राम्य विलेख पर पृष्ठांकन होना चाहिये। ऊपर केवल ऐसे उदाहरणों का उल्लेख किया गया है जो विशेष रूप से देखने को मिलते हैं, (विशेष विवेचन के लिये देखिये Banking Law & Practice in India by M.L. Tannan Pp 143-153, 5th Edition.)

शोधक अधिकोपिक और उसका दायित्व (Paying Banker & his Liabilities) तथा धनादेशों का अनादरण।

हम यह बता चुके हैं कि जिस ग्राहक का चल लेखा अधिकोष में होता है उसको अपने ग्राहक के सब धनादेश नियमी होने पर तथा उसके लेखे में पर्याप्त राशि होने पर, भुगताने पड़ते हैं। यह अधिकोष का दायित्व महत्वपूर्ण

धनादेश पर दिया हुआ आदाता का नाम	गलत पृष्ठांकना	सही पृष्ठांकना	कारण
वैयक्तिक :—			
श्री० रूपाराम गुप्ता	रूपराम गुप्त	रूपाराम गुप्ता	नाम भेद
श्री० सतीन्द्र सिंह	सतीन्दर सिंह	सतीन्द्र सिंह	”
पंडित नेहरू	पंडित नेहरू	जवाहर लाल नेहरू	अपूर्ण नाम
श्रीमती रमा गोखले	श्रीमती रमा गोखले	रमा गोखले (जी. डी. गोखले की पत्नी)	किसकी पत्नी यह उल्लेख नहीं था।
कुमारी रमा रानडे	कुमारी रमा रानडे	रमा रानडे	उपाधि अनावश्यक
कुमारी रमा सर्वटे (अब विवाहित हो गई हैं)	रमा सर्व	रमा अभ्यंकर (पूर्वनाम रमा सर्वटे)	दोनों नामों का उल्लेख आवश्यक है।
सार्थ :—			
डोंगरे ब्रदर्स	विश्वनाथ लक्ष्मण डोंगरे	विश्वनाथ लक्ष्मण डोंगरे डोंगरे ब्रदर्स के लिये	जिससे सार्थ का अभिकर्ता है अथवा भागी यह स्पष्ट हो।
संस्थायें :—			
विक्टोरिया कालेज ग्वालियर	प्रकाशचन्द्र, प्रिंसीपल विक्टोरिया कालेज ग्वालियर	प्रकाशचंद्र, प्रिंसीपल विक्टोरिया कालेज के लिये	संस्था के लिए पृष्ठांकना होनी चाहिये
अशिक्षित व्यक्ति :—			
रामावतार शुक्ल	निशानी अंगूठा (रामावतार शुक्ल)	निशानी अंगूठा रामावतार शुक्ल साक्ष : पी० एल० गोलवलकर	ऐसी पृष्ठांकना पर किसी साक्षी के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।
पर्लस प्रॉडक्ट्स लिमिटेड कानपुर	जी० एस० नाखरे, व्यवस्था संचालक पर्लस प्रॉडक्ट्स कानपुर	पर्लस प्रॉडक्ट्स कानपुर के लिये जी० एस० नाखरे व्यवस्था संचालक	वैयक्तिक रूप से हस्ताक्षर नहीं होना चाहिये।
मृत व्यक्ति :—			
सरदार पटेल (अब परलोक वासी)	साराभाई पटेल	सरदार पटेल की संपत्ति का रिक्थ-साधक साराभाई पटेल	सार्थ साधक के नाम हस्ताक्षर होना चाहिये।

है एवं परक्राम्य विलेख विधान की धारा ३१ के अनुसार यह कार्य करने के लिए वह बाध्य है। इस धारा के अनुसार "धनादेश के आहार्यी के पास आहर्ता की पर्याप्त निधि (Fund) है जो ऐसे धनादेशों के भुगतान के लिये समुचित रूप से कार्यान्वित की जा सकती है, तब ऐसा आदेश होने पर उसे भुगतान करना चाहिये अन्यथा भुगतान न करने का दोषी होने पर, ऐसे दोष से आहर्ता को जो हानि अथवा क्षति (Damage) हुई हो उसकी पूर्ति करनी पड़ेगी।" इस धारा के अनुसार ग्राहक के धनादेशों का भुगतान निम्न निर्बन्धों के अनुसार अधिकोष को करना पड़ेगा :—

१. ग्राहक का अधिकोष में ऐसा कोई लेखा होना चाहिये जिस पर धनादेश आहरित करने का अधिकार उसे प्राप्त हो; २. लेखे में धनादेश का भुगतान करने के लिये यथेष्ट अथवा पर्याप्त राशि होनी चाहिये—यह पर्याप्त राशि सामान्यतः ग्राहक के लेखे का समाकलित शेष (Credit Balance) होगा अथवा यदि अधिकोष ने उसका अधिविकर्ष स्वीकृत किया होगा तो अधिविकर्ष की रकम का भी संबंध होगा; ३. धनादेश समुचित प्रपत्र (Form) में एवं नियमी (Regular) होना चाहिये; ४. धनादेश का संधारक धनादेश को अधिकोष के कार्यालय-समय में तथा समुचित प्रकार से उपस्थित करे तथा कोई अवैधानिकता धनादेश में न हो। ५. धनादेश की उपस्थिति समुचित समय (Reasonable) के अन्दर की गई हो।

अगर किसी भी धनादेश में उपर्युक्त बातें पूर्ण रूप से हैं एवं उसमें किसी भी प्रकार का वैधानिक दोष नहीं है तो उस धनादेश का भुगतान अधिकोष को करना पड़ेगा अन्यथा वह प० व० विधान की धारा ३१ के अनुसार ग्राहक की क्षतिपूर्ति एवं हानिपूर्ति करने का उत्तरदायी होगा। इस प्रकार अगर धनादेश में उपर्युक्त पाँच में से कोई एक दोष है तो अधिकोष उसका भुगतान नहीं करेगा। इसी प्रकार धनादेश के भुगतान करने के विषय में जो आवश्यकताएँ हमने रेखांकन, पृष्ठांकना तथा प्रपत्र (Form) में देखीं उनका भी अधिकोपिक को पूर्ण रूप से पालन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कभी ग्राहक अपने अधिकोष को अपने नाम आये हुए धनादेश संग्रहण के लिये भेजता है तथा उनकी राशि पर धनादेश आहरित करता है, ऐसे धनादेश आहरित करने के पूर्व ग्राहक को चाहिये कि वह धनादेशों के संग्रहण के लिये पर्याप्त समय दे अन्यथा उस धनादेश का अनादरण होने पर, उसका उत्तरदायित्व अधिकोष पर नहीं होगा।

अतः ग्राहक को तो उपर्युक्त निर्बन्धों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये किन्तु अधिकोपकों को भी धनादेश नियमी है एवं उसकी उपस्थिति की पद्धति

भी ठीक है, ग्राहक के हस्ताक्षर कूट नहीं हैं—यह सब देखकर ही भुगतान करना चाहिये। इसलिये अधिकोष को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

१. धनादेश विवृत है अथवा रेखाङ्कित है तथा रेखांकन सामान्य अथवा विशेष है क्योंकि रेखांकन के भी भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं तथा अधिकोष रेखांकन के अनुसार अगर धनादेश का भुगतान नहीं करता तो वह स्वयं उस धनादेश की राशि के लिए उत्तरदायी होता है (देखिये परक्राम्य विलेख विधान धारा १२६,१२७ और १२८)।

२. जहां धनादेश उपस्थित किया गया है उसी शाखा पर वह आहरित है अथवा नहीं? क्योंकि सामान्यतः कोई भी ग्राहक अधिकोष की जिस शाखा में लेखा है उस शाखा के अतिरिक्त अन्य शाखा पर धनादेश आहरित नहीं कर सकता। किन्तु अगर ऐसा विशेष अधिकार ग्राहक को दिया गया हो तो अधिकोष को उन धनादेशों का भुगतान करते समय ऐसे अधिकार का ध्यान रखना चाहिये क्योंकि इस दशा में उसका अधिकार एवं उत्तरदायित्व वही होता है जैसा कि ग्राहक के लेखे वाली शाखा पर धनादेश आहरित किये गए हों।

३. विकृत धनादेश, कूट धनादेश, वीतकाल धनादेश, पूर्वतिथीय (Antedated) अथवा उत्तरतिथीय धनादेश : इस संबंध में हम पर्याप्त विवेचन कर चुके हैं। वीतकालीय धनादेश का भुगतान अधिकोष ग्राहक की अनुमति प्राप्त करने पर ही कर सकता है अन्यथा उसे वीतकालीय धनादेश लौटा देना चाहिये।

४. प्रपत्र का नियमी (सही) रूप में होना : धनादेश का जो प्रपत्र (Form) हम ऊपर बता चुके हैं उसी रूप में धनादेश का आहरण हुआ है अथवा नहीं यह देख लेना चाहिये। अगर धनादेश का प्रपत्र शुद्ध नहीं है तो धनादेश का भुगतान नहीं करना चाहिये।

५. आहर्ता के हस्ताक्षर कूट तो नहीं हैं यह भी पूर्ण सावधानी से निदर्शन हस्ताक्षर के आधार पर देख लेना चाहिये।

६. राशि भेद—किसी भी प्रकार से धनादेश में अंकों में तथा शब्दों में लिखी हुई राशि में अंतर नहीं है—यह भी देख लेना चाहिये। यदि इन राशियों में अंतर होता है तो विशेषतः अधिकोष ऐसे धनादेश "राशि भेद" लिखकर लौटा देते हैं।

७. धनादेश में किसी प्रकार से महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किये गए हैं। अथवा ऐसे परिवर्तन हैं तो उनके लिए आहर्ता के पूर्ण हस्ताक्षर किये गए हैं,

यदि ऐसे परिवर्तनों के लिए ग्राहक के हस्ताक्षर नहीं हैं तो अधिकोष ऐसे धनादेशों का भुगतान नहीं करेगा तथा उन्हें "महत्वपूर्ण परिवर्तन अन-हस्ताक्षरित" (Material alteration not signed or not confirmed) लिखकर लौटा देगा।

८. धनादेशों पर पृष्ठांकना नियमी रूप में (In regular form) है अथवा नहीं—यह भी देख लेना होगा। जहाँ तक वाहक धनादेशों का संबंध है, यदि उन पर विशेष पृष्ठांकना भी की जाय तब भी उनका भुगतान वाहक धनादेशों की तरह ही किया जायगा। इस संबंध में परक्राम्य विलेख विधान की धारा ८५ (२) उल्लेखनीय है; जिसके अनुसार "जहाँ एक धनादेश मूलतः (Originally) वाहक को शोधनार्थ (Payable) बनाया गया है उस दशा में उसका यथाविधि भुगतान (Payment in due course) करने पर आहार्यी उन्मुक्त (Discharge) हो जाता है; इसका किसी भी प्रकार से ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं कि उस पर पृष्ठांकना सामान्य है अथवा विशेष है तथा पृष्ठांकना का तात्पर्य आगे परक्रामण रोकने का अथवा वर्ज (Exclude) करने का है।"[1] आदेश धनादेशों पर पृष्ठांकना ठीक एवं नियमित प्रकार से की गई है अथवा नहीं यह देख लेना चाहिये, यदि पृष्ठांकना ठीक न हो तो अधिकोष ऐसे धनादेश "अनियमी पृष्ठांकना (Irregular Endorsement)" लिखकर लौटा देते हैं।

यथाविधि भुगतानः यहाँ पर हमको यह भी जान लेना चाहिये कि "यथाविधि भुगतान" किसे कहते हैं ? परक्राम्य विलेख विधान-धारा १० के अनुसार "यथाविधि भुगतान का" अर्थ है वह भुगतान जो पूर्ण विश्वास के साथ बिना किसी उपेक्षा के विलेख की स्पष्ट-अवधि के अनुसार जिसके पास वह विलेख है, ऐसे किसी भी व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति में किया गया हो जिसमें कि यह विश्वास करने के लिये कोई भी आधारभूत का कारण न हो कि

[1] *'Where a cheque is originally expressed to be payable to bearer, the drawee is discharged by payment in due course to the bearer thereof notwithstanding any endorsement whether in full or in blank appearing thereon and notwithstanding that any such endorsement purports to restrict or exclude further negotiation.'*

—N. I. Act. 1881; Sec. 85 (2)

उसकी (विलेख) की राशि का भुगतान प्राप्त करने का वह अधिकारी नहीं है।"[१]

इस परिभाषा के अनुसार १. उस विलेख पर पत्रकारों द्वारा किये हुए सुझावों के अनुसार भुगतान होना चाहिये, २. दूसरे यह भुगतान पूर्ण विश्वास के साथ एवं बिना किसी प्रकार की उपेक्षा के होना चाहिये, ३. तीसरे भुगतान उस व्यक्ति को होना चाहिये जिसके पास विलेख हो तथा, ४. चौथे यह विश्वास करने के लिए कोई आधारभूत कारण न हो कि उस व्यक्ति को उसका भुगतान प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। यदि ये सब निर्बन्ध पूर्ण होते हैं तो अधिकोष द्वारा किया भुगतान यथा-विधि भुगतान होगा। इस परिभाषा के अनुसार किसी भी उत्तरतिथीय धनादेश का भुगतान अथवा विशेष रेखित धनादेश का भुगतान किसी अधिकोष के द्वारा न देते हुए खिड़की (Counter) पर देना आदि यथाविधि भुगतान नहीं होंगे।

धनादेशों को लौटाते समय अधिकोष उनका भुगतान न करने का कारण देते हैं तथा ऐसे कारण प्रत्येक धनादेश पर अलग अलग लिखने के स्थान पर वे सब कारणों की एक मुद्रित (Printed Form) प्रपर्णी रखते हैं तथा जिस कारण से धनादेश लौटाया जाता है उस कारण के अङ्क (Number) पर चिन्ह (✓) लगा देते हैं। इस सम्बन्ध में सामान्यतः निम्न शब्द प्रयोग होते हैं:—

१. R. D. (Refer to drawer) आहर्ता से पूछिये।
२. E. N. C. (Effects not cleared) संग्रहण नहीं हुआ।
३. N. S. F. (Not Sufficient Fund) अपर्याप्त राशि।
४. W. & F. D. (Words & figures differ) राशिभेद।
५. E. I. (Endorsements Irregular) अनियमी पृष्ठांकना।
६. D. D. (Drawer Deceased) मृत आहर्ता।
७. N. A. (No Account) लेखा नहीं है।
८. (Postdated or Stale Cheque)
उत्तरतिथीय अथवा वीतकालीय धनादेश।

---

[१] *'Payment in due course means payment in accordance with the apparent tenor of the instrument, in good faith ond without negligence to any person in possession thereof under circumstances which do not afford a reasonable ground for believing that he is not entitled to receive the payment of the amount therein mentioned.*

—N. I. Act 1881; Sec. 10.

९. Drawer's Signatures Differ आहर्ता का हस्ताक्षर भेद।

१०. Endorsement requires confirmation
पृष्ठांकना-प्रमाण आवश्यकता

११. Material alteration not confirmed
महत्त्वपूर्ण-परिवर्तन अनहस्ताक्षरित

अभी तक आंग्ल भाषा का प्रयोग ही अधिकोषण व्यवहारों में होने के कारण आंग्ल शब्द प्रयोग ही दिये गये हैं तथा उनका हिन्दीकरण भी साथ-साथ ही दिया गया है जिनका प्रयोग अधिकोषण व्यवहार में होना अब प्रारम्भ हो जाना चाहिये।

अधिकोष का दायित्व : धनादेशों का भुगतान करते समय अधिकोष को उपर्युक्त बातों की विशेष सावधानी रखनी पड़ती है अन्यथा गलत भुगतान का दायित्व उस पर आता है और ऐसे गलत भुगतान किये हुए धनादेश की राशि से वह ग्राहक का लेखा विकलित (Debit) नहीं कर सकता। किन्तु अगर किसी भी प्रकार से ग्राहक की असावधानी के कारण कूट हस्ताक्षर के धनादेशों का वह यथाविधि भुगतान कर देता है तो उसकी जिम्मेदारी ग्राहक की होगी। इसी प्रकार कूट धनादेश अधिकोष को भुगतान के लिये उपस्थित हो रहा हो तथा इसका ज्ञान ग्राहक को हो तो उसे चाहिये कि वह अधिकोष को इसकी सूचना दे अन्यथा उसका दायित्व ग्राहक का रहेगा। यही बात महत्वपूर्ण परिवर्तनों की है। इसलिये अधिकोषिक को धनादेशों का भुगतान करते समय पूर्ण सावधानी से काम लेना पड़ता है क्योंकि वह ऐसी कैंची में फँसता है जिससे यदि एक ओर वह असावधानी से अनादरण करता है तो वह ग्राहक को होने वाली क्षति के लिये जिम्मेदार होता है तथा दूसरी ओर यदि वह ऐसे धनादेशों का भुगतान कर देता है जिनमें किसी प्रकार का दोष है तो उसका दायित्व उस पर होता है।

अधिकोष ग्राहक के धनादेशों का भुगतान कब रोक सकता है? निम्न परिस्थितियों में अधिकोष ग्राहक के धनादेशों का भुगतान बिना किसी प्रकार के दायित्व के रोक सकता है :—

अ. भुगतान रोकने के लिए ग्राहक का आदेश उसको मिला हो।

ब. आहर्ता की मृत्यु, दिवालियापन एवं पागलपन : इन बातों की सूचना पाते ही अधिकोष को ग्राहक के किसी भी धनादेश का भुगतान रोकने का अधिकार है। किन्तु ग्राहक की मृत्यु की सूचना यदि अधिकोष को

न मिली हो तो ग्राहक द्वारा मृत्यु पूर्व आहरित धनादेशों का भुगतान वह कर सकता है तथा उस राशि को वह ग्राहक के लेखे में विकलित (Debit) करने का अधिकारी है। इसी प्रकार ग्राहक के पागल होने के पूर्व आहरित किए हुए धनादेशों का भुगतान भी वह सूचना पाने के पूर्व कर सकता है।

(क) प्राधमर्ण आदेश (Garnishee's order) की प्राप्ति पर: यदि किसी ग्राहक के विरुद्ध न्यायालय का उसके लेखे को वन्द करने का आदेश प्राप्त होता है तो उस दिन से अधिकोप को उसके द्वारा आहरित धनादेशों का भुगतान रोक देना चाहिये।

(ङ) यदि अधिकोप को यह ज्ञान हो जाय कि धनादेश उपस्थित करने वाला व्यक्ति उसका स्वत्वधारी स्वामी (Rightful owner) नहीं है तो धनादेश का भुगतान रोक देना चाहिये।

(ग) यदि ग्राहक अपने लेखे को किसी अन्य व्यक्ति के नाम हस्तांतरित करता है एवं उसका ज्ञान अधिकोप को प्राप्त हो जाता है अथवा सूचना आ जाती है अथवा ग्राहक किसी संस्था का प्रन्यासी होने के नाते, प्रन्यास लेखे का निजी कार्यों के लिये उपयोग कर रहा है।

संग्राहक अधिकोप : ग्राहक के द्वारा उसके नाम आये हुए धनदेशों के संग्रहण की वैधानिक जिम्मेदारी अधिकोप की न होते हुए भी, ग्राहक के धनादेश, विपत्र आदि का संग्रहण करना अधिकोप का एक कार्य है। तथा यह कार्य वह ग्राहक के अभिकर्ता के नाते करता है। संग्राहक अधिकोप के नाते अधिकोप का कुछ विशेष उत्तरदायित्व होता है जिसका ज्ञान होना आवश्यक है।

अधिकोप जब ग्राहक के नाम के अनारेखित धनादेशों का संग्रहण करता है तथा बाद में यह ज्ञात होता है कि उस धनादेश पर की गई पृष्ठांकना कूट (Forged) है तो अधिकोप उस धनादेश के स्वत्वधारी स्वामी के प्रति उत्तरदायी होता है क्योंकि ग्राहक उस धनादेश का स्वत्वधारी स्वामी नहीं होता। किन्तु ऐसे धनादेश का रुपया वह अपने ग्राहक से प्राप्त करने का अधिकारी होता है क्योंकि अधिकोप केवल अंतिम पृष्ठांकक से ही हानिपूर्ति ले सकता है।

दूसरे, यदि अधिकोप अपने ग्राहक के लिये किसी दूसरे व्यक्ति के नाम के धनादेश संग्रहण करता है तो वह राशि उसे उस अन्य व्यक्ति को देनी पड़ेगी क्योंकि विवृत धनादेश (Open Cheque) होने के नाते उसको अपने ग्राहक से अच्छी उपाधि नहीं मिल सकती।

तीसरे विवृत धनादेशों का भुगतान संधारक द्वारा शाहार्यी अधिकोष से प्राप्त किया जा सकता है एवं उनका भुगतान किसी अधिकोष द्वारा ही होना चाहिये, ऐसा कोई बन्धन न होने से अधिकोष को विवृत धनादेशों के संग्राहक के नाते कोई भी वैधानिक संरक्षण नहीं है। परन्तु रेखित धनादेशों के संग्राहक के नाते संग्राहक अधिकोष पूर्ण रीति से सुरक्षित है यदि वह पूर्ण विश्वास के साथ एवं विना किसी उपेक्षा के (Without Negligence) संग्रहण करता है, तथा ऐसा संग्रहण केवल ग्राहकों के लिये ही किया जाता है। यदि अधिकोषिक संग्रहण के लिये प्राप्त हुये धनादेशों को स्वीकार करने के पूर्व उनकी पृष्ठांकना को प्रमाणित नहीं कर लेता अथवा रेखांकन के अनुसार कार्य नहीं करता अथवा जिन धनादेशों का आदाता ग्राहक न होवे हुए अन्य व्यक्ति है तो अधिकोषिक उपेक्षा से (With Negligence) कार्य करता हुआ समझा जायेगा। इसलिये अधिकोषिक को अपनी पूर्ण वैधानिक सुरक्षा की दृष्टि से केवल वे रेखित धनादेश, जिनमें आदाता ग्राहक है, उन्हीं धनादेशों का पूर्ण विश्वास एवं विना किसी प्रकार की उपेक्षा के संग्रहण करना चाहिये जिससे उसे परक्राम्य विलेख विधान की १३१ धारा के अंतर्गत संरक्षण मिले। इसी प्रकार संग्रहण के लिये आये हुए धनादेशों का यदि अनादरण होता है तो उसकी सूचना उसे अपने ग्राहक को तुरन्त दे देनी चाहिये जिससे वह अन्य दायी पक्षकारों (Liable Parties) से धनादेश की राशि प्राप्त कर सके।

धनादेशों के उपयोग से लाभ :

धनादेश वर्तमान आर्थिक स्थिति में बहुत ही महत्त्वपूर्ण विलेख है जिसके द्वारा पाश्चात्य देशों में विशेषतः सब विनिमय व्यवहारों का भुगतान किया जाता है परन्तु यह कभी न भूलना चाहिये कि धनादेश द्वारा भुगतान सशर्त भुगतान होता है अर्थात् उसका आदान होने पर ही वह भुगतान पूर्ण समझा जायेगा। फिर भी भुगतान का माध्यम (Medium) होने की वजह से इनके उपयोग से समाज को बहुत लाभ होता है।

पहिले, अधिकोषों में मुद्रा रहने के कारण वह धन सुरक्षित रहता है एवं उस धन का उपयोग दैनंदिन भुगतान के लिये धनादेशों द्वारा किया जाता है।

दूसरे, धनादेश-पुस्तकें (Cheque Books) अगर किसी कारण वश अथवा असावधानी से यदि खो भी जायें तो अधिकोष को उसकी सूचना देने से कोई भी अनधिकृत व्यक्ति उन धनादेशों का उपयोग नहीं कर

सकता किन्तु यदि अपने पास रखा हुआ धन खो जाय अथवा चोरी चला जाय तो हमेशा हानि ही होती है।

तीसरे, धनादेशों से किसी भी बड़ी से बड़ी रकम का भुगतान किया जा सकता है, तथा अधिकोष आदाता के हस्ताक्षर धनादेश पर भुगतान के समय लेते हैं जो प्राप्ति-पत्र (Receipts) का काम करते हैं तथा ग्राहक को अलग प्राप्ति पत्र लेने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि किसी भी समय न्यायालय में धनादेश पर पाने वाले के किये हुए हस्ताक्षर प्राप्ति का प्रमाण माने जाते हैं।

चौथे, रुपया अथवा धन जो अधिकोष में समय समय पर जमा किया जाता है तथा समय समय पर आहरित किया जाता है, उसका लेखा अधिकोष अपने पास रखते हैं जिससे ग्राहक को अपने आय-व्यय का अलग लेखा लिखने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उस लेखे के विवरण से उसको पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

पाँचवें, धनादेशों के उपयोग से विधिग्राह्य मुद्रा का उपयोग कम हो जाता है जिससे अधिकोषों को अपनी निधि भी कम रखनी पड़ती हैं, जिससे बहुमूल्य धातुओं—स्वर्ण तथा चांदी—के उपयोग में मितव्ययिता होती है।

छटवें : धनादेशों द्वारा भुगतान पत्र-मुद्रा की अपेक्षा अधिक सुगम एवं सुविधाजनक एवं सुरक्षित होने से व्यापार तथा उद्योगों को उत्तेजन मिलता है, जो सामाजिक दृष्टि से वांछनीय है।

उपर्युक्त लाभों के होते हुए भी भारत में केवल कुछ बड़े बड़े शहरों में ही जैसे बंबई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर आदि, धनादेशों का उपयोग होता है किन्तु वह भी अपरिमित प्रमाण में नहीं है। भारत में इसका अधिक उपयोग होने के लिये सबसे प्रथम देश के विस्तार एवं जनसंख्या के अनुसार अधिकोषण का विकास होना चाहिये तथा जनता को अधिकोषों की ओर आकर्षित करने के लिये प्रचार कार्य होना चाहिये तथा अधिकोषण व्यापार में भी सुव्यवस्थिता होनी चाहिये जिससे अधिकोषों का प्रविलीयन (Dissolution) न हो जिससे जनता का विश्वास उत्पन्न हो करके। इसीके साथ साथ देश की सामान्य शैक्षणिक परिस्थिति के अनुसार आंग्ल भाषा के स्थान पर प्रांतीय भाषाओं का अथवा हिंदी का प्रयोग होना आवश्यक है।

विनिमय विपत्र (Bills of Exchange) :

विनिमय विपत्रों का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय तथा आंतरिक व्यापार में अधिक सुविधाजनक होता है क्योंकि इनके उपयोग से परेषक तथा निर्यातकों

(Consignors & exporters) को माल भेजते ही विपत्र का रुपया उसके अपहरण (Discounting) द्वारा प्राप्त हो सकता है; उसी प्रकार आयातकों तथा परेषणी (Importers & consignees) को भी लाभ होता है कि उनको उस विपत्र का भुगतान करने के लिए कुछ अवधि मिल जाती है जिससे उस अवधि में वे अपना माल बेचकर रुपयों का भुगतान कर सकते हैं। इससे परेषक एवं निर्यातकर्ताओं को भी शीघ्र रुपया प्राप्त हो जाता है तथा परेषणी और आयातकों को भुगतान करने के लिए अवधि भी मिल जाती है जिससे आंतरिक एवं अंतर्देशीय व्यापार की उन्नति होती है। ये विपत्र दो प्रकार के होते हैं—विदेशी विनिमय विपत्र (Foreign Bills of Exchange) तथा दूसरे (Inland Bills of Exchange) देशी विनिमय विपत्र। इनमें पहिले प्रकार के विनिमय विपत्रों का उपयोग विदेशी व्यापार में तथा दूसरे प्रकार के विनिमय विपत्रों का उपयोग देश के अंतर्गत व्यापार में किया जाता है।

विनिमय विपत्र की परिभाषा : परक्राम्य विलेख विधान की धारा ५ के अनुसार "विनिमय विपत्र लेखक का वह लिखित अनिर्बन्ध आदेश किसी व्यक्ति के लिये होता है, जिस पर बनाने वाले के हस्ताक्षर हों; जिसमें किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा उसके वाहक को निश्चित मुद्रायें दे।" इस प्रकार विनिमय विपत्र किसी निश्चित व्यक्ति के नाम लिखित आदेश होता है, जिसमें भुगतान के लिये भी निश्चित रकम का उल्लेख होता है तथा, यह रकम किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार अथवा वाहक को 'मुद्राएँ प्रदान की जायं'; ऐसे विलेख पर बनाने वाले के हस्ताक्षर भी हों।

इस परिभाषा के अनुसार किसी भी विलेख को विनिमय विपत्र हम तभी कह सकते हैं जब उसमें निम्नलिखित बातें हों :—

१. लिखित आदेश हो।
२. इस आदेश में किसी प्रकार का निर्बन्ध (Conditions, शर्त) न हो।
३. आदेश देनेवाले व्यक्ति के हस्ताक्षर हों।
४. आदेश किसी निश्चित व्यक्ति के नाम से हो।
५. भुगतान की जो रकम हो वह निश्चित रूप में दी गई हो।
६. जिस व्यक्ति को भुगतान देना है वह व्यक्ति निश्चित हो।
७. भुगतान का समय भी निश्चित हो।

इन बातों में पहिली ६ बातों का विस्तृत विवेचन पृष्ठ ३२१-२२ पर किया गया है।

जहां तक "भुगतान के निश्चित समय" का संबंध है, विपत्र में यह स्पष्ट रूप से दिया हुआ होना चाहिये कि उसका भुगतान "माँग पर" (On demand) हो अथवा भविष्य में किसी निश्चित समय पर हो"। विपत्रों के आहरण में विशेषतः 'देखने पर' (At sight) "उपस्थिति पर" (On presentation) अथवा "देखने के बाद" (After sight) इन शब्दों का प्रयोग होता है। प० वि० विधान की धारा २१ के अनुसार 'देखने पर' तथा 'उपस्थिति पर' इसका अर्थ माँग पर उसका भुगतान हो यह होता है किंतु 'देखने के बाद' का अर्थ यह होता है कि भुगतान की अवधि विपत्र देखने के दिन से अथवा स्वीकृति (Acceptance) के दिन से निकालनी होगी। जहां पर इनमें से किसी भी प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है अथवा भुगतान का समय नहीं दिया है उस विपत्र अथवा प्रतिज्ञा अर्थ पत्र का भुगतान मांग पर होगा, ऐसा समझा जायगा (धारा १९)।

विपत्रों के प्रकार : विपत्रों का वर्गीकरण भिन्न भिन्न प्रकार से किया गया है जिसमें से पहिला वर्गीकरण स्थान के अनुसार विपत्र दो प्रकार के होते हैं; १. विदेशी विनिमय विपत्र तथा २. देशी विनिमय विपत्र। देशी विनिमय विपत्र वे होते हैं जो भारत में बनाये गए हों अथवा आहरित हुए हैं एवं जिनका भुगतान भारत में हो अथवा भारतीयों पर आहरित किये हुए हों (धारा ११ प० वि० वि०); तथा जो विपत्र इस प्रकार से नहीं बनाये गए हैं वे विदेशी विनिमय विपत्र होंगे (धारा १२ प० वि० वि०)।

विपत्रों के निदर्शन

(Specimens of Bills of Exchange)

१—दर्शनी अथवा अभियाचन विपत्र :

२५०) रु० मात्र कलकत्ता, १ अगस्त १९५०

अभियाचन पर श्री राम नारायण लाल एन्ड सन्स, अलाहाबाद को अथवा उनके आदेशानुसार प्राप्त मूल्य के ढाई सौ रुपयों का भुगतान कीजिये।

सेवा में—

श्री भागामल जैन हरिहरनाथ

कानपुर

२—स्वदेशी सामयिक विनिमय विपत्र :

मुद्रांक =)	कलकत्ता, १ जनवरी १६५१
रु० ५००) मात्र	
तीन मास के उपरांत, प्राप्त मूल्य के पांच सौ रुपये का श्री राम नारायण लाल इलाहाबाद अथवा उनके आदेशानुसार भुगतान कीजिये ।	
सेवा में—	
श्री भागामल जैन	हरिहरनाथ
कानपुर	

३—विदेशी विनिमय पत्र :

मुद्रांक Stamp	बंबई १ जनवरी १६५१
£ ५० मात्र	
दर्शनोपरांत नब्बे (६०) दिन, इस प्रथम प्रति के (इसी तिथि एवं अवधि की अन्य प्रतियाँ अदेय) प्राप्त मूल्य के सात सौ पचास रुपये लंदन स्थित इम्पीरियल बैंक को भुगतान कीजिये ।	
सेवा में—	
जॉन गिलबर्ट एन्ड कम्पनी	
पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता	दिनेश कुमार
१० लोम्बार्ड स्ट्रीट, लंदन	

विदेशी विनिमय विपत्रों का आहरण तीन प्रतियों में किया जाता है जिसकी प्रत्येक प्रति भिन्न-भिन्न डाक द्वारा भेजी जाती है, जिससे उनके खो जाने की संभावना न रहे तथा जिसमें से केवल एक ही प्रति का भुगतान होता है। इसके बाद अन्य दो प्रतियां रद्द हो जाती हैं। ऐसे विपत्र की तीनों प्रतियों पर एक ही अंक होता है तथा प्रत्येक प्रति का तब तक भुगतान हो सकता है जब तक उनमें से किसी भी एक प्रति का भुगतान न किया गया हो, परन्तु यदि प्रत्येक प्रति पर पृष्ठांकना अथवा स्वीकृति भिन्न व्यक्तियों के पक्ष में

की जाती है तब प्रत्येक व्यक्ति एवं पृष्ठांकक उस विपत्र की प्रति पर उसी प्रकार दायी होगा जैसे कि वे भिन्न-भिन्न विपत्र हैं।[१]

दूसरे वर्गीकरण के अनुसार विपत्रों को हम दो प्रकारों में बाँट सकते हैं। एक वाहक विपत्र (Bearer Bills) किसी भी व्यक्ति को इनकी राशि प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है, यदि विपत्र उसके अधिकार में है। दूसरे आदेश विपत्र (Order Bills) जिसकी राशि पृष्ठांकना एवं हस्तांतरण द्वारा किसी व्यक्ति के नाम परक्रामण के बिना प्राप्त नहीं हो सकती।

तीसरा वर्गीकरण अवधि के अनुसार किया जाता है, जिसमें विपत्रों को हम दो श्रेणियों में बांटते हैं। एक दर्शनीय विपत्र अथवा अभियाचन विपत्र (Sight or Demand Bills) जिनका भुगतान विपत्र की उपस्थिति पर होता है। तथा दूसरे सामयिक विपत्र (Time Bills) जिनका भुगतान विपत्र में लिखी हुई अवधि के पूर्ण होने पर ही किया जाता है।

चौथा वर्गीकरण विपत्रों के व्यवहार के अनुसार दो श्रेणियों में होता है। एक व्यापारिक विपत्र—(Trade Bills) जो केवल किसी व्यापारिक व्यवहार के लिये आहरित एव स्वीकृत किये गये हों। तथा दूसरे अनुग्रह विपत्र (Accomodation Bills)—जो किसी व्यापारिक हेतु के लिये आहरित एवं स्वीकृत न होते हुए किसी ज्ञात व्यक्ति की आर्थिक सहायता द्वारा उसे अनुग्रहीत करने के लिये आहरित अथवा स्वीकृत किये जाते हैं।

विपत्रों के पक्षः इस प्रकार विपत्रों में तीन पक्ष होते हैं :—

आहर्ता (Drawer)—उस व्यक्ति को कहते हैं जो विपत्र लिखकर उस पर अपने हस्ताक्षर करता है। एवं यह विपत्र उस व्यक्ति पर आहरित किया जाता है जो उसका अधमर्ण होता है।

आहार्यी (Drawee)—वह व्यक्ति है जिसको विपत्र में लिखित रकम का भुगतान करना पड़ता है। यह विशेषतः अधमर्ण होता है।

---

[१] *Bills of Exchange may be drawn in parts, each part being numbered and containing a provision that it shall continue payable so long as the others remain unpaid. All the parts together make a set, but the whole set constitutes only one bill, and is extinguished when one of the parts, if a separate bill, would be extinguished.*

Exceptions:—When a person accepts or endorses different parts of the bill in favour of different persons, he and subsequent endorsees of each part are liable on such part as if it were a separate bill.

—N. I. Act 1881, Sec. 132.

आदाता : जिसके पक्ष में विपत्र लिखा जाता है एवं जो इस लिखित आदेश के अनुसार राशि प्राप्त करने का अधिकारी है।

विपत्रों की स्वीकृति (Acceptance of Bills):

अभियाचन अथवा दर्शनी विपत्रों में स्वीकृति का प्रश्न नहीं उठता और न स्वीकृति की आवश्यकता ही होती है। किन्तु सामयिक विपत्रों में आहार्यी (Drawee) उस समय तक उत्तरदायी नहीं होता जब तक विपत्र पर वह लिखित स्वीकृति नहीं देता। अस्वीकृत विपत्र को विकर्ष (Draft) कहते हैं तथा स्वीकृत विपत्र को स्वीकृत-विपत्र (Acceptances) कहते हैं। यह स्वीकृति विपत्र के बीच में "स्वीकृत" शब्द लिखकर आहार्यी द्वारा अपने हस्ताक्षर करने से की जाती है। यदि आहार्यी केवल हस्ताक्षर ही करता है तब भी वह विपत्र स्वीकृत (Accepted) समझा जायेगा, जिसका अर्थ आहार्यी द्वारा दायित्व लेना है।

इस प्रकार की स्वीकृति अगर सार्थ कार्य अथवा प्रमंडल अथवा अन्य संस्था के लिए की गई हो तब अपने हस्ताक्षर के पहिले "के लिये" (For or Per pro) यह लिखना आवश्यक है अन्यथा स्वीकृत करने वाला व्यक्ति वैयक्तिक रूप से उस विपत्र के लिए दायी होगा।

यह स्वीकृति दो प्रकार की होती हैं: १. सामान्य स्वीकृति जिसमें बिना किसी प्रकार के निर्बन्ध के विपत्र स्वीकृत किया जाता है। २. विशेपित (Qualified) स्वीकृति—जिसमें आहार्यी विपत्र को स्वीकृत करने के पूर्व कुछ स्थान, रकम, समय अथवा अन्य किसी प्रकार के निर्बन्ध लगा देने पर हस्ताक्षर करता है। आहर्ता यदि विशेपित स्वीकृति मानता है तो उसको उन निर्बन्धों (Conditions) का भी पालन करना पड़ेगा अन्यथा विपत्र का अनादरण समझना पड़ेगा।

विपत्र को स्वीकृति हो जाने पर हम आहार्यी को स्वीकर्ता (Acceptor) भी कह सकते हैं।

सामयिक विपत्रों की जो भुगतान की तिथि होती है उस दिन को परिपाक-तिथि (Day of Maturity) तथा विपत्र को परिपक्व विपत्र कहते हैं। इन विपत्रों में भुगतान करने के लिये परिपाक-तिथि के बाद तीन दिन अतिरिक्त दिये जाते हैं। इस अतिरिक्त अवधि को अनुग्रह दिवस (Days of Grace) कहते हैं।

विपत्रों का अपहरण एवं उससे लाभ : विपत्र के संधारक को यदि रोक की आवश्यकता हो तो वह अधिकोष द्वारा विपत्र का अपहरण करा

कर रोकड़ प्राप्त कर सकता है। अधिकोष अपहरण (Discounting) करते समय जिस अवधि के लिये विपत्र है उस अवधि का व्याज विपत्र की राशि से काटकर शेष रकम संधारक को दे देते हैं तथा विपत्र अपने पास रख लेते हैं। इस कार्य को विपत्रों का अपहरण (Discounting of Bills) कहते हैं जो अधिकोष का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। अपहार की राशि विपत्रों की परिपाक तिथि एवं प्रतिशत अपहार दर (Discount Rate) पर निर्भर रहती है।

विपत्रों के अपहरण से अधिकोष को अनेक लाभ होते हैं। पहिले, जैसा हम देख चुके हैं विपत्रों का अपहरण अथवा अपहृत विपत्र अधिकोष की सुरक्षा का साधन होते हैं तथा इसमें विनियोग किया हुआ रुपया अधिकोष इन विपत्रों को बेचकर अथवा इनको केन्द्रीय अधिकोष में अपहरण कर किसी भी समय प्राप्त कर सकता है। दूसरे, अपहरण करने में अधिकोष जो अपहार काटते हैं वह उनका लाभ होता है एवं जिसकी प्राप्ति निश्चित रूप से आंकी जाती है। तीसरे, अधिकोष को यह निश्चितता होती है कि प्रथम श्रेणी के विपत्रों का भुगतान परिपाक तिथि पर मिलना निश्चित है इसलिये उसका धन सुरक्षित रहता है। चौथे, विपत्रों के मूल्यों में उच्चावचन होने की संभावना न होने से उसे किसी भी प्रकार की हानि की आशंका नहीं रहती। पाँचवें, इन विपत्रों के साथ कभी कभी संदान-प्राप्ति प्रलेख (Railway Receipt) अथवा वहन पत्र (Bill of Lading) अथवा अन्य किसी प्रकार की आनुसंगिक प्रतिभूतियाँ रहने से इनमें विनियोग किया धन पूर्ण रूपसे सुरक्षित रहता है। छटवें अपहरण द्वारा ग्राहकों को रोकड़ प्राप्त करने की सुविधा देने-वाला अधिकोष ग्राहकों का कृपा-पात्र बनता है जिससे ग्राहक संख्या में भी वृद्धि होती है।

मुद्रांक कर (Stamp duty): भारतीय मुद्रांक विधान (Indian Stamp Act) १८९९ के अनुसार प्रत्येक सामयिक विपत्र पर, भिन्न भिन्न राशि पर भिन्न भिन्न मूल्य के मुद्रांक (Stamps) लगाना आवश्यक है। विदेशी विपत्रों में मुद्रांक आहर्ता के देश का एवं आहार्यी (अगर विदेश में है) अथवा जहाँ भुगतान होता है (विदेश में) उस देश का—दोनों देशों का मुद्रांक—लगाना आवश्यक है। किन्तु दर्शनी विपत्रों पर मुद्रांक की कोई आवश्यकता नहीं होती।

विपत्रों का परक्रामण एवं पृष्ठांकना: विपत्र परक्राम्य विलेख होने के कारण इनकी पृष्ठांकना एवं हस्तांतरण उसी प्रकार से होता है जिस प्रकार से धनादेशों का। वाहक विपत्रों की उपाधि केवल हस्तांतरण से किसी अन्य

व्यक्ति को दी जा सकती है तथा आदेश विपत्रों की उपाधि पृष्ठांकना एवं हस्तांतरण द्वारा किसी व्यक्ति को जिसका नाम पृष्ठांकना में लिखा जाय उसे दी जाती है एवं वह व्यक्ति उस विपत्र की राशि प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।

विपत्रों की उपस्थिति (Presentation of Bills) : भुगतान के लिये विपत्रों की उपस्थिति आहार्यी के समक्ष उसके निवास अथवा व्यापार के स्थान पर एवं व्यापारिक अवधि (Business hours) में करना चाहिये। तभी विपत्र की उपस्थिति यथाविधि एवं समुचित समय में की गई ऐसा माना जाता है, अगर इस प्रकार उपस्थिति न होने से विपत्र का अनादरण हो जाता है अर्थात् आहार्यी द्वारा विपत्र की राशि का भुगतान नहीं होता तो उस विपत्र के पूर्व-पक्षकारों (Previous Parties) का दायित्व प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत यदि उपस्थिति यथाविधि एवं समुचित होने पर विपत्र का भुगतान हो जाता है तो उस स्थिति में विपत्र के सब पक्षकारों का दायित्व समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार जिन विपत्रों की स्वीकृति होनी है उन विपत्रों को भी स्वीकृति के लिये आहार्यी के पास प्रस्तुत करना चाहिये अन्यथा विपत्र के संधारक के प्रति, विपत्र के अन्य पक्षकार उत्तरदायी नहीं रहते क्योंकि संधारक ने स्वीकृति के लिए विपत्र की उपस्थिति करने में उपेक्षा (Negligence) से काम लिया है। (धारा ६१ प० वि० वि०)

विपत्रों का अनादरण : यदि अस्वीकृत विपत्र यथाविधि स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जाने पर आहार्यी उसे स्वीकृत नहीं करता अथवा भुगतान के लिए यथाविधि उपस्थित करने पर उसका भुगतान नहीं करता तो उसे विपत्र का अनादरण कहते हैं। विपत्र का अनादरण होने पर इसकी सूचना विपत्र के सब सम्बंधित पक्षकारों को देनी चाहिये अन्यथा वे उत्तरदायी नहीं रहेंगे।

विपत्र का अनादरण होने पर, विपत्रालोकी (Notary Public) द्वारा उसके अनादरण का वैधानिक प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिये। इस कार्य में जो व्यय होगा वह व्यय आहार्यी से वसूल किया जाता है।

संग्राहक अधिकोष : अधिकोष को ग्राहक के द्वारा आये हुए विपत्रों का संग्रहण करने के पूर्व उस विपत्र पर उसका स्वत्व अथवा उपाधि निर्दोष है यह जान लेना चाहिये क्योंकि ग्राहक का स्वत्व सदोष प्रमाणित होने पर वह उस विपत्र के स्वत्वधारी (Rightful Holder) के प्रति उत्तरदायी होगा।

दूसरे अधिकोष को विपत्रों के संग्रहण कार्य के किसी भी प्रकार के दायित्व से मुक्त होने के लिए कोई भी वैधानिक संरक्षण नहीं मिलता। संग्राहक अधिकोष को भी विपत्रों की स्वीकृति के लिए अथवा भुगतान के लिये उपस्थिति यथा-विधि ही करनी होगी तथा विपत्रों के अनादरण होने पर उसकी सूचना तत्काल ही अपने ग्राहक-संधारक को देनी चाहिये जिससे उसका दायित्व न रहे।

विपत्रों से लाभ : अधिकोष को विपत्रों के अपहरण से होनेवाले लाभों के अतिरिक्त व्यापारियों को विपत्रों के उपयोग से निम्नलिखित लाभ होते हैं—

१. अधमर्ण के हस्ताक्षर सहित किसी भी ऋण का लिखित वैधानिक प्रमाण प्राप्त होता है।

२. इसमें भुगतान की विधि निश्चित दी हुई होने से अधमर्ण को एवं उत्तमर्ण दोनों को ही कब भुगतान करना होगा अथवा भुगतान मिलेगा यह निश्चित विदित होता है। साथ ही में इस अवधि में अधमर्ण अपनी वस्तुएँ (Goods) बेचकर भुगतान के लिए व्यवस्था कर सकता है।

३. उत्तमर्ण अथवा आहर्ता को रोकड़ की आवश्यकता पड़ने पर वह इस विपत्र को अधिकोष में अपहरण कराकर रोकड़ प्राप्त कर सकता है तथा ये विपत्र परक्राम्य विलेख होने की वजह से अपने ऋणों के भुगतान में उपयोग किया जा सकता है।

४. देश विदेशों के ऋणों का भुगतान करने का यह सुरक्षित एवं सुविधा-जनक माध्यम है जिससे रोकड़ व्यवहार की आवश्यकता कम हो जाती है। विदेशी व्यापार में विशेषतः विनिमय-विपत्रों द्वारा ही सम्पूर्ण भुगतान किये जाते है जिससे एक दूसरे देश को स्वर्ण के आयात निर्यात से होनेवाले व्यय में भी बचत होती है।

हुंडी :

हुंडियों का प्रयोग भारत में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। हुंडियों का उपयोग भारत के सभी प्रांतों में प्रायः है और ये सभी भाषाओं में लिखी जाती हैं तथा लिखने का ढंग भी समान है। इन हुंडियों के भुगतान एवं चलन की पद्धति अधिकतर स्थानीय व्यापारिक व्यवहार पर निर्भर है। हुंडियों और विपत्रों में मूल भेद यह है कि हुंडियों का चलन भारतीय परक्राम्य विलेख विधान के अंतर्गत नहीं आता तथा ये केवल देशी भाषाओं में ही अपनी प्रचलित पद्धति के अनुसार लिखी जाती हैं। इनका उपयोग परक्राम्य विलेख विधान के अनुसार तभी हो सकता है जब इसका स्पष्ट उल्लेख हुंडी में कर दिया जाय, इन पर मुद्रांक कर नहीं लगता।

हुंडियों में भी विपत्रों की तरह तीन पक्षकार होते हैं, आहर्ता, आहार्यी एवं आदाता।

हुंडियों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है, एक उनकी अवधि के अनुसार तथा दूसरे उनके भुगतान की पद्धति के अनुसार। अवधि के अनुसार हुंडियां दो श्रेणियों में विभक्त होती हैं। दर्शनी हुंडी : जिसका भुगतान हुंडी को देखते ही करना पड़ता है। तथा दूसरे मिती अथवा मुद्दती हुंडी : जिसका भुगतान निश्चित अवधि के उपरांत, जो हुंडियों में दी होती है, होता है। इनके भुगतान की अवधि विशेषतः ४१, ६१ एवं ९० दिन की होती है, जो प्रांत प्रांत की पद्धति पर निर्भर रहता है।

भुगतान के अनुसार हुंडियों को चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

१. धनी जोग हुंडी : जिनका भुगतान केवल हुंडी में जिस व्यक्ति को भुगतान करने के लिए लिखा जाता है, उसी व्यक्ति को किया जाता है।

इस प्रकार की हुंडियों को दूसरा कोई व्यक्ति पृष्ठांकना अथवा बेचान द्वारा नहीं भुना सकता और न ऐसी हुंडियों का हस्तांतरण ही हो सकता है।

२. शाह जोग हुंडी : जिनका भुगतान केवल उस 'शाह' (धनी मानी व्यक्ति को) जिसका नाम हुंडी में दिया होता है को ही किया जाता है। ये हुंडी 'विशेष रेखित धनादेश' के समान होती हैं।

३. फरमान जोग हुंडी : फरमान का अर्थ है आदेश। अर्थात् ये वे हुंडियां होती हैं जिनका भुगतान उस हुंडी में लिखित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को हो सकता है। ये हुंडियां आदेश-धनादेश एवं आदेश-विपत्रों के समान ही होती हैं।

४. देखनदार जोग हुंडी : जिनका भुगतान जो भी व्यक्ति उस हुंडी को उपस्थित करे उसे होता है। ये हुंडियां वाहक-धनादेश की तरह ही होती हैं।

इसके अतिरिक्त जोखमी हुंडियां भी हमारे यहां प्राचीन काल में प्रचलित थीं जिनका अब चलन नहीं हैं। इस प्रकार की हुंडियों में नाविक, जो माल एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाता था, वह उस माल का आगोप (Insurance) करता था एवं हुंडियों का रुपया माल के भेजने वाले को उसी स्थान में दे देता था अथवा हुंडी को वह स्वयं ही खरीद लेता था। माल परेषणी के स्थान पर पहुँचने पर वह उससे उस हुंडी का भुगतान ले लेता था। अब इस प्रकार का व्यवहार प्रचलित नहीं हैं।

हुंडी से संबंधित शब्द प्रयोग :

१. सही करना = स्वीकृत करना (To accept)
२. भरी पाना = विपत्र का आदरण होना (To honour a bill)
३. वेचान करना = पृष्ठांकना करना (To endorse a bill)
४. खोखा हुंडी = आदरित हुंडी (Honoured bill)
५. फेरी आना = अनादरण होना ।
६. खोटी हुंडी = जिसमें किसी प्रकार के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गए हों एवं उस पर लेखीवाले (आहर्ता) के हस्ताक्षर न हों ।
७. लेखीवाला = आहर्ता

प्रतिज्ञा-अर्थ-पत्र (Promissory Notes) :

परिभाषा : भारतीय परक्राम्य विलेख विधान के अनुसार "प्रतिज्ञा-अर्थ-पत्र" वह लिखित विलेख है (जिसमें अधिकोप-पत्र-मुद्रा तथा चलार्थ पत्रमुद्रा नहीं आते), जिसमें लिखने वाला अपने हस्ताक्षर सहित यह प्रतिज्ञा करता है कि वह उसमें दी हुई निश्चित राशि, बिना किसी निर्बन्ध के, जिस व्यक्ति के नाम वह लिखा गया है उस निश्चित व्यक्ति को, अथवा उसके आदेशानुसार अथवा उसके वाहक को देगा ।[1]

उदाहरणार्थ—१. मैं 'ब' को अथवा उसके आदेशानुसार ५०० रुपये देने की प्रतिज्ञा करता हूं ।

२. मैं प्राप्त मूल्य के लिये 'व' का ऋण मान्य करता हूं तथा उसे अभियाचन पर देने की प्रतिज्ञा करता हूं ।

३. श्री 'व' आपके प्रति १०००) रुपये का ऋण मुझे देना है अथवा श्री ब धारयामिते (I. O. U.) १०००, रुपया ।

४. मैं व को ५०० रु० तथा अन्य जो राशि शेष होगी, उसे देने की प्रतिज्ञा करता हूं ।

५. मैं 'व' को अपने ऋण की राशि घटा कर ५०० रु० देने की प्रतिज्ञा करता हूं ।

---

[1] *A promissory note is an instrument in writing (not being a Bank note or Currency note) containing an unconditional undertaking signed by the maker to pay a certain sum of money only to or to the order of a certain person or to the bearer of the instrument.*
—Sec. 4.

६. मेरा 'क' के साथ विवाह हो जाने के ७ दिन पश्चात मैं य को ५०० रुपये देने की प्रतिज्ञा करता हूं।

७. मैं 'ध' की मृत्यु के बाद 'य' को ५०० रु० देने की प्रतिज्ञा करता हूं, यदि वह भुगतान करने के लिए पर्याप्त राशि छोड़ता है।

८. मैं आगामी वर्ष की जनवरी की १ तिथि को ५०० रु० तथा अपना घोड़ा देने की प्रतिज्ञा करता हूं।

उपर्युक्त उदाहरणों में केवल पहिले एवं दूसरे विलेख को प्रतिज्ञापत्र कहेंगे क्योंकि उसमें पाने वाला व्यक्ति तथा रकम भी निश्चित है। किन्तु उदाहरण ३ से ८ के पत्रों को हम प्रतिज्ञापत्र नहीं कह सकते क्योंकि उनमें से तीसरे में केवल स्वीकृति है प्रतिज्ञा नहीं, चौथे और पाँचवें उदाहरण में रकम निश्चित नहीं है, छटे में न रकम निश्चित है और न प्रतिज्ञा ही अनिर्बन्ध है, सातवें में प्रतिज्ञा अनिर्बन्ध नहीं है तथा आठवें में केवल रुपये देने की प्रतिज्ञा न होते हुए, घोड़ा देने की भी प्रतिज्ञा है।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिज्ञा अर्थ पत्र हम उसी विलेख को कहेंगे जिसमें भुगतान की राशि एवं व्यक्ति निश्चित रूप से दिये गये हैं तथा वह विलेख एक लिखित प्रतिज्ञा हो। प्रतिज्ञा पत्रों पर भी उनकी राशि के अनुसार मुद्रांक-कर लगता है। प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों में दो पक्ष होते हैं, एक प्रतिज्ञा अर्थ पत्र लिखने वाला तथा दूसरा जिसको प्रतिज्ञा दी जाती है अथवा जिसके नाम भुगतान करने की प्रतिज्ञा की जाती है। अर्थात् इनमें से एक लेखीवाला-अधमर्ण होता है तथा दूसरा आदाता-उत्तमर्ण होता है।

प्रतिज्ञा अर्थ पत्र यदि खो जाय तो संधारक, क्षतिपूर्ति का पूर्ण उत्तरदायित्व अपने पर लेकर, लेखीवाले से दूसरी प्रति प्राप्त कर सकता है।

पृष्ठांकना, परक्रामण भुगतान आदि संबंधी वही नियम इसमें भी लागू होते हैं जो विपत्रों में लागू होते हैं।

प्रतिज्ञा अर्थ पत्र तीन प्रकार के होते हैं :

१. वैयक्तिक प्रतिज्ञा अर्थ पत्र : जिनमें केवल एक ही लेखीवाला होता है तथा भुगतान करने का दायित्व भी उसी का होता है। यदि विलेख का वह भुगतान नहीं करता तो उसके विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जाती है; परन्तु इसके अनादरण होने पर विपत्रों की तरह लोकन एवं प्रमाणन (Noting & Protesting) की आवश्यकता नहीं होती।

सामूहिक प्रतिज्ञा अर्थ पत्र: जिनमें प्रतिज्ञा करने वाले एवं इस विलेख के लेखीवाले उसकी राशि के भुगतान का दायित्व सामूहिक रूप से स्वीकृत

करते हैं। इस दशा में यदि प्रतिज्ञा अर्थ पत्र का भुगतान नहीं होता संधारक को तो वैधानिक कार्यवाही प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध सामूहिक रूप से करनी चाहिये जिससे वह सब व्यक्तियों से भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी रहे। किन्तु यदि वह लेखीवालों के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही न करते हुए किसी एक ही व्यक्ति के विरुद्ध करता है एवं उसकी सम्पत्ति से पूर्ण भुगतान प्राप्त नहीं कर सकता, तो शेष राशि के लिये वह इस विलेख के अन्य लेखीवालों पर दायित्व स्थापन नहीं कर सकता। इसलिये सामूहिक प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों के अनादरण में लेखीवालों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही भी सामूहिक ही करनी चाहिये जिससे उस विलेख की पूर्ण राशि के लिये सबको उत्तरदायी बना सके।

३. सामूहिक एवं वैयक्तिक प्रतिज्ञा अर्थ पत्र (Joint & Several Promissory Notes) : इन प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों के लेखीवाले विलेख की राशि के भुगतान का दायित्व सामूहिक एवं वैयक्तिक रूप से स्वीकार करते हैं। अतः अनादरण होने की दशा में इनका संधारक प्रत्येक व्यक्ति के विरुद्ध अलग-अलग वैधानिक कार्यवाही कर सकता है, जब तक वह पूर्ण राशि प्राप्त न करले।

अन्य साख-विलेख

अधिकोष विपत्र (Bank Bills):

(अ) अधिकोष विकर्ष (Bank Draft): यह अधिकोष द्वारा अपनी शाखा को अथवा अन्य अधिकोष को अभियाचन पर किसी निश्चित व्यक्ति को, जिसका नाम उसमें दिया जाता है, एक निश्चित रकम देने का लिखित आदेश होता है। यह पत्र कोई भी व्यक्ति जिसका अधिकोष में लेखा है जितने का अधिकोष विकर्ष चाहता है उतनी राशि जमा करने पर प्राप्त कर सकता है।

अधिकोष विकर्ष रेखित भी किये जा सकते हैं अथवा उनका भुगतान आदेश पर भी किया जा सकता है परन्तु वास्तव में अधिकोष विकर्ष किसी निश्चित व्यक्ति के भुगतान के लिये ही दिये जाते हैं।

अधिकोष विकर्ष देश के एक स्थान से दूसरे स्थान पर अथवा देश से विदेश में राशि भेजने के लिये उपयोग में आते हैं तथा इनको देने में अधिकोष वर्तन के रूप में ग्राहक से शुल्क लेता है, जो उसका लाभ होता है। विदेशी अधिकोष-विकर्षों में यह वर्तन विनिमय दर में ही समाविष्ट होता है।

इसमें किसी भी प्रकार से कपट की संभावना नहीं रहती क्योंकि जिस अधिकोष को यह विकर्ष भेजा जाता है उसे इसकी पूर्व सूचना दी जाती है।

फिर भी विशेषतः ऐसा अनुभव है कि आहार्यी (Drawee) अधिकोष उन विकर्ष का भुगतान उस व्यक्ति को रोकड़ नहीं करते परन्तु उसके लेखे में वह राशि जमा करते हैं यदि उसका लेखा है, अन्यथा उसे किसी अन्य व्यक्ति से अभिज्ञान (Identify) करवा कर उसकी साक्षी भी लेते हैं। इन विपत्रों को अधिकोष-विपत्र (Bank Bill) भी कहते हैं।

(ब) अधिकोष स्वीकृति विपत्र (Bank Acceptances): सभी व्यापारी एक दूसरे से परिचित नहीं होते और ऐसी अवस्था में व्यापारिक विपत्र बिना जांच के कोई भी अन्य व्यापारी ऋण के भुगतान में लेना स्वीकार नहीं करता। ऐसी अवस्था में अधमर्ण व्यापारी अधिकोष के ऊपर विपत्र आहरित करता है जिसकी राशि उस विपत्र में लिखित व्यापारी को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को आहार्यी द्वारा दी जाती है। यह विपत्र अधिकोष अपने ग्राहक की ओर से जब स्वीकृत करता है उसे अधिकोष स्वीकृति विपत्र (Bank Acceptance) कहते हैं। अधिकोष पर इन विपत्रों के भुगतान करने का दायित्व नहीं रहता क्योंकि आहर्ता ग्राहक विपत्र की परिपाक-तिथि के पूर्व ही विपत्र का आदरण करने के हेतु उसकी राशि अधिकोष को देता है। ऐसे अधिकोष स्वीकृति विपत्र अधिकोष के स्थिति विवरण में सम्पत्ति एवं देयता पार्श्व में दिखाये जाते हैं क्योंकि एक ओर तो अधिकोष परिपाकतिथि पर इनका आदरण करने के लिये उत्तरदायी होता है एवं दूसरी ओर यह राशि उसको अपने ग्राहकों से लेनी होती है।

ऐसे विपत्रों से ग्राहकों को साख बढ़ती है तथा धन का स्थानांतरण सुगम होता है। दूसरे जब तक ऐसे विपत्रों का भुगतान आदाता उस अधिकोष से नहीं माँगता तब तक उसके निक्षेपों में भी वृद्धि होती है क्योंकि आदरण के लिये विपत्र की राशि परिपाक-तिथि के पूर्व ही ग्राहक अधिकोष के पास जमा कर देता है।

इन विपत्रों की स्वीकृति अधिकोष देता है अतः इन्हें 'अधिकोष-विपत्र' भी कहते हैं। इस प्रकार अधिकोष-विपत्रों में अधिकोष विकर्ष एवं अधिकोष स्वीकृति-विपत्र दोनों का समावेश होता है।

रोक ऋण (Cash Credits) के प्रचार की वजह से भारत में इनका उपयोग नहीं होता। इसके अतिरिक्त विपत्रों का मुद्रांक-कर, वस्तु-अधिकार प्रलेखों का अभाव, विपत्रों के सर्वमान्य प्रारूप के अभाव के कारण भी इस प्रकार के विपत्रों का चलन हमारे यहाँ नहीं है।

इन पत्रों में संधारक को नौ-प्रलेख (Shipping Documents) जैसे वहन-पत्र आदि दिखाने पर ही राशि मिल सकती है।

व्यापारिक साख में केवल उन पत्रों का समावेश होता है जो केवल व्यापारियों की सुविधा के लिए दिये जाते हैं। इनमें से अधिकोष स्वीकृति विपत्रों का विशेष प्रचार होता है। इसके अतिरिक्त दो प्रकार से सुविधा दी जाती है—एक निरसनीय (Revocable) सा० प० अथवा जो ग्राहक द्वारा किसी भी समय रद किये जा सकते हैं तथा दूसरे अनिरसनीय सा० प० (Irrevocable) जिसको दूसरे पक्ष की अनुमति बिना रद नहीं किया जा सकता है। अनिरसनीय साखपत्रों में अधिकोष इस प्रकार का आश्वासन देता है कि वह जिस व्यक्ति के पक्ष (Favour) में पत्र लिखा गया है, उसके विकर्ष, अथवा विपत्रों का आदरण एवं स्वीकृति देगा। इस पत्र के आधार पर विदेशी निर्यातकर्ता, जिस व्यक्ति के पक्ष में पत्र दिया गया है उसको माल भेजने में किंचित् भी नहीं डगमगाता क्योंकि आयातक द्वारा भुगतान न होने पर, उसे अधिकोष द्वारा भुगतान प्राप्त हो सकता है। अतः ये पत्र आयात निर्यात व्यापार में अधिक उपयोगी होते हैं तथा इस योजना के अंतर्गत जो विपत्र अधिकोष स्वीकृत करता है उनको अधिकोष स्वीकृति-विपत्र कहते हैं।

निरसनीय साख-पत्रों में योजना उपर्युक्त ही होती है किन्तु इन साख-पत्रों को ग्राहक या अधिकोष अपनी इच्छा से रद कर देते हैं अतः ये अधिक विश्वसनीय (Reliable) नहीं होते और न विदेशी व्यापार में इनका प्रचार ही विशेष होता है।

ये साखपत्र, राशि के अनुसार तीन प्रकार के हो सकते हैं :—

स्थायी-साखपत्र : इनमें व्यापारी की किसी निश्चित राशि तक ही आहरित (Fixed Credits) विपत्रों की स्वीकृति का उत्तरदायित्व अधिकोष पर होता है एवं जो किसी निश्चित अवधि में ही आहरित किये जा सकते हैं।

चलद् साखपत्र (Revolving Credits) : जिनमें एक निश्चित अवधि के लिये निश्चित राशि के विपत्रादि आहरित किये जा सकते हैं। परन्तु उसी अवधि में यदि एक विपत्र का भुगतान हो जाय तो पुनः उस राशि तक दूसरा विपत्र आहरित किया जा सकता है।

५. कोष विपत्र (Treasury Bills): उन साखपत्रों को कहते हैं जिनके निर्गमन से किसी देश की सरकार जनता से ऋण लेती है। ये विपत्र

भिन्न-भिन्न अवधि के लिये निर्गमित किये जाते हैं किन्तु अधिकतम अवधि ३ मास की होती है। ये विशेषतः सरकार की दैनिक आवश्यकताओं का व्यय चलाने के लिये रुपया प्राप्त करने के लिये निर्गमित किये जाते हैं तथा विज्ञापन द्वारा इनको क्रय करने के नियम अखबारों में समय-समय पर प्रकाशित किये जाते हैं। ये प्रांतीय अथवा केन्द्रीय सरकारों द्वारा २५०००), १ लाख रुपये, ५ लाख रुपये, १० लाख रुपये के मूल्य के निर्गमित किये जाते हैं।

६. अर्थ-विपत्र (Finance Bills): ये विपत्र भविष्य में उत्पादन होने वाली अथवा निर्माण होने वाली वस्तुओं के आधार-पत्र पर निर्माण किये जाते हैं। अतः ऐसे विपत्रों को अग्र-विपत्र (Anticipatory Bills) भी कहते हैं। ये विपत्र विशेषकर कृषि कार्यों के लिये अधिक उपयोगी हैं क्योंकि इनका भुगतान उत्पाद-विक्रय (Sale of Produce) पर किया जाता है तथा किसानों को अल्पकालीन ऋणों की भी अधिक आवश्यकता होती है, जिसके लिये उन्हें हमारे यहाँ साहूकारों तथा महाजनों पर निर्भर रहना पड़ता है जिनके व्याज की दर बहुत अधिक होती है। इसलिये ऐसे विपत्रों का उपयोग अधिकोषण जांच समिति ने भारत के लिये अपनाने की सिफारिश की थी।

इन साख पत्रों के अतिरिक्त प्रेपादेश (Postal Orders), चलार्थ पत्र (Currency Notes), अधिकोष पत्र (Bank Notes) आदि पत्रों का भी साखपत्रों में ही समावेश होता है जिनमें से अधिकोष तथा चलार्थपत्र संबंधी पूर्ण विवेचन प्रथम भाग में "पत्रमुद्रा" नामक अध्याय में हम कर चुके हैं और प्रेपादेश अधिकोषण में विशेष स्थान नहीं रखते।

प्रश्न संग्रह

१. अधिकोष अपने ऊपर किसी प्रकार का दायित्व न लेते हुए किन परिस्थितियों में ग्राहक के धनादेशों का अनादरण कर सकते हैं? किन-किन परिस्थितियों में अनादरण होने पर अधिकोष उत्तरदायी होगा।

२. निम्नलिखित विपत्रों का स्वरूप एवं उपयोग बताइए:—

   १. अधिकोष विपत्र   २. अर्थ विपत्र   ३. व्यापार विपत्र

३. साख किसे कहते हैं? अधिकोष साख किस प्रकार निर्माण करते हैं? उनकी साख-निर्माण शक्ति किन बातों से मर्यादित है?

४. "साख ही पूंजी है" क्या आप इस उक्ति से सहमत हैं? सकारण उत्तर दीजिये। साख से कौन से लाभ अथवा हानियाँ हैं?

५. निम्नलिखित वस्तुओं के कार्य पूर्ण रूप से बताइये :—

(i) धनादेश (ii) विनिमय विपत्र (iii) अधि-विकर्ष

तथा 'परक्राम्य विलेख' से आप क्या समझते हैं ?

६. 'रेखांकन' किसे कहते हैं ? रेखांकन कितने प्रकार का होता है एवं उसका क्या कार्य तथा महत्त्व होता है ? सोदाहरण विवेचना कीजिये।

७. 'पृष्ठांकना' की परिभाषा लिखते हुए पृष्ठांकना के प्रकार सोदाहरण बताइये ? किस परिस्थिति में पृष्ठांकित धनादेश के अनादरण से अधि-कोष उत्तरदायी नहीं होता ?

८. उद्बोधक टिप्पणियां लिखिये :—

(i) विशेष रेखांकन (ii) वीतकालीय धनादेश (iii) रोक-ऋण (iv) यथाविधि-धारी (v) यथाविधिभुगतान (vi) उपस्थिति का समुचित समय (vii) कोष विपत्र।

९. पूर्ण रीति से सावधानी लेने के उपरांत, निम्नलिखित परिस्थिति में अधिकोष परक्राम्य विलेख विधान के अंतर्गत कहां तक सुरक्षा प्राप्त कर सकता है :—

(i) वह 'क' की कूट पृष्ठांकना के धनादेश का भुगतान करता है तथा 'क' उसका ग्राहक है।

(ii) वह 'क' के कूट हस्ताक्षरों के धनादेश का भुगतान करता है जब 'क' उसका ग्राहक नहीं है।

(iii) वह ऐसे धनादेश का भुगतान करता है जिसकी राशि कूटकर्मों द्वारा बढ़ा दी गई है।

१०. 'महत्त्वपूर्ण परिवर्तन' किसे कहते हैं ? किन-किन परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ माना जाता है तथा कौन से परिवर्तन 'महत्त्वपूर्ण' नहीं समझे जाते ?

११. 'संग्राहक अधिकोष' किस परिस्थिति में यथाविधि-धारी हो सकता है ? यथाविधि-धारी तथा संग्राहक अधिकोष के परस्पर अधिकार एवं दायित्व का विवेचन कीजिये।

१२. 'परक्राम्य विलेख' क्या होता है ? निम्नलिखित परक्राम्य विलेख हैं अथवा नहीं, सकारण लिखिये :—

(i) धनादेश, (ii) हुंडी, (iii) विनिमय विपत्र (iv) अंश अधिपत्र (v) वहन-पत्र।

१३. शोधक अधिकोष का धनादेशों के भुगतान पर क्या दायित्व होता है ? किन परिस्थितियों में धनादेशों के भुगतान में वह प० वि० विधान के अंतर्गत सुरक्षा प्राप्त कर सकता है ?

१४. वह कौनसी परिस्थिति है जिसमें अधिकोष ग्राहक के धनादेशों का अनादरण कर सकता है और ऐसे अनादरण में दायी भी नहीं होता ?

१५. विनिमय-विपत्र तथा हुंडियों में कौनसा साम्य-भेद है ? क्या इन दोनों का परक्रामण प० वि० विधान के अंतर्गत आता है ?

१६. साख से लाभ हानि कौनसी हैं ? उद्योग एवं व्यापार को साख प्राप्त करने के कौनसे भिन्न भिन्न मार्ग हैं ?

१७. निम्न लिखित परिस्थिति में आप किस प्रकार रुपया भेजेंगे ?

१. यदि बम्बई के एक व्यौपारी को आपको ५०,००० रु० भेजना हैं।
२. यदि लन्दन स्थित किसी सार्थ अथवा प्रमण्डल को आपको ५०,००० रु० भेजना हैं।

१८. निम्नलिखित विलेखों में कौनसा साम्य-भेद है :—धनादेश, विनिमय विपत्र, प्रतिज्ञा अर्थ पत्र, हुंडी।

१९. 'साख' में कौनसे विशेष तत्त्व निहित होने चाहिये ? 'साख पूंजी है' इससे आप कहाँ तक सहमत हैं ? व्यापारिक एवं औद्योगिक उन्नति के लिए साख का क्या महत्त्व है।

———.———

हुंडियों के प्ररूप

१—दर्शनी हुंडी :

सिद्ध श्री कलकत्ता शुभस्थाने भाई श्री० श्रीनारायण अग्रवाल जोग लिखी गवालियर से पिंडीलाल कचोड़ीमल की जयगोपाल वंचना। अपरंच हुंडी कीन्हीं एक आप ऊपर रु० २०००), अंकन दो हज़ार रुपया के नीमे एक हज़ार के दूने पूरे यहाँ राख्या भाई मानकचन्द नथमल जैन कानपुर वालों के मिती कातिक बदी ५ से पहुंचे। दाम धनी जोग बिना जाब्ता रुपया बाजार चलन हुंडी की रीत ठिकाने लगाय दाम चोकस कर देना। मिती कातिक वदी ५ संवत् २००६।

लिखी पिंडीलाल कचोड़ीमल की जयगोपाल वंचना

उपर्युक्त हुंडी का पृष्ठ भाग :—

रुपया २०००)

नीमे के नीमे पाँचसौ का
चौगुना पूरा रुपया दो हजार कर देना।

ठिकाना—भाई श्री० श्री नारायण अग्रवाल, २४ क्लाइव स्ट्रीट स्क्वेयर, कलकत्ता.

मुद्दती हुन्डी का प्ररूप :—

> सिद्ध श्री बंबई शुभस्थाने भाई श्री गोवर्धनदास लक्ष्मण दास मिश्रा जोग लिखी कलकत्ता से पूरनचन्द-कजोड़ीमल की जैगोपाल बंचना जी। अपरंच हुंडी कीन्हीं आप पर नग एक रुपया २०००) अंकन रुपया दो हजार के नीमे एक हजार के दूने पूरे यहाँ राख्या श्री भारत बैंक लिमिटेड कलकत्ता वालों के पास मिती वैशाख सुदी १२ से दिन ६१ इकसठ पीछे नामे शाह जोग हुंडी चलन कलदार देना मिती वैशाख सुदी १० संवत् २००५।
>
> लिखी पूरनचन्द कजोड़ीमल की जैगोपाल बंचना जी

उपर्युक्त हुन्डी का पृष्ठभाग :—

> रुपया २०००)
>
> नीमे के नीमे पांचसौ का चौगुना
> पूरा रुपया दो हजार कर देना।
>
> ठिकाना—भाई श्री गोवर्धनदास लक्ष्मणदास मिश्रा,
> फोर्ट, बंबई

प्रतिज्ञा अर्थ पत्र का प्ररूप :—

१—वैयक्तिक प्रतिज्ञा-अर्थ-पत्र

मुद्रांक	२५०) रुपये	वर्धा
		तिथि १ जुलाई १९४९

मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि उपर्युक्त तिथि के तीन माह पश्चात् मैं श्री० गिरिराज प्रसाद गुप्त को ढाई सौ रुपये प्रदान करूंगा।

हस्ताक्षर : चन्द्रमोहन पचौरी

२—सामूहिक प्रतिज्ञा-अर्थ-पत्र

मुद्रांक	रु० १०००)	कानपुर, १० जुलाई १९४९

हम प्रतिज्ञा करते हैं कि इस तिथि के दो मास उपरांत श्री० गिरिराज प्रसाद गुप्त को एक हजार रुपये, प्राप्त मूल्य के, प्रदान करेंगे।

हस्ताक्षर: { रामचन्द्र पन्नालाल कटक
विक्रमाजीत सिंह

३—सामूहिक एवं वैयक्तिक

मुद्रांक	रु० १०००)	कानपुर, ५ नवम्बर १९४९

हम व्यक्तिशः तथा सामूहिक प्रतिज्ञा करते हैं कि इस तिथि के तीन मास उपरांत श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव को एक हजार रुपये, प्राप्त मूल्य के, प्रदान करेंगे।

हस्ताक्षर { हरिहरसहाय अग्रवाल
रामचन्द्र पन्नालाल अग्रवाल

अध्याय ६

अधिकोषण लेखों के प्रकार

अधिकोप के कार्यों का विवेचन करते समय हमने यह बताया था कि अधिकोप अपने व्यवहार के लिये दो प्रकार से धन प्राप्त करते हैं। पूँजी से, अन्य अधिकोप अथवा संस्थाओं से, व्यक्तियों से ऋण लेकर निक्षेप रूप में। इनमें से प्रथम पद्धति का विवेचन भी हम कर चुके हैं।

अधिकोप के निक्षेप लेखे: अधिकोप जनता से, संस्थाओं तथा प्रमंडलों आदि से निक्षेप रूप में ऋण लेते हैं तथा ये निक्षेप लेखे तीन प्रकार के होते हैं :—

१. चल निक्षेप लेखा (Current A/c), २. स्थायी निक्षेप लेखा तथा ३. संचय निक्षेप लेखा

इनमें से प्रत्येक लेखे का विस्तृत विवेचन हम यहाँ करेंगे :—

१. चल निक्षेप लेखा: इस लेखे में व्यापारिक समय में राशि जमा करने पर अथवा निकालने पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होता इसलिये व्यापारी वर्ग विशेषतः अपनी रोकड़ चल निक्षेप लेखे में ही जमा करते हैं। प्रो० टैनन के अनुसार प्रथम श्रेणी के अधिकोप चल निक्षेपों पर कोई भी वृद्धि नहीं देते तथा इस लेखे की न्यूनतम मर्यादा निश्चित करते हैं, जिस मर्यादा के अनुसार इस लेखे का शेष कुछ निश्चित राशि से कम नहीं होना चाहिये किन्तु यदि वह कम होता है तो उस दशा में ग्राहक से अधिकोप आनुसंगिक व्यय (Incidental charges) लेते हैं, जो उनका लाभ होता है। इस लेखे में जो निक्षेप हैं वह किसी भी समय धनादेशों द्वारा निकाला जा सकता है तथा अधिकोषों पर इन धनादेशों का आदरण करने का उत्तरदायित्व होता है। भारत में कुछ अधिकोप निक्षिप्त राशि की (Deposited Amount) न्यूनतम मर्यादा निश्चित कर देते हैं, तथा उस राशि पर २% प्रतिशत वार्षिक ब्याज देते हैं किन्तु इस प्रकार दिये हुए

त्रैमासिक व्याज की रकम ३) से ५) से कम नहीं होनी चाहिये। इस न्यूनतम राशि का उपयोग अधिकोष पूर्ण स्वतंत्रता से कर सकते हैं।[1] तथा जो ग्राहक १००,००० रुपये से अधिक राशि रखते हैं उनके साथ अधिकोष विशेष व्यवस्था करता है।

इस लेखे पर अधिकोष का उत्तरदायित्व भी अधिक होता है क्योंकि ग्राहक प्रतिदिन धनादेशों से चाहे जितनी राशि आहरित कर सकता है, जिसका पूर्वज्ञान अथवा किसी भी प्रकार का अंदाज अधिकोष पहिले से नहीं लगा सकता, इसलिये अधिकोषों को अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति के लिये सदैव अधिक परिमाण में रोकनिधि रखनी पड़ती है। इस प्रकार के व्यवहार व्यापारियों को अधिक लाभदायक होते हैं।

चल लेखा खोलने की विधि: कोई भी लेखा खोलने के पूर्व अधिकोष को भावी ग्राहक का व्यापार कौनसा है एवं किस प्रकार का लेखा वह खोलना चाहता है—यह जान लेना चाहिये। इसके साथ ही अधिकोष को उस व्यक्ति से परिचित व्यक्तियों अथवा संस्थाओं, से संदर्भ लेना चाहिये जिससे ग्राहक की आर्थिक परिस्थिति एवं आर्थिक व्यापारिक व्यवहारों आदि ज्ञातव्य बातों की पूर्ण जानकारी वह प्राप्त कर सके, जिससे वह व्यक्ति ग्राहक बनाने योग्य है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में निश्चय कर सके। इस प्रकार के संदर्भ से एवं अन्य मार्गों से अधिकोष को अपने भावी ग्राहक की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के बाद ही उसका लेखा खोलना चाहिये। इससे वह अपने को ग्राहक के कपट-पूर्ण कृत्यों से सुरक्षित कर सकता है तथा उसे आर्थिक हानि की संभावना नहीं रहती। दूसरे ग्राहक की आर्थिक स्थिति के विषय में भी उसे अन्य ग्राहकों की अथवा अन्य अधिकोषों की गोपनीय जाँच का उत्तर देना पड़ता है, जिसके लिये यह ज्ञान उसे आवश्यक होता है। एवं तीसरे, लेखा खोलने के पूर्व यदि वह ज्ञातव्य बातों का ज्ञान प्राप्त नहीं करता तो उसको परक्राम्य विलेख विधान के अंतर्गत वैधानिक (legal) संरक्षण (Protection) भी नहीं मिल सकता क्योंकि लेखा खोलने में उसने उपेक्षा से काम किया है। अतः ग्राहक एवं अधिकोष दोनों की ही दृष्टि से ग्राहक की आर्थिक स्थिति एवं आर्थिक व्यवहारों के संबंध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना अधिकोष को आवश्यक है।

जब इन प्रारम्भिक (Preliminary) कार्यों की पूर्ति हो जाती है तब अधिकोष ग्राहक के निदर्शन हस्ताक्षर दो पत्रकों (Cards) पर ले लेता है

---

[1] *Refer D. S. Sarkar on Joint-Stock Banking in India.*

तथा ये पत्रक, पत्रक-निर्देशक प्रमंजूषा (Card Index Cabinet) में अक्षर क्रम (Alphabetical order) में रखे जाते हैं, जिससे धनादेश आदि पर किये गए ग्राहक के हस्ताक्षरों को इन हस्ताक्षरों से मिलाया जाता है। अतः धनादेश पर किये हुए हस्ताक्षर निदर्शन हस्ताक्षर से मिला होने चाहिये अन्यथा धनादेश का आदरण नहीं होगा। यदि ग्राहक किसी अन्य व्यक्ति को धनादेश आदि आहरित करने का अधिकार देता है तो उसके निदर्शन हस्ताक्षर तथा उसके नाम का अधिकार पत्र अधिकोष अपने पास रखेगा।

उपरोक्त चल लेखे में प्रथम बार राशि जमा करने पर अधिकोष अपने ग्राहक को तीन पुस्तिकाएँ देता है :—

१. निक्षेप-पर्णी पुस्तिका (Pay-in Slip Book), २. धनादेश-पुस्तिका (Cheque Book) तथा ३. ग्राहक पुस्तिका (Pass Book)।

निक्षेप पर्णी पुस्तिका : में राशि जमा कराने की बहुत सी पर्णियाँ, विशेषतः २५, रहती हैं। कभी कभी अधिकोष इन पर्णियों की पुस्तिका में न रखते हुए अबद्ध (Loose) भी रखते हैं। राशि जमा करते वक्त अधिकोष में इस पर्णी को भर के राशि भेजी जाती है। पर्णी का उदाहरण :—

श्री भारत बैंक लिमिटेड, कानपुर। तिथि.............. निक्षेपक....................			लेखा क्रमांक............ श्री भारत बैंक लिमिटेड, कानपुर कानपुर.........१९५ राशि विवरण			
	रु०	आ		रु०	आ	
पत्र मुद्रा ...			पत्र मुद्रा ...			श्री......के
स्वर्ण मुद्रा ...			स्वर्ण मुद्रा ...			चल लेखे में
रौप्य मुद्रा ...			रौप्य मुद्रा ...			समाकलित
सिक्के अन्य) ...			सिक्के (अन्य)...			कीजिये
धनादेश ...			धनादेश ...			राशि......
विपत्र, आदि ...			विपत्र आदि ...			....
योग			योग			निक्षेपक
रोकपाल लेखापाल अभिकर्ता			रोकपाल लेखापाल अभिकर्ता			

उपर्युक्त पर्णी के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा कि पर्णी दो भागों में विभाजित होती है जिनमें से वाम भाग (Left Portion) को प्रति पर्णी

(Counterfoil) तथा दक्षिण भाग (Right Hand Portion) को प्रमुख पर्णी कहते हैं। इस पर्णी में जमा करने के लिए कब कितनी राशि भेजी गई है उसका संपूर्ण विवरण दिया जाता है तथा दक्षिण भाग पर निक्षेपक (Depositor) एवं अभिकर्ता दोनों के हस्ताक्षर होते हैं। यह पर्णी राशि के साथ भेजी जाती है जिससे अधिकोष का रोकपाल (Cashier) पूर्ण मिलान करने के बाद राशि जमा कर लेता है तथा प्रमुख पर्णी अपने पास रखकर प्रतिपर्णी पर हस्ताक्षर करके अधिकोष की मुद्रा (Seal) लगा देता है। यह प्रतिपर्णी ग्राहक के पास अधिकोष में राशि जमा की गई—इस बात का प्रमाण रहती है। प्रतिपर्णी पर विशेषतः केवल रोकपाल ही हस्ताक्षर करता है, जो प्राप्ति के लिये पर्याप्त प्रमाण समझे जाते हैं।

ग्राहक-पुस्तिका (Pass Book): ग्राहक का अधिकोष की प्रपंजी में लेखा जिस प्रकार से रखा जाता है उसीकी प्रतिलिपि, उसी प्रकार से ग्राहक पुस्तिका में लिखी जाती है। ग्राहक अपने लेखे में समय-समय पर जो राशि जमा करता है एवं निकालता है, ग्राहक को जो व्याज आदि अधिकोष से मिलता है अथवा जो वर्तन, शुल्क आदि अधिकोश ग्राहक से लेता है उसकी पूर्ण प्रविष्टि तिथिक्रमानुगत (In Chronologic Order) ग्राहक-पुस्तिका में लिखी जाती है। जो राशि ग्राहक जमा करता है वह ग्राहक-पुस्तिका के वाम भाग में तथा जो राशि वह निकालता है वह दक्षिण भाग में लिखी जाती है। यह पुस्तिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें ग्राहक एव अधिकोष के बीच जो व्यवहार होते हैं उनका पूर्ण समावेश होता है और यह पुस्तिका अधिकोष द्वारा लिखी जाती है। अतः इसमें प्रत्येक व्यवहार की प्रविष्टि (Entry) का उत्तरदायित्व अधिकोष पर रहता है। फिर भी ग्राहक को इस पुस्तिका की प्रविष्टि ठीक है या नहीं, यह देख लेना चाहिये। इस पुस्तिका को अधिकोष से प्राप्त करने के उपरांत यदि वह उसे रख लेता है तो उससे यह तात्पर्य है कि उसमें की गई प्रत्येक प्रविष्टि उसने ठीक मान ली है।

इस पुस्तिका को ग्राहक समय-समय पर विशेषतः महीने में एक बार अधिकोष में भेजता है जिससे प्रविष्टियां अद्यावत (Up-to-date), रह सकें तथा इसको वह अपने प्रपंजी के "अधिकोष लेखे" (Bank A/c) से मिलाता है। परन्तु फिर भी ग्राहक के अधिकोष लेखे का शेष ग्राहक-पुस्तिका से मिलेगा ही—यह बात नहीं है क्योंकि ऐसी कई बातें होती हैं जो इन दोनों पुस्तकों के शेषों में अंतर डालती हैं। यह अंतर आने के लिये निम्नलिखित बातें कारण होती हैं :—

१. निक्षिप्त धनादेशों से ग्राहक अपनी प्रपंजी में अधिकोष लेखा विकलित

करता है परन्तु ग्राहक-पुस्तिका में इसकी प्रविष्टि तब तक नहीं होती जब तक धनादेशों की राशि अधिकोष प्राप्त नहीं कर लेता।

२. अधिकोष शुल्क, वर्तन आदि जो ग्राहक से अधिकोष लेता है उसे वह केवल ग्राहक-पुस्तिका में प्रविष्टि करता है एवं जिसकी जानकारी ग्राहक को केवल इस पुस्तिका से ही मालूम होती है। क्योंकि जब अधिकोष प्रविष्टि करता है वह इसकी सूचना ग्राहक को नहीं देता और न देने की आवश्यकता ही होती है।

३. अपहृत विपत्रों (Discounted Bills) का अनादरण, जिसका उल्लेख केवल ग्राहक-पुस्तिका में ही होता है किन्तु ग्राहक के अधिकोष लेखे में नहीं होता।

४. ग्राहक द्वारा आहरित धनादेश जिनकी प्रविष्टि ग्राहक-पुस्तिका में तब तक नहीं होती जब तक उनका भुगतान न हो जाय किन्तु ग्राहक धनादेश काटते ही अपने प्रपंजी में अधिकोष लेखा समाकलित (Credit) कर देता है।

५. निक्षिप्त राशि पर ब्याज जिसकी प्रविष्टि केवल ग्राहक-पुस्तिका में ही होती है और ग्राहक को उसकी जानकारी भी नहीं होती।

अतः जब ग्राहक अपने प्रपंजी के अधिकोष लेखे का मिलान ग्राहक-पुस्तिका के लेखे से करता है, उस समय दोनों के शेष में अंतर होनेपर उसे अधिकोष समाधान विवरण (Bank Reconciliation Statement) बनाना पड़ता है जिससे ग्राहक-पुस्तिका के शेष का मिलान प्रपंजीके अधिकोष लेखे से वह कर लेता है।

अतः ग्राहक-पुस्तिका ग्राहक एवं अधिकोष दोनों की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण पुस्तिका है क्योंकि इस पुस्तिका में सब प्रविष्टि अधिकोष द्वारा होती है इसलिये यदि इन प्रविष्टियों की गलती पर ग्राहक किसी प्रकार की आपत्ति नहीं करता तो यह प्रमाण है कि इस पुस्तिका की सब प्रविष्टियाँ ग्राहक ने मानली हैं। यह पुस्तिका किसी भी समय अधिकोष के विरुद्ध प्रमाण देने में भी उपयोग में लाई जा सकती है इसलिये इस पुस्तिका की प्रविष्टियाँ अत्यन्त सावधानी पूर्वक एवं ठीक ठीक करनी चाहियें। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि अधिकोष ने ग्राहक-पुस्तिका में १००) रुपया समाकलित न करते हुए भूल से १५०) रुपया समाकलित किये एवं ग्राहक का समाकलन शेष १०० से न बढ़ाते हुए १५० रुपये से बढ़ा दिया और ग्राहक इस प्रविष्टि को ठीक समझकर अपने लेखे पर उस रकम का धनादेश आहरित करता है तो अधिकोष उसे अनादरित नहीं कर सकता, अपितु अनादरण करने पर वह ग्राहक की क्षतिपूर्ति का उत्तर-

दायी होगा। इसलिये ऐसी भूल जब कभी भी अधिकोष जान ले, उसकी सूचना ग्राहक को तुरन्त ही देनी चाहिये तथा उसका संशोधन (Correction) करना चाहिये, एवं जब तक ग्राहक की अनुमति प्राप्त न हो तब तक उसको ग्राहक के सब धनादेशों का आदरण करना चाहिये। इसी प्रकार कोई भूल ऐसी हो जाय तो ग्राहक को सूचना देकर ऐसी भूल का सुधार किया जा सकता है। इसी प्रकार ग्राहक भी अपनी ग्राहक-पुस्तिका को देखने के लिये उत्तरदायी है क्योंकि यदि कोई भी गलती उसमें ऐसी हो गई हो जो ग्राहक को मालूम हो सकती थी अथवा उसको मालूम थी तथा ऐसी गलती मालूम होने के बाद भी अधिकोष से उसने सुधार नहीं करवाया, जिससे किसी भी प्रकार से अधिकोष को क्षति पहुँची हो, तो ग्राहक ने उपेक्षा से काम लिया अतः वह अधिकोष की क्षति-पूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा। फिर भी भूल से किसी राशि की प्रविष्टि यदि ग्राहक-पुस्तिका में नहीं हुई और उसकी जानकारी ग्राहक किसी कारणवश न कर सका तो ऐसी राशि किसी भी दशा में अधिकोष अपने पास ग्राहक की उपेक्षा के बहाने, नहीं रख सकता। ग्राहक-पुस्तिका का निदर्शन पृष्ठ ३७६ पर दिया हुआ है।

धनादेश पुस्तिका (Cheque Book): धनादेश पुस्तिका में १०, २५, ५० अथवा १०० धनादेश के प्रपत्र रहते हैं। तथा लेखा खोलने के उपरान्त यह पुस्तिका भी ग्राहक को दी जाती है जिससे वह अपनी राशि इन धनादेशों द्वारा आहरित कर सके। यह पुस्तिका अधिकोष बिना किसी शुल्क के देता है तथा यह पुस्तिका पूर्ण हो जाने पर दूसरी पुस्तिका देता है। जैसा कि हमने साख-पत्रों के अध्याय में देखा, धनादेश एक अनिर्बन्ध लिखित आदेश होता है इसलिये वास्तव में देखा जाय तो यह लिखित आदेश किसी विशेष प्रकार के प्रपत्र में हो ऐसा कोई भी वैधानिक बन्धन नहीं है। अपितु ग्राहक किसी भी कागज पर आदेश देकर निर्दिष्ट राशि अपने लेखे से निकाल सकता है, किन्तु सुविधा की दृष्टि से एवं व्यवहार में कुत्कार्यों से बचने के लिये यह आदेश अधिकोष द्वारा दिये गए मुद्रित प्रपत्रों पर ही लिखे जाते हैं; अन्य साधारण प्रपत्रों पर लिखे गए आदेश अधिकोष स्वीकार नहीं करता। धनादेश भी निक्षेप-पर्णी (Pay-in Slip) की तरह दो भागों में विभक्त होते है जिसमें से वामभाग को प्रतिपर्णी कहते हैं एवं यह प्रतिपर्णी धनादेश ग्राहक अपने पास सन्दर्भ (Reference) के लिये रखता है तथा दक्षिण भाग जिसे प्रमुख धनादेश कहते हैं जो आदाता को दिया जाता है। यह धनादेश पूर्ण रूप से एवं ठीक पद्धति पर भरने से ही अधिकोष द्वारा आदरित किया जाता है अन्यथा नहीं (देखिये अध्याय ८ 'साख और साखपत्र)।

ग्राहक पुस्तिका

नाम :— श्री पिन्डीलाल गटरू मल, कपड़े के व्योपारी,

पता :— जनरलगंज, कानपुर,

हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक, मेस्टन रोड शाखा के साथ

चल लेखा

तिथि (Date)	विवरण (Particulars)	राशि विकलन			हस्ताक्षर	राशि समाकलन			विक० अथवा समा०	शेष		
		रुपया	आ	पा.		रुपया	आ	पा.		रुपया	आ	पा.
१ जनवरी ५१	शेष अग्रे आनीत	५०००	—	—	अ ब क	—	—	—	विक०	५०००	—	—
१ जनवरी ५१	रोकड़	—	—	—	अ ब क	१००००	—	—	समा०	५०००	—	—
२ जनवरी ५१	आहरित धनादेश	३०००	—	—	अ ब क	—	—	—	समा०	२०००	—	—
	शेष अग्रेनीत								समा०	२०००	—	—

जैसा कि ऊपर कहा गया है धनादेश अधिकोष द्वारा दिये गये धनादेश प्रपत्रों पर ही आहरित होने चाहियें अन्यथा उनका अनादरण हो जाता है। इस बात का ग्राहक पर बन्धन डालने के लिये अधिकोष आवेदन पत्र में निर्बन्ध डाल देते हैं जो ग्राहक और अधिकोष के बीच संविदा होता है।

इन मुद्रित धनादेश-प्रपत्रों से अधिकोष एवं ग्राहक दोनों को ही लाभ होता है। मुद्रित प्रपत्रों से निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

पहिले, कोई भी व्यक्ति जो ग्राहक के कूट हस्ताक्षर कर सकता है, उसे कूट कर्मों का करना असंभव हो जाता हैं क्योंकि वह ग्राहक का धनादेश प्रपत्र प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि ग्राहक स्वयं भी कूटकर्मों से बचने के लिये धनादेश पुस्तिका की सुरक्षा रखता है। दूसरे, ये प्रपत्र एक विशेष प्रकार के कागज पर मुद्रित (छपे हुए) होने के कारण इन पर किसी भी प्रकार का किया हुआ परिवर्तन सहजता से ज्ञात हो जाता है । तीसरे, प्रत्येक ग्राहक की धनादेश पुस्तिका पर एक विशेष अंक होता है जिसकी वजह से अधिकोष उस अंक के देखने से ग्राहक का लेखा अथवा अन्य आवश्यक संदर्भ शीघ्र प्राप्त कर सकता है। चौथे, ग्राहक को भी वैधानिक प्रपत्र में आदेश लिखने का कष्ट नहीं होता। पाँचवें, प्रत्येक धनादेश पर अनुक्रमांक (Serial Number) होने से ग्राहक, आवश्यकता पड़ने पर अथवा किसी प्रकार के कूट (Fraud) का ज्ञान होने पर अधिकोष को धनादेश क्रमांक देकर उसका भुगतान स्थगित (Stop) कर सकता है तथा धनादेश की राशि अन्य अनधिकृत व्यक्तियों के हाथ में जाने से रोक सकता है । इसलिये यह पुस्तक विशेष महत्त्व की है, जो ग्राहक को बहुत सावधानी से रखनी चाहिये ।

संचय निक्षेप लेखा (Savings Deposit A/c): यह लेखा विशेषतः कम आय वाले व्यक्तियों के लिये अधिक उपयुक्त होता है तथा इस प्रकार संचय की सुविधा देने से जनता में बचत की आदत निर्माण की जाती है। इस लेखे में मासिक न्यूनतम राशि पर ब्याज देते हैं जो आजकल १½ प्रतिशत से २½ प्रतिशत वार्षिक की दर से दिया जाता है। इस प्रकार के लेखे से आहरण प्रपत्र (Withdrawal Form) भरने पर अधिकोष से राशि निकाली जा सकती है। इस प्रकार की राशि सप्ताह में केवल एक बार अथवा दो बार निकाली जा सकती है तथा सप्ताह में १०० रु० से अधिक राशि प्रायः निकाली नहीं जा सकती। यदि राशि अधिक निकालनी हो तो अधिकोष नियमानुसार पर्याप्त सूचना ग्राहक को देनी पड़ती है। वार्षिक अधिकतम निक्षिप्त राशि भी ५००० रु० से प्रतिवर्ष अधिक जमा नहीं रखी जा सकती ।

यह लेखा खोलने के पूर्व किसी भी व्यक्ति को पहिले आवेदन-पत्र (Application) भरना पड़ता है जिसमें ग्राहक का नाम, व्यवसाय, पता आदि लिखना पड़ता है, तथा कितनी राशि वह प्रथम बार निक्षेप में रखना चाहता है यह भी देना पड़ता है। इस प्रकार का आवेदन-पत्र प्रत्येक प्रकार

का लेखा खोलने के पूर्व ग्राहक को भरना पड़ता है। इसकी स्वीकृति के बाद एवं प्रथम निक्षेप-राशि जमा करने पर ग्राहक को ग्राहक-पुस्तिका दी जाती है। रुपया निकालते समय ग्राहक को आहरण-प्रपत्र अपने हस्ताक्षर कर अधिकोष को ग्राहक-पुस्तिका के साथ देना पड़ता है जिससे वह राशि निश्चित निर्बन्धों के अनुसार, उसे प्राप्त हो जाती है। इस आहरण-प्रपत्र के हस्ताक्षर निदर्शन हस्ताक्षर जैसे ही होने चाहियें अन्यथा रुपया नहीं मिल सकता। आहरण की प्रविष्टि के बाद यह पुस्तिका ग्राहक को वापिस की जाती है।

ग्राहक पुस्तिका में ग्राहक की निक्षिप्त राशि, आहरित राशि तथा उसकी शेष निधि क्रमानुसार दी जाती है।

हमारे यहां कई अधिकोष संचय निक्षेप लेखे पर भी धनादेश आहरित करने की सुविधा देते हैं परन्तु धनादेशों द्वारा भी राशि उपर्युक्त निर्बन्धों के अनुसार ही निकाली जाती है। इस प्रकार धनादेशों की सुविधा, पंजाब नेशनल बैंक, हिन्दुस्थान कमर्शियल बैंक, भारत बैंक, कोमिल्ला यूनियन बैंक आदि देते हैं। इस प्रकार के लेखे पर अधिविकर्ष (Overdraft) की सुविधा नहीं दी जाती किन्तु अधिकोष ग्राहक के धनादेश आदि संग्रहण करने की सुविधा तथा सुरक्षा के लिये वस्तुएँ स्वीकार करने की सुविधा देते हैं। यह लेखा अगर किसी कारणवश ६ महीने के पूर्व बंद किया जाय तो अधिकोष ग्राहक से ग्राहक-पुस्तिका का मूल्य, विशेषतः १ रुपया, लेते हैं, अन्यथा यह पुस्तिका निःशुल्क दी जाती है। इसी प्रकार यदि ६ वर्षों में किसी भी प्रकार का व्यवहार इस लेखे पर न किया जाय तो लेखा बंद समझा जाता है।

स्थायी निक्षेप लेखा (Fixed Deposit A/c) : जो व्यक्ति किसी निश्चित अवधि के लिए अपनी राशि जमा कराना चाहते हैं वे इस लेखे में करते हैं क्योंकि इस लेखे पर ब्याज की दर भी अधिक होती है। यह राशि जिस अवधि के लिये जमा की जाती है, उस अवधि के अंत में ही निकाली जा सकती है, परन्तु ग्राहक यदि समयान्त के पूर्व निकालना चाहता है तो उसे अधिकोष के नियमानुसार पर्याप्त सूचना देना आवश्यक होता है। इस लेखे पर ब्याज की दर २ प्रतिशत से ६% प्रतिशत प्रतिवर्ष की दी जाती है। भिन्न भिन्न अधिकोष भिन्न भिन्न दरों पर ब्याज देते हैं, विशेषतः अच्छी ख्याति के अधिकोष ब्याज की दर कम रखते हैं। साधारणतः स्थायी निक्षेप ६ महीने से २ वर्ष अवधि तक के होते हैं। इस लेखे को 'अवधि निक्षेप लेखा' भी कहते हैं।

इस प्रकार के निक्षेपों से अधिकोष की कार्यशील पूंजी बढ़ती है क्योंकि ये निक्षेप कब निकाले जायेंगे, इसका पूर्ण ज्ञान अधिकोष को होता है। आवेदन

पत्र स्वीकृत हो जाने पर निक्षिप्त राशि के लिये अधिकोप "निक्षिप्त प्राप्ति" (Deposit Receipt) देते हैं जो अनहस्तांतरणीय होती है अथवा जिसका हस्तांतरण किसी अन्य व्यक्ति को नहीं हो सकता। इस निक्षेप-प्राप्ति में राशि जमा करने की तिथि, निक्षेप-कर्ता का नाम, राशि, अवधि, एवं प्रतिशत, प्रतिवर्ष व्याज की दर दिया जाता है। इस निक्षिप्त-प्राप्ति का धनादेशों की तरह किसी व्यक्ति के नाम परक्रामण नहीं हो सकता क्योंकि विशेषतः इन पर "अनहस्तांतरेय" (Not transferrable) ये शब्द लिखे रहते हैं।

निक्षेप प्राप्ति का प्ररूप

(Form of Deposit Receipt)

अन-हस्तांतरेय

श्री० कृष्णाराम बल्देव बैंक लिमिटेड, ग्वालियर

क्रमांक ५२६.

श्री० रामचन्द्र श्रीवास्तव से ५००० रु० उनके लेखे में २ वर्ष निक्षेप के लिये, १ जनवरी १९५१ से ३१ दिसम्बर १९५२ तक के लिये, प्राप्त हुए। यह राशि १ जनवरी १९५३ को शोधनीय (Repayable) है। इस पर ३ % प्रतिवर्ष की दर से व्याज दिया जायगा।

केवल ५०००) रुपये	कृष्णाराम बल्देव बैंक के लिए
अमृतलाल दुबे	जाल. एन. बरोचा
लेखापाल	व्यवस्थापक

इन निक्षेपों का आहरण करने के पूर्व ग्राहक को निक्षेप-प्राप्ति वापिस देनी पड़ती है, किन्तु जब तक ऐसा लिखित निर्बन्ध न हो तब तक, वापिस करने की आवश्यकता नहीं है परन्तु पद्धति है। निक्षेप की अवधि अंत होने पर यदि ग्राहक उसे फिर किसी अवधि के लिए निक्षिप्त रखना चाहता है तो वह निक्षेप-प्राप्ति का नवकरण (Renewal) करा कर पुनः स्थायी निक्षेप में राशि जमा रख सकता है।

स्थायी अथवा सावधि निक्षेप लेखे में : व्यापारियों के पास जब निष्क्रिय पूँजी होती है तब वे जमा कराते हैं जिससे उनको उस पर निश्चित लाभ की प्राप्ति होती रहती है अथवा वे अन्य व्यक्ति जमा करते हैं जिनके पास अतिरिक्त धन होता है।

इस प्रकार विशेषतः तीन प्रकार के लेखे अधिकोष खोलते हैं। प्रेषालयी संचय निक्षेप लेखा (P. O. Saving Deposit A/c) खोलने की विधि भी लगभग इसी प्रकार की है। जो व्यक्ति लेखा खोलना चाहता है उसे आवेदन पत्र अपने निदर्शन हस्ताक्षर के साथ देना पड़ता है जिसकी स्वीकृति पर राशि जमा करने के बाद उसे ग्राहक-पुस्तिका मिल जाती है। रुपया निकालते समय उसे प्रेषालय से प्राप्त होने वाला आहरण-प्रपत्र भरना पड़ता है तथा अपने हस्ताक्षर, निदर्शन हस्ताक्षर के सदृश कर, यह प्रपत्र ग्राहक-पुस्तिका के साथ देने से उसकी आहरित राशि उसे प्राप्त होती है एवं ग्राहक-पुस्तिका में प्रविष्टि की जाती है। इन लेखों से केवल दो बार प्रति सप्ताह राशि आह-रित की जा सकती है तथा सप्ताह में अधिकतम आहरित राशि की मर्यादा नियत होती है। इससे अधिक राशि के आहरण की आवश्यकता पड़ने पर ग्राहक को पर्याप्त सूचना देनी पड़ती है।

अधिकोष ग्राहक की पूर्ण जानकारी एवं संदर्भ प्राप्त कर लेने के बाद ही चल लेखा खोलता है तथा विशेष ग्राहकों के सम्बन्ध में वह विशेष रूप से सावधानी लेता है, जिसका विवेचन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं अतः पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न संग्रह

१. अधिकोष भिन्न भिन्न प्रकार के कौन से लेखे खोलता है, पूर्ण विवेचन सहित लिखिये।

२. चल निक्षेप लेखा क्या होता है, कैसे खोला जाता है तथा उसमें ग्राहक-पुस्तिका एवं धनादेश-पुस्तिका का क्या महत्त्व है, बताइये? क्या धनादेश मुद्रित प्रपत्रों पर ही आहरित किये जाते हैं? और क्यों?

३. (अ) "एक व्यक्ति का चल लेखा इम्पीरियल बैंक, ग्वालियर में है जिसकी ग्राहक-पुस्तिका में १०००) रु० समाकलित शेष (Credit Balance) दिखाने के स्थान पर अधिकोष भूल से १५०० रु० लिख गया है, जिसका ज्ञान ग्राहक को नहीं है अतः वह अधिकोष पर १४००) रु० का धनादेश आहरित करता है, जिसका अधिकोष अनादरण करता है।" क्या अधिकोपिक का यह कार्य समुचित है?

(ब) ग्राहक की ग्राहक-पुस्तिका में की हुई प्रविष्टियों के प्रति अधिकोष का क्या उत्तरदायित्व है?

४. चल निक्षेप एवं संचय निक्षेप लेखे में कौनसा भेद है, विशेषतः (अ) आहरण (ब) अधिविकर्ष के सम्बन्ध में—पूर्ण विवेचन कीजिये।

अध्याय १०

केन्द्रीय अधिकोष

केन्द्रीय अधिकोष वह संस्था है जो देश की मुद्रा एवं साख का समुचित संबंध प्रस्थापन कर साख का देश के हित में नियंत्रण करते हुए, देशी एवं अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों में स्थैर्य रखती है। इसके अतिरिक्त यह देश के अधिकोषण विकास को भी अपनी नीति द्वारा सुरक्षित एवं संगठित बनाती है तथा भिन्न भिन्न प्रकार के अधिकोषों का आपस में संगठन प्रस्थापित करती है एवं सह-कार्य बढ़ाती है। इन सब कार्यों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्रीय अधिकोष के कार्य अन्य सब प्रकार के अधिकोषों से भिन्न एवं महत्वपूर्ण होते हैं इसलिये ही इसे विशेषतः देश के मौद्रिक एवं अधिकोषण ढांचे का एक प्रमुख अंग माना जाता है। यह कार्य केन्द्रीय अधिकोष समुचित रूप से कर सके इसलिये उसे कुछ विशेष अधिकार भी दिये जाते हैं जैसे पत्र-मुद्रा का एकाधिकार, सरकारी शेषों का रखना तथा सरकार की ओर से सरकार के मुद्रा-संबंधी कार्यों पर देख रेख करना, राष्ट्रीय निधि को रखना, अधिकोषों की निधि वैधानिक अनुपात में अपने पास रखना, तथा सबसे महत्वपूर्ण कार्य—अधिकोषों को संकटकाल में आर्थिक सहायता देना—करना है।

इस प्रकार के विशेष अधिकार जब देश के हित के लिए एवं अधिकोषण विकास के लिए जहाँ इस अधिकोष को दिये जाते हैं वहाँ उसकी सत्ता पर कतिपय नियंत्रण भी रखना आवश्यक होता है जिससे विशेषाधिकारों का दुरुपयोग न हो सके। क्योंकि सेयर्स नामक अर्थ शास्त्री के अनुसार लाभ कमाना इस अधिकोष का प्रधान कार्य न होते हुए जनता एवं देश हित की सुरक्षा इसका आद्यकर्तव्य है। दूसरे, इसी हेतु व्यापारिक अधिकोषों पर नियंत्रण करने का अधिकार इसे प्रदान किया गया है न उनसे स्पर्धा करने के लिये। तीसरे, सरकार के अधिकार में अथवा नियंत्रण में होने की वजह से सरकारी मौद्रिक नीति को सफल बनाना भी इसका लक्ष्य होना चाहिये।[1]

---

[1] *Modern Banking—Sayers.*

सरकार और केन्द्रीय अधिकोष :

सेयर्स के इस कथन से केन्द्रीय अधिकोष और सरकार का क्या संबंध है यह भी देखना आवश्यक हो जाता है। यह अधिकोष सरकारी मौद्रिक नीति को सफल बनाने के लिये साख एवं मुद्रा का समुचित संबंध राष्ट्र-हित के लिये स्थापित करता है एवं साख और मुद्रा का नियंत्रण करता है। इस लिये इस अधिकोष को सरकारी आदेशानुसार कार्यवाही करनी पड़ती है। इसीके साथ साथ यदि केन्द्रीय अधिकोष सुव्यवस्थित हो एवं योग्य व्यक्तियों के हाथ में उसका संचालन हो तो देश की मौद्रिक एवं आर्थिक नीति बनाने में इस का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। अतः सरकार और केन्द्रीय अधिकोष दोनों में आर्थिक अथवा मौद्रिक समस्याओं पर मतभेद होना राष्ट्र के लिए अहितकर होता है क्योंकि यह मतभेद तभी हो सकता है जब सरकार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकोषण तत्वों के विरुद्ध कार्यवाही करे जो अधिकोषण एवं मौद्रिक विकास की दृष्टि से हानिकार हों। परंतु फिर भी केन्द्रीय अधिकोष सरकार के आधीन होने के कारण उसे सरकारी आदेशों का पालन करना ही पड़ता है।

केन्द्रीय अधिकोष की आवश्यकता : जैसा कि हम पहिले बता चुके कि अधिकोष साख निर्माण कार्य करते हैं परंतु साख के अधिक निर्माण होने से भी जनता एवं देश की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है इसलिये साख का नियंत्रण भी देश हित में होने की अधिक आवश्यकता है जिससे साख निर्माण कार्य भी मर्यादित अथवा सीमित क्षेत्र में रहें। किन्तु यह नियंत्रण कौन करे ? वैसे साधारणतः प्रत्येक अधिकोष अपनी सुरक्षा की दृष्टि से साख का निर्माण उसी मर्यादा तक करता है जिससे कि उसकी रोक निधि पर्याप्त रहे तथा संकट काल में भी उसे किसी प्रकार से रोकड़ की कमी न रहे और इस लिये विशेषतः याचित देय (Demand Liabilities) का १५ से २०% प्रतिशत रोक-निधि प्रत्येक अधिकोष, देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार रखता ही है तथा यह अनुपात कितना हो यह अनुभव से ही प्रत्येक अधिकोष निश्चित करता है। इस का यह अर्थ नहीं कि इस कार्य में उसे पूर्ण स्वातंत्र्य रहे क्योंकि लाभ के मोह से वह अपनी सुरक्षा की ओर भी कभी कभी दुर्लक्ष्य कर सकता है जिससे केवल उसको ही नहीं अपितु देश के अधिकोषण कलेवर (Banking Structure) को भी खतरा हो जाता है क्योंकि एक अधिकोष से जनता का विश्वास उठने पर, अन्य अधिकोषों से भी जनता अपनी निक्षिप्त राशि निकालने लगती है जिससे अच्छे एवं सुसंचालित अधिकोषों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। इसी लिये किसी

बाहरी व्यक्ति अथवा संस्था द्वारा साख का नियंत्रण आवश्यक हो जाता है। अब यह बाहरी संस्था कौनसी हो, यह प्रश्न उपस्थित होता है? यह बाहरी संस्था अधिकोप ही होना चाहिये क्योंकि साख संबंधी जनता की आवश्यकताओं को ठीक ठीक वही आंक सकता है जिसके लिये ऊंची श्रेणी की योग्यता एवं तांत्रिक क्षमता (Technical Efficiency) भी आवश्यक है और जिस अधिकोष को यह कार्य दिया जाता है उसे ही हम केन्द्रीय अधिकोप कहते हैं। इसका महत्वपूर्ण कार्य देश की अधिकोपण संस्थाओं का नियमन एवं साख का नियंत्रण करना होता है। इसके अतिरिक्त अधिकोप अन्य भिन्न भिन्न कार्य करते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय अधिकोप के अस्तित्व से देश की रोक-निधि का भी केन्द्रीकरण होता है तथा साख का निर्माण भी बढ़ता है क्योंकि केन्द्रीय अधिकोप के अभाव में प्रत्येक अधिकोप को अपनी स्वतंत्र निधि रखनी पड़ती है जो अब केन्द्रीय अधिकोप द्वारा रखी जाती है। इसमें से आवश्यकता पड़ने पर कोई भी राशि किसी अधिकोप को दी जा सकती है एवं समय पड़ने पर दी भी जाती है। इससे कुल देश की निधि की राशि में भी बचत होती है तथा मुद्रा की गति (Mobility) भी बढ़ती है।

अतः इन सब लाभों की दृष्टि से केन्द्रीय अधिकोष की देश के अधिकोपण कलेवर की सुरक्षा के लिये अतीव आवश्यकता होती है जिसका महत्त्व आधुनिक मौद्रिक जगत में पूर्णतः प्रस्थापित हो गया है।

परंतु प्रथम महायुद्ध के पूर्व इंग्लैंड, अमेरिका आदि कतिपय देशों के अतिरिक्त अन्य देशों में केन्द्रीय अधिकोपों का महत्त्व १९२० की अंतर्राष्ट्रीय राजस्व परिषद में, जो ब्रुसेल्स में हुई थी, प्रस्थापित किया गया जिसमें "जिन देशों में केन्द्रीय अधिकोप नहीं है वहाँ शीघ्र ही केन्द्रीय अधिकोप की स्थापना की जाय" इस आशय का प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। इसी प्रस्ताव के आधार पर १९२६ में हिल्टन यंग कमीशन ने केन्द्रीय अधिकोप की स्थापना की सलाह दी जो १९३४ में रिजर्व बैंक विधान द्वारा १९३५ में स्थापित एवं कार्यान्वित किया गया।

केन्द्रीय अधिकोप के कार्य: केन्द्रीय अधिकोप निम्न कार्य करते हैं :—

१. अधिकोपों का अधिकौपिक (Banker of Banks) बनना: जो कार्य एवं सुविधाएं देश के अन्य अधिकोप जनता को देते हैं वही कार्य एवं सुविधाएं केन्द्रीय अधिकोप अन्य अधिकोपों को देता है इसलिये अधिकोपों का अधिकौपिक बनना यह केन्द्रीय अधिकोप का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। केन्द्रीय अधिकोप अन्य अधिकोपों के निक्षेप स्वीकार करता है जिन पर ब्याज नहीं दिया जाता है। इसी प्रकार अन्य सभासद् अधिकोपों को वह

केन्द्रीय अधिकोष के केवल इतने ही कार्य हैं—यह हम नहीं कह सकते क्योंकि इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्री अभी तक एक निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं तथा भिन्न-भिन्न अर्थशास्त्रियों के मत भिन्न-भिन्न हैं जैसे प्रो० स्प्रेग (Prof. Sprague) के अनुसार "केन्द्रीय अधिकोष के विशेष कार्यों का उल्लेख तीन भागों में किया जा सकता है : वे सरकार के आर्थिक अभिकर्ता का कार्य करते हैं, उनको पत्रमुद्रा चलन का सम्पूर्ण अथवा अपूर्ण एकाधिकार प्राप्त होने से उनको चलार्थ के नियंत्रण की बड़ी शक्ति होती है तथा अंत में, अन्य अधिकोषों की निधि का एक बहुत बड़ा भाग उनके पास होने के कारण वे साख के संपूर्ण कलेवर की भित्ति के लिये जिम्मेदार होते हैं और यह अंतिम कार्य केन्द्रीय अधिकोषों का अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है" ।[१] इसी प्रकार बैंक ऑफ इङ्गलैंड के गवर्नर ने शाही समिति (Royal Commission on Indian Currency & Finance 1926) के सामने साक्ष्य देते हुए केन्द्रीय अधिकोष के निम्न कार्य बताए थे :—उसको पत्र चलन का एकाधिकार होना चाहिये, वह निधिग्राह्य चलन को प्रसृत करने अथवा उसे चलन से निकालने का एकमात्र अधिकारी होना चाहिये । सरकारी कोषों का संधारक भी वही होना चाहिये, तथा अन्य सब अधिकोषों के एवं देश के अन्य अधिकोषों की शाखाओं के शेष धन का वही संधारक भी होना चाहिये । वह अभिकर्ता होना चाहिये जिसके द्वारा सरकार की देशी एवं विदेशी आर्थिक क्रियाएँ की जायें । इसीके साथ अंतर्गत एवं बहिर्गत मूल्यों का स्थायित्व प्रदान करने के हेतु समुचित रीति से यथासंभव मुद्रा का संकोच एवं प्रसार कार्य भी केन्द्रीय अधिकोष को करना चाहिये । आवश्यकता के समय वही एकमेव स्रोत होना चाहिये, जिससे सरकारी प्रतिभूतियां अथवा मान्य (Approved) अल्पकालीन प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण प्राप्त किये जा सकें अथवा मान्य विपत्रों के अपहरण से संकटकालीन साख (Emergency Credit) प्राप्त की जा सकें ।[२] इसी प्रकार कुछ

---

१. *The special functions of the Central Banks may be grouped under 3 heads: They serve as fiscal agents of Governments; they have large power of control over currency through the more or less complete monopoly of note-issue; and finally, since they hold a large part of the reserve of other banks, they are directly responsible for the foundation of the entire structure of credit. This last is by far the most important function of the Central Bank.*

२. *"It should have the sole right of note-issue, it should be the channel, and the only channel, for the out-put and the intake of*

अर्थशास्त्रियों के अनुसार केन्द्रीय अधिकोष का महत्त्वपूर्ण कार्य देश की साख-व्यवस्था का संगठन करना है।

परन्तु इन विभिन्न कार्यों के होते हुए भी केन्द्रीय अधिकोष का कोई एक ही विशेष कार्य है यह कहना ठीक न होगा क्योंकि जो कार्य हमने देखे वे सब कार्य एक से महत्त्व के एवं परस्परावलंबी हैं तथा ये सब क्रियाएँ उसको देश एवं जनता के हित में करनी चाहियें, अपने लाभ की दृष्टि से नहीं और न अन्य अधिकोषों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की दृष्टि से। इसी हेतु से केन्द्रीय अधिकोष ऐसा कोई भी कार्य नहीं कर सकता जो देश के अन्य अधिकोष करते हैं, उदाहरणार्थ जनता से निक्षेप स्वीकार करना, तथा जनता को ऋण देना अथवा उनको विपत्र-आहरण की प्रत्यक्ष सुविधाएं देना आदि; परन्तु यदि देश की अधिकोषण प्रणाली को शक्तिशाली बनाने के लिये और अपने कार्यों की सफलता के लिये अधिकोष जनता से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करे तो वह अवश्य ही वांछनीय होगा।

केन्द्रीय अधिकोष द्वारा साख-नियंत्रण : यह हम बता चुके हैं कि साख नियंत्रण करना यह केन्द्रीय अधिकोष का एक कार्य होता है जिसके लिये उसे राष्ट्र की सरकार द्वारा पत्र-चलन का एकाधिकार दिया जाता है। साख-नियंत्रण का अर्थ है साख की पूर्ति का व्यापारिक आवश्यकताओं के अनुसार संतुलित समायोजन। क्योंकि अगर व्यापारिक आवश्यकताओं के अनुसार साख का समायोजन नहीं होता तो मूल्य-स्तर या तो गिरते हैं या बढ़ते हैं, जैसे यदि साख की आवश्यकता कम होते हुए मुद्रा विपणि में साख की अधिकता होती है तो मूल्य-स्तर बढ़ने लगता है जिसका प्रभाव उत्पादन कार्यों पर भी होता है। इसके विपरीत यदि मुद्रा विपणि में मौद्रिक आवश्यकताओं से कम साख रहती है तो उससे मूल्यस्तर गिरने लगता है तथा उत्पादन-कार्यों में शिथिलता आ जाती है। अतः ये दोनों ही

---

legal tender currency. It should be the holder of all the Government balances, the holder of all the reserves of other banks and branches of banks in the country. It should be the agent, so to speak, through which the financial operations at home and abroad of the Government would be performed. It would further be the duty of the Central Bank to effect so far as it could, suitable contraction and suitable expansion, in addition to aiming generally at stability, and to maintain that stability within as well as without. When necessary it would be the ultimate source from which emergency credit might be obtained in the form of rediscounting of approved bills, or advances on approved short securities, or Government paper."

परिस्थिति राष्ट्र के लिये हितकर न होते हुए साख का आवश्यकतानुसार संकोच एवं प्रसार होना ही राष्ट्र के लिए लाभकर होता है। इसीलिये शॉ ने ऐसा कहा है कि केन्द्रीय अधिकोष की एक ही क्रिया सबसे आवश्यक है, और वह है देश की साख-व्यवस्था का संगठन कर देश की मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना। इसलिये साख का समुचित नियंत्रण होना आवश्यक है। साख-नियंत्रण के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं:— आंतरिक मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करना, विनिमय दर को स्थायी रखना, उत्पादन कार्य एवं रोजगारी के उच्चावचन का निवारण कर उनको स्थायी रखना, तथा देश की स्वर्ण-निधि की रकम को बहिर्गमन से अथवा आंतरिक व्यय होने से बचाना।

किंतु साख नियंत्रण करने में केन्द्रीय अधिकोष पूर्णतः सफल नहीं हो सकता क्योंकि साख केवल अधिकोषों द्वारा ही प्राप्त न होते हुए व्यापारिक कार्यों से भी निर्मित होती है जैसे विनिमय विपत्र आदि तथा इस प्रकार की व्यापारिक साख का नियंत्रण केन्द्रीय अधिकोष नहीं कर सकता। दूसरे, जिन देशों में ऐसी संस्थाएं हैं जो केन्द्रीय अधिकोष के नियंत्रण में नहीं हैं उन संस्थाओं द्वारा निर्मित साख केन्द्रीय अधिकोष नियंत्रण नहीं कर सकता जैसे भारत में स्वदेशी अधिकोष जो यहाँ ६० प्रतिशत साख का निर्माण अपने ऋण देने के कार्यों द्वारा करते हैं तथा जिन पर रिजर्व बैंक का किसी प्रकार का उल्लेखनीय नियंत्रण नहीं है। इन कठिनाइयों के होते हुए भी केन्द्रीय अधिकोष साख का नियंत्रण कर सकता है परन्तु यह नियंत्रण उपर्युक्त दो कठिनाइयों से सीमित हो जाता है।

यह नियंत्रण केन्द्रीय अधिकोष विभिन्न क्रियाओं द्वारा आवश्यकता के अनुसार मुद्रा राशि के संकोच अथवा प्रसार से करता है तथा वे क्रियाएं निम्न हैं:—

(१) अधिकोष दर (Bank Rate): इसको हम अपहार-दर भी कह सकते हैं क्योंकि यह वह दर है जिस दर पर केन्द्रीय अधिकोष अन्य व्यापारिक अधिकोषों को विपत्रों के पुनः आहरण (rediscounting) की सुविधाएं देता है अथवा जिस दर पर अन्य अधिकोष प्रतिभूतियों के आधार पर केन्द्रीय अधिकोष से ऋण प्राप्त कर सकते हैं। यह दर विपणि-दर से भिन्न होती है, जो बहुधा अधिकोष-दर से कम होती है। विपणि-दर उस दर को कहते हैं जिस पर अन्य ऋण-प्रदायक (lending) संस्थाएँ मुद्रा-विपणि में विपत्रों का अपहरण करती हैं अथवा ऋण देती हैं। तथा इन दोनों ही दरों का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है; जब अधिकोष दर बढ़ा दी जाती है उस समय

विपणि-दर (Market rate) भी बढ़ जाती है, इसी प्रकार अधिकोप-दर के कम होने पर विपणि-दर भी कम हो जाती है। इस अधिकोप-दर में कमी अथवा अधिकता होने से मुद्रा की मांग एवं पूर्ति भी प्रभावित होती है; यदि अधिकोप दर बढ़ा दी जाय तो उसके साथ विपणि दर भी बढ़ जायगी तथा जो व्यापारी अथवा ऋण लेने वाले व्यक्ति हैं वे कम ऋण लेंगे तथा अपनी अतिरिक्त राशि अधिकोपों में जमा करने लगेंगे जिससे चलितार्थ मुद्रा (Circulating Money) का परिमाण घट जायगा तथा उसी परिमाण में साख भी कम हो जायगी। इसके विपरीत यदि अधिकोप दर घटा दी जाय तो विपणि दर भी कम हो जायगी तथा व्याज की दर कम होने से लोग अधिक रुपया उधार लेने लगते हैं जिसमें मुद्रा का परिमाण बढ़ जाता है और साख की भी वृद्धि होती है। इतना ही नहीं अपितु इस अधिकोप-दर का प्रभाव विदेशी मुद्रा-विपणि पर भी पड़ता है क्योंकि अधिकोप-दर अधिक होने से बाहरी पूँजी हमारे यहां आने लगती है तथा अधिकोप-दर कम होने पर हमारे यहाँ से पूँजी बाहर जाने लगती है। साख के नियंत्रण से आंतरिक मूल्यस्तर भी प्रभावित होता है क्योंकि साख के संकोच के समय व्यापारिक एवं औद्योगिक कार्यों में शिथिलता आ जाती है एवं मूल्य स्तर गिरने लगता है तथा साख का प्रसार होने के समय में व्यापारिक एवं औद्योगिक कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है और मूल्यस्तर बढ़ने लगता है। और जहाँ तक आंतरिक मूल्यस्तर का हमारे विदेशी-व्यापार पर प्रभाव होता है, विदेशी व्यापार एवं विनिमय दर को स्थायी रखने में भी इस दर का बहुत अधिक उपयोग होता है (देखिये "विदेशी विनिमय" प्रथम भाग)। इस प्रकार अधिकोप-दर मुद्रा-विपणि, आंतरिक मूल्यस्तर एवं विदेशी व्यापार पर प्रभावी रूप से कार्य करती है इसीलिये इस दर को मुद्रा-विपणि का माप दंड कहा गया है। जिस समय अधिकोप-दर ऊंची हो जाती है उस समय अधिकोप भी निक्षेप राशि आकृष्ट करने के लिये निक्षेपों पर दिये जाने वाले व्याज की दर को बढ़ा और देते हैं, ऊँची दर होने पर अधिक दर देना भी उनको लाभदायक होता है क्योंकि विपणि दर तथा अधिकोप द्वारा ऋणों पर ली जाने वाली व्याज की दर भी बढ़ जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अधिकोप दर में कब वृद्धि अथवा कमी की जाती है? हम यह बता चुके हैं कि साख नियंत्रण का एक उद्देश्य देश की स्वर्ण-निधि की सुरक्षा करना होता है अतः जिस समय अधिकोप से स्वर्ण बाहर जाने लगता है उस समय स्वर्ण-निर्यात रोकने के लिये अधिकोप दर में वृद्धि की जाती है। दूसरे, जब अन्य देशों में अधिकोप दर बढ़ रही हो तब

देश की विनियोगित पूंजी का एवं अन्य पूंजी का बाहर निर्यात होने लगता है अतः इस निर्यात को रोकने के लिये अधिकोष दर में वृद्धि की जाती है जिससे अधिक व्याज देकर बाहर जाने वाले धन का विनियोग देश में ही हो। तीसरे, विनिमय दर जिस समय देश के विपक्ष में हो उस समय विनिमय-दर को ठीक करने के लिये भी अधिकोष-दर में वृद्धि की जाती है। चौथे, देश में जब परिकाल्पनिक व्यवहारों (Speculative Transactions) का जोर होने लगता है उस समय इन व्यवहारों को करने वाले लोग अधिकोषों से ऋण लेते हैं, जिसकी पूर्ति करने के लिये अधिकोष केन्द्रीय अधिकोषों से ऋण लेते हैं और बढ़ते हुए परिकाल्पनिक व्यवहारों से देश के उद्योगों को भी, जहाँ तक विनियोग का सम्बन्ध है, हानि होती है; अतः इन परिकाल्पनिक व्यवहारों को रोकने के लिये भी अधिकोष-दर में वृद्धि की जाती है जिससे परिकाल्पनिक व्यवहारों के लिये सस्ते दरों पर राशि न मिल सके।

इसके विपरीत जब रुपया तो केन्द्रीय तथा अन्य अधिकोषों के पास एकत्रित हो रहा हो परन्तु उसके लिये मुद्रा-विपणि में माँग न हो उस समय माँग निर्माण करने के लिये अधिकोष दर कम कर दी जाती है। तथा दूसरे ऋण प्रदायक राशि की मुद्रा-विपणि में कमी हो और साथ ही साथ केन्द्रीय अधिकोष के पास ऐसी राशि हो, उस समय भी अधिकोष-दर कम कर दी जाती है। तीसरे, जब विदेशी पूँजी का आयात पर्याप्त मात्रा में हो रहा हो, जो देश के अनहित में हो अथवा जब देश में उसका समुचित उपयोग नहीं हो सकता, उस समय देश को ऋण प्रभार से बचाने के लिये भी अधिकोष-दर कम की जाती है।

अधिकोष दर का मुद्रा विपणि से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है क्योंकि अधिकोष दर के परिवर्तन से मुद्रा विपणि पर भी ऊपर बताये गए प्रभाव होते हैं इसलिये मुद्रा विपणि में अधिकोष दर का विशेष महत्त्व होता है। यह अधिकोष दर केन्द्रीय अधिकोष की संचालक सभा द्वारा साप्ताहिक अथवा आवश्यकता के समय बीच में भी निश्चित की जाती है तथा इसका प्रकाशन वर्तमान पत्रों (अखबारों) में भी नियमित रूप से होता रहता है। इस दर से पहिले तो साख नियन्त्रित होती है, अतः इसका महत्त्व है क्योंकि जैसा कि हम कह चुके हैं कि अधिकोष दर को मुद्रा विपणि का माप दण्ड कहते हैं इसके साथ ही अधिकोष दर देश की सामान्य आर्थिक परिस्थिति की दिग्दर्शक भी होती है।

दूसरे अधिकोष-दर से मुद्राविपणि की विपणि-दर तथा अन्य ऋण दाता संस्थाओं की दरें भी प्रभावित होती हैं जैसे अधिकोष दर के उच्चावचन के साथ

विपणि दर, दीर्घ कालीन ऋण की दर, उसी प्रकार अधिकोष द्वारा दिये जाने वाले अल्पकालीन ऋणों की व्याज दर (जिसे याचित दर अथवा Call Rate कहते हैं) भी प्रभावित होती है तथा तीसरे इस दर से ऋण प्रदायक-राशि की कमी एवं बहुलता का अन्दाज भी लिया जा सकता है। अतः इन सब कारणों से इस दर का महत्त्व बहुत अधिक है।

२. विवृत विपणि क्रियाएँ (Open Market Operations): जिस समय केन्द्रीय अधिकोष बाजार में एक सामान्य व्यक्ति की भांति प्रतिभूतियों का क्रय, विक्रय साख के संकोच अथवा प्रसार के हेतु करता है, उस समय इस क्रिया को विवृत विपणि क्रियाएँ कहते हैं। इस क्रिया का प्रारम्भ प्रथम महायुद्ध के बाद हुआ जिससे केन्द्रीय अधिकोष को साख नियन्त्रण का एक नया साधन प्राप्त हुआ। यह साधन केन्द्रीय अधिकोष उसी समय उपयोग में लाता है जिस समय अधिकोष-दर प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पाती।

इस कार्य के अन्तर्गत जिस समय मुद्राविपणि में मुद्रा राशि की अधिकता होती है और केन्द्रीय अधिकोष उसको कम करना चाहता है उस समय वह बाजार में प्रतिभूतियाँ, विपत्र आदि बेचने लगता है, जिसके बदले में उसे धन-राशि प्राप्त होती है तथा मुद्रा-विपणि में ऋण-प्रदायक राशि की कमी हो जाती है जो अधिकोष की निधि में आ जाती है तथा साख का संकोच हो जाता है। इसी प्रकार जब मुद्रा-विपणि में धन राशि का अभाव रहता है उस समय साख बढ़ाने के लिये मुद्रा-राशि बढ़ाना आवश्यक होता है जिसके बढ़ाने के लिये केन्द्रीय अधिकोष बाजार से प्रतिभूतियाँ, विपत्र आदि क्रय करता है जिसके बदले में वह बेचने वालों को मुद्रा राशि देता है। इससे मुद्राविपणि में मुद्राराशि अधिक हो कर साख का प्रसार होता है। इस प्रकार प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय से—विवृत विपणि क्रियाओं से—अधिकोष देश की साख नियन्त्रित कर साख एवं मुद्राराशि का कृषि, व्यापार एवं औद्योगिक आवश्यकताओं के साथ सन्तुलित समायोजन करता है। इस प्रकार देश में मूल्य स्तर, उत्पादन एवं उत्पादन व्यय, रोजगार तथा व्यापार में सन्तुलन स्थापित करता है तथा देश के आर्थिक ढाँचे को मजबूत बनाता है।

किन्तु ये क्रियाएँ तभी सफल हो सकती हैं जब, केन्द्रीय अधिकोष जिन प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करता है उनकी उस समय बाजार में माँग एवं पूर्ति हो तथा ये प्रतिभूतियाँ साख के नियन्त्रण का एक प्रमुख भाग हों। इसी के साथ जिस विपणि में इन प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय हो, वह विपणि संगठित

एवं कार्यक्षम हो। अन्यथा विवृत विपणि क्रियाओं का मुद्रा विपणि पर कोई भी प्रभाव न होगा।

इसी प्रकार जिस समय देश में अधिक मुद्राराशि हो एवं वह राशि विनियोग के हेतु बाहर जा रही हो उस समय भी इस क्रिया का उपयोग अधिकोष करता है अर्थात् ऐसी दशा में वह प्रतिभूतियों के विक्रय से मुद्रा-राशि चलन से खींचकर अपने कोष में ले लेता है, किन्तु यह कार्य वह तभी करता है जब मुद्रा-विपणि में मुद्रा की अधिकता होने से मुद्राराशि बाहर जा रही हो।

इस क्रिया से मुद्रा-विपणि प्रत्यक्ष रीति से प्रभावित होती है। यहाँ पर यह ध्यान में रखना चाहिये कि जिस समय केन्द्रीय अधिकोष साख को संकुचित करता है उस समय अन्य अधिकोषों की निक्षिप्त राशि कम होती है तथा मुद्रा एवं साख के प्रसार के समय अधिकोषों की निक्षिप्त राशि बढ़ती है। इस निक्षिप्त राशि की कमी एवं अधिकता पर ही अन्य अधिकोषों की साख-निर्माण शक्ति निर्भर रहती है [देखिये अध्याय साख एवं साख पत्र]।

यह साख नियंत्रण का प्रत्यक्ष एवं सरल साधन है किंतु जब अधिकोष दर से साख नियंत्रण नहीं किया जा सकता, उस समय इस क्रिया का उपयोग किया जाता है परन्तु अधिकोष-दर एवं विवृत विपणि क्रियाएं इन दोनों साधनों में से विवृत विपणि क्रियाएँ अधिक प्रभावशाली हैं क्योंकि इन क्रियाओं से अन्य अधिकोषों की निक्षिप्त राशि, निधि तथा साख-निर्माण शक्ति तत्काल ही प्रभावित होती है।

परन्तु भारत में मुद्रा विपणि पूर्ण रूप से संगठित न होने से तथा विभिन्न ऋण प्रदायक संस्थाओं पर केन्द्रीय अधिकोष का नियंत्रण न होने से यहाँ पर अधिकोष-दर प्रभावी नहीं होती और इसलिये विशेषतः विवृत विपणि क्रियाओं द्वारा ही साख का नियंत्रण होता है। विवृत विपणि क्रियाओं द्वारा साख-नियंत्रण की पद्धति का अधिकोष-दर के घटते हुये महत्त्व के कारण एवं सरकारी प्रतिभूतियों के बढ़ते हुये प्रयोग के कारण, सभी देशों में अधिक प्रयोग होने लग गया है। दूसरे सभी देशों में सुलभ-मुद्रा नीति के अपनाने के कारण भी अधिकोष-दर का महत्त्व कम हो गया है।

परिशिष्ट १

प्रमुख देशों की वर्तमान अधिकोष-दर

भारत	३%
संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका)	१½%

ग्रेट ब्रिटेन	२%
रशिया	४%
फ्रान्स	२½% से ३%
इटली	५½%
कॅनाडा	१½%
द० आफ्रिका	३½%
नीदरलैंड, नार्वे एवं स्वीडन	२½%
स्विटजरलैंड	१½%
न्यूझीलैंड	१½%

३. वैधानिक-निधि अनुपात में परिवर्तन (Alteration in the Reserve Ratios): यह हम पहिले बता चुके हैं कि व्यापारिक अधिकोष यथासंभव अपने पास कम रोक-निधि रखते हैं परन्तु उनको विधान से अपनी निक्षिप्त राशि का कुछ अनुपात केन्द्रीय अधिकोष के पास निक्षेप में रखना पड़ता है तथा इस निधि के अनुपात से उनकी साख-निर्माण शक्ति सीमित रहती है। इसलिये ऋण द्वारा निक्षेप बढ़ाने का परिमाण इस वैधानिक निधि से मर्यादित होता है क्योंकि जितने ही अधिक निक्षेप होंगे उतनी ही अधिक राशि उनको केन्द्रीय अधिकोष के पास रखनी होगी। अतः जब उपर्युक्त दो साधन भी पूर्णतः कार्यान्वित नहीं होते उस समय केन्द्रीय अधिकोष इस साधन का अवलंब करती है। इसके अनुसार जब साख तथा मुद्राराशि को कम करने की आवश्यकता होती है उस समय निक्षेप के वैधानिक अनुपात में वृद्धि कर देते हैं जिससे केंद्रीय अधिकोषों के पास अधिक निक्षेप रखने पड़ते हैं जिससे अन्य अधिकोषों की रोक निधि कम हो जाती है। इससे उनकी साख निर्माण शक्ति भी इस निधि से मर्यादित होने के कारण घट जाती है। इसके विपरीत जब साख एवं मुद्रा की अधिक आवश्यकता होती है उस समय केंद्रीय अधिकोष इस वैधानिक अनुपात को कम कर अन्य अधिकोषों की रोकनिध को बढ़ा देती है जिससे उनकी साख-निर्माण शक्ति भी बढ़ जाती है तथा जनता को साख अथवा ऋण अधिक सुलभता से मिल सकते हैं। इस पद्धति के उपयोग का सुझाव प्रो० कीन्स द्वारा किया गया था एवं इस पद्धति का तभी उपयोग हो सकता है जब विवृत-विपणि-क्रियाओं द्वारा इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं होता।

४. साख का अंशन (Rationing) करना : इस पद्धति के अनुसार केन्द्रीय अधिकोष विपत्रों का अपहरण अथवा पुनः अपहरण का परिमाण प्रतिदिन कितना होगा यह निश्चित कर लेता है। इस निश्चित राशि

से अधिक के विपत्र अपहरण के लिये आने पर केन्द्रीय अधिकोष प्रत्येक अधिकोष को ऋण देने की राशि कम कर देता है। परिणाम स्वरूप अन्य अधिकोषों की ऋणप्रदायक राशि भी कम हो जाती है जिससे साख की भी कमी हो जाती है। इस क्रिया को साख का अंशन करना कहते हैं।

५. प्रत्यक्ष कार्यवाही (Direct Action) : जब केन्द्रीय अधिकोष अपनी विवृत-विपणि अथवा अधिकोष-दर की क्रियाओं द्वारा मुद्रा विपणि में साख का नियंत्रण करने में असफल होता है अथवा इच्छिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता उस समय केन्द्रीय अधिकोष सीधी कार्यवाही, अन्य अधिकोषों के विरुद्ध करता है। जिसके अंतर्गत साख का विस्तार या संकोच करने के हेतु वह अन्य अधिकोषों को अधिक ऋण देने के लिये अथवा कम ऋण देने के लिये आदेश देता है। विशेषतः साख के संकोच के लिये ही, जिससे साख का अपरिमित प्रसार न हो, साख-नियंत्रण की आवश्यकता होती है और जब साख का उपयोग उत्पादन कार्य के लिये न होकर परिकाल्पनिक व्यवहारों के लिये अधिक हो रहा है अथवा देश के लाभ के लिये नहीं हो रहा है उस समय केन्द्रीय अधिकोष अन्य अधिकोषों को आदेश द्वारा ऋण कुछ परिमित मात्रा में देने को बाध्य कर देता है अथवा कुछ विशेष प्रकार की प्रतिभूतियों पर ही ऋण देता है जिससे साख मुद्रा की आवश्यकतानुसार साख की पूर्ति का समायोजन हो सके।

६. नैतिक प्रभाव (Moral Persuasion) : केन्द्रीय अधिकोष अन्य अधिकोषों का पालक होने के नाते तथा मुद्रा-विपणि में विशेष प्रभाव शाली होने के कारण जब साख का नियंत्रण करने की आवश्यकता होती है, उस समय अन्य अधिकोषों को एवं ऋण-प्रदायक संस्थाओं पर नैतिक प्रभाव डालकर अपनी साख संबंधी नीति का पालन करने के लिये बाध्य कर देता है। जिससे वे अधिकोष केन्द्रीय अधिकोष की इच्छानुसार देश हित की दृष्टि से साख का संकोच एवं विस्तार करें।

उपर्युक्त विभिन्न साधनों के उपयोग से केन्द्रीय अधिकोष साख का नियंत्रण करता है और यह आवश्यक नहीं है कि इनमें से केवल इसी एक मार्ग का अवलम्ब किया जाय परन्तु यदि किसी एक ही मार्ग का अवलंब किया जाता है तो वह उतना प्रभावशाली नहीं हो सकता, जितना कि सब मार्गों का संतुलित उपयोग प्रभावशाली हो सकता है। क्योंकि आजकल जैसा कि हम कह चुके हैं, सुलभ मुद्रानीति के कारण तथा अधिकोष-दर दीर्घकाल में प्रभावी होने के कारण इसका महत्त्व कम होगया है। इसलिये

अन्य साधनों का उपयोग भी साथ ही साथ होना चाहिये। दूसरे, यदि केवल नैतिक प्रभाव से ही साख-नियंत्रण करने का प्रयास किया जाय तो वह भी सफल नहीं हो सकता क्योंकि सभी अधिकोष अपना उत्तरदायित्व भली भाँति नहीं निभा सकते। इसी प्रकार साख के अंशन (Rationing of Credit) से केवल परिकाल्पनिक व्यवहारों का ही नियंत्रण किया जा सकता है। तथा कीन्स के अनुसार अनुपात-निधि में एकदम परिवर्तन कर देने से साख का नियंत्रण तो होता है परन्तु उससे अधिकोषण-कलवेर को गहरा धक्का लगने की अधिक संभावना होती है। और जहाँ तक विवृत विपणि क्रियाओं का प्रश्न है उनका प्रभाव तो तत्काल होता है किन्तु ये क्रियाएँ अविवेचक (Indiscriminate) होती हैं अतः सब क्रियाओं के आवश्यकतानुसार समुचित समन्वय एवं संतुलित उपयोग से ही केन्द्रीय अधिकोषों को साख का नियंत्रण करना चाहिये।

अधिकोष दर का महत्त्व कम होने के कारण: हम ऊपर यह कह चुके हैं कि वर्तमान स्थिति में अधिकोष दर का साख-नियंत्रण करने का महत्त्व कम हो गया है एवं वह उतनी प्रभावशाली नहीं रही। इसके मुख्य कारण देखने के पूर्व यह ध्यान में रखना चाहिये कि अधिकोष-दर तभी प्रभावी हो सकती है जब विपणि की भिन्न-भिन्न ब्याज की दरों में भी उसके साथ परिवर्तन हो तथा देश की अर्थ-व्यवस्था में उदवनस्यता अथवा लोच हो। अगर अर्थ-व्यवस्था में लोच नहीं है तो साख की कमी एवं आधिक्य के साथ उत्पादन, भृति आदि बातों का समायोजन नहीं हो सकेगा जिससे अधिकोष-दर भी अप्रभावी रहेगी। प्रथम महायुद्ध पूर्व काल में देशों की अर्थ-व्यवस्था में लोच थी जो लोच युद्धोपरांत काल में जाती रही जिससे अधिकोष-दर उतने प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर सकी। यह अधिकोष-दर के वर्तमान महत्त्व को कम करने का पहिला कारण है क्योंकि मुद्रा के मूल्य परिवर्तन के साथ अर्थ व्यवस्था में जैसे मजदूरी, उत्पादन आदि में परिवर्तन नहीं होता।

दूसरे, अधिकोष दर तभी प्रभावी रूप से कार्य कर सकती है जब देश के अधिकोष आवश्यकता के समय ऋणों के लिये केवल केन्द्रीय अधिकोष पर ही निर्भर रहें परन्तु वास्तव में प्रथम श्रेणी के अधिकोष केन्द्रीय अधिकोषों से ऋण आदि नहीं लेते जिससे अधिकोष-दर का परिवर्तन उनकी कार्यप्रणाली को बाधक नहीं होता।

तीसरे, आजकल आंतरिक व्यापार में मुद्रा की आवश्यकता की पूर्ति रोक ऋण अथवा अधिविकर्षों पर ऋण लेकर की जाती है जिससे प्रत्यक्ष व्यवहारों

में विनिमय-विपत्रों का महत्त्व भी कम हो गया है। इसलिये अधिकोष-दर प्रभावशाली नहीं होती।

चौथे, विवृत विपणि क्रिया तथा अन्य साख नियंत्रण की क्रियाओं के गत २५ वर्षों से उपयोग सफल होने के कारण भी अधिकोष दर का वर्तमान महत्त्व कम हो गया है।

पाँचवें, विश्व के सभी देशों ने सुलभ-मुद्रा नीति अपनाली है, जिसकी वजह से अधिकोप-दर का परिवर्तन महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है, और न ऐसे परिवर्तन किये ही जाते हैं; जिससे अधिकोप-दर का महत्त्व कम हो गया है।

छटवें, गत १५ वर्षों से अधिकोषों की सम्पत्ति अधिक तरल रहने लगी है जिससे अन्य अधिकोषों को केन्द्रीय अधिकोष से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं होती अपितु मुद्रा-विपणि की आवश्यकताओं की पूर्ति वे स्वयं ही कर सकते हैं; अतः अधिकोष दर के महत्त्व का कम होना सहज ही है।

सातवें, अधिकोष दर में परिवर्तन होते ही मुद्रा-विपणि पर तत्काल प्रभाव नहीं होता। प्रभाव के होने के लिये कुछ समय लगता है, जिस बीच में साख-नियंत्रण की आवश्यकता भी खतम हो जाती है। इस कारण से भी अधिकोप-दर अब महत्त्वपूर्ण नहीं रही।

आठवें, अधिकोष दर की वृद्धि से, मान लीजिये कि लोग उधार लेना कुछ समय के लिये कम कर देते हैं परन्तु इस वृद्धि के साथ ही अधिकोष निक्षेपों पर दिये जाने वाले ब्याज की दर बढ़ा देते हैं जिससे निक्षेपों में वृद्धि होती है और यह वृद्धि होते ही अधिकोष अधिक साख-निर्माण करते हैं जो अधिकोप-दर को अप्रभावित कर देती है।

इन सब कारणों की वजह से वर्तमान काल में अधिकोप-दर का महत्त्व कम हो गया है तथा वह प्रभावशाली नहीं रही। अतः जैसा कि ऊपर कहा गया है साख-नियंत्रण में सफलता प्राप्त करने के लिये सब साधनों का संतुलित उपयोग होना चाहिये, न केवल एक ही साधन का; जिससे वांछित परिणाम प्राप्त हो सकें।

प्रश्न संग्रह

१. केन्द्रीय अधिकोष देश की साख एवं मुद्रा का नियंत्रण किस प्रकार करते हैं? उदाहरण सहित लिखिये।

२. केन्द्रीय अधिकोष के मुख्य कार्यों का विवेचन कीजिये तथा साख नियंत्रण के लिये कौन से साधनों का उपयोग वह करता है यह भी बताइये।

(आगरा, बी० काम १९२८);

३. साख नियंत्रण की आवश्यकता एवं उद्देश्य क्या है ? केन्द्रीय अधिकोष किस प्रकार से साख नियंत्रण करता है ? (B. A. Agra 1935)

४. अधिकोष दर से क्या तात्पर्य है ? अधिकोष दर के उच्चावचन का किसी देश के व्यापार, उद्योग एवं वाणिज्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ? आजकल इसका महत्त्व क्या है ?

५. "केन्द्रीय अधिकोष की अधिकोष-दर द्वारा साख नियंत्रण का साधन १९१४-१८ के बाद, विशेषतः १९३५ के बाद अप्रभावी हो गया है" इस उक्ति का कारण सहित स्पष्टीकरण कीजिये।

६. केन्द्रीय अधिकोष के मुख्य कार्यों को बताइये ? भारत में केन्द्रीय अधिकोष की स्थापना किस ढंग पर होनी चाहिये ?

(Agra 1935, B. A.)

अध्याय ११

समाशोधन गृह

हम यह बता चुके हैं कि रोकनिधि की मात्रा समाशोधन गृहों के अस्तित्व एवं विकास पर भी निर्भर रहती है क्योंकि इन संस्थाओं के अस्तित्व से अधिकोषों के एक दूसरे पर आहरित धनादेशों का संतुलन हो कर केवल शेष राशि का भुगतान केन्द्रीय अधिकोष पर धनादेश आहरित करके हो जाता है। उदाहरणार्थ 'क' का लेखा भारत बैंक कानपुर में है तथा 'ख' का लेखा हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक में हैं। अब यह दोनों अपने आपसी भुगतान अपने अधिकोषों पर धनादेश आहरित कर कर देंगे। इसी प्रकार जो धनादेश इन दोनों व्यक्तियों को प्रतिदिन व्यापारिक व्यवहारों में मिलते हैं वे धनादेश अपने-अपने अधिकोष में संग्रहण के लिये भेज देंगे। अब मान लीजिये इस प्रकार के धनादेश जो क ख ने एक दूसरे को दिये हैं उनकी राशि क्रमशः ५००० रुपये तथा ७००० रु० है तथा यह धनादेश केवल भारत बैंक एवं हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक पर ही आहरित हैं। इस दशा में ५००० की लेनी कमर्शियल बैंक की होती है तथा ७००० रु० की लेनी भारत बैंक की होती है तथा इस लेनी देनी का संतुलन करने पर भारत बैंक कमर्शियल बैंक से केवल २०००) रु० लेने का अधिकारी होता है; इस प्रकार एक दूसरे अधिकोष पर आहरित धनादेशों का आपस में संतुलन (Balancing) हो जाता है। जो बात इन दो अधिकोषों के विषय में सही है वही जरा विस्तृत परिमाण में उपयोग की जाय तो इस प्रकार अन्य अधिकोषों का भुगतान आपसी धनादेशों द्वारा होकर केवल थोड़ी सी रकम के धनादेश ऐसे बचेंगे जिनका उन्हें वास्तव में मुद्रा देकर भुगतान करना पड़ेगा। किन्तु यह कार्य अधिक सुविधाजनक करने के लिये प्रत्येक अधिकोष के कर्मचारी उन पर आहरित धनादेशों का भुगतान देने के लिये तथा लेने के लिये अन्य अधिकोषों के पास न जाते हुए एक स्थान पर एकत्रित होते हैं जहां एक दूसरे पर आहरित धनादेशों का प्रतिसाद (Set-off) होकर केवल शेष राशि एक दूसरे को देनी पड़ती है। यह क्रिया जिस

स्थान पर की जाती है उसे समाशोधन गृह कहते हैं। इस समाशोधन गृह के अस्तित्व से अधिकोषों को अनेक लाभ होते हैं जो हम आगे देखेंगे। इस उदाहरण से हम यह कह सकते हैं कि समाशोधन गृह वह संस्था है जो अधिकोषों के आपसी भुगतान को सुविधाजनक बनाती है। अथवा टॉसिग के शब्दों में, समाशोधन गृह "किसी एक स्थान के अधिकोषों का एक सामान्य संगठन है, जिसका मूल हेतु धनादेशों द्वारा निर्मित परस्पर-दायित्व (Cross obligations) का प्रतिसाद अथवा भुगतान करना होता है"।[1]

इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाशोधन-गृह किसी भी स्थान में एक ऐसे महान् अधिकोष का कार्य करते हैं जिसमें वहाँ के निवासियों के लेखे हों तथा निक्षिप्त राशि जमा हो और जब वे लोग आपसी भुगतान धनादेशों द्वारा करते हैं तब उन धनादेशों की राशि व्यक्ति को न दी जा कर केवल एक लेखे से दूसरे लेखे में परिवर्तित (Transfer) की जाती है; इस प्रकार वास्तव उपयोग में मुद्रा की राशि कम लगती है।

समाशोधन गृहों का विकास : समाशोधन गृहों का उद्गम एवं विकास सर्वप्रथम इङ्गलैन्ड में हुआ जहाँ कि अधिकोषण व्यवस्था अधिक उन्नत होने के कारण विशेषतः धनादेशों द्वारा ही ऋणों का भुगतान किया जाता था। इस प्रकार का सबसे पहिला गृह लन्दन में १७७५ में तथा अमेरिका में १८५३ में न्यूयार्क में स्थापन हुआ। इस पद्धति का विकास किस प्रकार हुआ यह कहना तो कठिन है किन्तु उनका विकास एवं उद्गम उसी काल में होना चाहिये जब निक्षेप अधिकोषण तथा धनादेश का पर्याप्त प्रसार एवं उपयोग होना प्रारम्भ हुआ। इसका विकास तीन श्रेणियों से हुआ होना चाहिये।

पहिले, जिस समय धनादेशों का भुगतान अपने लिपिक अन्य अधिकोषों के पास भेजकर प्राप्त किया जाता था तथा अधिकोष दायित्व का पृथक पृथक भुगतान करते थे। इस स्थिति में अधिकोष के लिपिक अपने अन्य अधिकोष से पारस्परिक लेने देने का विवरण बना कर ही यह भुगतान करते होंगे।

दूसरी सीढी में जब लिपिकों की पर्याप्त जान पहचान हो गई तथा उन्होंने प्रत्येक अधिकोष के पास जाकर अपने भुगतान करने की अपेक्षा; अपने श्रम और समय बचाने के हेतु आपस में एक जगह पर मिलना तय किया तथा वहीं पर लेना देना निकाल कर आपसी भुगतान करने लगें। इस पद्धति में

---

[1] *Clearing House is a general organisation of Banks of a given place, having for its main purpose, the off-setting of cross-obligations in the form of cheques.*

उनको प्रत्येक अधिकोष के पास जाने की आवश्यकता न रही किन्तु इस स्थिति में भी आपसी शेषों का भुगतान मुद्रा द्वारा ही होता था। इस प्रकार की पद्धति को अधिकोषों ने मान्य नहीं किया था परन्तु क्रमशः जब उन्होंने इस पद्धति को सुविधाजनक एवं सरल पाया तब उन्होंने उसे १७७३ में मान्यता दी। इतना ही नहीं अपितु इस प्रकार का कार्य करना सम्भव हो सके इसलिये स्थान भी प्रदान किया।

तीसरी सीढी का आरम्भ तब होता है जब इस पद्धति को सर्व सम्मति से सब अधिकोषों द्वारा मान्यता मिली तथा इसके सुसंचालन एवं नियमन के लिये विशेष नियम बनाए गए। इस स्थिति के बाद हम आज की उन्नत स्थिति पर इन भुगतान गृहों को देखते हैं जिसका संचालन केन्द्रीय अधिकोष द्वारा होता है तथा अधिकोषों के आपसी भुगतान के लिये केन्द्रीय अधिकोष में समाशोधन गृह लेखा भी रखा जाता है, जिस लेखे पर धनादेश आहरित करके अधिकोष अपने परस्पर दायित्व का भुगतान करते हैं।

कार्य प्रणाली : समाशोधन गृह के अधिकोष सदस्य बनते हैं जिन्हें 'समाशोधक अधिकोष' (Clearing Bank) कहते हैं तथा निश्चित समय पर प्रतिदिन इनके लिपिक समाशोधन-गृह में एकत्रित होते हैं। यहाँ पर प्रत्येक सदस्य अधिकोष का प्रतिनिधि प्रत्येक अधिकोष के लेने देने का हिसाब विशेष मुद्रित प्रपत्रों पर बनाते हैं। इन प्रपत्रों को वहिपुंस्त (Out-book) तथा जो लिपिक यह लेखा बनाते हैं उन्हें 'वहिर्शोधक' (Out-clearers) कहते हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्रत्येक अधिकोष के छूटे हुए धनादेशों को लाते हैं उन्हें 'संधावक' (Runners) कहते हैं जो प्रत्येक अधिकोश पर आहरित धनादेशों का वर्गीकरण कर उनको समाशोधन-गृह में उचित स्थान पर रखते हैं। वहिर्शोधकों के अतिरिक्त अंतर्शोधक (In-clearers) भी होते हैं जो अंतपुंस्त (In-Book) के मुद्रित प्रपत्रों को भरते हैं। जब प्रत्येक अधिकोष की अंतपुंस्त एवं वहिपुंस्त की प्रविष्टियां पूर्ण हो जाती हैं तब इन दोनों पुस्तकों का संतुलन कर प्रत्येक अधिकोष का लेना देना निकाला जाता है जिसका विवरण प्रत्येक सदस्य अधिकोष के सामान्य-स्थिति-विवरण में लिखा जाता है। यह सामान्य-स्थिति-विवरण भी मुद्रित प्रपत्रों पर जिन पर सदस्य अधिकोषों के नाम छपे रहते हैं, बनाया जाता है तथा प्रत्येक अधिकोष के लिए दो विभाग होते हैं—समाकलन पार्श्व (Credit Side) तथा विकलन पार्श्व (Debit Side)। इन स्थिति-विवरणों के संतुलन से प्रत्येक अधिकोष को कितना देना है अथवा लेना है इसका ज्ञान हो जाता है। यदि किसी अधिकोष को देना है तो वह केन्द्रीय अधिकोष के अपने समाशोधन गृह लेखे पर, जिस अधिकोष को देना है उसके

नाम धनादेश आहरित करता है, जिसकी राशि से इस अधिकोष के समाशोधन गृह-लेखे की राशि कम तथा दूसरे अधिकोष के समाशोधन गृह-लेखे की राशि अधिक हो जाती है।

सामान्य स्थिति विवरण का प्ररूप नीचे दिया है जिससे यह स्पष्ट हो जायगा :—

सदस्य अधि०	कुल लेनी	देनी					
		अ	ब	क	ग	ड	र
अ	५०,०००	—	२७,०००	१०,०००	५,०००	८,०००	—
ब	४०,०००	१०,०००	—	५,०००	५,०००	१०,०००	१०,०००
क	३०,०००	५,०००	३,०००	—	७,०००	६,०००	९,०००
ग	२०,०००	३,०००	१२,०००	१,०००	—	२,०००	२,०००
ड	२५,०००	७,०००	८,०००	३,०००	२,०००	—	—
र	३५,०००	१०,०००	४,०००	८,०००	७,०००	६,०००	५,०००
योग	२००,०००	३५,०००	५४,०००	२७,०००	२६,०००	३२,०००	२६,०००

इस विवरण को देखने से किसी भी अधिकोष का कुल लेना कितना है तथा प्रत्येक अधिकोष का एक दूसरे के प्रति क्या लेना देना है इसका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। जैसे अ का कुल लेना ५०,००० है तथा उसका देना ३५,००० है; इस प्रकार उसे अन्य अधिकोषों से ३५,००० रु० प्राप्त होगा जो अधमर्ण अधिकोष समाशोधन गृह के नाम देंगे तथा समाशोधन गृह उसका भुगतान अ को करेगा जो वह केन्द्रीय अधिकोष के अपने लेखे में जमा कर देगा। इस प्रकार दिन के अन्त में समाशोधन गृह लेखे का देना लेना संतुलित होकर कुछ भी शेष नहीं रहता क्योंकि समाशोधन गृह को जो राशि मिलती है, उससे अन्य अधिकोषों का लेने का भुगतान हो जाता है। इस प्रकार समाशोधन गृह के निर्माण का मूलभूत सिद्धांत व्यक्तिगत व्यवहार न होते हुए सामुदायिक व्यवहार है तथा परस्पर राशि के आदान प्रदान के बदले लेने देने का प्रतिसाद करता है।

समाशोधन गृह से लाभ : १. प्रत्येक सदस्य अधिकोष के लेने देने का भुगतान सामुदायिक रूप से होता है जिससे आपसी भुगतान सुविधा-जनक होता है एवं शीघ्र होता है। इसका लाभ जो अधिकोप सदस्य नहीं हैं वे भी उठा सकते हैं। कभी कभी जो अधिकोष समाशोधन-गृह के सदस्य नहीं हैं, उनके धनादेशों का भुगतान प्राप्त करने के लिए सदस्य अधिकोष शुल्क भी लेते हैं जैसे भारत में कलकत्ते का मेट्रोपोलिटन बैंकिंग एसोसिएशन।

यह संघ जो अधिकोष सदस्य नहीं हैं उनसे शुल्क लेता है, इतना ही नहीं अपितु जो सदस्य नहीं है उनके धनादेश आदि भुगतान के लिये लेने से भी इसके सदस्य इन्कार कर देते हैं।[1]

२. प्रत्येक सदस्य अधिकोष के परस्पर-दायित्व का परस्पर प्रतिसाद होने के कारण केवल शेषों का ही आदान प्रदान होता है और वह भी केन्द्रीय अधिकोष में जो समाशोधक अधिकोष हैं, उनके लेखे पर धनादेश आदि आहरण से, जिससे मुद्रा के उपयोग में मितव्ययिता होती है।

३. समाशोधन गृहों के अस्तित्व एवं विकास के कारण मुद्रा के उपयोग में मितव्ययिता होती है, जिससे अधिकोषों को रोकनिधि भी कम रखनी पड़ती है तथा वे अधिक मात्रा में साख का निर्माण कर सकते हैं तथा साख-प्रणीत अर्थव्यवस्था से ही व्यापारिक व्यवहारों का आदान-प्रदान होता है जिससे देश का व्यापार वाणिज्य एवं उद्योग उन्नत होता है।

लंदन समाशोधन-पद्धति (London Clearing System): आरंभ में लंदन-समाशोधन गृह केवल लंदन क्षेत्र के अधिकोषों पर आहरित धनादेशों का ही भुगतान करते थे परंतु अब यह समाशोधन क्रियाएं भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार तीन क्षेत्रों में विभाजित हो गई हैं :—

१. शहर समाशोधन (Town Clearing): जिसमें केवल उन्हीं धनादेशों का भुगतान एवं व्यवहार होता है जो लंदन शहर की सीमा में स्थित सदस्य अधिकोषों पर आहरित किये गए हों अथवा मध्यवर्ती लंदन स्थित (Central London) सदस्य अधिकोषों पर आहरित किये गए हों। इसलिये इनमें विशेषतः उन्हीं धनादेशों का समाशोधन होता है जो विशेषतः प्रमुख कार्यालयों द्वारा शोधनीय (Payable) हों।

२. राजधानी समाशोधन (Metropolitan Clearing): इसमें केवल उन्हीं धनादेशों में व्यवहार एवं भुगतान होता है जो शहर-समाशोधन क्षेत्र के बाहर किंतु लंदन के ४ मील के क्षेत्र के अंदर जो स्थित अधिकोष होते हैं उन पर आहरित किए गए हों अथवा उनके द्वारा शोधनीय हों। यह विभाग १९०७ में खोला गया था।

३. ग्राम-समाशोधन (Country Clearing): इसमें उन धनादेशों का समाशोधन एवं व्यवहार होता है जो धनादेश अधिकोष की उन शाखाओं पर आहरित किये गए हों जिनका समावेश उपर्युक्त दोनों समाशोधन

---

[1] *A Study of Indian Money Market by Bimal C. Ghosh*, Pp. 135

पद्धति में नहीं होता। इस शाखा की स्थापना सन् १८५८ में की गई थी। ग्राम समाशोधन केवल धनादेशों में ही व्यवहार करते हैं तथा अन्य विपत्रादि का संग्रहण शहर एवं राजधानी समाशोधन गृहों द्वारा किया जाता है।

कौनसा धनादेश किस समाशोधन गृह के द्वारा संग्रहित होगा इसकी जानकारी के लिये धनादेशों के वामकोण (Left corner) पर T, M, तथा C ये अक्षर छपे हुए रहते हैं जिससे उनको संग्रहण करने के लिए समाशोधन गृहों में ले जाने के लिए वर्गीकरण करने में सुविधा होती है।

भारतीय समाशोधन गृह : समाशोधन गृहों के अभाव में किसी भी देश की अधिकोपण पद्धति उन्नत नहीं हो सकती और न किसी भी देश में समाशोधन गृहों की आवश्यकता ही तब तक प्रतीत होती है जब तक कि उस देश में अधिकोपण का विकास न हो तथा धनादेशों का पर्याप्त मात्रा में उपयोग न हो। भारत में समाशोधन गृहों की आवश्यकता १६२० तक प्रतीत नहीं हुई क्योंकि यहां पर धनादेशों का उपयोग ही नगण्य परिमाण में होता था परन्तु इम्पीरियल बैंक की स्थापना (१६२०) के बाद ही भारत में अधिकोपण को भी अच्छा आधार मिला जिससे स्वतन्त्र पद्धति पर कलकत्ता, बम्बई, रंगून, दिल्ली तथा मद्रास में ये कार्यान्वित हुए तथा इम्पीरियल बैंक के निरीक्षण में कार्य करने लगे। सदस्य अधिकोषों का आपसी भुगतान इम्पीरियल बैंक की स्थानीय शाखा पर आहरित धनादेशों द्वारा होता था। १६३५ में रिज़र्व बैंक की स्थापना के बाद अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को रिज़र्व बैंक के पास अपने लेखे खोलने पड़े क्योंकि उनके निक्षेप देय का ५% प्रतिशत इस अधिकोष में रखने का वैधानिक बंधन लगाया गया तथा उपर्युक्त समाशोधन केन्द्रों के सदस्य अधिकोषों का भुगतान इन लेखों पर धनादेश-आहरण द्वारा हुआ करे यह भी बन्धन लगाया गया। इसी के साथ रिज़र्व बैंक को भी यह अधिकार दिया गया कि वह समाशोधन गृहों का समुचित नियमन करने के हेतु नियम भी बनावे किन्तु इस ओर अभी तक कोई भी कदम नहीं उठाया गया है; हां समाशोधन गृहों की व्यवस्था रिज़र्व बैंक अवश्य करता है।

भारत में कुल २२ समाशोधन गृह तथा पाकिस्तान में ४ समाशोधन गृह हैं जो निम्न स्थानों पर हैं :—

भारत में : बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, कानपुर, आगरा, अहमदाबाद, अमृतसर, प्रयाग, कालीकट, कोइम्बतूर, पटना, नागपुर, शिमला, बंगलोर, देहरादून, जालंधर, लखनऊ, मदूरा, मंगलोर इत्यादि।

पाकिस्तान में : रावलपिंडी, लाहौर, पेशावर तथा करांची।

समाशोधन गृहों की सदस्यता : उपर्युक्त भारतीय समाशोधन-गृह स्वतंत्र संस्था के रूप में कार्य करते हैं तथा उनके नियम भी स्वतंत्र हैं। इन समाशोधन गृहों के सभी विनिमय अधिकोष, संयुक्त स्कंध अधिकोष (Joint Stock Banks) जो अनुसूचीबद्ध हैं, इम्पीरियल बैंक सदस्य हैं। तथा अन्य कोई भी अधिकोष इनका सदस्य तभी बनाया जाता है जब ३/४ सदस्यों की अनुमति प्राप्त हो अथवा जहां सदस्यता के लिये पूंजी सम्बन्धी नियम है, वहां उतनी परिदत्त पूंजी (Paid-up Capital) होने पर सदस्यता स्वीकार की जाती है। परन्तु सदस्यता स्वीकार करने के पूर्व सदस्य बनने वाले अधिकोष के स्थिति-विवरण की तज्ञों द्वारा जांच करा ली जाती है जिससे उस अधिकोष की आर्थिक दशा का सदस्य अधिकोषों को समुचित ज्ञान हो सके। कलकत्ता तथा बम्बई जो भारत के प्रमुख समाशोधन-गृह हैं, उनके सदस्य वे ही अधिकोष बनाये जा सकते हैं जिनकी परिदत्त पूंजी ५ या १० लाख रुपये हो, फिर भी ३/४ सदस्यों की अनुमति सदस्यता स्वीकार करने के लिये आवश्यक होती है। जिस अधिकोष की पूंजी कम होती है वह अधिकोष किसी अन्य अधिकोष की सिफारिश से आवेदन पत्र भेजकर उप-सदस्य बन सकता है तथा इस उपसदस्य के लिये सिफारिश करने वाला अधिकोष उत्तरदायी होता है जिसे प्रवेशक अधिकोष (Sponsor Bank) कहते हैं। विभिन्न स्थान के समाशोधन गृहों के सदस्यता सम्बन्धी नियम भिन्न भिन्न हैं।

व्यवस्था : समाशोधन गृहों का प्रबन्ध एक व्यवस्थापक समिति (Managing Committee) के द्वारा होता है जिस समिति में यदि वहां स्थानीय रिज़र्व बैंक या उसकी शाखा है तो एक सदस्य उसका, इम्पीरियल बैंक का एक सदस्य, तथा विनिमय अधिकोष एवं संयुक्त स्कंध अधिकोषों के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। किन्तु जहां तक नवीन सदस्यों का प्रवेश तथा व्यवस्था का सम्बन्ध है, वहां पर विनिमय अधिकोषों का कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि निर्यात केन्द्रों में अधिक प्रभाव रहता है, जिससे नये अधिकोषों को सदस्य बनने में कठिनाई प्रतीत होती है। समाशोधन गृहों का निरीक्षण जिन स्थानों पर रिज़र्व बैंक की शाखा है वहां रिज़र्व बैंक करता है अन्यथा इम्पीरियल बैंक की शाखा यदि है तो इम्पीरियल बैंक करता है तथा प्रत्येक सदस्य अधिकोष को समाशोधन गृह संचालन के लिए निरीक्षक अधिकोष के पास एक निश्चित राशि जमा करनी होती है, जिस पर समाशोधन गृह के धनादेश आदि आहरित कर पारस्परिक भुगतान हो सके। जहां पर समाशोधन गृह नहीं हैं वहां पारस्परिक भुगतान इम्पीरियल बैंक के माध्यम से धनादेशों द्वारा किया जाता है।

समाशोधन गृह के कार्य के लिये आवश्यक लिपिकों की पूर्ति इम्पीरियल तथा रिज़र्व बैंक करते हैं।

भारत के सबसे अधिक समाशोधन गृह बंबई तथा कलकत्ते में हैं जहाँ पर पारस्परिक भुगतान दिन में दो बार होता है किन्तु शनिवार को एक बार ही होता है। भारत में सबसे बड़ा उन्नत समाशोधन गृह कलकत्ते में है जहाँ समाशोधन गृह दो हैं। एक तो कलकत्ता समाशोधक अधिकोष संघ (Calcutta Clearing Banks' Association) जो केवल वहां के बड़े-बड़े अधिकोषों को ही पारस्परिक भुगतान की सुविधाएं देता है जो इसके सदस्य हैं तथा कुछ उप-सदस्यों को जिनकी शाखा कलकत्ते में है एवं परिदत्त पूंजी १० लाख रुपये है। इस संस्था का संचालित समाशोधन गृह कलकत्ता समाशोधन गृह नाम से प्रख्यात है।

दूसरे समाशोधन गृह का नाम मेट्रोपोलिटन समाशोधन गृह है। यह उन अधिकोषों द्वारा संचालित है जो कलकत्ता समाशोधन गृह के सदस्य एवं उपसदस्य नहीं हैं। यह गृह १९३९ में खोला गया था एवं इसके सदस्य अनुसूची-बद्ध अधिकोष नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त कलकत्ते में पारस्परिक भुगतान की एक और पद्धति पिछले ८-१० वर्षों से प्रचलित हो चली है जिसे हम (Pioneer Clearing) प्रारम्भिक समाशोधन गृह कह सकते हैं। इस पद्धति को कोई भी कार्यालयीन मान्यता नहीं है; इस पद्धति में सदस्य अधिकोष के साथ जो अधिकोष समाशोधन गृह का सदस्य नहीं है वह एक समझौता कर लेता है जिसके अनुसार अ-सदस्य अधिकोष पर आहरित सब धनादेशों आदि का भुगतान सदस्य अधिकोष समाशोधन गृह से करा सकता है तथा अ-सदस्य अधिकोष के धनादेश पत्रों पर किस सदस्य अधिकोष द्वारा भुगतान होगा यह भी मुद्रित रहता है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी तक भारत में पारस्परिक भुगतान की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है क्योंकि विशेषतः पारस्परिक भुगतान की व्यवस्था स्थानीय धनादेशों आदि तक ही सीमित है तथा अन्य स्थान के धनादेशों का संग्रहण आदि उन्हीं स्थानों से प्राप्त किया जा सकता है जिससे धनादेशों का संग्रहण एवं भुगतान करने में असुविधा एवं अनावश्यक विलम्ब होता है। दूसरे, अनेक बड़े-बड़े व्यापारिक केन्द्रों में पर्याप्त अधिकोषों के होते हुए भी वहां पर समाशोधन गृहों की अभी तक स्थापना

---

[1] विशेष विवेचन के लिये देखिये *A Study of Indian Money Market By Bimal C. Ghosh P. 138*

नहीं हुई है जो व्यापारिक उन्नति के लिये आवश्यक है तथा जिससे मुद्रा के उपयोग में बचत होकर अधिकोष भी अपनी रोकनिधि कम कर, अधिक साख निर्माण कर सकते हैं। तीसरे, समाशोधन गृह की कार्यप्रणाली एवं संचालन में भी भिन्न-भिन्न केन्द्रों में विविधता पाई जाती है, जिसकी एक पद्धति होना अधिकोषण-विकास की दृष्टि से आवश्यक है। चौथे, समाशोधन गृहों की सदस्यता के नियम भी अधिक कड़े हैं, जिससे अनेक अच्छे-अच्छे अधिकोष भी उनके सदस्य नहीं हो सकते। अतः इनमें भी ढिलाई की आवश्यकता है।

जैसे कि हम पहिले कह चुके हैं, रिज़र्व बैंक पर समाशोधन-गृह सम्बन्धी कार्यवाही का वैधानिक उत्तरदायित्व होते हुए भी रिज़र्व बैंक ने अभी तक इस दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्यवाही नहीं की है अतः अधिकोषण विकास की दृष्टि से रिजर्व बैंक को चाहिये कि वह उपर्युक्त दोषों के निवारण की ओर अग्रसर होकर समाशोधन एवं पारस्परिक भुगतान के लिये समुचित सुविधाएं प्रदान करे जिससे मुद्रा के उपयोग में मितव्ययिता आकर रोकनिधि का परिमाण भी घटेगा एवं व्यापार को अधिक साख सुविधाएं मिल सकेंगी, जिससे भारतीय व्यापार की उन्नति होकर मुद्रा के समान वितरण के साथ ही व्याज की दरों में भी समानता आ सकेगी।

प्रश्न संग्रह

१. समाशोधन-गृह की कार्य प्रणाली बताते हुए उससे कौनसे लाभ होते हैं, यह बताइये। परिस्थिति में परिवर्तन न होते हुए (Other things being equal) यदि समाशोधन गृहों का विस्तार होता है तो उससे मुद्रा का संकोच होगा अथवा प्रसार? (नागपुर, बी. कॉम. १९४८)

२. समाशोधन गृह क्या है? उसकी कार्यप्रणाली बताइये तथा उससे समाज को एवं अधिकोष को क्या लाभ है? (आगरा. बी. कॉम. १९४९)

३. भारतीय समाशोधन गृह की कार्यप्रणाली एवं संगठन का वर्णन कीजिये? उससे कौन से लाभ हैं? (आगरा. बी. कॉम. १९४६)

४. समाशोधन गृह संगठन का क्या अर्थ है? भारत में उसकी कार्यप्रणाली का वर्णन कीजिये। (आगरा. बी. कॉम. १९४३)

५. अधिकोष को समाशोधन-गृह से कौनसे लाभ हैं उनका पूर्ण विवेचन कीजिये तथा इसमें केन्द्रीय अधिकोष का क्या भाग है? (अजमेर. I. Com. 1945)

६. समाशोधन-गृह के कार्य तथा आर्थिक सेवाओं का वर्णन कीजिये। (अजमेर I. Com. 1942)

अध्याय १२

भारतीय मुद्राविपणि (Money-Market)

किसी भी देश का आर्थिक एवं औद्योगिक विकास उसके मुद्राविपणि के सुसंचालित संगठन पर निर्भर रहता है जिससे व्यापारिक, कृषिक तथा औद्योगिक मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति समुचित प्रकार से हो सके। अतः सुसंचालित एवं सुसंगठित मुद्राविपणि किसी भी देश के आर्थिक कलेवर का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। मुद्राविपणि, उस बाजार को कहते हैं जहाँ पर मुद्रा एवं साख को खरीदने वाले तथा बेचने वाले परस्पर मिलते हैं तथा जहाँ पर मुद्रा की माँग एवं पूर्ति का आवश्यकतानुसार आदान प्रदान होता है। इस बाजार में विशेषतः व्यापारिक आवश्यकताओं तथा अन्य आर्थिक उत्पादन की आवश्यकताओं के लिए मुद्रा एवं साख की पूर्ति होती है। तथा यह पूर्ति पर्याप्त मात्रा में तथा उचित व्याज पर हो जाती है। सुसंगठित मुद्राविपणि से व्यवसायियों को साख सुगमता से प्राप्त होती रहनी चाहिये जिससे वे औद्योगिक एवं आर्थिक उन्नति के लिए उसका महत्तम उपयोग कर सकें। मुद्राविपणि को हम एक दृष्टि से सामाजिक अधिकोष भी कह सकते हैं क्योंकि जो लाभ एवं उपयोग किसी अधिकोष का एक व्यक्ति को होता है वही लाभ मुद्राविपणि से समाज को होता है। दोनों से ही अल्पकालीन साख-आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इसमें आवश्यकतानुसार मुद्रा एवं साख का प्रसार एवं संकोच होता रहना चाहिये तथा विनियोग के पर्याप्त साधन उपलब्ध होने चाहियें जिससे जनता की बचत मुद्राविपणि में आती रहे।

इसीलिये मुद्राविपणि में विपत्र-विपणि, विनिमय एवं विनियोग-विपणि का विशेष महत्त्व है। मुद्राविपणि पूँजी-विपणि से भिन्न होती है क्योंकि पूँजी बाजार से दीर्घकालीन ऋणों की पूर्ति की जाती है, इसके विपरीत मुद्राविपणि अल्पकालीन ऋणों की पूर्ति करती है फिर भी इन दोनों का सम्बन्ध घनिष्ट है। दूसरे पूँजी-विपणि में कार्य करने वाली संस्थाएँ भिन्न होती हैं।

मुद्राविपणि में मुद्रा एवं साख को उधार लेने वाले (१) व्यापारी, तथा उद्योग-धन्धे वाले व्यक्ति एवं सामाजिक तथा व्यक्तिगत कार्यों के लिये ऋण लेने वाले व्यक्ति; (२) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारें तथा अर्ध-सरकारी संस्थाएँ जैसे नगरपालिका आदि; तथा (३) कृषक वर्ग जो फसल के समय ऋण लेता है—होते हैं। दूसरी ओर ऋण एवं साख देने वाली संस्थाएँ होती हैं जैसे स्वदेशी अधिकोष, सहकारी अधिकोष, व्यापारिक अधिकोष, साहूकार, महाजन आदि।

यह तो हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं कि मुद्राविपणि में साख का नियन्त्रण एवं नियमन इस प्रकार से होना चाहिए जिससे आंतरिक मूल्यों में स्थैर्य रहे; इस कार्य में केन्द्रीय अधिकोष का विशेष हाथ रहता है क्योंकि उस-पर साख का देश हितार्थ एवं समुचित नियन्त्रण करने का उत्तरदायित्व होता है। सुसङ्गठित मुद्राविपणि जहाँ है वहाँ यह नियन्त्रण समुचित रूप से होता है परन्तु भारतीय मुद्राविपणि का सङ्गठन सदोष होने के कारण केन्द्रीय अधि-कोष अर्थात् रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया, यह नियन्त्रण पूर्ण रूप से नहीं कर पाता है।

हमारी मुद्राविपणि सदोष होने का मूल कारण हमारा आर्थिक-संगठन है। क्योंकि भारतीय आर्थिक संगठन २०वीं शताब्दि के प्रारंभ काल में अंग्रेज व्यापारियों द्वारा उनकी निजी व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया था, जिसकी वजह से हमारे यहां की आर्थिक संस्थाएँ जो मुद्राविपणि में कार्य कर रही हैं वे हमारी देश की आवश्यकताओं के अनुसार संगठित नहीं हुई। दूसरे, भारतीय चलन पद्धति भी सदोष थी एवं जिसकी उत्क्रान्ति एवं विकास अंग्रेजों की ही आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किया गया था, न कि भारतीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये। तीसरे, भारत की विदेशी सरकार ने भारतीय अधिकोषण, वाणिज्य एवं औद्योगिक उन्नति को किसी भी प्रकार से प्रोत्साहित नहीं किया। परन्तु क्रमशः भारतीय औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुसार मुद्राविपणि के दोष निवारण होते जारहे हैं। इस प्रकार विदेशी नीति के अनुसार मुद्रा विपणि का संगठन होने के परिणाम स्वरूप ही आज भारतीय मुद्राविपणि सदोष है जो भारतीय आवश्यकताओं की पूर्ति समुचित रूप से नहीं करता तथा न साख का नियन्त्रण ही आवश्यकतानुसार हो पाता है।

भारतीय-मुद्राविपणि के भाग : भारतीय मुद्राविपणि दो भागों में विभक्त है एक—यूरोपीय भाग-जिसमें इम्पीरियल बैंक, रिज़र्व बैंक तथा विनिमय-अधिकोषों का समावेश होता है। तथा दूसरा भारतीय भाग जिसमें

सहकारी अधिकोष, संयुक्त स्कंध अधिकोष, स्वदेशी अधिकोष, आदि का समावेश होता है तथा इसी भाग के द्वारा देश की अधिकांश मौद्रिक एवं साख-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इतना ही नहीं अपितु इसमें से केवल कुछ हद तक कृषि जन्य साख की पूर्ति सहकारी अधिकोष तथा लगभग ६० प्रतिशत साख की पूर्ति स्वदेशी अधिकोष, साहूकार, महाजन आदि करते हैं।

यूरोपीय भाग सदैव सरकार के नियंत्रण में रहा है किंतु भारतीय भाग आरंभ से ही अनियन्त्रित रहा है तथा इन दोनों भागों का कोई विशेष सम्पर्क १६३५ तक नहीं रहा; यही कारण है कि हमारी मुद्राविपणि दोषपूर्ण रही एवं है भी। इतना ही नहीं मुद्राविपणि का भारतीय भाग भी विभक्त है तथा इसमें बंबई मुद्राविपणि तथा कलकत्ता मुद्राविपणि का प्रमुख स्थान हैं। इसके अतिरिक्त कानपुर, दिल्ली, अहमदाबाद आदि शहरों में भी स्थानीय मुद्राविपणि हैं जिससे यह स्पष्ट है कि अभी तक हमारे यहां अखिल-भारतीय मुद्राविपणि का अस्तित्व अन्य पाश्चिमात्य राष्ट्रों की तरह नहीं है।

भारतीय मुद्राविपणि के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं :—

१. स्वदेशी अधिकोष
२. संयुक्त स्कंध अधिकोष
३. विनिमय अधिकोष
४. सहकारी अधिकोष
५. इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया, तथा
६. रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया।

इनका विस्तृत विवेचन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

भारतीय मुद्राविपणि के दोष : भारतीय मुद्राविपणि में अनेक दोष हैं जो निम्नलिखित हैं :—

१. जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं भारतीय मुद्राविपणि विभिन्न भागों में विभाजित हैं, इतना ही नहीं, अपितु हमारी जो दो प्रमुख मुद्रा विपणि बम्बई तथा कलकत्ते में हैं उनके भी स्थानीय दो भाग हैं—केन्द्रीय मुद्राविपणि तथा बाजार मुद्राविपणि।[1] जिससे मुद्राविपणि का न तो आपस में संगठन ही है और न है पारस्परिक सहयोग की भावना। इसके साथ ही मुद्राविपणि के कुछ अंग तो ऐसे हैं जिनमें परस्पर सहयोग तो एक ओर रहा उल्टी प्रतियोगिता ही है जैसे स्वदेशीय अधिकोष तथा अन्य अधिकोषों में प्रतियोगिता का वातावरण है। तथा ये विभिन्न घटक स्वतंत्र रूप से ऋण

[1] *Indian Central Banking Enquiry, Committee Vol. IV, Pp. 367*

प्रदायक (lending) क्रियाएं करते हैं जिसकी वजह से १९३५ के बाद केन्द्रीय अधिकोष की स्थापना से व्याज की दरों में जो समता आनी चाहिये वह नहीं आ पाती और न अधिकोष-दर का विपणि-दर अथवा अन्य दरों से कोई सम्बन्ध ही प्रस्थापित हो सका है। रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व तो ऐसी कोई मुद्राविपणि थी ही नहीं जिसे हम वास्तव में मुद्राविपणि कह भी सकते थे किन्तु प्रेसीडेंसी शहरों में भी जो मुद्राविपणियां थीं उनका व्यवहार क्षेत्र भी युरोपीय तथा विनिमय अधिकोषों तक ही सीमित था। इसीके साथ इम्पीरियल बैंक भी अन्य व्यापारिक अधिकोषों का प्रतियोगी है क्योंकि उसे इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया विधान के अन्तर्गत कुछ विशेष अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त हैं। किन्तु रिज़र्व बैंक की स्थापना के बाद भी वह मुद्राविपणि के विभिन्न अंगों को एकत्रित कर संगठन करने में असफल रहा।

मुद्रा-विपणि के संगठन के लिये केन्द्रीय अधिकोषण जांच समिति ने यह सुझाव किया था कि भारत में अखिल भारतीय अधिकोष संघ (All India Banker's Association) स्थापित किया जाय जिसके सदस्य सभी अधिकोष हों तथा जिसमें स्वदेशीय अधिकोषों का भी समावेश हो। यह संघ छोटे-छोटे अधिकोषों का एकत्रीकरण (Amalgamation) करे तथा अधिकोषों का पारस्परिक कार्य भी निश्चित करे। अधिकोषण पद्धति को अधिक कार्यक्षम बनाने के साधनों की सिफारिश करे तथा विभिन्न अधिकोषों का केन्द्रीय अधिकोष के साथ सम्पर्क बढ़ावे। इस संघ के कार्यालय विभिन्न स्थानों पर हों जिससे स्थानीय अधिकोषों की कठिनाइयों का निवारण करने के लिये प्रयत्न किया जाय। इस प्रकार का संघ १९४६ में बम्बई में स्थापित हुआ तथा इसके सदस्य सभी अनुसूचीबद्ध (इम्पीरियल बैंक को छोड़कर) अधिकोष हैं।

परन्तु मुद्राविपणि में जब ९० प्रतिशत मुद्रा एवं साख का प्रदाय स्वदेशी अधिकोषों द्वारा हो रहा है तब तक विभिन्न अंगों में परस्पर सहयोग नहीं हो सकता। अतः इस संघ के सदस्यों में स्वदेशी अधिकोषों का समावेश होना आवश्यक है जिससे विभिन्न अंगों का परस्पर सहयोग होकर मुद्रा-विपणि संगठित हो सके तथा रिज़र्व बैंक साख का नियंत्रण देश हित में करने में सफल हो। वैसे तो स्वदेशी अधिकोषों के अलग एवं स्वतंत्र संघ बम्बई तथा कलकत्ते में हैं परन्तु जब तक इन विभिन्न संघों का पारस्परिक समन्वय एवं सहयोग नहीं होता तब तक भारतीय मुद्राविपणि के विभिन्न अंगों के संगठन की बात सोचना केवल स्वप्न ही रहेगा। अतः इस दिशा में भी प्रयत्न होना आवश्यक है।

२. ऋण प्रदायक संस्थाओं का अभाव : हमारी मुद्राविपणि का दूसरा दोष है। हमारे यहां पाश्चात्य देशों की तरह ऐसी कोई भी ऋण-प्रदायक संस्थाएं नहीं हैं जो विभिन्न उद्योगों की आवश्यकतानुसार राशि की पूर्ति कर सकें। जैसे, कृषि व्यवसाय को तीन प्रकार के ऋणों की आवश्यकता होती है—अल्पकालीन, मध्य-कालीन एवं दीर्घकालीन—परन्तु मुद्राविपणि केवल अल्पकालीन ऋण ही दे सकती है तथा दीर्घकालीन ऋण देने का कार्य विशेषतः स्वदेशी अधिकोषों, महाजनों तथा साहुकारों तक ही सीमित है, जिनके व्याज की दर भी अत्यधिक ऊंची हैं। ऐसी विशेष ऋण प्रदायक संस्थाओं का अभाव मुद्राविपणि के संगठन की दृष्टि से शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न होना चाहिये।

३. ऋण प्रदायक राशि का अभाव : ऋण कार्यों के लिये आवश्यकतानुसार ऋण-प्रदायक राशि भी नहीं मिलती क्योंकि राशि विशेषतः उन लोगों से आती है जो बचत करते हैं। परन्तु भारत में विशेषतः बचत की राशि भूमिगत हो जाती है अथवा स्वर्ण तथा अचल सम्पत्ति में परिणत की जाती है। इस अभाव के तीन मुख्य कारण हैं : पर्याप्त विनियोग-साधनों का अभाव, अधिकोषण पद्धति का अपर्याप्त विकास तथा अधिकोषों के टूट जाने की वजह से उनमें अविश्वास। इसके अतिरिक्त भारतीय जनता अधिक गरीब है, अशिक्षित है; उसे इसका भी ज्ञान नहीं है कि अधिकोष में संचय लेखे किस प्रकार से खोले जाते हैं। प्रेषालय संचय अधिकोष का भारतीय ग्रामों में प्रसार नहीं है। हां, ग्रामीण अधिकोषण जांच समिति की सिफारिश के अनुसार देहातों में प्रेषालय संचय-अधिकोषों की सुविधा देने की व्यवस्था की जा रही है जिसके अंतर्गत लगभग २००० नये प्रेषालय (P. O). खोलने की योजना कार्यान्वित हो रही है। इसलिये ऋण-प्रदायक राशि का अभाव दूर करने के लिये ग्रामीण अधिकोषण विभाग तो होना ही चाहिये तथा चित्रपटों (Films) द्वारा बचत का एवं अधिकोषों का महत्त्व उनको समझा कर अधिकोषण स्वभाव का निर्माण करना चाहिये।

४. लोच एवं स्थायित्व का अभाव तथा फसल पर ऋण-प्रदायक राशि का अभाव, यह भारतीय मुद्राविपणि का चौथा दोष है। १९२० में इम्पीरियल बैंक की स्थापना के समय तक तो मुद्राविपणि में मौसमी आवश्यकता के समय ऋण-प्रदायक राशि का अभाव रहता था क्योंकि पत्र-मुद्रा का अधिकार सरकार के पास था तथा अधिकोषों की साख निर्माण शक्ति उनकी रोकनिधि से सीमित थी। किंतु इम्पीरियल बैंक की स्थापना के बाद भी इस लोच का अभाव बना रहा क्योंकि साख एवं मुद्रा का नियंत्रण दो विभिन्न

संस्थाओं के पास था अर्थात् साख का नियंत्रण इम्पीरियल बैंक करती थी तो मुद्रा का नियंत्रण सरकार। हाँ, मौसमी आवश्यकता की पूर्ति के लिये इम्पीरियल बैंक केवल १२ करोड़ रुपये संकटकालीन साख (Emergency credit) निर्माण के लिए सरकार से ऋण ले सकता था जो आवश्यकता के परिमाण में अपर्याप्त थे जिससे मुद्रा-विपणि में मौसमी कार्य में खिंचाव रहता था तथा व्याज की दर ८ से ६% तक हो जाती थी। इस तनाव का मुख्य कारण चलन पद्धति में लोच का अभाव था। इसी प्रकार हमारे यहाँ धनादेशों का स्वतंत्रता से उपयोग भी नहीं होता था। [धनादेशों का उपयोग न होने के कारण 'साख तथा साखपत्र' अध्याय में देखिये]

५. मुद्राविपणि में व्याज दरों में भिन्नता एवं अधिकता का होना—यह पाँचवाँ दोष है। भारतीय मुद्राविपणि के भिन्न-भिन्न अंगों का किसी भी प्रकार सहयोग एवं नियंत्रण न होने की वजह से विभिन्न मुद्रा विपणियों में व्याज की दरें भिन्न-भिन्न एवं ऊँची हैं तथा विपणि-दर, अधिकोष-दर, अपहार-दर आदि के उच्चावचन में समानता नहीं है। दूसरे विपणि के विभिन्न अंगों में प्रतियोगिता होने के कारण भी यह समानता नहीं आती। किंतु उन्नत राष्ट्रों की विपणि में अधिकोषण-दर के घटने बढ़ने के साथ अन्य दरें भी उसी अनुपात से घटती बढ़ती रहती हैं क्योंकि यहाँ पर अधिकोषों में एवं मुद्राविपणि के विभिन्न अंगों में परस्पर समन्वय एवं सहयोग की भावना है। व्याज दर में समानता लाने के लिये ऐसा सुझाव है कि अधिकोषों के कार्यक्षेत्र का प्रादेशिक वितरण हो तथा उस क्षेत्र में विपणि की व्याज दर के नियंत्रण का उत्तरदायित्व भी उस पर हो जिससे अधिक दर उस क्षेत्र का अन्य अधिकोष न ले। अथवा मुद्राविपणि के विभिन्न अंगों को प्रभावी नियंत्रण में वैधानिक रूप से रखा जाय। इस कार्य को रिज़र्व बैंक को करना चाहिये परन्तु अभी तक उसने नहीं किया जिससे अधिकोष-दर का मुद्राविपणि में महत्त्व नहीं के बराबर है। यह दर १६३५ से ३% पर स्थायी रही है परन्तु इसके पूर्व यह स्थायित्व नहीं था।

६. अधिकोषण सुविधाओं का अभाव : देहातों में जहाँ पर बचत की राशि स्वर्ण में अथवा भूमि में परिणत करली जाती है वहाँ पर अधिकोषों का अभाव है। द्वितीय महायुद्ध काल में अनेक अधिकोषों ने नई नई शाखाएँ खोलीं परन्तु ये सब शाखाएँ शहरों में खोली गईं तथा गांवों में अधिकोषों का अभाव ही है। जन संख्या के हिसाब से भी हमारे यहाँ प्रति १२० हजार व्यक्तियों के पीछे केवल एक अधिकोष है जब कि अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में

प्रति ३७३७ व्यक्तियों के पीछे एक अधिकोष है। इम्पीरियल बैंक को, जिसे विशेष सुविधाएँ उपलब्ध हैं, इस दिशा में अग्रसर होकर ग्रामीण जनता को अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान करनी चाहियें। इतना ही नहीं अपितु कृषकों की दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र के भूमि-अधिकोषों (Land Bank) के नमूने पर भारत में भी कृषि तथा भूमि अधिकोषों की स्थापना होनी चाहिये जिससे कृषि—जो हमारा बड़ा उद्योग है—उसका भी मुद्राविपणि क्षेत्र में समावेश हो। अभी भारत में कुछ सहकारी कृषि-संस्थाएँ तथा भू-आधि अधिकोष हैं परन्तु उनका कार्यक्षेत्र बहुत ही सीमित है एवं वे अभी प्राथमिक अवस्था में ही हैं।

७. विपत्र-विपणि का अभाव : यह हमारी मुद्राविपणि का सातवाँ दोष है। अन्य देशों की भांति हमारे यहाँ विपत्रों का उपयोग बहुत ही कम होता है तथा विपत्रों के अपहरण की सुविधाएँ भी पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि रिज़र्व बैंक केवल उन्हीं विपत्रों को अपहृत करती है जो मान्य (Approved) हों तथा उसके द्वारा निर्धारित निर्बन्धों के अनुसार हों। और मुद्राविपणि में तो अपहरण की सुविधाएँ हैं ही नहीं। जिसकी वजह से हमारे यहां विपत्रों का उपयोग केवल नाम-मात्र ही है और विपत्र-विपणि का अभाव है।

विपत्रों के अभाव के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :—

अ—अधिकोषों को रोकनिधि अधिक रखनी पड़ती थी जिसकी वजह से वे अपनी राशि का विनियोग अधिकतर परम प्रतिभूतियों में ही करते थे, जिससे उनकी सम्पत्ति में तरलता रहे और यह अधिकोपण के सुव्यवस्थित विकास के लिये आवश्यक भी था परन्तु आजकल परमप्रतिभूतियों की अपेक्षा विपत्रों के अपहरण से आय अधिक होती है इसलिये आशा है कि भविष्य में विपत्रों का उपयोग बढ़ेगा।

ब—विपत्रों का प्रयोग कम होने का कारण यह भी है कि देश में ऐसी संस्थाओं का अभाव है जो विपत्रों के स्वीकर्ता की आर्थिक स्थिति की पूर्ण जानकारी दे सकें; जिसके अभाव में अधिकोष विपत्रों का अपहरण करने से हिचकते हैं। इसलिये ऐसी संस्थाओं की स्थापना होना भी विपत्रों के उपयोग के लिए आवश्यक है।

क—रिज़र्व बैंक की स्थापना (१९३५) होने के पूर्व भारत में ऐसा कोई भी अधिकोष नहीं था और न कोई ऐसी संस्था ही थी जहाँ पर आवश्यकता पड़ने पर विपत्रों का अपहरण हो सके। इम्पीरियल बैंक अन्य अधिकोषों की

प्रतियोगिता में था इसलिए उससे विपत्रों का पुनः अपहरण कराना वे समुचित नहीं समझते थे और आवश्यकता पड़ने पर परमप्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर वे इम्पीरियल बैंक से ऋण लेते थे।

ख—अधिकोष व्यापारिक हुन्डी इसलिये भी नहीं लेते थे क्योंकि उनसे यही ज्ञात नहीं होता था कि वे व्यापार-विपत्र हैं अथवा अर्थ-विपत्र। अधिकोष विशेषतः व्यापारिक विपत्रों में ही लेन देन करना समुचित समझते हैं, इसलिये भी विपत्रों का उपयोग कम होता था।

ग—विपत्रों पर अधिक मुद्रांक-कर लगने के कारण भी मुद्दती हुन्डी का प्रयोग कम होता था। केन्द्रीय अधिकोषण जाँच समिति (१६२६) की सिफारिश के अनुसार १६४० से विपत्रों का मुद्रांक कर कम हो गया है।

घ—भारत में हुन्डियों का आहरण प्रान्तीय भाषाओं में प्रान्तीय रूढ़ियों के अनुसार होता है जिससे विपत्रों में विविधता होती है—समान-रूपता नहीं। इस कारण एक स्थान की हुन्डियों का उपयोग अन्य स्थानों में करने में अनेक असुविधाएँ होती हैं, विशेषतः उनके अनादरण के समय। इसलिये भी हुन्डियों का उपयोग कम होता है।

ङ—भारत में विपत्रों के अपहरण की अपेक्षा अधिकोष रोक-ऋण देना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि इसको किसी भी समय अधिकोष रद्द कर सकता है तथा ग्राहक को भी कम व्याज देना पड़ता है। इस प्रकार रोक-ऋण पद्धति में दोनों को ही लाभ होने के कारण विपत्रों का उपयोग नहीं अपनाया गया।

च—कतिपय वर्षों से प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारें अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोष-विपत्रों का निर्गमन करती हैं जिनकी अवधि ३० से ६० दिन होती है। इनमें विनियोग अधिक सुरक्षित एवं तरल समझा जाता है क्योंकि ये किसी भी समय विनिमय-स्कन्ध विपणि में बेचे जा सकते हैं। अतः व्यापारिक विपत्रों के उपयोग में इनका प्रयोग भी बाधक सिद्ध हुआ।

विपत्र-विपणि के नियोजन के लिए सुझाव : किसी भी देश में विपत्र-विपणि की उन्नति के बिना अधिकोषण-पद्धति का समुचित विकास नहीं हो सकता इसलिये केन्द्रीय अधिकोषण जाँच समिति (१६२६) ने निम्न सिफारशें की थीं :—

१. देश में केन्द्रीय अधिकोष की स्थापना की जाय (जो १६३५ में हो चुकी है) तथा यह अधिकोष मुद्रा-विपणि के विभिन्न अङ्गों का सङ्गठन करे,

अन्य अधिकोषों को सहकार्य प्रदान करे तथा उन्हें विपत्रों के अपहरण एवं पुनः अपहरण की सुविधाएँ देकर विपत्र-विपणि का निर्माण कर सकता है। इसमें प्रथम श्रेणी के व्यापारिक विपत्रों का उपयोग भी बढ़ेगा।

२. व्यापारियों की आर्थिक स्थिति का पूरा पूरा ज्ञान अधिकोष को हो, इस हेतु हमारे देश में ऐसी संस्थाओं की स्थापना की जाय जो केवल देश के भिन्न भिन्न व्यापारियों का, उद्योग-धन्धों का आर्थिक ज्ञान समुचित रूप से दे सकें जैसे डून (Duns) आदि। इससे व्यापारियों की स्थिति में अधिकोषों को विश्वास होकर व्यापारिक विपत्रों का उपयोग बढ़ेगा।

३. विपत्रों के अपहरण का अधिक उपयोग बढ़ाने के हेतु अपहार-दर (Discount Rate) भी यथासंभव कम होनी चाहिये।

४. प्रान्तीय राजधानियों में विपत्रों के पारस्परिक भुगतान के लिये समाशोधन-गृह स्थापित किये जायं। परन्तु अब भारत में २४ समाशोधन गृह कार्य कर रहे हैं उन्हीं को यह कार्य सौंपा जा सकता है तथा विपत्रों के पारस्परिक भुगतान के लिये वे उसी प्रकार से सुविधायें दें जो धनादेशों को दे रहे हैं।

५. विपत्रों का मुद्रांककर कम कर दिया जाय—जो १६४० से कम किया गया है—या विपत्रों को मुद्रांककर से मुक्त कर दिया जाय। विपत्रों का उपयोग अधिक बढे इसलिये मुद्रांक-कर आज भी कम होना चाहिये।

६. विपत्रों की प्रांतीय प्रथाएँ एवं भाषा भिन्नता के निवारण के हेतु विपत्रों के मुद्रित प्रपत्र प्रेषालयों द्वारा दिये जायँ जिससे विपत्रों में एकरूपता आयेगी। इसके साथ ही हमारा यह सुझाव है कि देशी हुंडियां जो परक्राम्य विलेख विधान के अंतर्गत नहीं आतीं, उन्हें भी इस विधान के अंतर्गत समाविष्ट किया जाय एवं इन हुंडियों का प्रपत्र निश्चित किया जाय, जिससे इनका उपयोग बढ़ने में सहायता होगी।

७. अधिकोषों को चाहिये कि वे अधिकोष-स्वीकृति-विपत्रों का उपयोग बढ़ावें, तथा

८. खड़ी फसल (Standing crops) की प्रतिभूति पर विपत्रों का अपहरण किया जाय अथवा विपत्रों के आधार पर ऋण दिये जायँ।

इसके अतिरिक्त विपत्रों का उपयोग बढ़ाने के लिये निम्न साधन भी काम में आ सकते हैं :—

भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों पर भांडार-गृहों (Warehouses) की

स्थापना हो, जिनकी प्राप्ति (Receipt) विपत्रों को लगा कर दी जाय जिससे व्यापारिक विपत्रों की साख बढ़ेगी एवं अधिकोष भी उनमें लेन देन कर सकेंगे। इस प्रकार के विपत्रों के उपयोग से अर्थ-विपत्रों का तथा अनुग्रह-विपत्रों का उपयोग भी कम हो जावेगा। इसी प्रकार प्रान्तीय सरकारें भी अपने अपने प्रांतों में भांडागारों की स्थापना करें जिनकी प्राप्ति (Receipt) के आधार पर विपत्रों का आहरण एवं अपहरण हो सके। ऐसे विपत्रों का पुनःअपहरण करने की सुविधाएं सभी अधिकोषों को देनी चाहिये जिससे विपत्रों का उपयोग बढ़ेगा। ऐसे विपत्रों का पुनः अपहरण करने की सुविधाएं रिज़र्व बैंक भी प्रदान करे।

भारत कृषि-प्रधान देश है, यहाँ कृषिज वस्तुओं की प्रतिभूति पर लिखे गये विपत्रों में व्यवहार प्रारम्भ होना चाहिये तथा इन विपत्रों का अपहरण, क्रय आदि देहातों में जो स्वदेशी अधिकोष, सहकारी-साख-संस्थाएं हैं वे करें तथा वे इन विपत्रों का पुनः अपहरण व्यापारिक अधिकोषों से करा सकें, इस बात की सुविधा उन्हें प्रदान की जाय। इस प्रकार की कृषिज वस्तुओं की प्रतिभूति पर विपत्रों का निर्माण हो। इस प्रकार के विपत्र पाश्चात्य देशों में प्रचार में हैं जिन्हें अर्थ-विपत्र (Finance Bills) कहते हैं। ये विशेषतः कृषि-उद्योग के लिये साख की पूर्ति करने के लिये उपयोग में आते हैं तथा इनका उपयोग भारत में होने के लिये अधिकोषण जाँच समिति ने भी सिफारिश की थी।

अधिकोषों को भी चाहिये कि वे रोक-ऋण की अपेक्षा व्यापारिक विपत्रों के आधार पर ऋण दें तथा अधिकोष स्वीकृत विपत्रों का चलन बढ़ावें तथा उनके अपहरण आदि की सुविधाएं भी दें।

विपत्रों के अनादरण होने पर उनका आलोकन (Noting) एवं प्रमाणन (Protesting) विपत्रालोकी (Notary Public) द्वारा ही अनिवार्य न होते हुए अधिकोषों के संघों द्वारा हो तथा इस प्रकार के आलोकन एवं प्रमाणन को वैधानिक मान्यता दी जाय; जिससे अनादरण के समय होने वाली वर्तमान असुविधाएं दूर होकर विपत्रों का उपयोग बढ़ सकेगा।

रिजर्व बैंक का उत्तरदायित्व: जैसा कि हम पहिले बता चुके हैं केन्द्रीय अधिकोष ही अन्य अधिकोषों एवं मुद्रा-विपणि के विभिन्न अंगों को पुनः अपहरण की सुविधाएं देकर विपत्र-विपणि का विकास कर सकता है तथा इस पुनः अपहरण की सुविधा से अन्य अधिकोषों को आवश्यकता पड़ने पर राशि प्राप्त

होकर संपत्ति में तरलता रखने की सुगमता होती है। इसलिये रिज़र्व बैंक साख का नियंत्रक होने के नाते, इस प्रकार की सुविधाएं प्रदान करे जिससे हमारे यहां विपत्र-विपणि का समुचित विकास एवं उन्नति हो सके तथा साख-निर्माण शक्ति बढ़कर ऋण-प्रदायक राशि भी बढ़ सके। अगर ये सुविधाएं मुद्रा-विपणि के विभिन्न अंगों को रिज़र्व बैंक द्वारा दी जायं तो मुद्रा एवं साख पद्धति भी लोचदार होगी एवं हमारी मुद्रा-विपणि के दोष भी निवारण हो सकेंगे। अतः रिज़र्व बैंक को शीघ्र ही विपत्रों की पुनःअपहरण की सुविधाएं एवं मान्य-विपत्रों का क्षेत्र बढ़ाकर विपत्र-विपणि को विकसित करने की अतीव आवश्यकता है।

प्रश्न संग्रह

१. क्या तुमको यह विश्वास है कि भारत में संगठित मुद्रा-विपणि नहीं है? यदि हां, तो वह किस परिस्थिति में अस्तित्व में आ सकती है, बताइये।
(आगरा. बी. कॉम. १९४५)

२. भारतीय मुद्रा-विपणि से आप क्या समझते हैं? उसके कौन से विशेष अंग हैं? उसके दोष कौन से हैं?

३. विपत्र-विपणि भारत में स्थापन करने के लिये किन २ बातों की आवश्यकता है?

४. भारत में विपत्र-विपणि के अभाव के कारणों का विवेचन कीजिये
(आगरा बी. कॉम. १९४३)

५. भारतीय मुद्रा-विपणि के कौन से दोष हैं? उनका निवारण किस प्रकार हो सकता है?

६. भारतीय मुद्रा-विपणि में पारस्परिक असहयोग के क्या कारण हैं? उनको किस प्रकार निवारण किया जा सकता है?

अध्याय १३

स्वदेशीय अधिकोष

भारत में किसी न किसी रूप में अधिकोषण व्यापार तो बहुत प्राचीन काल से होता रहा है तथा इसका उल्लेख चाणक्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है। हमारे यहां की अधिकोषण पद्धति अधिक उन्नत दशा पर थी तथा उस समय अधिकोषण व्यवहार श्रेष्ठी करते थे जिनका व्यापारिक एवं आर्थिक केन्द्रों में बहुत मान था। ये व्यापारिक आवश्यकताओं के लिये, कृषिज आवश्यकताओं के लिये तो मुद्रा की पूर्ति करते ही थे, इसके अतिरिक्त राजाओं तथा नवाबों को भी ऋण देते थे। मुगल साम्राज्य में भी इनकी बहुत प्रतिष्ठा थी परन्तु मुगल साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने के बाद भारत में राजनैतिक अशांति का वातावरण रहने से अधिकोषण व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसके बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में स्वदेशी अधिकोषण की और भी अवनति हो गई। प्रारम्भ में तो इनका प्रभुत्व रहा किन्तु जब ये अंग्रेजी व्यापार पद्धति के साथ अपने व्यापार का समायोजन न कर सके तब यूरोपीय अभिकर्तृत्व गृहों (European Agency Houses) की स्थापना की गई तथा इनका प्रभाव कम होता गया। क्रमशः सीमित स्कंध अधिकोषों की स्थापना एवं प्रगति के साथ इनकी अवनति ही होती गई तथा वर्तमान दशा में भी इन्हें व्यापारी अधिकोषों, सहकारी अधिकोषों के साथ अपने अस्तित्व को टिकाने के लिये प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। परन्तु फिर भी स्वदेशीय अधिकोषों का भारत में आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान है और वे स्वतंत्ररूप से एवं अपने पुराने ढंग से ही अपना अधिकोषण व्यापार करते हैं। स्वदेशीय अधिकोष भारत के सात लाख गांवों में बिखरे हुए हैं, तथा भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं, जैसे श्रॉफ, मद्रास के चेट्टी, मुलतानी, मारवाड़ी आदि। इनका वर्तमान महत्त्व होने का कारण यही है कि ये लगभग कृषिकार्यों के लिये दिये जाने वाले ९० प्रतिशत ऋण का प्रदाय करते हैं, इतना ही नहीं अपितु ग्रामीण क्षेत्र में इनकी प्रतिस्पर्धा में अभी तक सहकारी अधिकोष भी सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं।

परिभाषा : स्वदेशीय अधिकोष की परिभाषा करना आसान नहीं है। इनको साहूकार अथवा सामान्य ऋण-दाता (Money Lender) से पृथक करने की कोई सीमा भी नहीं है। केन्द्रीय अधिकोषण जांच समिति के अनुसार "इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया, विनिमय अधिकोष, व्यापारिक अधिकोष एवं सहकारी अधिकोषों को छोड़कर जो हुन्डियों का व्यवहार तथा जनता से निक्षेप लेते हों एवं ऋण देते हों, वे सब स्वदेशीय अधिकोष" हैं।[१] एक सामान्य धनी व्यक्ति से लेकर, अधिकोषण भागितासार्थ (Banking Partnership Firm), कुटुम्ब-भागिता (Family Partnership) तथा अधिकोष-व्यापारी (Merchant Bankers) जिनकी शाखायें भी भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती हैं— अब उन सबका समावेश स्वदेशीय अधिकोषों के अन्तर्गत होता है। डॉ. एल. सी. जैन की परिभाषा के अनुसार "स्वदेशीय अधिकोष कोई भी व्यक्ति अथवा व्यक्तिगत सार्थ है जो ऋण देने के साथ ही निक्षेप स्वीकृत करे अथवा हुंडियों का व्यवहार करे अथवा दोनों ही काम करे।"[२] साधारणतः स्वदेशीय अधिकोष ये दोनों ही काम करते हैं। इस परिभाषा से सामान्य ऋणदाता तथा स्वदेशीय अधिकोष का भेद स्पष्ट हो जाता है।

सामान्य ऋणदाता एवं स्वदेशीय अधिकोष : महाजन तथा स्वदेशीय अधिकोष इन दोनों में निम्न भेद हैं :—

१. महाजन अथवा ऋणदाता जनता से निक्षेप नहीं स्वीकृत करते किंतु स्वदेशीय अधिकोष निक्षेप स्वीकृत करते हैं।

२. महाजन हुंडियों में व्यवहार नहीं करते परन्तु स्वदेशीय अधिकोष हुंडियों में विशेष रूप से व्यवहार करते हैं।

३. महाजन ऋण देने के साथ ही अन्य व्यापार भी करते हैं जो उनका प्रमुख भाग होता है परन्तु स्वदेशीय अधिकोषों के साथ अधिकोषण व्यापार की प्रधानता है अर्थात् उनकी दृष्टि में अधिकोषण व्यापार का विशेष महत्त्व है।

४. महाजन केवल अपने निजी धन से ही ऋण देता है किन्तु स्वदेशीय अधिकोष जनता के स्वीकृत निक्षेप तथा निजी पूंजी से ऋण देते हैं।

---

[१] *All bankers other than the Imperial Bank of India, Exchange Banks, the Joint Stock Banks and Cooperative Societies; and the expression includes any individual or private firm receiving deposits and dealing in* **Hundis** *or lending money.*

[२] *"As any individual or private firm which in addition to making loans either receives, deposits or deals in Hundies or both"*

—Indigenous Banking in India,

५. महाजन केवल कृषि कार्यों के लिए ऋण देते हैं परन्तु उत्पादन की अपेक्षा उपभोग के लिये ही वे अधिक ऋण देते हैं। इसके विपरीत स्वदेशीय अधिकोष विशेषतः उत्पादन कार्यों के लिये, व्यापार एवं छोटे छोटे उद्योगों के लिये ऋण देते हैं तथा ऋण किस कार्य के लिये लिया जा रहा है यह भी जानने के लिये सावधान रहते हैं किंतु महाजन 'ऋण लेने के उद्देश' का ज्ञान आवश्यक नहीं समझता। तथा महाजनों के व्याज की दर स्वदेशीय अधिकोषों से अधिक होती है।

६. महाजनी का कार्य अथवा ऋण देने का कार्य कोई भी व्यक्ति कर सकता है फिर वह किसी भी जाति का हो; परन्तु अधिकोषण व्यापार निश्चित जातियों द्वारा ही किया जाता है; जैसे उत्तरी भारत में जैनी और मारवाड़ी तथा दक्षिणी भारत में नटुकोट्टाई चेट्टी।[१] इसके अतिरिक्त शिकारपुरी, मुलतानी, खत्री तथा वैश्य भी स्वदेशीय अधिकोषण व्यापार करते हैं।

महाजन एवं अधिकोष के उपर्युक्त भेद से यह नहीं समझना चाहिये कि संयुक्त स्कंध अथवा व्यापारी अधिकोष और स्वदेशीय अधिकोष में कोई भेद नहीं है। स्वदेशीय-अधिकोष व्यापारिक अधिकोषों की कार्य-प्रणाली एवं संगठन से भी भिन्न होते हैं। इन दोनों में निम्नलिखित भेद हैं :—

१. संयुक्त स्कंध अधिकोषों का समामेलन भारतीय प्रमंडल विधान के अंतर्गत होना आवश्यक है तथा उन्हें इस विधान के अन्तर्गत अपने लेखे तथा स्थिति-विवरण आदि समाचार पत्रों में प्रकाशित करने पड़ते हैं। इसके विपरीत स्वदेशीय अधिकोष स्वतंत्र होता है तथा उसे लेखे आदि के प्रकाशन सम्बन्धी भी पूर्ण स्वातंत्र्य होता है। ये विशेषतः अपने लेखे एवं लेखापुस्तकें गुप्त रखते हैं।

२. सं-स्कंध अधिकोषों का पूर्ण व्यापार अपनी अंशपूंजी के अतिरिक्त विशेषतः निक्षेपों पर एवं निक्षिप्त राशि पर निर्भर रहता है परन्तु स्वदेशीय अधिकोष अपनी निजी पूँजी पर निर्भर रहता है एवं उसकी निक्षिप्त राशि बहुत थोड़ी होती है।

३. ग्राहकों को निक्षिप्त राशि धनादेशों द्वारा आहरित करने की सुविधा सं० स्कंध अधिकोष देते हैं परन्तु स्वदेशीय अधिकोष धनादेश आहरित करने की सुविधा नहीं देते।

---

[१] *"The Agricultural Economist, a monthly Bulletin Pp. 5 "Indigenous Banking & Cooperative Banks" by V. Sivaraman, M. A., M. Litt.*

४. स्वदेशीय अधिकोषों का अपने ग्राहकों के साथ वैयक्तिक एवं घनिष्ठ सम्पर्क रहता है परन्तु सं० स्कंध अधिकोषों में वैयक्तिक सम्पर्क एवं घनिष्ठता का अभाव है।

५. सं० स्कंध अधिकोष केवल अल्पकालीन ऋणों की ही सुविधा देते हैं किंतु स्वदेशीय अधिकोष अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण दोनों ही प्रकार के ऋण देते हैं।

६. स्वदेशी अधिकोष अधिकोषण व्यापार के साथ अन्य व्यापार भी करते हैं। इतना ही नहीं, अपितु वे परिकाल्पनिक व्यवहार भी करते हैं परन्तु सं० स्कंध अधिकोष अधिकोषण के अतिरिक्त अन्य व्यापार न करते हैं और न कर ही सकते हैं।

७. स्वदेशीय अधिकोष की कार्यप्रणाली सं० स्कंध अधिकोषों से सरल एवं सुगम होती है किन्तु सं० स्कंध अधिकोषों की अपेक्षा इनके ब्याज की दर अधिक होती है।

८. स्वदेशीय अधिकोष बिना किसी प्रकार की प्रतिभूति के ऋण दे देते हैं किन्तु सं० स्कंध नहीं देते।

९. स्वदेशीय अधिकोष ऋणों की प्रतिभूति के लिए किसी भी प्रकार की चल एवं अचल सम्पत्ति को बंधक रखते हैं किन्तु सं० स्कंध अधिकोष केवल ऐसी ही चल प्रतिभूतियां स्वीकार करते हैं जिनमें विपण्यता होती है।

स्वदेशीय अधिकोषों की कार्यप्रणाली : इनकी कार्यप्रणाली अत्यन्त सरल एवं कम खर्चीली होती है क्योंकि इनका कोई भी कार्यालय नहीं होता; लेन देन के सब व्यवहार विशेषतः अपने स्थान पर ही करते हैं। हां, लेखे इत्यादि लिखने का काम मुनीम करते हैं जो बहुत ही ईमानदार तथा परिश्रमी होते हैं। इनके ग्रामीण क्षेत्र में बड़े ही अच्छे अधिकोषण सम्बन्ध हैं तथा इनको अपने क्षेत्र के ग्राहकों की आर्थिक स्थिति के विषय में पूर्ण ज्ञान होता है। इसी प्रकार इनकी कार्य पद्धति अत्यंत सरल होती है तथा कोई भी व्यक्ति बिना किसी विशेष असुविधा के शीघ्र ही ऋण प्राप्त कर सकता है। उसे ऋण प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की देर नहीं लगती।

निक्षेप: ये जनता से निक्षेपों की स्वीकृति करते हैं एवं निक्षेपों पर ब्याज देते हैं। इनकी निक्षिप्त राशि पर ब्याज की दर सहकारी तथा अन्य संयुक्त स्कंध अधिकोषों से अधिक होती है, जो ३% से ९% तक होती है। परन्तु ऐसा कहा जाता है कि स्वदेशीय अधिकोष अधिक प्रमाण में निक्षेपों की स्वीकृति नहीं करते क्योंकि निक्षिप्त राशि ग्राहकों द्वारा किसी भी समय

निकाली जा सकती है, जिससे वे किसी भी समय खतरे में पड़ सकते हैं। अतः वे केवल अपने मित्रों के ही निक्षेप लेते हैं। परन्तु मद्रास के नट्टुकोट्टाई चेट्टियर सब स्वदेशीय अधिकोषिकों से अधिक चतुर एवं व्यवहार-कुशल होते हैं तथा ये जनता से निक्षेपों की स्वीकृत अधिक परिमाण में करते हैं।

निश्चित राशि के लिये वे प्रायः प्राप्ति देते भी हैं परन्तु अधिकतर नहीं देते। आजकल कुछ अधिकोषिक प्राप्ति देते हैं तथा धनादेशों से राशि आहरण करने की सुविधाएं भी देने लगे हैं जो सीमित क्षेत्र में रहते हैं।

ऋण: इनका प्रमुख कार्य ऋण देने का होता है; ये अधिकतर व्यापारिक तथा कृषि कार्यों के लिए ऋण देते हैं परन्तु कभी कभी उपभोग के लिये भी ऋण देते हैं। विशेषतः ये ऋण किसी न किसी प्रकार के प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों के आधार पर देते हैं किन्तु ऋण की राशि अधिक होने पर अच्छी अच्छी प्रतिभूतियों की जमानत लेते हैं। ऋणों पर ये अधिकोष अन्य अधिकोषों से अधिक व्याज लेते हैं। व्यापारिक कार्यों के लिये दिए जाने वाले ऋण विशेषतः हुंडियों के अपहरण से अथवा उनको क्रय करके भी देते हैं। सुरक्षित ऋणों पर इनकी व्याज की दर ६% से १८% होती है एवं अप्रतिभूत अथवा अरक्षित ऋणों पर व्याज की दर अधिक होती है जो १८% से ३६% तक होती है।

ऋण देने की पद्धति अतिशय सरल एवं सुविधाजनक है जिससे किसी ऋण लेने वाले को कोई औपचारिक बातें करने की आवश्यकता नहीं होती। ऋण प्राप्त करने में भी किसी व्यक्ति को विलम्ब नहीं होता। ऋण केवल वैयक्तिक प्रतिज्ञार्थपत्र के आधार पर दिये जाते हैं अथवा कभी कभी अन्य व्यक्तियों की प्रतिभूति की भी आवश्यकता होती है। साधारणतः ये केवल एक कागज पर (ऋण-प्राप्ति पर) अधमर्ण के हस्ताक्षर ही ले लेना पर्याप्त समझते हैं जिसे 'रुक्का' कहते हैं। इस रुक्के पर कभी कभी ऋण पर व्याज की दर, अवधि आदि दिये जाते हैं तथा कुछ अधिकोष विधिमान्य 'रुक्का' लिखवाते हैं। कभी कभी ये रुक्का भी न लिखवाते हुए अपनी लेखा पुस्तक पर ही मुद्रांक (Stamp) लगाकर अधमर्ण के हस्ताक्षर करवाते हैं। इस पुस्तक में ऋण लेने की कोई भी शर्त नहीं लिखी रहती। किसी अचल संपत्ति जैसे भूगृहादि रहन रखते समय अधमर्ण से वैधानिक प्रलेख (legal document) जिसे प्राधियंध (Mortgage Bond) कहते हैं लिखवा लेते हैं।

हुंडियाँ : ये अधिकोषिक हुंडियों में भी व्यवहार करते हैं तथा इनके व्यवहार में विशेषतः आजकल चार प्रकार की हुंडियों का उपयोग होता है—

दर्शनी हुंडी, मुद्दती हुंडी, धनीजोग हुंडी और शाहजोग हुंडी। इन हुंडियों का अनादरण बहुधा होता ही नहीं क्योंकि किसी व्यक्ति द्वारा हुंडियों का अनादरण आहर्ता का दिवालिया होना माना जाता है। हुंडियों के आधार पर भी ऋण दिये जाते हैं तथा इन पर दिये जाने वाले ब्याज की दर ४ % से १२ % तक भिन्न भिन्न स्थानों पर, स्थानीय प्रथानुसार भिन्न भिन्न होती है तथा इस दर को 'बाजार-दर' (Bazar Rate) कहते हैं। ये हुंडियों का क्रय विक्रय एवं अपहरण भी करते हैं।

कृषि-साख : स्वदेशीय अधिकोप व्यापारिक ऋण के अतिरिक्त कृपकों को भी ऋण देते हैं। परन्तु विशेषतः इनका कृपकों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। महाजनों तथा छोटे छोटे व्यापारियों के माध्यम से ऋण देते हैं किंतु व्यापारियों से इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। ग्रामीण साख ये कितनी देते हैं इसके कोई भी निश्चित आँकड़े उपलब्ध नहीं है परन्तु भिन्न भिन्न लेखकों के अनुसार ६० % ग्रामीण साख की पूर्ति स्वदेशीय अधिकोप ही करते हैं।

अन्य-व्यापार : उपर्युक्त कार्यों का समावेश इनके अधिकोपण व्यापार में होता है किन्तु इसके अतिरिक्त ये अन्य व्यापार भी करते हैं जैसे अनाज की दलाली, परिकाल्पनिक व्यवहार आदि; और आजकल तो इनकी इस व्यापार की ओर प्रवृत्ति और भी बढ़ गई है जिस कारण से इनका वर्गीकरण निम्न तीन भागों में किया गया है :—

१. वे स्वदेशीय अधिकोप, जो केवल अधिकोपण व्यापार ही करते हैं।
२. वे स्वदेशीय अधिकोप जिनका प्रमुख कार्य व्यापार है, परन्तु उसी के साथ अधिकोपण व्यापार भी करते हैं।
३. वे स्वदेशीय अधिकोप जो व्यापारी तथा अधिकौपिक दोनों ही कार्य करते हैं परन्तु उनका कौन-सा प्रधान व्यापार है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

इनका वर्तमान महत्त्व : अभी तक स्वदेशीय अधिकोपों का कोई भी नियमित संगठन नहीं है तथा ये लोग स्वतंत्र रूप से अपना अपना व्यापार करते हैं। परन्तु आजकल कुछ शहरों में इन लोगों ने अपने अपने जातीय-संघ (Guilds) बना लिए हैं जिनका स्वरूप विशेषतः सामाजिक है, व्यापारिक नहीं; जैसे बम्बई में मारवाड़ी चेम्बर ऑफ कॉमर्स, मुल्तानी तथा शिकारपुरी अधिकौपिक संघ, श्रॉफ संघ आदि। किन्तु ये संघ व्यापार की दृष्टि से कोई भी समानता लाने का अथवा सुविधाएं देने का प्रयत्न नहीं करते। इसी प्रकार अधिकोपण व्यापार की समुचित शिक्षा का भी

कोई प्रबन्ध नहीं करते। विशेषतः इनका व्यापार परम्परागत एवं आनुवंशिक होता है जिससे उनको इस व्यापार की शिक्षा घर में ही दैनिक व्यवहारों से प्राप्त हो जाती है। इन संगठन दोषों के रहते हुए भी ग्रामीण परिस्थिति एवं आवश्यकताओं का अध्ययन इनका पूर्ण है एवं उनके अपने ग्रामीण अधमर्णों आदि के साथ के सम्बन्ध अधिक घनिष्ट हैं। इसी कारण सहकारी एवं अन्य अधिकोषों के होते हुए भी ये लोग ९० प्रतिशत ग्रामीण एवं व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं; कहीं-कहीं तो ये लोग कारखानों के मालिक भी हैं एवं बम्बई तथा अहमदाबाद के सूती कारखानों को भी ये निक्षेप के रूप में साख देते हैं। इनके द्वारा कारखानों में रखे हुए निक्षेपों की अवधि दो मास से अधिक नहीं होती। आंतरिक व्यापार की साख की पूर्ति, ग्रामीण साख की पूर्ति, तथा छोटे-छोटे उद्योगों की सहायता करने का कार्य इनमें आज भी भारत में इन्हीं का एक प्रकार से एकाधिकार है। इसके साथ ही इनमें से कुछ अधिकोषिकों का अधिकोषण पद्धति का ज्ञान इतना गहरा है एवं वे इतने चतुर हैं कि देश की अधिकोषण पद्धति के एकीकरण की किसी भी योजना में इनको 'संपत्ति' (Asset) मानना चाहिये।[१]

स्वदेशीय अधिकोषों की वर्तमान अवनति के कारण : पिछले कुछ वर्षों में स्वदेशीय अधिकोषण व्यापार को गहरी चोट पहुँची है जिसकी वजह से उनकी व्याज की दर भी कम हो गई है तथा व्यापार-क्षेत्र भी सीमित हो गया है। इसका प्रमुख कारण सहकारी अधिकोष एवं संयुक्त स्कंध अधिकोषों का विकास है। इस वर्तमान अवनति के मुख्य कारण निम्न हैं :—

१. संयुक्त स्कंध व्यापारिक अधिकोष तथा सहकारी अधिकोषों की प्रतियोगिता : इन प्रतियोगी अधिकोषों में इम्पीरियल बैंक का नाम विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि उसको सरकारी शेषों (Govt. balance) की व्यवस्था तथा राशि-स्थानांतरण (Remittance) की विशेष सुविधाएं उपलब्ध हैं। इसी प्रकार अन्य संयुक्त स्कंध अधिकोषों को भी इम्पीरियल बैंक राशि स्थानांतरण की सुविधाएं तथा रिज़र्व बैंक अन्य ऋण आदि संबन्धी सुविधाएं देता है जिसकी वजह से स्वदेशीय अधिकोष इनकी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। सहकारी अधिकोषों के विकास के लिये रिज़र्व बैंक का विशेष उत्तरदायित्व है तथा प्रांतीय एवं केन्द्रीय सरकारों से भी इन्हें सहायता प्राप्त है जिसकी वजह से इनका व्यापार क्षेत्र प्रभावित हुआ है।

२. आधुनिक अधिकोषण पद्धति को अपनाने की अरुचि : जो इन अधिकोषिकों में है उसकी वजह से भी इनका व्यापार कम हो रहा है—

[१] *"Agricultural Economist" Sept. 1950—Pp. 5*

कुछ अधिकौपिकों ने नई पद्धति को अपनाना प्रारम्भ कर दिया है तथा निश्चित राशि धनादेशों द्वारा निकालने की भी सुविधा ग्राहकों को दी है; फिर भी अधिकांश अधिकौपिक आधुनिक अधिकोपण पद्धति नहीं अपनाते। इसलिये ऐसे स्वदेशीय अधिकोषों को अपना व्यापार संगठित रूप से करना चाहिये अथवा कुछ अधिकौपिक मिलकर नये अधिकोष की स्थापना करें जैसा कि चेट्टुकोट्टाई चेट्टीयों ने १६२६ में "बैंक ऑफ चेट्टीनाड लिमिटेड" अधिकोष की स्थापना से किया था। अथवा जर्मनी के कमान्डिट (Commandit) सिद्धान्त के अनुसार ये परस्पर अधिकोपण भागिता (Banking Partnership) बनालें अर्थात् अन्य व्यापारिक अधिकोष देहातों में अपनी शाखा स्थापन न करते हुए स्वदेशीय अधिकोषों को उस स्थान का अपना प्रतिनिधि बनाकर उन्हें सुविधाएं देते रहें तथा लाभ का वितरण आपस में करलें। किन्तु यह तभी संभव हो सकता है जब स्वदेशीय अधिकोष परम्परागत पद्धति को छोड़कर आधुनिक पद्धति अपनावें।

३. देश की व्यापारिक वृद्धि होने के कारण इन अधिकौपिकों को अन्य व्यापार-क्षेत्र में अधिक लाभ मिलने की सुविधा हो गई है जिसकी वजह से ये अपने अधिकोपण कार्य को छोड़ अन्य व्यापार का अवलंब करने लगे हैं।

४. इनकी आधुनिक अधिकोपण पद्धति न होने के कारण इनको अधिकोपण व्यापार में अनेक वैधानिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रान्तों ने कृषि-ऋण (Agricultural indebtedness) के निवारणार्थ अनेक विधान बना दिये हैं जिनकी वजह से इनका कार्य-क्षेत्र सीमित हो गया है। इन विधानों द्वारा व्याज की अधिकतम दर निश्चित कर दी गई है, कहीं कहीं कृषकों के औजार आदि बेचने पर प्रतिबन्ध लगाये हैं, लेखा-पुस्तकें आदि रखने के प्रतिबन्ध लगाकर अधमर्णों की सम्पत्ति (assets) की भी रक्षा की गई है, जिस कारण से व्यापार क्षेत्र एवं साख-क्रियाएँ कम हो गई हैं।

स्वदेशीय अधिकोष एवं व्यापारिक अधिकोषों का सम्बन्ध : स्वदेशीय एवं व्यापारिक अधिकोषों का परस्पर सम्बन्ध भी संतोषप्रद नहीं है। व्यापारिक अधिकोषों ने कुछ स्वदेशीय अधिकौपिकों को मान्य-अधिकौपिकों (Approved Bankers) की सूची में ले लिया है एवं उनको ऋण देने की मर्यादा निश्चित करली है फिर भी इनको नियमित एवं अनिर्बन्ध सहायता नहीं मिलती; इसी वजह से स्वदेशीय अधिकोष आवश्यकता पड़ने पर अन्य मार्गों से ऋण प्राप्त करते हैं परन्तु व्यापारिक अधिकोषों के पास नहीं जाते। इसका दूसरा कारण परस्पर प्रतियोगिता भी है। ऋण देने की मर्यादा भिन्न भिन्न

अधिकोपिकों की आर्थिक-स्थिति की जांच के बाद निश्चित की जाती है जो भिन्न भिन्न अधिकोपिकों के लिए भिन्न होती हैं। हुंडियों का अपहरण करने की सुविधाएं भी—निश्चित मर्यादा में—व्यापारिक अधिकोप देते हैं परन्तु ये सुविधा केवल नाम मात्र की ही है क्योंकि स्वदेशीय अधिकोप विशेषतः छोटे छोटे व्यापारियों एवं कृषकों की स्वीकृत हुंडी पर उन्हें ऋण देता है, जो हुंडियां व्यापारिक अधिकोप की दृष्टि से केवल इसीलिये अयोग्य होती हैं कि वे व्यापारी अथवा कृषक कोई मूर्त (Tangible) प्रतिभूति (Security) नहीं दे सकते। इतना ही नहीं अपितु व्यापारिक अधिकोप स्वदेशीय अधिकोपिकों के नाम के रेखित अथवा अन्य धनादेश भी स्वीकार नहीं करते और न उन्हें राशि-स्थानांतरण की ही सुविधाएँ इम्पीरियल बैंक द्वारा प्राप्त हैं। इसके साथ ही स्वदेशीय अधिकोपिकों की व्यापारिक एवं इम्पीरियल बैंक के विरुद्ध यह भी शिकायत है कि वे इनसे अच्छा व्यवहार नहीं करते।

उपर्युक्त असुविधाओं के सब दोष केवल व्यापारिक अधिकोपों के माथे पर ही नहीं लादे जा सकते अपितु स्वदेशीय अधिकोपों की कार्यप्रणाली में ही ऐसे अनेक दोष हैं जिनकी वजह से इन दोनों में अभी तक सहकार्य की भावना का न तो उद्गम ही हो सका और न ये रिज़र्व बैंक के नियन्त्रण ही में अभी तक लाये जा सके। इनकी कार्य प्रणाली के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं :—

१. इनकी कार्यप्रणाली में सबसे प्रमुख दोष तो यह है कि वे अपने पुराने ढङ्ग पर ही अपना कार्य करते हैं तथा आधुनिक पद्धति को नही अपनाना चाहते, जिसकी वजह से जनता का विश्वास इनको प्राप्त नहीं होता। जन-विश्वास की प्राप्ति के लिये अपने व्यापार का गोपनीय स्वरूप न रखते हुए इन्हें समुचित लेखों का प्रकाशन करना चाहिये जिससे इनकी आर्थिक स्थिति की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।

२. जैसा कि हम बता चुके हैं कि इनमें ऐसा कोई भी सङ्गठन नहीं है जो व्यापारिक सुधार एवं परस्पर सहकार्यता बढ़ाने में लाभदायक हो सके अतः इनमें आपस में भी व्यापारिक प्रतियोगिता रहती है और वे सङ्गठित रूप से अपना व्यापार नहीं कर पाते। इसी के साथ इनमें तथा व्यापारिक अधिकोपों में परस्पर सम्बन्ध एवं सहकारिता का अभाव है जिसकी वजह से मुद्रा-विपणि का दो भागों में विभाजन हो गया है जिनकी लेन देन की पद्धति तथा ब्याज की दरें भी भिन्न-भिन्न हैं। इस सहकारिता के अभाव के कारण रिज़र्व

बैंक का भी इन पर कोई नियन्त्रण नहीं है जिससे संचित-शक्ति से एवं एकरूपता से कार्य नहीं हो सकता।[१]

३. इन्होंने यहाँ निक्षेप अधिकोष (Deposit Banking) को विशेष महत्व नहीं दिया जिससे जनता में बचत की आदत नहीं पड़ी और न देश की संचित एवं निष्क्रिय राशि का उत्पादन-कार्य में ही उपयोग हो सका। वे केवल अपने धन का ही ऋण कार्यों के लिए उपयोग करते रहे जिससे उनकी आधुनिक अधिकोषों की भाँति साख का निर्माण कर व्यापारिक एवं औद्योगिक उन्नति नहीं हुई।

४. इनकी ऋण देने की पद्धति भी सदोष रही तथा इनकी ब्याज दर भी बहुत अधिक रही। इतना ही नहीं अपितु इन्होंने अधमर्ण के अज्ञान का अनुचित लाभ उठाया तथा अनेक कुकर्मों द्वारा अपने को पूँजीपति बनाया, ऐसा भी आरोप इन पर किया जाता है। परन्तु यह सभी अधिकौषिक नहीं करते थे यह मानना पड़ेगा।

५. स्वदेशीय अधिकोष अधिकोषण-क्रियाओं एवं कार्य-पद्धति का पालन नहीं करते क्योंकि वे अधिकोषण कार्यों के साथ अन्य व्यापार तथा परिकाल्पनिक व्यवहार भी करते हैं जिससे उनको किसी भी प्रकार से हानि होने की दशा में उनकी निजी हानि तो होती ही है उसके अतिरिक्त उनके पास जिन व्यक्तियों की निक्षिप्त राशि होती है उनको भी हानि उठानी पड़ती है, जिसकी वजह से जनता में उनके प्रति अविश्वास हो गया है।

६. स्वदेशीय अधिकोषों ने विनियोगों के नए नए स्रोतों की भी खोज नहीं की जो आधुनिक अधिकोषण का एक महत्वपूर्ण कार्य है। ये केवल अपने ही लाभ में लगे रहे और आधुनिक अधिकोषण का महत्वपूर्ण कार्य—साख का आवश्यकतानुसार प्रसार एवं संकोच करने में भी ये असफल रहे जिसकी वजह से देश की व्यापारिक एवं औद्योगिक उन्नति करने में उनका कोई भाग न रहा।

स्वदेशीय अधिकोषों के सुधार के लिए सुझाव :

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी आधुनिक ग्रामीण अधिकोषण व्यवस्था में इनका विशेष महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि लगभग ९० प्रतिशत ग्रामीण साख की पूर्ति ये अधिकोष ही करते हैं और इसके साथ ही इनका ग्रामीण साख की आवश्यकताओं का तथा अपने ग्राहकों से इतना घनिष्ठ संबंध एवं इतना

---

१. *Indigenous Banking in India by Dr. L. C. Jain, Pp. 185 to 189*

ही स्वदेशीय अधिकोषों से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करे तथा उन्हें पुनः अपहरण की सुविधाएं दे। इसी प्रकार रिज़र्व बैंक विधान की धारा ५५ (१) (अ) के अनुसार रिज़र्व बैंक का यह भी उत्तरदायित्व था कि वह इस विधान की उस धारा को जो अनुसूचीबद्ध अधिकोषों के लिये है, उसको ब्रिटिश भारत में अधिकोषण कार्य करने वाली अन्य संस्थाओं तथा व्यक्तियों पर भी लागू करे और इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट गवर्नर-जनरल को तीन वर्ष के अन्दर दे।

इस धारा का सम्बन्ध और किसी भी अधिकोषण संस्था से न होते हुए केवल स्वदेशीय अधिकोषों से ही था। रिज़र्व बैंक ने १९३७ में जो वैधानिक रिपोर्ट दी उसमें कुछ सुझाव भी किये थे जो निम्न हैं :—

१. रिज़र्व बैंक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व उनको अपनी अधिकोषण क्रियाएँ भारतीय प्रमंडल विधान की धारा २७७ (फ) तक ही सीमित रखनी चाहियें तथा अन्य व्यापार का अन्त समुचित समय में करना चाहिये।

२. स्वदेशीय अधिकोषों को अपने व्यापार का स्वरूप एवं कार्य संयुक्त स्कंध अधिकोषों के समान ही रखना चाहिये, विशेषतः निक्षेप-स्वीकृति के व्यवहार में वृद्धि करनी चाहिये।

३. स्वदेशीय अधिकोष जिनकी पूँजी २ लाख रुपये है वे उसे ५ वर्ष के अन्दर ५ लाख रुपये पूंजी करने पर रिज़र्व बैंक की सदस्य सूची में समामेलित होने के लिये आवेदन भेज सकते हैं।

४. निक्षेप का कुछ अनुपात रिज़र्व बैंक के पास रखना पड़ेगा यदि उनके निक्षेप उनकी पूंजी से ५ गुने हो जाते हैं।

५. उनको अपनी लेखा-पुस्तकें भली भांति रखकर विशेषज्ञों से निरीक्षण कराना चाहिये तथा रिज़र्व बैंक भी उन्हें देख सके।

६. अन्य अनुसूचीबद्ध अधिकोषों की भांति रिज़र्व बैंक के पास समय-समय पर अपने कार्यों का आवश्यक विवरण भेजना चाहिये तथा स्थिति-विवरण भी प्रकाशित करना चाहिये।

उपर्युक्त निर्बन्धों की पूर्ति के बाद रिज़र्व बैंक से वे मान्य होंगे एवं सरकारी प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण प्राप्त कर सकेंगे तथा उन्हें अनुसूचीबद्ध अधिकोषों की भांति राशि-स्थानांतरण की सुविधाएं भी दी जायेंगी। किंतु रिज़र्व बैंक की यह योजना सफल न हो सकी तथा इस सम्बन्ध में जो उत्तर

स्वदेशीय अधिकोषों की ओर से दिये गये वे भी मनोरंजक हैं। चुन्नीलाल मेहता ने बम्बई श्रॉफ संघ की ओर से लिखा था कि भारतीय प्रमंडल विधान की २७७ (फ) धारा के अन्तर्गत आने वाले अनेक कार्यों को वे अब भी कर रहे हैं तथा रिज़र्व बैंक को उनसे प्रत्यक्ष रीति से अपना परम्परागत अन्य व्यवसाय छोड़ देने के लिये कहने के पूर्व उनसे व्यवहार प्रारम्भ करना चाहिये था तथा बाद में यह निश्चित किया होता कि अन्य व्यापार करने के कारण अधिकोषण व्यवसाय को क्षति होती है क्या? तथा बाद में उस व्यापार को छोड़ने के लिए कहा होता। इसी प्रकार एक मुल्तानी अधिकौषिक ने लिखा था कि वे इस सुझाव से सहमत हैं कि स्वदेशीय अधिकोष अधिकोषण के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय न करें परन्तु लेखों के निरीक्षण एवं अंकेक्षण (Auditing) का उन्हें घोर विरोध है। तथा दूसरे एक पत्र में यह भी लिखा गया था कि यदि रिज़र्व बैंक, इम्पीरियल बैंक तथा अन्य अधिकोषों की भाँति स्वदेशीय अधिकोषों से व्यापार करना चाहता है तो हम उसका स्वागत करते हैं किंतु जो निर्बन्ध लगाये गये हैं उन निर्बन्धों के होते हुए कोई भी स्वाभिमानी अधिकोष विपत्रों के पुनः अपहरण के लिये आपके दरवाजे नहीं आयेगा।[1]

अब यह समझ में नहीं आता कि रिज़र्व बैंक निक्षेप बढ़ाने के लिए इन अधिकोषों पर क्यों दबाव डालता है जब ये अधिकौषिक स्वयं ही देश की अधिकोषण प्रणाली में अपना स्थान उन्नत करना चाहते हैं। हाँ, समय की मांग के अनुसार यह आवश्यकता है कि स्वदेशीय अधिकोष अपनी कार्य प्रणाली में अवश्य परिवर्तन करें जिससे वे जनता का विश्वास सम्पादन कर सकें। इसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि मुद्रा-विपणि के विभिन्न अंग संगठित हों। परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं इनको किसी विधान से नियंत्रित करके संगठित नहीं किया जा सकता और न देश के अधिकोषण कलेवर से इनको हटाया ही जा सकता है। अतः इनका संगठन एवं नियंत्रण केवल तीन मार्गों से ही हो सकता है :—

एक तो रिज़र्व बैंक विपत्र-विपणि बढ़ाए तथा विपत्रों का पुनः अपहरण करने की सुविधाएँ सभी स्वदेशीय अधिकौषिकों को—जो रिज़र्व बैंक की सदस्यता स्वीकार करें—उन्हें दे, जिससे विपत्र-विपणि की स्थापना हो सकेगी। इन सुविधाओं को प्रदान करते समय ऐसे व्यापारिक बंधन न लगाए जायँ जो उनको अमान्य हों।

---

[1] *A Study of Indian Money Market, by Bimal C. Ghosh, Pp. 153-154*

दूसरे, रिज़र्व बैंक इनके साथ सद्भावना का व्यवहार करे तथा अपने मेलजोल के व्यवहार से इनकी कार्य-प्रणाली निर्धारित करे; इन्हें उसी प्रकार की सब सुविधाएं प्रदान करे जो अन्य अधिकोषों को उपलब्ध हैं। और क्रमशः इनके व्यापार को नियंत्रण में लाया जाय।

तथा तीसरे, देश का अधिकोषण कलेवर इतना परिपूर्ण एवं संगठित बनाया जाय जिससे जनता की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति अविलम्ब एवं बिना किसी विशेष औपचारिकता (Formality) के पूर्ण हो सके। विशेषतः कृषि साख की, जिससे स्वदेशीय अधिकोषों की आवश्यकता ही न रहे।

किसी भी मार्ग का अवलम्ब हो परन्तु इनका संगठन होना आवश्यक है और विशेषतः इन अधिकोषों को भी अपने अधिकोषण व्यापार को आधुनिक ढङ्ग पर लाना पड़ेगा अन्यथा ग्रामीण अधिकोषण जाँच समिति की सिफारिशों का अवलम्ब ग्रामीण क्षेत्रीय अधिकोषण-विकास के लिये सफल रूप से होने पर इनका देश के अधिकोषण व्यापार में कोई भी स्थान न रहेगा। अतः इनको भी सचेत रहकर भविष्य में कार्य करने की आवश्यकता है जिससे वे स्वयं ही रिज़र्व बैंक के निर्बन्धों को स्वीकार कर अपने को उससे सम्बन्धित करलें।

रिज़र्व बैंक से सम्बन्धित होने से लाभ :

१. रिजर्व बैंक से स्वदेशीय अधिकोष का सम्बन्ध हो जाने से देश की मुद्रा-विपणि के विभिन्न अंगों का संगठन हो जायगा एवं केन्द्रीय अधिकोष देश के औद्योगिक विकास की दृष्टि से आवश्यकतानुसार साख का नियंत्रण करने में सफल हो सकेगा।

२. स्वदेशीय अधिकोषों की अन्य संयुक्त स्कंध, तथा सहकारी अधिकोषों की प्रतिस्पर्धा के कारण जो अवनति हो रही है एवं व्यापार घट रहा है, वह इनके सम्बन्धित हो जाने पर नहीं होगा, अपितु इनको ग्रामीण परिस्थिति का विशेष ज्ञान होने के कारण, ग्रामीण क्षेत्र में साख-निर्माण करने का एकाधिकार प्राप्त हो जायगा।

३. इनको अन्य व्यापार करने की आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होगी क्योंकि रिज़र्व बैंक से सम्बन्धित होने के कारण इनका अधिकोषण व्यापार भी बढ़ेगा।

४. रिज़र्व बैंक से सम्बन्धित होने पर इन्हें राशि स्थानान्तरण, पुनः अपहरण आदि की भी सुविधाएं मिल जायेंगी। तथा रिज़र्व बैंक को भी

इन अधिकोषों से कुछ विवरण, जो वे देने के लिए तैयार हैं, प्राप्त हो सकेंगे जिससे देश की अधिकोषण प्रगति एवं आर्थिक स्थिति का ज्ञान भी हो सकेगा।

५. इस परस्पर सम्बन्ध से वे जनता का, एवं देश के अन्य अधिकोषों का विश्वास प्राप्त कर सकेंगे एवं देश के अधिकोषण कलेवर में इनका स्थान महत्त्वपूर्ण हो जायगा।

प्रश्न संग्रह

१. सामान्य ऋण दाता तथा स्वदेशीय अधिकोषों में क्या अंतर है? उनका भारत में वर्तमान महत्त्व क्या है?

२. स्वदेशीय अधिकोष तथा आधुनिक अधिकोष में क्या अंतर है? कौन सा भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यापार स्वदेशीय अधिकोष करते हैं?

(यू. पी. इन्टर १९३१)

३. भारत में ऋणदाता के कार्यों को आप आवश्यक समझते हैं क्या? भारतीय कृषि की सहायता में उनका क्या भाग है? उनमें कौन से दोष हैं।

(यू. पी. इंटर १९४७)

४. स्वदेशीय अधिकोषों का भारत के आंतरिक व्यापार की आर्थिक सहायता में क्या स्थान है? उनके मुख्य दोष कौन से हैं? उनको अधिकोषण कलेवर से संबंधित करने के लिये सुझाव लिखिये।

(यू. पी. इंटर १९४४ ई०, बी. कॉम. १९४७ आगरा)

५. भारतीय स्वदेशीय अधिकोष से आप क्या समझते हैं? उनको संबंधित करने के लिये रिज़र्व बैंक ने कौन सी प्रवृत्ति से काम किया?

(यू. पी. इंटर १९४५)

६. स्वदेशीय अधिकोषों की वर्तमान अवनति के कारण क्या हैं? उनको सुधारने के लिये कौन से सुझाव समय-समय पर प्रस्तुत किये गये थे तथा क्या फल हुआ?

७. वर्तमान परिस्थिति में स्वदेशीय अधिकोष के रिज़र्व बैंक से सम्बन्धित होने से कौन से लाभ समाज को एवं अधिकोषण स्थिति को होंगे। पूर्णतः विवेचन कीजिये।

८. स्वदेशीय अधिकोष क्या हैं? उनका वर्तमान महत्त्व क्या है? क्या उनका व्यापार प्रगति पर है अथवा अवनति पर—सकारण उत्तर लिखिये।

अध्याय १४

संयुक्त स्कंध अधिकोष

व्यापारिक अधिकोष अथवा संयुक्त स्कन्ध अधिकोष उनको कहते हैं जो देश की व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रगति के लिए अल्पकालीन ऋणों की तथा साख की पूर्ति करते हैं। भारत में यह कार्य केवल व्यापारिक अधिकोषों तक ही सीमित नहीं है। इम्पीरियल बैंक, विनिमय अधिकोष तथा अन्य स्वदेशीय अधिकोष भी यह कार्य करते हैं। इनकी कार्यशील पूँजी का अधिकतर भाग जनता से निक्षेपों के रूप में आता है तथा कुछ भाग अंश पूँजी के निर्गमन से प्राप्त होता है। यह हम कह सकते हैं कि भारत में रिज़र्व बैंक भी, अनुसूची-बद्ध अधिकोषों के साथ जहाँ तक ऋणों का लेन देन करता है, व्यापारिक अधिकोष का कार्य करता है। व्यापारिक अधिकोषों को आजकल पत्र-चलन का अधिकार नहीं रहता तथा वे केवल अल्पकालीन ऋण एवं साख की ही पूर्ति करते हैं।

संयुक्त स्कंध अधिकोषों का भारत में विकास—प्रथम युग : जैसे कि हम १२ वें अध्याय में देख चुके हैं भारत में अधिकोषण व्यापार प्रगति पर था तथा स्वदेशीय अधिकोष भारत की औद्योगिक एवं व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे परन्तु इनके व्यापार को ईस्ट इंडिया कंपनी के आने से धक्का लगा क्योंकि अंग्रेजी से तथा अंग्रेजी व्यापार पद्धति से अनभिज्ञ होने के कारण ये उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सके, जिससे अंग्रेजी व्यापार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यहाँ पर अभिकर्तृत्व गृहों (Agency Houses) की स्थापना की गई जो अपने अन्य व्यापार के साथ ही जनता से निक्षेप स्वीकार करते थे तथा व्यापारिक एवं औद्योगिक आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते थे। प्रारंभकाल में अभिकर्तृत्व गृहों की कोई निजी पूंजी नहीं थी परन्तु वे, ईस्ट इंडिया कंपनी के नौकरों की राशि जो निक्षेप रूप में जमा रहती थी, उसी से अधिकोषण व्यवसाय करते थे। दूसरे स्वदेशीय अधिकोषों को मुगल साम्राज्य के पतन से भी गहरी हानि

हुई क्योंकि नवाबों को और बादशाहों को जो ऋण उन्होंने दिये थे वे ऋण भी डूब गए जिसकी वजह से जनता के निक्षेपों की माँग आने पर वे भुगता न सके तथा इससे उनसे जनता का विश्वास भी उठ गया। इससे इंग्लिश अभिकर्तृत्व गृहों की जड़ें मजबूत होने लगीं तथा इन्हीं को भारत में संयुक्त-स्कंध अधिकोषों की स्थापना का आद्यप्रवर्तक कहा जा सकता है।

इसके बाद १८१३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार का अन्त हुआ, जिससे अभिकर्तृत्व गृहों के व्यापार को भी चोट पहुँची तथा निक्षेपों के अधिक आहरण से इन गृहों का १८३२ के लगभग अन्त होने लगा। इनमें से ही कुछ अभिकर्तृत्व गृहों ने अपनी जड़ों को मजबूत करने के लिए भारत में संयुक्त स्कंध अधिकोषण की स्थापना करने का नेतृत्व भी लिया, जिसमें से अलेक्ज़ान्डर एन्ड कंपनी ने १७७० में सर्व प्रथम यूरोपीय अधिकोष की स्थापना "दी बैंक ऑफ हिन्दुस्तान" के नाम से की। इसी प्रकार पामर एन्ड कं० ने भी 'कलकत्ता बैंक' की स्थापना की। इन दोनों में से बैंक ऑफ हिन्दुस्थान का १८३२ में विलीयन (Failure) हुआ। इस प्रकार १९ वीं शताब्दि में अनेक अधिकोषों की स्थापना की गई परन्तु सब अधिकोषों का परिणाम विलीयन में ही हुआ।

१७८५ के पूर्व-स्थापित अधिकोषों में 'बंगाल बैंक' ही एकमेव ऐसा अधिकोष था जिसका अभिकर्तृत्व गृहों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न था तथा इसकी पत्र-मुद्राएं भी चलन में थीं। १७८६ में सीमित देयता पर (On Principle of Limited Liability) आधारित 'दी जनरल बैंक ऑफ इन्डिया' नाम का पहिला अधिकोप स्थापित हुआ [१] जिसे पत्र मुद्रा चलन का अधिकार भी था। ये दोनों ही अधिकोष एक दूसरे के प्रतियोगी थे तथा इन दोनों में तीव्र स्पर्धा थी। १७८७ में 'जनरल बैंक ऑफ इन्डिया' को सरकार का अधिकौषिक नियुक्त किया गया तथा उसकी चलित पत्र-मुद्रा को भी सरकार ने मान्यता दी। इससे बंगाल बैंक को व्यापारिक क्षति पहुँची। इसके साथ ही लॉर्ड-कॉर्नवॉलिस ने बंगाल बैंक को एक और धक्का अपने आदेश द्वारा दिया, जिससे कोई भी सरकारी कर्मचारी अधिकोष का कर्मचारी अथवा व्यवस्थापक, संचालक आदि नहीं हो सकता था। किंतु आगे चलकर ये अधिकोप भी डूब गए। इस प्रकार यूरोपीय अधिकोपण की स्थापना का पहिला काल समाप्त हुआ।

द्वितीय युग : इसके बाद प्रेसीडेंसी अधिकोषों की स्थापना से संयुक्त स्कंध अधिकोषण का दूसरा युग (काल) प्रारंभ होता है। इस युग में केवल

---

[१] *Law & Practice of Banking in India by M. L. Tannan.*

हिंदुस्तान बैंक ही एकमेव ऐसा अधिकोष था जिसकी १८०६ तक अप्रतिस्पर्धात्मक प्रगति होती रही। १८०६ में अवमूल्यित चलन पद्धति के दोष निवारण करने के लिए 'बैंक ऑफ कलकत्ता' नाम का पहिला अधिकोष ईस्ट इन्डिया कंपनी के आज्ञापत्र (Charter) द्वारा स्थापित हुआ। इसके बाद क्रमशः १८४० और १८४३ में बैंक ऑफ बम्बई तथा बैंक ऑफ मद्रास की स्थापना हुई। ये तीनों प्रेसीडेंसी अधिकोष ईस्ट इन्डिया कम्पनी की आर्थिक आवश्यकताओं की तथा देश के अंतर्गत व्यापार की पूर्ति के लिए स्थापित हुए। इन अधिकोषों को पत्र-चलन का अधिकार भी प्राप्त था किंतु १८६२ में इनका यह अधिकार छीन लिया गया। परन्तु इनको सरकार की ओर से पत्र-चलन-व्यवस्था का तथा प्रेसीडेंसी शहरों में सरकारी कोषों की व्यवस्था का भार सौंपा गया। ये अधिकोष पूर्ण सफलता से अनेक निर्बन्धों के होते हुए भी १९२० तक कार्य करते रहे तथा १९२१ में इम्पीरियल बैंक में इन तीनों ही प्रेसीडेंसी अधिकोषों का अंतर्भाव कर दिया गया।

तीसरा युग : १८३० तक जब भारत में सबसे प्रथम सीमित देयता तत्त्व को वैधानिक मान्यता मिली कोई विशेष प्रगति भारत में नहीं हुई। और केवल अपवाद के लिये १७८६ में स्थापित जनरल बैंक आफ इन्डिया ही एकमेव सीमित देयता वाला अधिकोष यहाँ था। वह भी यूरोपीय व्यवस्था में था। इस प्रकार १८६२ से यूरोपीय व्यवस्था में बैंक आफ अपर इन्डिया (१८६३), अलाहाबाद बैंक (१८६५), अलायंस बैंक आफ शिमला (१८७४) आदि अधिकोषों की युरोपीय व्यवस्थापन में स्थापना हुई जिनमें अलायंस बैंक ऑफ शिमला का विलीयन १९२३ में हुआ। १८७४ तक सीमित अधिकोष प्रमंडलों की संख्या १४ हो गई किंतु इनमें से अधिकांश अधिकोष यूरोपीय व्यवस्था में ही थे। भारतीय व्यवस्था में संचालित सबसे पहिला अधिकोष अवध कमर्शियल बैंक था जिसकी स्थापना १८८१ में हुई। इसके बाद क्रमशः १८९४ और १९०१ में पंजाब नेशनल बैंक तथा पीपुल्स बैंक आफ इन्डिया की स्थापना हुई; जिनमें दूसरे अधिकोष का विलीयन १९१३ में हुआ जिस समय इसकी कुल शाखाएं १०० तथा १२५ लाख रुपये से अधिक निक्षेप थे। १९०५ में स्वदेशीय आंदोलन हुआ, जिसकी वजह से अनेकों नये अधिकोषों की स्थापना हुई, जिनमें बम्बई का बैंक ऑफ इंडिया, दी इंडियन बैंक मद्रास, दी सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, दी बैंक ऑफ बड़ोदा तथा बैंक ऑफ मैसूर आज के सात महान अधिकोषों में हैं।

सात महान् अधिकोषों के नाम—दी बैंक ऑफ इंडिया, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, अलाहाबाद बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, बैंक ऑफ बड़ोदा, बैंक

ऑफ मैसूर तथा दी इ'डियन बैंक। इनमें से पहिले पाँच को पाँच महान् अधिकोषों में गिना जाता है।

इस अवधि में (१९०५-१९१३) जिन अधिकोषों की परिदत्त पूंजी तथा निधि मिलाकर ५ लाख से अधिक थी, उनकी संख्या ९ से बढ़ कर १८ हो गई। ऐसे अधिकोषों की परिदत्त पूंजी तथा निधि ४ करोड़ रुपये एवं निक्षेपों की राशि २२ करोड़ रुपये थी। इसके अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे अधिकोषों की भी स्थापना हुई, जिनकी संख्या १९१२ में ५०० थी। इसी अवधि में स्थापित अन्य अधिकोषों के नाम नीचे दिये हैं, इनका विलीयन १९१३-१७ के अधिकोषण संकट में हुआ :—

दी इ'डियन स्वदेशी बैंक, दी बंगाल नेशनल बैंक, क्रेडिट बैंक ऑफ इ'डिया, दी स्टैन्डर्ड बैंक, दी बाम्बे मर्चेन्ट्स बैंक तथा बैंक आफ अपर इ'डिया लि०।

१९१३-१७ का अधिकोषण संकट एवं उसके कारण :

अधिकोषण संकट का प्रारम्भ १९१३ में भारतीय मुद्रा-विपणि के अस्थायी स्वरूप के कारण निर्माण हुआ क्योंकि १९१२-१३ के लगभग हमारी मुद्रा-विपणि में कमजोरी के चिन्ह प्रतीत होने लगे। उस समय प्रेसीडेन्सी अधिकोषों की ब्याज की दर ७%-८% थी। इस कमजोरी का प्रमुख कारण मुद्रा-विपणि के भिन्न अंगों में संगठन का अभाव तथा साख एवं मुद्रा-पद्धति में लोच का अभाव था। इसके साथ ही इसी काल में सरकार ने—युद्ध प्रारम्भ होने की वजह से—मुद्राविपणि से धन खींचना शुरु किया। परिणामस्वरूप मुद्रा एवं साख की कमी हो गई तथा ब्याज की दर ऊँची हुई, जो स्वाभाविक ही था। ब्याज की दर में वृद्धि होने से अधिकोषों ने असीमित मात्रा में ऋण देना प्रारम्भ किया जिससे अधिक लाभ कमाया जाय, परन्तु अधिकोषण पद्धति पर इसका प्रभाव बुरा हुआ क्योंकि असीमित ऋणों के प्रदान के कारण रोकनिधि का परिमाण कम होगया और इसी समय युद्ध के प्रारंभ होने से अधिकोषों के स्थायित्व से जनता का विश्वास कम होने लगा तथा निक्षेपों की माँग होने लगी। इसका पहिला धक्का पीपुल्स बैंक ऑफ इ'डिया को लगा जिसने अपने दरवाजे सितम्बर १९१३ में बन्द किये। इस अधिकोष के विलीयन से जनता के विश्वास को और भी धक्का लगा, जिससे एक के बाद दूसरा इस प्रकार धड़ाधड़ अधिकोषों का विलीयन होने लगा। और यह क्रिया १९१७-१८ तक अबाधित रूप से चलती रही। यह संकट भारत के अधिकोषण इतिहास में सबसे महान् संकट था जिसकी वजह से अनेक अधि-

कोप डूब गये जिनकी कुल संख्या ८७ थी। इनकी परिदत्त पूंजी एवं निधि १७५ लाख रुपये थी जो डूब गयी। यह पूंजी १९१७ के भारतीय अधिकोपों की परिदत्त पूंजी की ५०% प्रतिशत थी।

अधिकोप-विलीयन के प्रमुख कारण निम्न हैं :—

१. स्वदेशी आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप अधिकोपों की स्थापना ऐसे व्यक्तियों द्वारा हुई थी जिनको इस क्षेत्र का न तो पूर्ण अनुभव ही था और न वे भूतपूर्व अधिकोपण-संकटों से परिचित ही थे। इस वजह से इन्होंने अधिकोपण सिद्धान्तों का पालन पूर्णतः नहीं किया। उदा० दी क्रेडिट बैंक ऑफ इण्डिया, जिसका मैनेजर—विपत्र क्या होता है—यह भी नहीं जानता था।

२. इन्होंने जनता को धोखा देने के लिये अपनी अधिकृत पूंजी के ही बड़े बड़े आंकड़े विज्ञापनों में प्रदर्शित किये तथा प्रार्थित पूंजी और दत्त पूंजी को छिपा रखा, जिसका अनुपात अधिकृत पूंजी से बहुत ही कम था और जिसकी वजह से कार्यशील पूंजी के लिये उन्हें जनता के निक्षेपों पर निर्भर रहना पड़ा। उदाहरणार्थ पूना बैंक, पूना, जिसके विज्ञापन में अधिकृत पूंजी तथा प्रार्थित पूंजी के आंकड़े १० करोड़ और पचास लाख रुपये क्रमशः दिये गए थे परन्तु प्रति १०० के अंश पर ८५ रु० अदत्त थे।[1] इसी प्रकार के अन्य अधिकोप थे, जिनके निक्षेप दत्त पूंजी से कई गुने अधिक थे एवं जिन्होंने अपने थोड़े से काल में ही अनेक शाखाएं खोल रखी थीं। जैसे अमृतसर नेशनल बैंक लि०, पायोनियर बैंक लि०, हिन्दुस्तान बैंक लि०, मुलतान आदि।

३ अधिकाधिक निक्षेपों को आकृष्ट करने के लिये इनको निक्षेपों पर अधिक व्याज देना आवश्यक था। इसी प्रकार अधिक व्याज देने के लिए इनको अधिक लाभ कमाना भी आवश्यक था। इसलिए इन अधिकोपों ने अपनी राशि का विनियोग दीर्घ कालीन तथा औद्योगिक ऋणों के प्रदाय में किया—जिसके परिणाम-स्वरूप निक्षेपकों की ओर से जब मॉंग होने लगी तब अधिकोपों को भुगतान करने में असमर्थता प्रतीत हुई और उन्होंने अपने दरवाजे बन्द कर दिये। अर्थात् इन्होंने अल्पकालीन निक्षेपों से दीर्घकालीन औद्योगिक ऋणों का प्रदाय किया। उदाहरणार्थ, दी पीपुल्स बैंक ऑफ लाहौर, टाटा इन्डस्ट्रियल बैंक तथा अमृतसर बैंक जो क्रमशः १९१३, १९२३ और १९१४ में विलीन हुए।

---

[1] *Modern Banking in India, by S. K. Muranjan, Pages 336-362 may be studied for detailed reference.*

४. निक्षेपों का परिकाल्पनिक व्यवहारों में विनियोग भी अनेक अधिकोषों ने किया जो अधिकोषण व्यापार के लिए खतरनाक एवं अवांछनीय है, जैसे दी इन्डियन स्पीशी बैंक लिमिटेड जिसके संचालकों ने सोने चाँदी, मोती आदि के परिकाल्पनिक व्यवहार किये। इसके अतिरिक्त इस अधिकोष ने ऐसे भी अनेक ऋण दिये जो वास्तव में व्यापार की सुरक्षा की दृष्टि से देना अवांछनीय था। इसकी विभिन्न कारणों से होने वाली हानि निम्न थी :—

चाँदी के परिकाल्पनिक व्यवहारों से हानि	१११ लाख
मोती से प्रतिभूत ऋणों से हानि	३६ लाख
बदला व्यवहारों से हानि	१४ लाख
अवांछनीय ऋणों से हानि	४ लाख
कुल हानि[1]	१६५ लाख

इस अधिकोष के विषय में यह प्रारंभ से ही मालूम था कि यह परिकाल्पनिक व्यवहारों में फँसा है किन्तु इसके संचालक यह छिपाते रहते थे। इतना ही नहीं अपितु इन्होंने १९०९ से अधिकोष को कोई लाभ न होते हुए भी पूँजी में से लगभग २२ लाख रुपये का लाभ वितरण किया जो लेखा-पालन (Accounting) सिद्धांतों के विरुद्ध था।

५. अनेक अधिकोषों के संचालक एवं प्रबन्धक ऐसे थे जिनको अधिकोषण व्यवसाय का किसी भी प्रकार का न तो ज्ञान ही था और न पूर्व अनुभव ही। अनेक संचालक एवं प्रबन्धक स्वार्थी भी थे जिन्होंने अपने संचालित अधिकोषों की राशि से अन्य स्वसंचालित उद्योगों को ऋण राशि दे रखी थी। इतना ही नहीं अपितु उन्होंने अपने कुकर्मों एवं बेईमानी से, झूठे लेखे दिखा कर अपने अधिकोष की स्थिति अच्छी है—ऐसी गलत धारणा बना दी थी। उदाहरणार्थ काठियावाड़ एन्ड अहमदावाद कार्पोरेशन—इसके विलीयन के लिए जब न्यायालय से आज्ञा दी गई तो अंकेक्षकों (Auditors) ने रिपोर्ट देने से इन्कार कर दिया और जब न्यायालय की ओर से अन्य अंकेक्षकों की नियुक्ति की गई तो वे इस अधिकोष की लेखा-पुस्तकें आदि भी प्राप्त न कर सके। दूसरा अधिकोष, दी पायोनियर बैंक, बम्बई का था जिसकी परिदत्त पूँजी भी काल्पनिक थी क्योंकि जो पूँजी परिदत्त दिखाई गई थी वह अंशभागियों को ऋण दे दी गई थी। तीसरा अधिकोष क्रेडिट बैंक आफ इन्डिया था जिसका व्यवस्थापक जाफर जोसब था तथा उसने विलीयन के समय यह मान्य किया कि उसे अधिकोषण एवं लेखा-पालन के सिद्धान्तों का किंचित मात्र भी ज्ञान न था। इसने यह भी कहा कि अधिकोषण व्यवसाय की प्रगति के लिए यह

[1] *Modern Banking in India by Dr. Muranjan Pp. 353.*

दिखावा (Window-dressing) किया गया था तथा जिसके लिए अंकेक्षक जिम्मेदार थे। यह उसने १९१३ में अधिकोष के विलीयन के समय अपने वक्तव्य में न्यायालय के सामने कहा था।

६. अनेक अधिकोष केवल दुर्भाग्य के कारण विलीन हुए— क्योंकि किसी न किसी कारण से जनता का विश्वास उनसे उठ गया किन्तु इनमें भी किंचित व्यवस्था की शिथिलता थी ही। इस प्रकार केवल दुर्दैव से जिन अधिकोषों का विलीयन हुआ वे अधिकोष निम्नलिखित हैं:—

बैंक आफ अपर इन्डिया, मेरठ: १८६३ में स्थापना हुई तथा १९१३ तक प्रगति दिखाने के बाद भी १९१४ में एक दम विलीन हो गया तथा अंशधारियों एवं निक्षेकों को पूर्ण राशि मिली। इस अधिकोष के दिये हुए सब ऋण पूर्ण व्यवस्थित थे परन्तु पीपुल्स बैंक के विलीयन से इसको भी धक्का लगा जिसमें ७८ लाख रुपये के निक्षेपों का भुगतान किया। परन्तु युद्ध प्रारम्भ होते ही जो दूसरा धक्का लगा उसे यह सहन न कर सका और आक्टोबर १९१४ में इसने भुगतान रोक दिया।

अलायंस बैंक आफ शिमला—१८७४ में स्थापित, १९२३ में विलीयन हुआ। इसका प्रमुख कारण इसके लन्दन स्थित अभिकर्ता बोल्टन ब्रदर्स की अबुद्धिमानी थी। १४० लाख का ऋण नहीं दिया, जिस बदनामी के फैलते ही इनको अप्रेल १९२३ में भुगतान रोकना पड़ा तथा विलीनीकरण हुआ।

उपर्युक्त कारणों में हमने केवल उन्हीं कारणों का विवेचन किया है जिनकी वजह से अनेक अधिकोष विशेषतः इस संकट में विलीन हुए। इसके अतिरिक्त अधिकोषण विलीयन के लिए निम्न कारण भी दिये जा सकते हैं:—

७. समुचित अधिकोपण विधान का अभाव: यह भी अधिकोषण के समुचित विकास के लिये आवश्यक है जिससे जनता का अधिकोषण में विश्वास बढ़ जाता है तथा व्यवस्था भी अच्छी रहती है।

८. देश में समुचित अधिकोषण विकास के लिए केन्द्रीय अधिकोष का अभाव था जो इन अवांछनीय प्रवृत्तियों को नियन्त्रित कर सके तथा सङ्कट से समय डूबते हुए अधिकोषों को सहायता प्रदान करे।

९. अधिकतर अधिकोषों के अंशभागी अधिकोषण व्यापार से अनभिज्ञ थे तथा उन्होंने अपने अधिकोष की समुचित प्रगति की ओर दुर्लक्ष भी किया तथा कुकर्मों को जानने का उन्होंने कष्ट नहीं किया।

अधिकोषण संकट का परिणाम : इस अधिकोषण संकट के कारण कुछ समय के लिये अधिकोषों से जनता का विश्वास उठ गया। परन्तु युद्ध के द्वितीय अर्धभाग में परिस्थिति सुधरने लगी। इस संकट का सबसे अच्छा परिणाम तो यह हुआ कि देश की जनता एवं सरकार को यह अनुभव हुआ कि अधिकोषण के समुचित विकास के लिए अधिकोषण व्यवस्था का नियंत्रण होना आवश्यक है। इसके लिए केन्द्रीय अधिकोष एवं अधिकोषण विधान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। केन्द्रीय अधिकोष १६३५ में रिजर्व बैंक आफ इंडिया के नाम से कार्यान्वित किया गया। दूसरे-संयुक्त-स्कंध अधिकोषों के संचालकों एवं प्रबन्धकों को भी यह शिक्षा मिली कि अधिकोषण विकास की प्रारंभिक अवस्था में अधिक रोकनिधि तथा तरल सम्पत्ति अधिक रखने की अत्यंत आवश्यकता है और विशेषतः भारत जैसे देश में जहाँ धनादेशों का प्रसार बहुत ही कम है।

प्रथम महायुद्ध के प्रथम अर्धभाग में अधिकोषण संकट आया जिससे जनता का विश्वास अधिकोषों से उठ गया जिससे निक्षेप अधिक राशि में आहरित किये जाने लगे तथा ऋण-पूर्ति की राशि घट गई; परिणाम स्वरूप साख का नियंत्रण भी हो गया। परन्तु इस अविश्वास का क्रमशः अंत हुआ तथा अधिकोषों में पुनः जनता का विश्वास आगया। द्वितीय अर्धभाग में विशेषतः देश की आर्थिक प्रगति भी संतोषजनक हुई जो १६२१ तक रही। युद्ध की वजह से कुछ मात्रा में मुद्रास्फीति हुई, जनता के पास अधिक धन होगया और अधिकोषों के निक्षेपों में वृद्धि होने लगी। इससे अधिकोषों की स्थापना को फिर से प्रोत्साहन मिला तथा नये नये अधिकोषों की स्थापना होने लगी। इस अवधि में विशेषतः औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना हुई, जिसमें टाटा इंडस्ट्रियल बैंक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसका विलीयन १६२३ में हुआ। १६२१ तक जिन अधिकोषों की परिदत्त पूंजी एवं निधि ५ लाख रुपये से अधिक थी, उनकी संख्या २५ होगई, परिदत्त पूंजी एवं निधि तथा निक्षेपों की राशि क्रमशः ११ करोड़ और ७१ करोड़ रुपये हो गई। इसी समय केन्द्रीय अधिकोष का अभाव दूर करने की दृष्टि से तथा साख का नियंत्रण करने की दृष्टि से १६२१ में बम्बई, मद्रास और बंगाल के प्रेसीडेंसी अधिकोषों के एकत्रीकरण से इम्पीरियल बैंक को कार्यान्वित किया गया; जिसकी परिदत्त पूंजी एवं निधि ६.७ करोड़ तथा निक्षिप्त राशि (जनता ६६ करोड़ + सरकार ७ करोड़) ७३ करोड़ रुपये थी एवं ७० शाखाएँ थीं। १६२१ के बाद आर्थिक मंदी आई और मुद्रासंकोच भी किया जाने लगा जिसकी वजह से फिर से अधिकोषण संकट आया तथा अधिकोषों

का विलीयन होने लगा। आर्थिक मंदी के कारण निक्षिप्त राशि भी घटने लगी। ८० करोड़ (१९२१ में थी) से घटकर १९२४ में केवल ५५ करोड़ रह गई। इस अवधि में छोटे बड़े सब मिलकर ४४७ अधिकोष विलीन हुए; जिनकी परिदत्त पूंजी लगभग ८ करोड़ रुपये थी। इस अवधि में विलीन होने वाले अधिकोषों में टाटा इंडस्ट्रियल बैंक तथा अवध कमर्शियल बैंक प्रमुख थे; जिनमें से पहिले का समामेलन अलाहाबाद बैंक में हुआ। १९२४ से १९३० तक अधिकोषण परिस्थिति में कुछ सुधार हुआ परन्तु निक्षेपों में किसी भी प्रकार की उल्लेखनीय प्रगति न हुई अपितु अधिकोषों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। १९३२ के बाद अधिकोषों के निक्षेपों में वृद्धि होने लगी तथा अधिकोषण परिस्थिति भी समुचित रूपसे सुधरती गई। १९३२ में पीपुल्स बैंक ऑफ नार्दन इंडिया, तथा १९३८ में ट्रावनकोर नेशनल बैंक एवं क्वालोन नेशनल बैंक का विलीयन हुआ। इन अधिकोषों के विलीयन से अन्य अधिकोषों पर बुरा प्रभाव हुआ तथा निक्षेप कम होने लगे किन्तु अधिकोषों की शाखाओं का विस्तार ही होता गया; १९२२ से १९३९ तक की १७ साल की अवधि में कुल अधिकोषों की शाखाएँ मिलाकर तिगुनी हो गईं।

अधिकोषों का अव्यवस्थित-विकास :—

हाँ, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इस अवधि में जो भी अधिकोषण विकास हुआ वह जरा अव्यवस्थित ढंग से होता गया क्योंकि देश में साहसी व्यक्तियों का अभाव था जो इस व्यापार को अपनाते और जो लोग इस व्यवसाय में थे भी उन्होंने अधिकोषण विकास क्षेत्र का समुचित अध्ययन नहीं किया था अपितु उन्हीं स्थानों पर शाखाएं खोलीं जहाँ पर पहिले से ही अन्य अधिकोषों ने शाखाएं स्थापित की हुई थीं। अथवा जहाँ पाँच महान् अधिकोषों की शाखाएँ थीं वहीं पर अन्य छोटे अधिकोषों ने भी अपनी शाखाएँ स्थापन कीं। दूसरे देश के पाँच महान् अथवा अन्य बड़े बड़े अधिकोषों ने इम्पीरियल बैंक का अनुकरण किया अर्थात् जहाँ जहाँ इम्पीरियल बैंक ने अपनी शाखाएं खोलीं वहीं पर बड़े बड़े अधिकोषों ने अपनी शाखाएँ स्थापित कीं। तीसरे भारत में जो विदेशी अधिकोष थे उन्हें भारत के व्यवस्थित अधिकोषण विकास से तो मतलब था ही नहीं, उन्हें तो मतलब था अपने लाभ से। अतः उन्होंने लाभ का उद्देश सामने रखकर शाखाएँ उन्हीं स्थानों पर खोलीं जो बड़े बड़े व्यापारिक एवं औद्योगिक केन्द्र थे।

इस अव्यवस्थित अधिकोषण विकास के फलस्वरूप देश में अधिकोषों की संख्या संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश), बम्बई, मद्रास, बंगाल और पंजाब में तो बढ़ती गई परन्तु बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश में इनकी भारी कमी

रही और विशेषतः देशी रियासतों में। क्योंकि अधिकोष वैधानिक अड़चनों के कारण देशी रियासतों में शाखाएँ खोलने से हिचकते थे और संभव था कि अगर इम्पीरियल बैंक को देशी रियासतों ने सुविधाएँ न दी होतीं तो इन रियासतों में आधुनिक ढंग का कोई भी अधिकोष न होता।[1] किन्तु छोटे छोटे शहरों में भी अनेक शाखाएँ खोली गईं जो विशेषतः छोटे छोटे अधिकोषों की ही थीं। डॉ० मुरंजन के अनुसार पांच महान् अधिकोषों में से बैंक ऑफ बड़ोदा की ६०% प्रतिशत शाखाएं ऐसे शहरों में हैं जिनकी जनसंख्या २०,००० से कम है, फिर भी यह अधिकोष किसी महान् अधिकोष से कम नहीं, उसकी सम्पत्ति भी उतनी ही सुरक्षित है एवं उसके लाभ में भी किसी भी प्रकार की कमी नहीं। डॉ० पानंदीकर के अनुसार १०००० जनसंख्या वाले गाँवों में से २७ प्रतिशत गाँवों में छोटे छोटे अधिकोषों की शाखाओं का विस्तार होगया है जो पहिले केवल १४% प्रतिशत था किंतु भारत में यह विकास अब भी ठीक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि १९४९ में भारत में कुल २५०० शहरों में से केवल १६५० शहरों में अधिकोष या उनकी शाखाएँ थीं और अखिल भारत में केवल ५५६७ अधिकोष एवं अधिकोष की शाखाएँ हैं; जो विकास अन्य राष्ट्रों की तुलना में नगण्य हैं। भारत में प्रति ८०,००० व्यक्ति एक अधिकोष आता है, वही अमेरिका में प्रति ३७३८ व्यक्ति, जापान में ६४६१ व्यक्ति तथा इङ्गलैंड में ४९१६ व्यक्तियों के लिए एक अधिकोष है। इसी प्रकार इम्पीरियल बैंक की शाखाएँ भी आज कल ४९२ जिलों में नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट है कि अधिकोषों की शाखायें केवल शहरी जनता तक ही सीमित हैं परन्तु ग्रामीण भारत में अभी तक अधिकोषों की कोई भी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु चूँकि भारत सरकार ने जो १९४९ में ग्रामीण अधिकोष जाँच समिति नियुक्त की थी उसकी सिफारिशों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण जनता को अधिकाधिक अधिकोषों की सुविधाएँ दी जायेंगी एवं जिसका उत्तरदायित्व इम्पीरियल बैंक का अधिक है क्योंकि जाँच समिति की सिफारिश के अनुसार इम्पीरियल बैंक को प्रत्येक जिले में, मन्डी के स्थानों में अपनी शाखा अथवा भुगतान कार्यालय शीघ्र ही स्थापन करने की सिफारिश की गई है। इसी प्रकार व्यापारिक अथवा संयुक्त स्कन्ध अधिकोष भी अपनी शाखाएँ वहाँ खोले इस हेतु राशि स्थानांतरण की सुविधाएँ उन्हें अधिक दी जायँ एवं राशि स्थानांतरण शुल्क में कमी की जाय यह भी समिति ने प्रस्तावित किया है और आशा है कि देश की आर्थिक प्रगति के हेतु एवं अधिकोषण के विकेन्द्रीकरण एवं समुचित तथा सुव्यवस्थित विकास की दृष्टि से शीघ्र ही ये सिफारशें कार्यरूप में परिणत होंगी।

---

[1] S. G. Panandiker—*Banking in India.*

निक्षेप : निक्षेपों को भी अगर हम देखें तो हमको यही दिखाई देगा कि अव्यवस्थित अधिकोषण-विकास के कारण निक्षेपों का केन्द्रीकरण बड़े-बड़े अधिकोषों के हाथ में ही रहा है। वैसे तो १९२२ से १९३९ तक की १७ वर्ष की अवधि में निक्षेपों की राशि ७० करोड़ से ११० करोड़ रुपये हो गई परन्तु इम्पीरियल बैंक, विनिमय अधिकोष, पाँच और सात महान् अधिकोषों की निक्षिप्त राशि कुल देश के निक्षेपों की ८३% प्रतिशत है तथा केवल पाँच महान अधिकोषों की एवं सात महान अधिकोषों की निक्षिप्त राशि कुल देश की निक्षिप्त राशि की क्रमशः ६७% तथा ७१% प्रतिशत है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि निक्षेपों का केन्द्रीकरण विशेषतः बड़े अधिकोषों के पास रहा तथा छोटे छोटे अधिकोषों के पास निक्षेप कम मात्रा में रहे जिसके लिए निम्न कारणों का उल्लेख किया जा सकता है :—

१. छोटे छोटे अधिकोषों की शाखायें छोटे छोटे नगरों में स्थापित की गईं जहाँ का व्यापार भी कम था और लोगों के पास निक्षेप करने के लिए राशि कम थी; जिसकी वजह से उनके निक्षेप बढ़े नहीं।

२. दूसरे, जहाँ छोटे अधिकोषों की एवं बड़े अधिकोषों की शाखायें थीं वहाँ पर छोटे अधिकोषों की तुलना में बड़े अधिकोषों में ही निक्षेप रखना जनता अधिक सुरक्षित समझती थी जिसकी वजह से बड़े अधिकोषों की निक्षिप्त राशि में अधिक वृद्धि हुई।

३. बड़े-बड़े अधिकोषों की अधिकतर शाखाएँ बड़े-बड़े व्यापारिक शहरों में ही स्थापित की गईं जहाँ लोग भी व्यवसायी थे एवं धनी थे जिसकी वजह से बड़े अधिकोष की निक्षिप्त राशि में अधिक परिमाण में वृद्धि हुई।

४. इम्पीरियल बैंक की प्रतिस्पर्धा के कारण उससे स्पर्धा टालने के लिए बड़े बड़े अधिकोषों ने अपनी शाखाएँ देश के विभिन्न भागों में खोलीं। जिसकी वजह से इनके निक्षेपों में वृद्धि होती गई।

५. कई स्थानों पर व्याज की दर अधिक थी अतः उन स्थानों पर ऊँची व्याज दरों से अधिक लाभ की संभावना थी इसलिए ऐसे स्थानों एवं क्षेत्रों में भी बड़े अधिकोषों ने अपनी शाखाएँ खोलकर विस्तार किया। तथा

६. इस विस्तार एवं निक्षेप वृद्धि का एक और कारण था, शाख अधिकोषण से होनेवाले लाभ। अर्थात् जितने अधिक एवं विस्तृत क्षेत्र में शाखाएँ होंगी उतनी ही हानि की संभावना भी कम होगी अतः इस दृष्टि से इन बड़े अधिकोषों ने नए नए स्थानों पर अपनी शाखाएँ स्थापन कीं।

१९१९ के बाद : द्वितीय महायुद्ध सितम्बर १९३९ में प्रारम्भ हुआ जिसके प्रारम्भ होते ही पहिले तो निक्षेपों को काफी मात्रा में आहरित किया

गया जिसकी वजह से अधिकोषों के निक्षेप ५·१२ करोड़ रुपये से कम होगए किंतु क्रमशः अधिकोषों में विश्वास फिर से होगया जिसकी वजह से अधिकोषों के निक्षेप बढ़ने लगे जो १९३९ में २४९·४५ करोड़ से १९४३ में ६५५·०७ होगए, जो १९४६ के अंत में १०९७ करोड़ होगए। इसके साथ ही साथ अधिकोषों की नई नई शाखाएँ भी खुलीं तथा नये अधिकोषों की भी स्थापना हुई परन्तु प्रथम दो वर्षों में (१९३९-१९४१) यह प्रगति धीमी गति से हुई। किंतु १९४२ से १९४६ की अवधि में बहुत ही तीव्र गति से प्रगति हुई जिसकी वजह से अनेक नये नये अधिकोषों की स्थापना हुई जिनमें अधिकांश छोटे अधिकोष थे। परन्तु युनाइटेड कमर्शियल बैंक, हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक, हबीब बैंक, हिन्दुस्तान मर्केन्टाइल बैंक आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन अधिकोषों ने अपना विकास भी बड़ी तीव्र गति से किया, जिसकी वजह से इम्पीरियल बैंक, अनुसूची-बद्ध अधिकोष तथा विनिमय अधिकोषों की संख्या ५३ (१९३९) से बढ़कर ९३ (१९४६) तथा उनके कार्यालयों की संख्या १३२८ से बढ़कर ३१०६ होगई। निक्षिप्त राशि में भी वृद्धि हुई जो ६५५·०१ करोड़ (१९४३) से बढ़कर १०९७ करोड़ १९४६ के अंत में होगई। यह मजबूती द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप ही थी।

इस अधिकोषण विस्तार का कारण जनता के पास रुपये की अधिकता थी परन्तु युद्धकालीन कठिनाइयों के कारण विदेशों से आवश्यक यंत्र-सामग्री का आयात असंभव होने के कारण उन्हें कहीं न कहीं रखना आवश्यक था। दूसरे सोने चांदी तथा स्थायी सम्पत्ति के मूल्यों में उच्चावचन भी अधिक हो रहे थे इसलिये इन कार्यों में भी उसका विनियोग नहीं हो सकता था। अतः उन्होंने अधिकोषों की स्थापना करना ही प्रारंभ किया। जिसकी वजह से अन-अनुसूची-बद्ध (Non-scheduled) अधिकोषों की संख्या भी २३१ (१९३९) से बढ़कर १९४६ में २८८ हो गई—इनकी दत्त पूंजी तथा निधि मिलाकर ५ से ५½ लाख रुपये तक थी। इसका यह मतलब नहीं कि यह अधिकोषण विस्तार दोष-रहित था, इसमें भी कतिपय दोष थे फिर भी देश का अधिकोषण-कलेवर मजबूत होता गया। यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी होगी कि युद्ध के पूर्व अधिकोषण विधान के अभाव को दूर करने के लिए भारतीय प्रमण्डल विधान में सन् १९३६ में संशोधन किया जा चुका था तथा साख, मुद्रा एवं अधिकोषण नियंत्रण के लिए १९३५ में रिज़र्व बैंक भी कार्यान्वित हो चुका था, जिससे भविष्य में अधिकोष विलीयन की आशा कम थी परन्तु १९४० में भी कुछ अधिकोषों का विलीयन हुआ। १९४१ में जापान के बर्मा पर होनेवाली बमबारी के परिमाण स्वरूप विनिमय अधिकोषों से जनता का विश्वास हिलने लगा, जिससे उनके निक्षेपों में कमी हुई परन्तु इम्पीरियल

बैंक के तथा अन्य अधिकोषों के निक्षेप बढ़ने लगे। इस काल में अनुसूचीबद्ध अधिकोषों ने भी पर्याप्त प्रगति की जिससे इनके निक्षेपों में भी वृद्धि हुई—जिसके आंकड़े हम ऊपर दे चुके हैं। इन निक्षेपों की वृद्धि का कारण ऊपर दिये गए दो कारणों के अतिरिक्त युद्ध-जन्य मुद्रा-स्फीति भी थी क्योंकि इस अवधि में पत्र-मुद्रा का परिमाण बढ़ते बढ़ते १९४६ में १०१४ करोड़ रुपये से अधिक हो गया था। इस अवधि में निक्षेप बढ़ने के अतिरिक्त निक्षेपों के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ जो अधिकोषों के याचित निक्षेप तथा स्थायी निक्षेपों के अनुपात से स्पष्ट हो जाता है। इस अवधि में स्थिर निक्षेपों में कमी हुई परन्तु याचित निक्षेपों में वृद्धि हुई जिसका प्रमुख कारण स्थिर निक्षेपों की अपेक्षा याचित निक्षेपों पर दिये जाने वाले व्याज की अधिकता थी। दूसरे, स्वर्ण आदि के मूल्यों में उच्चावचन होते रहते थे जिससे किसी भी समय इनके मूल्य गिरने पर अचल सम्पत्ति अथवा स्वर्ण खरीदने के लिए जनता अपने निक्षेप चालू लेखों में ही रखती थी, जिससे किसी भी समय उनको निकाला जा सके, जो स्थायी लेखों में संभव न था।

युद्ध काल में अधिकोषों की सम्पत्ति एवं देय का स्वरूप भी प्रभावित हुआ तथा अनुसूची-बद्ध अधिकोषों द्वारा दिये जाने वाले ऋणों में कमी हुई, जो पहिले ६२% प्रतिशत थे अब कुल सम्पत्ति के केवल २५% प्रतिशत ही रह गए, महान पांच अधिकोषों का यही अनुपात ५३% से घटकर ३०% तथा इम्पीरियल बैंक का ५५% से घटकर २०% रह गया। इस ऋणों के कम प्रदाय की वजह से सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग अधिक किया जाने लगा तथा अधिकोषों की सम्पत्ति में अधिक तरलता रहने लगी। सरकार भी यह चाहती ही थी कि सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग अधिक हों इसलिए अनुसूची-बद्ध अधिकोषों के विनियोगों का कुल संपत्ति से अनुपात युद्ध पूर्व ५४% से बढ़कर ६१% हो गया तथा इम्पीरियल बैंक का यही अनुपात ४३% से ५१% हो गया। इस प्रकार विनियोग की वृद्धि तथा ऋणप्रदाय की कमी का प्रमुख कारण व्यापारियों के पास धन की अधिकता थी जिससे उनको ऋणों की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। ठेकेदारों (Contractors) को सरकार से प्रति अनुबंध पीछे अग्रिम राशि मिलती ही थी, जिससे ऋणों की आवश्यकता नहीं थी। इसके साथ अनेक प्रकार के नियंत्रणों के कारण आयात निर्यात व्यापार में भी कमी हो गई थी। इस प्रकार सम्पत्ति का सरकारी प्रतिभूतियों में अधिक विनियोग होने के कारण एवं अधिक तरलता के कारण हमको यह न सोचना चाहिये कि अधिकोषों का लाभ कम हो गया होगा क्योंकि जो विनियोगों के कारण इस काल में लाभ की कमी हुई उसकी पूर्ति दूसरी ओर अधिकोषों द्वारा दिये जाने वाले व्याज

की दर की कमी से हुई जिससे उनके लाभ किसी भी प्रकार कम न होते हुए अधिकोपण व्यापार की वृद्धि के कारण बढ़ गए। इसी प्रकार रोकनिधि का कुल देय के साथ अनुपात भी बढ़ गया जो अनुसूची-बद्ध अधिकोषों का ११% से २५% तथा इम्पीरियल बैंक का १५% से २४% बढ़ गया, जो समुचित अधिकोपण विकास की दृष्टि से एवं भारतीय परिस्थिति के लिए हितकर ही था एवं आगे चलकर हितकर प्रमाणित हुआ भी, जब विभाजन के स्वरूप अधिकोषों की परिस्थिति विशेषतः बंगाल और पंजाब में, डांवाडोल होने लगी थी।

इस प्रकार १९४६ तक मुद्रा की अधिकता के कारण, आयात निर्यात एवं आंतरिक व्यापार पर नियंत्रण आदि के कारण जनता के पास मुद्रा का बाहुल्य रहा तथा अधिकोषों के निक्षेप रोकनिधि तथा विनियोग बढ़े और दूसरी ओर ऋण-प्रदाय कम हुआ। जिसकी वजह से १९४६ के अन्त तक देश में मुद्रा की परिस्थिति अच्छी रही तथा अधिकोषों को रिजर्व बैंक के पास सहायता के लिए भी नहीं जाना पड़ा। देश में केवल थोड़े से ही ऐसे अधिकोष थे जिनको वर्ष भर में कभी कभी सहायता की आवश्यकता हुई जो उन्होंने रिज़र्व बैंक से प्राप्त की। जिसकी वजह से रिजर्व बैंक ने अन्य अधिकोषों को केवल १ करोड़ से ४ करोड़ तक सहायता प्रतिवर्ष दी।

इस प्रकार एकाएक अधिकोषों का अपरिमित विस्तार होने से अधिकोषों को योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों की कमी महसूस होने लगी तथा अनेक नए अधिकोषों ने अनुभवी व्यक्तियों की प्राप्ति पुराने अधिकोषों से अधिक वेतन का मोह देकर अपनी ओर आकृष्ट करके की। परन्तु फिर भी आज अधिकोषों में योग्य कर्मचारी का अभाव है जिसके लिए शिक्षित एवं अनुभवी कर्मचारियों को अधिकोषण-शिक्षा देने का समुचित प्रबन्ध होना चाहिये, जो कार्य जैसा कि हम बता चुके हैं, अखिल भारतीय अधिकोष संघ को इस संबंध की समुचित सुविधा देकर पूर्ण करना चाहिये।

युद्धकालीन अधिकोषण विकास के दोष : द्वितीय महायुद्ध कालीन विकास मजबूत स्तर पर होते हुए भी दोषरहित नहीं हुआ, क्योंकि इस अवधि में अधिकोषों की संख्या में, उनकी शाखाओं में अपरिमित विस्तार हुआ तथा अधिकोषों की शाखाएं ऐसे अनेक स्थानों पर खुलीं जहाँ उनकी आवश्यकता भी नहीं थी अथवा ऐसी जगह खुलीं जहाँ पर पहिले से ही पर्याप्त अधिकोषण सुविधाएं उपलब्ध थीं जिसकी वजह से अवांछित प्रतियोगिता बढ़ गई जो अधिकोषण विकास की दृष्टि से हानिकर है। दूसरे, जिन क्षेत्रों में अधिकोषों की स्थापना की आवश्यकता थी वहाँ पर एक भी अधिकोष की शाखा नहीं

खुली। तीसरे, युद्ध काल में अधिकोषों के लाभ बढ़े तथा उन्होंने लाभांश का वितरण भी अधिक दिया, जिसकी वजह से अधिकोषों के अंशों एवं प्रतिभूतियों में परिकाल्पनिक व्यवहार होने लगे। चौथे, सरकारी प्रतिभूतियों की मूल्यवृद्धि से होनेवाले लाभ का 'निधि' के लिए उपयोग करने की अपेक्षा लाभांश वितरण में उपयोग होने लगा। पाँचवें, अधिकोषण व्यापार के साथ अन्य व्यापारों का संबंध अर्थात् अधिकोषण व्यापार का ऐसे व्यक्तियों द्वारा नियंत्रण एवं संचालन, जो अन्य व्यापार में अधिक रूप से भाग ले रहे थे, युद्धकालीन अधिकोषण विकास का सबसे बड़ा दोष था। उदाहरणार्थ बिरला द्वारा तथा सिंघानिया द्वारा क्रमशः संचालित युनाइटेड कमर्शियल बैंक और हिन्दुस्थान कमर्शियल बैंक।

इस प्रकार के सदोष अधिकोषण विकास से, तथा लेखा-पुस्तकों के कुकर्मों से अनेक अधिकोषों का विलीयन युद्धकाल में हुआ परन्तु क्रमशः इस विलीयन का परिमाण घटता गया तथा युद्धांत के समय हमारे अधिकोषण का कलेवर मजबूत हो गया। युद्धकाल में विलीन अधिकोषों की संख्या निम्न हैं:—

१९३९	९०
१९४०	१०२
१९४१	७७
१९४२	४९
१९४३	४१
१९४४	२२
१९४५	२६
१९४६	२७

इसके साथ ही अनेक छोटे छोटे अधिकोषों का भी विलीयन हुआ। युद्ध के बाद हमारे अधिकोषों की सम्पत्ति एवं देयता का स्वरूप फिर से अपने पूर्वस्तर पर आगया तथा स्थायी निक्षेपों में वृद्धि होने लगी और चल निक्षेप कम होने लगे जो क्रिया १९४७ तक चलती रही। इसी प्रकार ऋणों का प्रदाय भी युद्ध समाप्त होते ही फिर से बढ़ने लगा जिसकी वजह से सरकारी प्रतिभूतियों में होने वाले अधिकोषों के विनियोग तथा रोकनिधि का परिमाण भी कम होगया। युद्धोपरांत मुद्रा-स्फीति तथा मूल्यस्तर में वृद्धि होने की वजह से अधिकोषों का कार्य-व्यय भी बढ़ गया था परन्तु उनके ऋणों के परिमाण में वृद्धि होने से उनके लाभ प्रभावित नहीं हुए।

१९४६ में युद्ध समाप्ति हुई, जिससे जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं स्थायी एवं चल निक्षेपों की वृद्धि हुई और अधिकोषों ने अपनी कार्यक्षमता

एवं योग्य कर्मचारियों के अभाव की ओर दुर्लक्ष कर नई नई शाखाएँ खोलना फिर प्रारंभ किया, इससे अल्प परिमाण में फिर से अधिकोषण संकट आया जिसका विशेष परिणाम बंगाल के अधिकोषों पर हुआ जिन्होंने अंशों की प्रतिभूति पर अधिक ऋण सुविधाएँ दे रखी थीं तथा जिनके मूल्यों में अब गिरावट आ रही थी। परिणाम यह हुआ उन्हें भुगतान रोकना पड़ा, जिसकी वजह से अनेक छोटे छोटे अन-अनुसूची बद्ध अधिकोषों का विलीयन हुआ। परन्तु इसका परिणाम अन्य अधिकोषों पर नहीं हुआ। तथा रिज़र्व बैंक ने भी आदेश दिया कि परिकाल्पनिक व्यवहारों के लिए ऋणों का प्रदाय न किया जाय, जिसका परिणाम भी हमारे अधिकोषण व्यवसाय पर अच्छा ही पड़ा। इसी समय शाखाओं का विस्तार रोकने के लिए अधिकोषण प्रमंडल (शाख-नियंत्रण) विधान १९४६ में स्वीकृत किया गया।

१५ अगस्त १९४७ को भारत का विभाजन हुआ जिसकी वजह से पंजाब और बंगाल में अनेक भीषण कृत्यों का तांडव-नृत्य शुरू हुआ जिससे देश के उत्पादन में, आयात निर्यात व्यापार में भी कमी आई तथा करोड़ों की सम्पत्ति का नाश हुआ। इससे विशेषतः पंजाब के अधिकोषों को अधिक हानि हुई जिसका ठीक ठीक अनुमान आज तक नहीं लगाया जा सका है। १९४७ में विभाजन के परिणाम स्वरूप, परिकाल्पनिक व्यवहारों की वृद्धि से, तथा पाकिस्तानी क्षेत्रों की भगदड़ के कारण १९४७ में ३० अधिकोषों का विलीयन हुआ जिसमें अधिकतर अन-अनुसूची बद्ध अधिकोष थे। इसके साथ अनुसूची बद्ध अधिकोषों को भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

विभाजन की वार्त्ता का प्रसार होते ही पंजाब के बहुत से अधिकोषों ने जैसे पंजाब नेशनल बैंक आदि ने अपने प्रमुख कार्यालय दिल्ली अथवा पूर्वी पंजाब के सुरक्षित स्थानों पर हटा लिये तथा पश्चिमी पंजाब की शाखाओं द्वारा ऋण प्रदाय भी कम कर दिया। परन्तु यह कुछ सीमा तक ही हो सकता था। विभाजन होते ही पश्चिमी पंजाब के अनेक अधिकोषों को अपनी क्रियाएं बन्द करनी पड़ीं जिससे अधिकोषों को बहुत हानि हुई। इस संकट को रोकने के लिये रिज़र्व बैंक ने तुरंत ही १७वीं धारा का संशोधन किया जिससे अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को, जो रिर्वज़ बैंक योग्य समझे ऐसी प्रतिभूतियों पर ऋण प्राप्त करने की सुविधाएं दी गईं। दूसरे, पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली आदेश (१९४७) भी लागू किया गया जिसके अंतर्गत जिन अधिकोषों के प्रमुख कार्यालय दिल्ली या पूर्वी पंजाब में हैं उनके विरुद्ध तीन मास तक कोई भी कार्यवाही नहीं की जा सकती थी। इसी के साथ इस स्थगित-शोधन काल (Moratorium Period) में अधिकोष अपने भारत-स्थित चल निक्षेपों का केवल १०%

प्रतिशत अथवा २५० रु० (जो कम हो) का भुगतान कर सकते थे। सरकार ने निर्वासित अधिकोषों के पुनर्वासन के लिए भी १ करोड़ रुपये की सहायता दी। जिसकी वजह से इस संकट से अन्य अधिकोषों की सुरक्षा हुई तथा (३० अधिकोष विलीन हुए उनके अतिरिक्त अन्य अधिकोषों को) उनको विलीयन से बचाया जा सका। १९४६ में अधिकोषण प्रमंडल (परीक्षण) आदेश भी लागू किया गया जिसके अनुसार रिज़र्व बैंक सरकारी आदेश पर किसी भी अधिकोष का परीक्षण कर उसकी रिपोर्ट सरकार को देने के लिये उत्तरदायी था। इससे एक परिणाम यह हुआ कि जिन अधिकोषों की परिस्थिति अच्छी नहीं थी उनका विलीयन किया गया तथा अन्य अधिकोषों को बचाया जा सका।

इस विभाजन से अधिकोषण संकट जो आया उसका भी हमारी अधिकोषण परिस्थिति पर अच्छा परिणाम हुआ क्योंकि अब रिज़र्व बैंक का उत्तरदायित्व बढ़ गया, अधिकोषों के नियंत्रण के लिए एवं समुचित विकास के लिये कुछ वैधानिक संशोधन तथा नए विधान स्वीकृत किये गये (जिनका अन्तर्भाव अधिकोषण प्रमंडल विधान १९४९ में हो गया) तथा अधिकोषों के व्यवस्थापक भी अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर सतर्क हो गये। इस तरह इन संकटों के कारण अनेक अवांछनीय प्रवृत्तियों को एवं अव्यवस्थित शाखा-विस्तार को रोका गया। इससे अधिकोषण कार्यक्षमता का स्तर उन्नत हुआ तथा आजकल अधिकोष अपनी शाखाओं का विस्तार न करते हुए अपनी आर्थिक परिस्थिति एवं व्यवस्था को सुसंगठित करने में प्रयत्नशील हैं। रिज़र्व बैंक भी इतना नियंत्रण समुचित रूप से कर रहा है एवं अब १९४९ में भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान (Indian Banking Companies Act) तथा भारतीय अधिकोषण संशोधन विधान (Indian Banking Companies Amendment Act) १९५० स्वीकृत हो जाने से रिज़र्व बैंक को अपरिमित अधिकार मिल गये हैं जिससे देश के अधिकोषण का विकास समुचित ढंग से एवं मजबूती से होगा। क्योंकि अनेक अधिकोष, अपनी शाखाएँ जो बढ़ते हुए व्यय के कारण अलाभकर थीं, उनको बन्द करने लगे हैं तथा अनेक अधिकोष एकत्रीकरण (Amalgamation) की ओर भी प्रयत्नशील हैं। इस अवधि में नाथ बैंक तथा ज्वाला बैंक का विलीयन हो चुका है तथा १९५० में बङ्गाल के चार अधिकोषों का— कोमिल्ला बैंकिंग कार्पोरेशन, कोमिल्ला युनियन बैंक, हुगली बैंक तथा बङ्गाल सेंट्रल बैंक का—एकत्रीकरण हो गया है जो इम्पीरियल बैंक के बाद एकत्रीकरण का दूसरा उदाहरण है। और हमारा अधिकोषण व्यवसाय अब मजबूत नींव पर स्थिर हो गया है।

१९५० में अधिकोषण-परिस्थिति :

१९५० में अधिकोषण प्रगति भी १९४९ की तथा गत वर्षों की तुलना में अच्छी रही तथा अग्रिम (Advances) अथवा ऋणों में अधिक गति रही जिसकी वजह से साख की पूर्ति के लिये कम रोक की आवश्यकता पड़ी, जिसके लिये प्रमुख कारण निम्न थे—

१. आयात पर नियंत्रण अब भी चालू थे, जिसकी वजह से विदेशी व्यापार में आयात की अपेक्षा निर्यात में अधिकता रही। इस निर्यात की अधिकता के कारण धन देश में आता रहा जिससे विदेशी व्यापार के लिये कम धन की आवश्यकता व्यापारियों को रही।

२. दूसरे, पिछले वर्षों की अपेक्षा यातायात के साधनों की सुलभता होने से वस्तुओं का यातायात शीघ्रता से होता रहा जिसका परिणाम भी व्यापारिक ऋणों की आवश्यकता को कम करने में हुआ।

३. इस वर्ष में पटसन (Jute) वस्त्र व्यवसाय में कच्चे माल के अभाव में उत्पादन भी कम हुआ, तथा

४. कुछ व्यापार एवं औद्योगिक क्षेत्रों में लाभ भी अधिक रहा—इन कारणों की वजह से व्यापारिक कार्यों के लिये ऋणों की आवश्यकता कम रही तथा ऋणों का भुगतान अधिकोषों को शीघ्र प्राप्त होता रहा। किंतु इन सब बातों का पिछले वर्षों में अभाव रहा तथा व्यापारिक ऋणों का शीघ्रता से भुगतान नहीं होता था।

१९५० में अनुसूची बद्ध अधिकोषों की संख्या, जो १९४८ में १०० थी फिर ९३ रह गई जो १९४६ में थी किंतु उनके निक्षेपों में २४·०८ करोड़ की १९५० में वृद्धि हुई। रोक निधि कुल निक्षेपों के ९·१५ प्रतिशत से १३·२१ प्रतिशत तक रहा जो युद्धपूर्व काल में केवल ९·८० प्रतिशत था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी अधिकोषण प्रगति एवं पद्धति अच्छी एवं कार्य-क्षम होती जा रही है—हाँ उसकी शाखाएँ अवश्य कम हो गई हैं किंतु उसकी कार्यक्षमता बढ़ गई है और रिज़र्व बैंक के नियंत्रण में वह और बढ़ेगी ही।

अधिकोषण का भविष्य :

भविष्य : अतः अब आवश्यकता है कि अधिकोष नीति तथा मौद्रिक नीति का निर्धारण समुचित सावधानी के साथ एवं देश के अधिकतम हित में किया जाय तथा इन नीतियों का पूर्णरूपेण पालन हो जिससे अधिकोषण व्यवस्था की कार्यक्षमता बढ़े। तथा इस कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिये योग्य

एवं अनुभवी कर्मचारियों का निर्माण होने की भी अतीव आवश्यकता है। इसी के साथ देश में औद्योगिक साख की पूर्ति के लिये इंडस्ट्रियल फिनांस कार्पोरेशन (Industrial Finance Corporation) के अतिरिक्त अधिकोषों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है अतः यह भी आवश्यक है कि जिन क्षेत्रों में अधिकोषण संचार नहीं हुआ, उन क्षेत्रों में भी विकास हो जिससे हमारी औद्योगिक एवं कृषिसाख की भी पूर्ति हो सके। व्यापारिक अधिकोषों के ग्रामीण क्षेत्रीय विकास के लिये भी ग्रामीण अधिकोषण जाँच समिति ने अनेक प्रस्ताव रखे हैं जिनमें उनको विकास करने के लिये अप्रत्यक्ष सुविधाएं, राशि-स्थानांतरण सुविधाएँ भी दी जाएंगी तथा शॉप एन्ड एस्टाब्लिशमेंट एक्ट आदि उन पर लागू नहीं होंगे। आशा है कि व्यापारिक अधिकोष इन सुविधाओं से पूर्ण लाभ उठाकर ग्रामीण क्षेत्रों में तथा अन्य विकसित क्षेत्रों में अधिकोषण सुविधाएँ देने में किसी भी प्रकार प्रयत्नों में कमी न रखेंगे; विशेषतः जब देश में केन्द्रीय अधिकोष उनको सलाह देने के लिये है।

अतः उपर्युक्त परिस्थिति में देश में अधिकोषण-विकास भविष्य बहुत ही आशादायी एवं उज्ज्वल है, जो विकास अधिक शक्ति शाली एवं स्थायी रहेगा। जैसा कि पूर्व अर्थ सचिव श्री जॉन मथाई ने बैंक ऑफ इंडिया के भवन का बम्बई में उद्‌घाटन करते समय कहा था कि "भारत की अधिकोषण-पद्धति की तुलना संयुक्त राज्य (U. K.) तथा संयुक्त राष्ट्र (U. S. A.) की पद्धति से शक्ति एवं कार्यक्षमता में की जा सकती है······एवं उसकी वर्तमान स्थिति आशादायी है।"

व्यापारिक अधिकोषों का संगठन :

संयुक्त स्कंध अधिकोषों का समामेलन भारतीय प्रमंडल विधान के अंतर्गत होता है और १९३६ तक जब यह विधान संशोधित किया गया, तब तक इनकी प्रणाली कुछ बातों के अतिरिक्त अन्य सब विषयों में उसी प्रकार नियंत्रित की जाती थी जिस प्रकार कि अन्य व्यापारिक प्रमंडल। ये मूल भेद जो अन्य प्रमंडल तथा अधिकोषण प्रमंडल में थे वे निम्नलिखित हैं :—

१. अधिकोषण का कार्य अगर भागिता-सार्थ करती है तो उसके भागियों की अथवा साझीदारों की संख्या केवल १० ही रहेगी, परन्तु अन्य व्यापार के लिए यह अधिकतम संख्या २० थी। यदि यह संख्या १० से अधिक होती है तो उस दशा में प्रमंडल का समामेलन इस विधान के अनुसार होना आवश्यक है।

२. इस व्यवसाय को करनेवाले प्रमंडलों को पंजीयक (रजिस्ट्रार) के पास अपने सभी कार्यालयों की सूची भेजना आवश्यक है।

३. प्रमंडल विधान की धारा १३६ (१) के अनुसार सभी अधिकोषण प्रमंडलों को विधान की तीसरी अनुसूची में दिये हुए ग (G) प्रपत्र के अनुसार उसके कार्यारम्भ के पूर्व तथा कार्यकाल में फरवरी के तथा अगस्त के पहिले सोमवार को आर्थिक स्थिति का विवरण पंजीयक के पास भेजना होगा यदि यह नहीं भेजा जाता तो प्रमंडल के अधिकारी अथवा अन्य व्यक्ति जो इस संबंध में दोषी होंगे वे दंडनीय होंगे एवं यह दंड ५०) रु० प्रतिदिन की दर से लिया जायेगा।

४. धारा १३३ के अनुसार अधिकोष प्रमंडल के स्थिति-विवरण पर प्रमंडल के व्यवस्थापक तथा तीन संचालकों के हस्ताक्षर होना आवश्यक हैं। यह हस्ताक्षर यदि स्थिति-विवरण पर नहीं किये जाते तो उसका कारण बतानेवाला विवरण स्थिति-विवरण के साथ संबद्ध होना चाहिये।

५. धारा १३८ के अनुसार स्थानीय सरकार किसी भी अधिकोष का परीक्षण ¼ निर्गमित अंशधारियों के आवेदन पर कर सकती है परन्तु अन्य प्रमंडलों के संबंध में २० प्रतिशत हिस्सेदारों का आवेदन पत्र आना आवश्यक है।

६. स्थितिविवरण के सम्पत्ति के पार्श्व में विविध अधमर्ण (Sundry-Debtors) इस शीर्षक के अंतर्गत विविध ऋणों का उनकी प्रतिभूति के अनुसार वर्गीकृत करना आवश्यक होता है, यह नियम अन्य प्रमंडलों के लिये लागू नहीं होता।

७. यदि अधिकोषण प्रमंडल की शाखाएं ब्रिटिश भारत के बाहर हैं तो उस दशा में अंकेक्षक को उन शाखाओं के प्रमुख कार्यालयों को भेजे हुए विवरणों को देखना ही पर्याप्त माना गया है।

किन्तु जहां तक उपर्युक्त विधान था वह अधिकोषण व्यापार के नियंत्रण के लिए अपर्याप्त समझा गया था इसीलिये केन्द्रीय अधिकोषण जांच समिति ने अलग अधिकोषण विधान बनाने की सिफारिश की थी। किन्तु विदेशी विशेषज्ञों ने ऐसे अलग विधान की आवश्यकता न बताते हुए केवल कुछ संशोधन के लिए सुझाव रखे थे जो १९३६ के संशोधन विधान द्वारा १ जनवरी १९३७ से लागू किये गए। किन्तु इस संशोधन से भी कोई संतोष-जनक परिणाम नहीं हुए तथा अधिकोषण विधान का अभाव बना ही रहा जिसकी पूर्ति १९४९ में भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान १९४९ तथा भारतीय अधिकोषण प्रमंडल संशोधन विधान १९५० द्वारा हो गई है, जिसका विवेचन हम आगे करेंगे।

पंजीयन (Registration) : किसी भी अधिकोष का वैयक्तिक प्रमंडल अथवा सामाजिक प्रमंडल का पंजीयन हो सकता है किन्तु वैयक्तिक (Private Limited Companies) सीमित प्रमंडलों को सामाजिक सीमित (Public Limited) प्रमंडलों की अपेक्षा कई सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

पहिले तो वैयक्तिक प्रमंडलों को प्रविवरण (Prospectus) अथवा उसके स्थान पर अन्य विवरण भेजने की आवश्यकता नहीं रहती। दूसरे, उनका सम्मेलन (Incorporation) होते ही वे अपनी ऋण-शक्ति (Borrowing Power) का उपयोग कर सकते हैं परन्तु सामाजिक प्रमंडलों को अन्य आवश्यक बातों की पूर्ति के पहिले यह अधिकार प्राप्त नहीं होता; यह अधिकार उन्हें तभी प्राप्त होता है जब व्यापार-प्रारम्भण प्रमाणपत्र (Certificate for Commencement of Business) उन्हें मिल जाता है। तीसरे, उन्हें स्थिति-विवरण के प्ररूप का कोई भी विवरण पंजीयक के पास भेजने की आवश्यकता नहीं होती। चौथे, उनको सामाजिक-प्रमंडलों की भांति संचालकों का वृत्तलेख (Report) आदि भेजना आवश्यक नहीं होता और न उनका स्थिति-विवरण ही अंकेक्षकों द्वारा प्रमाणित होने की आवश्यकता होती है। पाँचवें, सामाजिक प्रमंडलों की भांति न्यूनतम प्रार्थित पूंजी (Min. Subscribed Capital) संबंधी धारा उन्हें लागू नहीं होती तथा उनको संचालकों की नियुक्ति संबंधी पूर्ण स्वतंत्रता होती है। छठवें, उनको अपनी आर्थिक स्थिति के विज्ञापन का वैधानिक प्रतिबंध नहीं होता और न स्थिति-विवरण पंजीयक के पास भेजने की उन्हें आवश्यकता ही होती है; परन्तु उनको परिदत्त पूंजी की राशि तथा अपना प्राधि अथवा अन्य किसी सम्पत्ति के प्रभार से प्रतिभूत ऋणों की राशि की जानकारी पंजीयक को देनी पड़ती है।

उपर्युक्त सुविधाएँ वैयक्तिक प्रमण्डलों को होने के कारण उन पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए गए हैं जिससे उनके अंशों का हस्तांतरण सीमित होता है तथा उनके सदस्यों की संख्या कर्मचारियों को छोड़कर ५० संख्या तक ही सीमित है एवं वे जनता को अपने अंश अथवा ऋण पत्र आदि खरीदने के लिए निर्गमित नहीं कर सकते।

इस प्रकार भारत के सभी संयुक्त स्कंध अधिकोष भारतीय प्रमण्डल विधान १९३६ (१३) के अंतर्गत पंजीयित हैं तथा उनको उस विधान के अनुसार संपूर्ण कार्यवाही करनी पड़ती है और अब १९४९ के अधिकोषण विधान द्वारा उनका नियंत्रण होगा।

संचालक के गुण : अधिकोष की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार एवं उसके

सुसंचालन का उत्तरदायित्व संचालक का होता है अतः संचालक, सदैव ऐसे ही व्यक्तियों को बनाना चाहिये जो व्यापारिक, औद्योगिक विधान से सामान्यतः और अधिकोषण विधान एवं उनके प्रयोग से पूर्णतः परिचित हों। ऐसे ही व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतः निभा सकते हैं। दूसरे, अधिकोषण व्यापार का स्वरूप ही कुछ ऐसा है जिसमें विश्वसनीय तथा जो जनता का विश्वास सम्पादन कर सकें ऐसे व्यक्तियों की ही आवश्यकता अधिक होती है; अतः संचालक की नियुक्ति केवल उसकी उपाधियों पर ही आधारित नहीं होनी चाहिये। इसके साथ ही संचालक का कार्य वही व्यक्ति योग्यता से कर सकता है, जो मुद्रा-विपणि तथा आर्थिक व्यवस्था से पूर्णतया परिचित हो, जिससे वह भिन्न भिन्न समयों की आर्थिक एवं मौद्रिक प्रवृत्ति देख समझ कर अपनी व्यापारिक नीति निर्धारित कर सके। अधिकोषण व्यापार में यह भी आवश्यक है कि एक व्यक्ति एक ही प्रमण्डल का संचालन करे। भारत में भी यह नियम संचालकों के लिए लागू है। इन गुणों की आवश्यकता केवल इसी-लिये होती है कि संचालक को दुहरा उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है क्योंकि एक ओर तो वह अंशभागियों के अभिकर्ता का कार्य करता है और उसके कार्यों का अंतिम दायित्व प्रमण्डल का अर्थात् उसके अंशभागियों का होता है। दूसरी ओर वह जनता के प्रन्यस्त का भी कार्य करता है क्योंकि अधिकोष की धनराशि जनता से ही निक्षेप रूप में प्राप्त होती है तथा उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी संचालक पर ही होती है। इस दुहेरे उत्तरदायित्व की दृष्टि से अधिकोष के संचालक में निम्न विशेषताएँ होना आवश्यक हैं।

१. उसकी आर्थिक परिस्थिति अच्छी हो अर्थात् वह धनी व्यक्ति हो जिससे अधिकोष से वह कूटकर्मों द्वारा अपने लिए अत्यधिक परिमाण में ऋण आदि न ले।

२. ईमानदार, विश्वसनीय हो एवं जनता का विश्वास-सम्पादन कर सके।

३. औद्योगिक, व्यापारिक, अधिकोषण विधान एवं प्रयोग का पूर्ण ज्ञान रखता हो तथा वह देश की मौद्रिक एवं आर्थिक परिस्थिति से पूर्णतया परिचित हो।

संचालक का दायित्व : संचालक का अधिकोष के व्यवस्थापक होने के नाते, सम्बन्ध, अधिकोष से, अधिकोष के अंशभागियों से तथा अन्य व्यक्तियों से जो अधिकोषण व्यवहार से संबंधित हों, होता है। अतः इन तीनों के प्रति संचालक का उत्तरदायित्व होता है।

(अ) अन्य व्यक्तियों के प्रति दायित्व उस पर तभी आता है जब वह कोई ऐसे कार्य करे अथवा ऐसे अनुबंध करे जो अधिकोष के कार्यों के अन्तर्गत—

जिनका उल्लेख पार्षद-सीमा-नियम में होता है—न आते हों; ऐसे कार्यों के लिये अधिकोष उत्तरदायी न रहते हुए, उन कार्यों का पूर्ण दायित्व संचालक का होता है।

(ब) अंशभागियों के प्रति दायित्व : यदि प्रविवरण में अथवा अन्य किसी वृत्तलेख में इस प्रकार की गलत धारणा (Misrepresentation) की गई है, जिनके आधार पर अंशभागियों ने अधिकोष के अंश खरीदे हों, तब इस दशा में संचालक अंशधारियों की हानिपूर्ति के लिये दायी हो जाता है। इसी प्रकार अन्य पक्षों को यदि गलत धारणा दी गई हो तो उससे उन्हें होने वाली हानि की पूर्ति के लिये भी संचालक व्यक्तिशः उत्तरदायी होता है। इसी प्रकार अधिकोष की लेखा-पुस्तकों को कूट बनाने के कारण संचालक दायी होते हैं तथा न्यायालय से दंड के अधिकारी होते हैं।

(क) अधिकोष के प्रति संचालकों का दायित्व तीन प्रकार से निर्माण होता है। पहिले तो उन्हें अधिकोष के ग्राहकों से किसी प्रकार का पारितोषक, बख्शीश आदि नहीं लेनी चाहिये क्योंकि प्रायः पारितोषक आदि इसीलिये दिये जाते हैं जिससे उस व्यक्ति का काम शीघ्रता से एवं सुगमता से हो। यदि वे किसी भी प्रकार से अधिकोषण व्यापार में रहते हुए वैयक्तिक लाभ कमाते हैं तो वह लाभ उन्हें अधिकोष को देना चाहिये। दूसरे, उनकी उपेक्षा से अधिकोष को होने वाली हानि की पूर्ति के लिये वे उत्तरदायी होते हैं तथा तीसरे, यदि वे अधिकोष की धनराशि का गलत नियोजन अथवा गलत उपयोग करते हैं, तो उस राशि का दायित्व संचालकों पर आता है।

अतः अधिकोषण व्यापार में संचालकों को बहुत सी सावधानी रखनी पड़ती है तथा उन्हें वे ही कार्य करने चाहिये जो पार्षद-सीमा नियम के अंतर्गत आते हों। दूसरे संचालकों के अधिकार क्या हैं इसका उल्लेख एवं उन अधिकारों की सीमा पार्षद अंतर्नियम में दी हुई होती है; इस सीमा के अंतर्गत ही उन्हें अपने कार्य करने की सावधानी रखनी चाहिये।

अन्य संगठन के प्रकार : इसके अतिरिक्त अधिकोषण व्यापार संयुक्त कुटुम्ब तथा भागिता-सार्थ भी कर सकते हैं।

संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली से यदि अधिकोषण व्यापार किया जाता है तो उस पर भी वही नियम लागू होते हैं जो अन्य व्यापार पर, अर्थात् व्यापार चाहे अधिकोषण व्यापार हो अथवा अन्य व्यापार, वह भारत में हिंदू संन्नियम (Hindu Law) के अंतर्गत नियम बद्ध होता है। यह व्यापार पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है तथा व्यापारिक क्षमता बाप से बेटे में आ जाती है तथा

पिता की देखरेख में पुत्र भी इस व्यापार को करने की आवश्यक योग्यता प्राप्त कर लेता है।

इस पद्धति में सबसे अधिक लाभ यह होता है कि अधिकौपिक अपने ग्राहकों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर सकता है तथा उनकी आर्थिक स्थिति का पूर्ण-ज्ञान उसे रहता है जो संयुक्त स्कंध अधिकोषों में नहीं रहता। दूसरे, कौटुम्बिक अधिकौपिकों का यह पारम्परिक व्यवसाय होने से वे जनता के विश्वास-संपादन में अधिक सफल होते हैं। इन्हींको स्वदेशीय अधिकोष कहा जाता है, जिसका विवेचन हम अध्याय १३ में कर चुके हैं।

अधिकोषण-भागिता-सार्थ (Banking Partnership Firm): अधिकोषण-भागिता-सार्थ का संगठन, पंजीयन तथा नियंत्रण भारतीय-भागिता विधान १९३२ के नियमों के अनुसार होता है एवं इसके भागियों के वही अधिकार एवं दायित्व होते हैं जो अन्य व्यापार में होते हैं। अन्य व्यापार एवं अधिकोषण भागिता-सार्थ में अन्तर केवल इतना ही है कि अन्य व्यापार में २० भागी अथवा २० साझेदार होने की अधिकतम मर्यादा है किन्तु अधिकोषण-भागिता के साझेदार १० से अधिक नहीं हो सकते (धारा ४ भागिता विधान)।

उपर्युक्त तीनों संगठनों में सीमित प्रमंडलों का ही आजकल प्रचार हो रहा है क्योंकि अन्य व्यापारों की तरह ही भागिता-सार्थ की एवं कौटुम्बिक अधिकोष की कार्यक्षमता एवं कार्य क्षेत्र मर्यादित होता है तथा पूंजी भी। दूसरे, बहु प्रमाण उत्पादन (Large scale Production) के लिए साख की भी अत्याधिक अवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति अधिकोषण भागिता अथवा कौटुम्बिक अधिकोष नहीं कर सकते। तीसरे अधिकोषण व्यापार का स्वरूप ही ऐसा है जिसमें जनता के विश्वास-सम्पादन की अतीव आवश्यकता होती है और विश्वास उड़ते ही अधिकोषण-कलेवर भी अस्त-व्यस्त हो जाता है। संयुक्त स्कंध अधिकोष यह विश्वास शीघ्रता से संपादन कर सकते हैं क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति का पूर्ण-विवरण समय समय पर प्रकाशित होता रहता है, जिससे जनता को उनकी आर्थिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान मिलता रहता है जो अन्य प्रकार के संगठनों में संभव नहीं होता। चौथे, जितना ही अधिकोष का विस्तृत व्यापार क्षेत्र होगा उतनी ही हानि की संभावना भी उसे कम रहेगी और इससे निक्षेप भी सुरक्षित रहते हैं। इसके साथ ही इनके व्यवस्था व्यय आदि भी कम होते हैं एवं कार्यक्षमता अधिक होती है जिससे निक्षेपों की सुरक्षा के साथ ही साथ वे अनेक प्रकार की अन्य सुविधाएँ भी ग्राहकों को देते हैं, जो अन्य संगठनों में नहीं मिलतीं। तथा

पाँचवें, संयुक्त स्कंध अधिकोषों की पूंजी भी अन्य प्रकार के अधिकोषों से अधिक होती है इसलिये वे ग्राहकों को अधिक मात्रा में साख तथा ऋण की सुविधाएं देते हैं ।

उपर्युक्त लाभों की प्राप्ति संयुक्त स्कंध अधिकोषण संगठन में होने के कारण ही आजकल इनका बोल बाला है तथा अन्य वैयक्तिक संगठनों की अवनति हो रही है ।

व्यापारिक अधिकोषों की कार्य प्रणाली :

व्यापारिक अधिकोषों के प्रमुख कार्य तीन होते हैं :—

१. जनता से निक्षेप स्वीकार करके ऋण-राशि लेना,

२. साख-निर्माण तथा ऋण-प्रदाय द्वारा जनता की वित्त शक्ति का संचार करना, तथा

३. तथा अन्य कार्य जैसे अभिकर्त्ता की सेवाएँ अपने ग्राहकों को प्रदान करना, ग्राहकों को वित्त एवं प्रलेख की सुरक्षा के लिए सुविधाएं देना आदि ।

इन कार्यों का सम्पूर्ण विवेचन अध्याय १ में किया गया है । यहाँ केवल यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जनता से निक्षेप रूप में स्थिर, संचय तथा चल-ऋण लेकर उसी ऋण से वे जनता को, उनकी व्यापारिक एवं औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकोष ऋण देते हैं जिससे व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रगति को चालना मिलती है ।

यह ऋण देने का कार्य व्यापारिक अधिकोष दो प्रकार से करते हैं । एक तो वे केवल अधमर्ण की वैयक्तिक प्रतिभूति पर ऋण देते हैं तथा दूसरे वे अधमर्ण की वैयक्तिक प्रतिभूति के अतिरिक्त अन्य दो व्यक्तियों की प्रतिभूति पर तथा आनुसंगिक प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर ऋण देते हैं । जो ऋण बिना किसी आनुसंगिक तथा अन्य व्यक्तियों की प्रतिभूतियों पर दिये जाते हैं और जिनमें केवल अधमर्ण की ही वैयक्तिक प्रतिभूति होती है उनको अप्रतिभूत ऋण तथा जिन ऋणों के लिए अधिकोष आनुसंगिक प्रतिभूतियों की प्रतिभूति रखता है उन्हें प्रतिभूत ऋण कहते हैं । हमारे यहाँ केवल अधमर्ण की प्रतिभूति पर ऋण विशेषतः नहीं दिये जाते । ऋणों की प्रतिभूति अधिकोष के कार्य क्षेत्र पर निर्भर रहती है । यदि किसी बन्दरगाह में अधिकोष कार्यालय है तो उस स्थान का विशेषतः विदेशी व्यापार होगा एवं ऐसे स्थानों पर व्यापारियों को जो ऋण आदि दिये जायेंगे वे वस्तुओं (Goods) की प्रतिभूति पर अथवा वहन-पत्र आदि की प्रतिभूति पर दिये जायेंगे । परन्तु विशेषतः विदेशी व्या-

पार के लिये ऋणों की सुविधायें देने का कार्य विदेशी विनिमय-अधिकोष करते हैं तथा व्यापारिक अधिकोषों को वे सुविधायें—जो विनिमय अधिकोषों को उपलब्ध होती हैं—उपलब्ध न होने से यह कार्य व्यापारिक अधिकोष पूर्ण रीति से नहीं कर पाते; जैसा कि केन्द्रीय अधिकोषण जाँच समिति ने कहा है "कि भारत के विदेशी व्यापार को आर्थिक सुविधाएँ देने में वे कोई भी प्रत्यक्ष कार्य नहीं करते—उस स्तर पर जहाँ बन्दरगाह से माल बाहर जाता है अथवा जिस बन्दरगाह पर माल आता है।"[1] इससे यह स्पष्ट है कि व्यापारिक अधिकोष केवल अन्तर्गत व्यापार एवं उद्योग की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। जहाँ पर स्कंध-विनिमय के व्यवहार अधिक मात्रा में हैं वहाँ पर व्यापारिक अधिकोष स्कंधविनिमय प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर ऋण देते हैं। इसी प्रकार कृषि-व्यवसायिक क्षेत्र में जहाँ पर इस प्रकार की प्रतिभूतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं, वे कृषिज उत्पाद (Agricultural Produce) की प्रतिभूति पर ऋण देते हैं। औद्योगिक साख आवश्यकताओं की पूर्ति वे या तो किसी प्रकार की विपण्य प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर अथवा कच्चे माल की प्रतिभूति पर करते हैं।

विशेषतः भारतीय व्यापारिक अधिकोष केवल वैयक्तिक प्रतिभूतियों पर ऋण नहीं देते। वैसे तो केवल उन ग्राहकों को जिनकी साख में उन्हें पूर्ण विश्वास है उनके प्रतिज्ञा-अर्थ पत्र पर अथवा विपत्र एवं हुंडियों पर ऋण देते हैं परन्तु अपनी राशि की सुरक्षा के लिए वे अन्य दो साखदार व्यक्तियों की प्रतिभूति इन विलेखों पर हस्ताक्षर करवा कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त ये अधिविकर्ष एवं रोक ऋण (Cash credit) की भी सुविधाएँ देते हैं जिसकी प्रतिभूति के लिए वे ग्राहकों से बंध, अंश, ऋण-पत्र अथवा अन्य प्रतिभूतियाँ लेते हैं। औद्योगिक आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति भी ये कभी कभी करते हैं परन्तु औद्योगिक ऋण प्रदायक कार्य ये बहुत ही कम मात्रा में करते हैं क्योंकि इनके निक्षेप अल्पकालीन होने के कारण अल्पकालीन ऋणों की सुविधा देना इनके व्यापारिक स्वरूप के अनुसार आवश्यक होता है। यदि वे ऐसा न करें तो किसी भी समय उनकी आर्थिक स्थिति खतरनाक हो सकती है जिससे उनको अपना व्यापार बन्द करना पड़ेगा।

व्यापारिक अधिकोष विपत्रों का अपहरण भी करते हैं यदि ये विपत्र प्रथम

---

[1] *They practically take no part in the financing of India's foreign trade from the stage at which exports leave her ports or to the stage at which imports arrive thereat.*

—*C. B. E. Report.*

श्रेणी के व्यापारिक विपत्र हैं परन्तु हमारे यहाँ विपत्र-विपणि न होने से यह कार्य परिमित एवं नगण्य परिमाण में होता है। (देखिये अध्याय १२)

व्यापारिक अधिकोष विशेषतः कृषि को साख की सुविधाएँ नहीं देते क्योंकि एक तो किसानों के पास प्रतिभूति आदि का अभाव रहता है तथा उनकी भुगतान-शक्ति अनेक कारणों से सीमित रहती है। अतः कृषि साख प्रदाय में इनका स्थान महत्त्वपूर्ण नहीं है। हाँ ये थोड़ी सी साख की पूर्ति केवल कृषिज उत्पाद की विपणयता (Marketting of Agricultural Produce) में करते हैं जो विशेषतः स्वदेशीय अधिकोषों के अथवा सहकारी अधिकोषों के माध्यम से दी जाती है। ये कृषिसाख की पूर्ति कर सकें इसलिये यह आवश्यक है कि कृषिज-उत्पाद की विपणि-संगठन में सुधार किया जाय क्योंकि देहातों में भांडागार (Warehouses) की सुविधाएं बहुत ही अपर्याप्त हैं।

सारांश में व्यापारिक अधिकोषों के व्यवहार में "व्यापार चल एवं निक्षेप लेखाओं का रखना, विपत्रों के अपहरण से व्यापार एवं उद्योग को आर्थिक सहायता देना तथा साख खोलना एवं इसी प्रकार के अन्य कार्यों" का समावेश होता है। प्रो० गिलबर्ट के अनुसार व्यापारिक अधिकोषों को निम्नलिखित कार्य नहीं करने चाहिये :—[1]

१. ग्राहकों को व्यापार संचालन के लिये पूंजी का प्रदाय।

२. अक्षयी (Permanent) ऋण देना।

३. एक ही ग्राहक को अधिक परिमाण में ऋण देना।

पंच महाधिकोष तथा सप्त महाधिकोष : हमारे विवेचन में कई दफे पाँच महान् अधिकोषों का तथा सात महान् अधिकोषों का उल्लेख आया है अतः इनका भी संक्षेप में ज्ञान होना आवश्यक है। भारत के वर्तमान अनुसूची-बद्ध अधिकोषों में निम्न अधिकोष महत्त्वपूर्ण हैं जो 'सप्त महाधिकोष' (Seven Big Banks) इस संज्ञा में आते हैं एवं जिनकी निक्षिप्त राशि २५ करोड़ रुपये से अधिक है :—

---

[1] *History & Principles of Banking by Gilbert.*

नाम अधिकोष	स्थापना	कार्यालय एवं शाखाएँ (१६४५ में)	कुल निक्षेप (१६४५) लाख रु०
*१. पंजाब नेशनल बैंक	१८६४	१६७	५१५२·४६
*२. बैंक ऑफ इण्डिया	१६०६	३०	५६०१·५४
३. दी इन्डियन बैंक	१६०७	६३	
*४. बैंक ऑफ बड़ोदा	१६०८	३३	२६६७·६५
*५. सेंट्रल बैंक ऑफ इ०	१६११	३०६	१०५२३·४१
*६. इलाहबाद बैंक लि०	१६२३	७५	२८७४·६०
७. बैंक ऑफ मैसूर	१६१२	३१	

उपर्युक्त अधिकोषों में से जिन अधिकोषों पर * यह चिन्ह है उनकी गणना "पंच महाधिकोषों" में की जाती है। इनके अतिरिक्त युद्ध काल में स्थापित युनाइटेड कमर्शियल बैंक (१६४३) की गणना भी वर्तमान महान् अधिकोषों में होती है, इसकी शाखाएँ ६२ हैं। सात महान् अधिकोषों की युद्ध-कालीन (१६३६-१६४५) प्रगति आगे के पृष्ठों में दी हुई सारणी से स्पष्ट हो जाती है। युद्धोपरांत प्रगति के आँकड़े भी दिये गये हैं।

सारणी—१

युद्ध कालीन (१९३९—१९४५) प्रगति दर्शक सारणी

नाम अधिकोष	वर्ष	स्थायी निक्षेप	चल निक्षेप	सञ्चय निक्षेप	अन्य	योग	कार्यालय	दत्त पूंजी (लाख रु०)	संचय प्रणीवि	रोक एवं तरल विनियोग
१. पंजाब नेशनल बैंक	१९३९	५५०'७५	१५९'१३	...	५'१७	७१५'८५	...	...	...	...
	१९४०	५५८'७७	२३८'०२	...	६'१८	८०२'९७	...	...	...	...
	१९४१	६०१'४२	३७१'२२	...	७'६६	९८०'३०	...	...	...	...
	१९४२	७४९'२३	७८७'५७	Nil	९'५०	१५५६'३३	...	...	...	...
	१९४३	१३०६'४४	१३३६'७२	...	...	२६४३'१६	...	...	...	...
	१९४४	२०५०'७२	१६७८'०२	...	२७'०६	३७७५'८१	...	...	...	...
	१९४५	३०४४'५७	२१०७'८८	...	...	५१५२.४६	...	...	...	...
	१९४७	...	...	...	...	५९६४'००	२७५	८७	१००'००	३९५६
२. बैंक ऑफ इन्डिया	१९३९	...	...	...	...	१८५९'५१	...	...	...	...
	१९४०	...	...	...	...	२२२७ ६१	...	...	...	...
	१९४१	...	...	...	...	२५८६'०३	...	...	...	...
	१९४२	...	...	...	...	३६८२'३४	...	...	...	...
	१९४३	...	...	...	...	५५१३'८८	...	...	...	...
	१९४४	११०२'४३	४९८०'८८	...	...	६०८२'७१	...	...	...	...
	१९४५	१२१८'५०	४६८३'०४	...	...	५९०१'५४	...	...	...	...
	१९४७	...	...	...	...	६८६३ लाख	३२	१५०	२८४	४४७५

३. दी इन्डियन बैंक लि०	१६३६	...	...	NIL	...	४१६·००	...	...	...	....
	१६४०	...	...		...	५४०·००	...	...	...	...
	१६४१	...	...	...	...	७६४·४०	...	...	...	...
	१६४२	...	...	...	...	५६५·५०	...	...	...	...
	१६४३	...	...	...	...	...	...	...	...	...
	१६४४	...	...	...	...	...	...	...	...	...
	१६४५	...	...	...	...	...	...	...	...	...
	१६४७	...	...	...	...	१८१५ लाख	७०	५३	६३	१५६४
४. बैंक ऑफ बड़ोदा	१६३६	२६१·७२	४७२·५६	...	५·४३	६६६·१४	...	...	...	...
	१६४०	२५१·७०	४६०·८०	...	५·६६	७४८·४६	...	...	...	...
	१६४१	३३६·१३	६२३·८८	...	...	६६०·०१	...	...	...	...
	१६४२	२८३·०६	१०४३·६६	...	...	१३२६·७२	...	...	...	...
	१६४३	५०७·८३	१५६६·१२	...	७·६०	२०७३·६५	...	...	...	...
	१६४४	६१५·७३	२०२३·२६	...	८·६५	२६३८·६६	...	...	...	...
	१६४५	७८४·५५	२१७३·२१	...	१०·१६	२६६७·६५	...	...	...	...
	१६४७	...	...	...	...	३२८१	३६	१००	१०५	२२४५

नाम अधिकोष	वर्ष	स्थायी निक्षेप	चल निक्षेप	संचय निक्षेप	अन्य	योग	कार्यालय	दत्त पूँजी (लाख रु०)	संचय प्रणीवि	रोक एवं बरक विनियोग
दी सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया	१९३९	११६२·००	१८२४·८२	...	...	२९८६·८२	...	...	...	...
	१९४०	१०८६·३८	२१६३·५०	...	...	३२४९·८८	...	...	...	...
	१९४१	१२०३·१२	२९२८·७८	...	...	४१३१·९०	...	...	...	...
	१९४२	११५१·४६	४८१३·८८	...	...	५९६५·३४	...	...	...	...
	१९४३	१४०८·४२	६७५५·२९	...	...	८१६३·७१	...	...	...	...
	१९४४	१७९१·०८	७५८७·५८	...	...	९३४८·६६	...	...	...	...
	१९४५	२२५०·३३	८२७२·५८	...	...	१०५२२·४१	...	...	...	...
	१९४७	...	...	...	...	१२३१५	३६१	३१४	३५३	८६१८
अलाहाबाद बैंक लिमिटेड	१९३९	६०८·९७	३२७·४९	१५८·७४	२०·९७	१११६·१७	...	...	...	...
	१९४०	६६२·५७	३६८·६७	१५६·६१	१·९४	११८९·७९	...	...	...	...
	१९४१	६२३·९६	५३३·८०	१३७·५९	२·२९	१२९७·६४	...	...	...	...
	१९४२	५३६·२६	९८३·२६	१६२·५०	२·४१	१६८४·४३	...	...	...	...
	१९४३	७८७·१३	११०६·५२	१९१·३७	२·५८	२०८७·६०	...	...	...	...
	१९४४	९१३·१९	११५४·५९	२२३·३०	२·८०	२०९३·८८	...	...	...	...
	१९४५	१३३६·७७	१२५५·१५	२७९·९९	२·९९	२८७४·९०	...	...	...	...
	१९४७	...	...	...	...	२९३८	७०	४६	१०६	१७२०

७. युनाइटेड कमर्शियल बैंक लिमिटेड	१६४३	३०३·०४	६७४·१५	...	...	१२७७·१६	...	...	...	...
	१६४४	३५७·०२	१३६५·२३	...	...	१७२२·२५	...	...	...	...
	१६४५	६६३·३५	१६६५·१०	...	...	२३८८·५३	...	...	...	...
	१६४७	...	...	...	...	३४५५	८२	२००	४०	२८१८
८. भारत बैंक लिमिटेड	१६४३	५२२·४०	८६२·०६	...	११·२४	१३९५·७०	...	...	...	...
	१६४४	८८५·६२	११५५·४२	...	...	२०४१·३४	...	...	...	...
	१६४५	१३४४·१५	१३४७·१८	...	...	२६६१·३३	...	...	...	...
	१६४७	...	...	...	...	१६०२	२५३	२०१	४०	१४६०

सूचना:—१. अनुसूची-बद्ध अधिकोषों की कुल संख्या १६३६ में ५१ थी जो १६४४ में ७६ हो गई तथा १६४६ में ६३ हो गई। तथा (उनके प्रमुख कार्यालय मिलाकर) उनके कुल कार्यालयों की संख्या १६३६ में १३२८ थी और १६४४ में २१४१ तथा १६४६ में ३,५१६ हो गई।

२. जिन अन-अनुसूची बद्ध अधिकोषों की दत्त पूँजी तथा निधि ५०,००० रु० से ५००००० लाख रुपये तक थी ऐसे अधिकोषों की संख्या १६३६ में २२१ थी जो १६४६ मे २६३ होगई किन्तु इसी अवधि में जिन अधिकोषों की दत्त पूँजी एवं निधि मिलाकर ५०,००० रु० से कम थी, ऐसे अधिकोषों की संख्या घट गई तथा १६४६ में ४०० (१६३६) से घट कर केवल १३० ही रह गई।

सारणी—२

संयुक्त स्कंध अधिकोषण-विकास दर्शक-सारणी[1]

[A—1 Banks]

इस तालिका में केवल प्रमुख संयुक्त स्कंध अधिकोषों का समावेश है जिनकी दत्त पूंजी एवं निधि ५ लाख एवं इससे अधिक है किंतु इम्पीरियल बैंक का समावेश नहीं है।

वर्ष	वृत्त-लेख देने वाले अधिकोषों की संख्या	पूंजी एवं निधि योग	निक्षेप	हस्तस्थ एवं अधिकोपस्थ रोकड़	
१९२०	२५	१०,९२,४८,०००	७१,१४,१४,०००	१६,३०,७०,०००	इसमें कुछ अधिकोषों का समावेश है।
१९३०	३१	११,९०,१५,०००	६३,२५,५१,०००	७,६७,९१,०००	
१९३५	३८	१३,१९,८५,०००	८४,४४,६१,०००	१९,१२,१५,०००	
१९४०[2]	४१	१२,६७,०८,०००	१०६,१०,०८,०००	२५,०२,४३,०००	
१९४१	४४	१३,५९,९०,०००	१२९,०४,३९,०००	२४,२०,६५,०००	
१९४२	४४	१६,२५,३७,०००	१८९,३३,८३,०००	४१,५६,६९,०००	
१९४३	५७	२३,७२,१५,०००	३२४,५०,०८,०००	७४,२४,८५,०००	
१९४४	६९	३२,०५,७८,०००	४३६,५६,८६,०००	९०,४०,१५,०००	
१९४५	७५	३७,७७,१०,०००	५४२,८०,०७,०००	१०६,२२,८०,०००	
१९४६	८०	४४,१६,६२,०००	६२४,२३,३७,०००	१२८,७५,५७,०००	
१९४७ अ		४६,६५,००,०००	६२३,३१,००,०००	[इनके पंजीयित कार्यालय भारत में हैं][3]	
ब		८२,००,०००	२७,३९,००,०००	[इनके पंजीयित कार्यालय पाकिस्तान में है]	

सूचना : १९४६ में विभिन्न प्रकार के अधिकोषों की कार्यालय संख्या :—

इम्पीरियल बैंक ४२७; में विनिमय अधिकोष ७७; शेष अनुसूचीबद्ध अधिकोष २९४६

---

[1] *Statistical Tables of R. B. I.,*

[2] केवल भारतीय अनुसूची बद्ध अधिकोषों का समावेश ही इस वर्ष एवं आगे के वर्षों में किया गया है।

[3] *Times of India Year Book, 1949.*

अन-अनुसूची वद्ध अधिकोषों की कुल कार्यालय संख्या :— जिनकी दत्त पूंजी एवं निधि १ लाख रुपया एवं इससे अधिक था २१६४; जिनकी दत्त पूंजी एवं निधि ५० हजार रु० से १ लाख तक था ४६४; जिनकी दत्त पूंजी एवं निधि ५०,००० रुपयों से कम था ५५३; रिज़र्व बैंक की १९४९-५० के अनुसार अनुसूचीबद्ध अधिकोषों की संख्या १०० तथा उनके कार्यालय ३१ मार्च १९५० को २६१२ तथा अन-अनुसूची वद्ध अधिकोषों की संख्या ३९४ थी।

Report on Currency & Finance—1940-50 R. B. I. Page 62 & 65

सारणी—३

अनुसूची-वद्ध भारतीय अधिकोषों की प्रगति-दर्शक तालिका*

वर्ष (प्रति शुक्रवार का माध्यम)	वृत्तलेख देने वाले अधिकोष	याचित देय (Demand Liability)	कालदेय (Time Liability)	रोकड़ एवं रिज़र्व बैंक स्थित शेष	अग्रिम ऋण (Advances)	अपहृत विपत्र (Bills Discounted)
१९३९	५८	१३५४६,००,०००	१०५,९९,००,०००	२२,६४,००,०००	११६,७८,००,०००	५४३,००,०००
१९४०	६०	१५५,६८,००,०००	१०६,१६,००,०००	३७,६४,००,०००	१३१,७८,००,०००	४०५,००,०००
१९४५	८७	६३१,३३,००,०००	२४०,५७,००,०००	११९,५२,००,०००	२६८,९६,००,०००	१४७५,००,०००
१९४६	९३	७२२,०५,००,०००	३१०,४१,००,०००	१२६,०३,००,०००	३७२,७६,००,०००	२०४४,००,०००
१९४७	९७	६९८,३५,००,०००	३४४,३९,००,०००	१३५,८२,००,०००	४२७,५१,००,०००	१८१३,००,०००

*Times of India Year Book 1949.

सारणी—४

इम्पीरियल बैंक ऑफ इन्डिया—स्थिति-दर्शक तालिका

(लाख रुपयों में)

वर्ष ३० जून को	दत्त पूंजी	संचिति प्रणीवि	सरकारी निक्षेप	अन्य निक्षेप	रोकड़	विनि-योग	लाभांश की दर
१९२१	५४७	३७१	२२,२०	७०१६	३५३३	१६५८	१६%
१९२२	५६२	४११	१६,७२	६·३६	३३६५	६००	१६ ,,
१९२३	५६२	४३५	१२,५६	७०४७	२६१३	६२५	१६ ,,
१९२४	५६२	४५७	२२,०८	७६६२	२१६५	११७५	१६ ,,
१९२५	५६२	४·७	२२,५२	७५८८	३५८२	१४१३	१६ ,,
१९२६	५६२	४६२	३२,५४	७५३०	४५०३	२१८८	१६ ,,
१९२७	५६२	५०७	१०,०४	७३१७	२२८३	२०५०	१६ ,,
१९२८	५६२	५१७	७,६६	७३३१	१३७७	२५३५	१६ ,,
१९२९	५६२	५२७	२०,७४	७२३३	३०४१	२४०६	१६ ,,
१९३०	५६२	५३७	१३६१	७००३	१६६६	२६६६	१६ ,,
१९३१	५६२	५४२	१५६६	६६१५	१७१७	३०७७	१४ ,,
१९३२	५६२	५१५	१६०८	६१४६	२२०१	२६७६	१२ ,,
१९३३	५६२	५२०	५८२	७४२३	२३०८	३६७३	१२ ,,
१९३४	५६२	५२७	७६१	७४८३	२१६५	३६३२	१२ ,,
१९३५	५६२	५४२	...	७२४३	१६७६	३७८३	१२ ,,
१९३६	५६२	५५०	...	७८६४	१६७६	४२५४	१२ ,,
१९३७	५६२	५५०	...	८३१४	२१६८	४०६५	१२ ,,
१९३८	५६२	५५२	...	८११८	१६२८	३६७५	१२ ,,
१९३९	५६२	५५७	...	८३६२	१४५६	४२८०	१२ ,,
१९४०	५६२	५६२	...	६६०३	२४८२	४८५७	१२ ,,
१९४१	५६२	५६२	...	१०८६१	१५२६	६४३६	१२ ,,
१९४२	५६२	५७५	...	१६३४६	२३५२	११५८७	१२ ,,
१९४३	५६२	५८५	...	२१४५२	५३७६	१२६७६	१२ ,,
१९४४	५६२	६००	...	२३७७८	६८३१	१५८६३	१२ ,,
१९४५	५६२	६०७	...	२५६३७	४१५६	१५४१५	१४ ,,
१९४६	५६२	६१२	...	२६६७७	६०४०	१५८६४	१४ ,,
१९४७	५६३	६८५	...	२७६४६	४२८६	१६४१६	१४ ,,

(शाखाएँ ४२७)

व्यापारिक अधिकोषों की प्रगति : जैसा कि हम देख चुके हैं व्यापारिक अधिकोषों की शाखाएँ, कार्य-क्षेत्र एवं जनसंख्या की दृष्टि से अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही कम हैं। जो कुछ भी प्रगति द्वितीय महायुद्ध से हुई है वह केवल बड़े बड़े शहरों तक ही सीमित है जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली, अहमदाबाद में अधिकोषों के कार्यालय अथवा शाखाएँ मिलाकर क्रमशः ३८८, १८३, ८५, ८० तथा ५२ कार्यालय हैं तथा अन्य शहरों में अधिकोष की शाखाएँ या तो हैं ही नहीं अथवा जहाँ हैं वहाँ अपर्याप्त मात्रा में हैं। और अब तो अधिकोष युद्धोपरांत मंदी से बचने के लिये शाखाओं के विस्तार की ओर न देखते हुए अपना अपना कार्यालय ठोस बनाने में प्रयत्नशील हैं, जो भविष्य में किसी भी प्रकार के अधिकोषण संकट से बचने के लिए निस्संदेह आवश्यक है। भारतीय अधिकोषों की उन्नति न होने के कारण उनकी कार्य-शैली की अनेक त्रुटियाँ हैं तथा बाह्य परिस्थिति है जिसकी वजह से वे अपना कार्य-क्षेत्र न बढ़ा सके। उनको हम यहाँ बतलावेंगे।

कार्य-शैली की त्रुटियाँ : भारतीय व्यापारिक अधिकोषों की कार्य-शैली की त्रुटियाँ निम्न लिखित हैं :—

१. सबसे पहिला दोष इनकी कार्य-पद्धति में यह है कि ये अधिकोष अधिकतर पूंजी का विनियोग सरकारी प्रतिभूतियों के खरीदने में करते हैं जिससे व्यापारिक-विपत्रों का अधिक प्रचार एवं उपयोग नहीं होने पाता। (विपत्र-विपणि के विकास के लिये, देखिये अध्याय १२)

२. भारत में अधिकोष-स्वीकृति विपत्रों (Bank Acceptances) का भी अभाव है, अधिकोष व्यापारियों को इस प्रकार की सुविधा नहीं देते तथा वे व्यापारियों को अधिक प्रमाण में रोक ऋण की सुविधाएँ देते हैं जिससे प्रथम श्रेणी के व्यापारिक विपत्रों का अभाव प्रतीत होता है, तथा अधिकोषण विकास में बाधा होती है और उनकी निधि विशेषतः इस प्रकार के ऋणों में ही समाप्त हो जाती है।

३. भारतीय अधिकोष अपने ग्राहकों को बिना किसी अन्य व्यक्ति की जमानत के तथा अनुसंगिक प्रतिभूतियों की जमानत के ऋण नहीं देते जैसा कि पाश्चात्य राष्ट्रों में होता है; इसकी वजह से भी इनकी व्यापारिक प्रगति नहीं हो पाती। इसका प्रमुख कारण यह है कि भारत में पाश्चात्य देशों की तरह सैड (Syeds), डुन्स (Duns) आदि जैसी संस्थाएँ नहीं हैं जो अधिकोषों को उनके ग्राहकों की आर्थिक स्थिति का पूरा पूरा ज्ञान दें।

४. हमारे अधिकोषण व्यवसाय का सबसे बड़ा दोष यह है कि यहाँ पर "एक व्यक्ति एक अधिकोष (One man—one Bank) की प्रथा

नहीं है, जो प्रथा पाश्चात्य देशों में प्रचलित है। जिसकी वजह से अधिकोषण एवं ग्राहकों के परस्पर सम्बन्ध एवं सम्पर्क में घनिष्ठता नहीं आती। इतना ही नहीं अपितु पाश्चात्य देशों में ग्राहक अपने अधिकोष को अपनी आर्थिक स्थिति का पूरा विवरण भी सामयिकता (Periodically) से भेजते रहते हैं जिससे अधिकोष उन्हें वैयक्तिक साख पर ऋण देता है परन्तु भारतीय व्यापारी अपनी आर्थिक स्थिति की जानकारी अधिकोषों को भी पूर्णतः देना पसन्द नहीं करते। इस कारण से अधमर्ण की व्यक्तिगत साख पर ऋण देने की प्रथा को अधिकोष नहीं अपना पाते।

५. अधिकोषों ने विदेशी अधिकोषों की शानशौकत की झूठी नकल की तथा उनकी भांति अपनी कार्य शैली को अपनाने का यत्न नहीं किया जिससे उनकी कार्यक्षमता न बढ़ते हुए कार्य-व्यय अवश्य बढ़ गए; जिसकी वजह से वे अपने ग्राहकों को अधिक सुविधाएं भी प्रदान नहीं कर पाये, जिसकी वजह से ग्राहक इनकी ओर आकृष्ट न हुए, और उन्होंने अपने लेखे उनसे अधिक कार्यक्षम विदेशी अधिकोषों में रखे। कुछ व्यक्ति ऐसे ग्राहकों पर अराष्ट्रीयता का दोषारोपण करते हैं परन्तु वास्तव परिस्थिति को नहीं देखते।

६. भारतीय अधिकोषों ने अधिकोषण सिद्धांतों का भी पूर्ण रूप से पालन नहीं किया अपितु उन्होंने अपनी राशि ऐसे कार्यों में लगाई जिन कार्यों में उनको नहीं लगाना चाहिये थी, जैसे परिकाल्पनिक व्यवहार, चांदी सोने का सट्टा आदि। इतना ही नहीं अपितु नए नए अधिकोषों ने अपनी आर्थिक परिस्थिति अच्छी एवं लाभप्रद बनाने की दृष्टि से शुरू-शुरू में अच्छे लाभांश भी दिये तथा संचित-प्रणीवि (Reserve Fund) का निर्माण नहीं किया, जिसकी वजह से लाभांश की दर स्थायी रखने में उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और करना पड़ा तथा अनेक अधिकोषों का विलीयन हुआ।* जिसके मुख्य दोष निम्न हैं:—

अ. निक्षेप-देयता के अनुपात में रोक-निधि की कमी।

ब. निक्षेपों को आकृष्ट करने के लिए अधिक ब्याज का प्रलोभन।

क. अधिकृत, प्रार्थित एवं परिदत्त पूंजी में समुचित अनुपात का अभाव।

७. कार्यक्षम कर्मचारियों का अभाव तथा योग्य संचालक एवं व्यवस्थापकों का अभाव—जिसकी वजह से ये लोग अपने अधिकोष के प्रति जनता का विश्वास आकृष्ट नहीं कर पाते जैसे विलीयित क्रेडिट बैंक का व्यवस्थापक जिसको लेखा-कर्म के सिद्धांत तथा अधिकोषण का तनिक भी ज्ञान नहीं था और न वह यह ही जानता था कि विनिमय विपत्र किसे कहते हैं।*

* विशेष विवरण के लिए देखिये : 'अधिकोषण संकट एवं उसके कारण'

८. अधिकोषों में पारस्परिक सहयोग का अभाव—जिसकी वजह से अधिकोषों में परस्पर गलाकाट प्रतिस्पर्धा (Cut-throat competition) होती है तथा प्रतियोगिता के कारण ब्याज दर भी अधिक होती है तथा भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न ब्याज दर होती है, जिससे संकट समय परस्पर सहायता का अभाव रहता है एवं संगठित नीति का निर्माण भी नहीं हो सकता।*

९. देश में अव्यवस्थित एवं अनावश्यक स्थानों पर अधिकोषों की शाखाएं स्थापित हुई हैं तथा जहाँ पर साख साधनों की अधिक आवश्यकता है वहां पर अधिकोषण सुविधा नगण्य है। इस अव्यवस्थित विकास का कारण उनकी आंग्ल भाषा की कार्य शैली है जो विदेशी भाषा होने के कारण केवल १०% प्रतिशत भारतीय ही समझ पाते हैं एवं जिसकी वजह से ग्रामीण क्षेत्रों में इन अधिकोषों का विकास न होते हुए स्वदेशीय अधिकोषों का स्थान महत्त्वपूर्ण बना रहा एवं व्यापारिक अधिकोषों का अधिक विकास नहीं हुआ। उदाहरणार्थ अनादेश, प्रतिज्ञा-अर्थ पत्र आदि परक्राम्य विलेखों का एवं अधिकोष का सम्पूर्ण व्यवहार आंग्ल भाषा में है।

बाह्य परिस्थिति अथवा बाह्य कठिनाइयाँ :

१. पुनः पुनः अधिकोषण-संकट आने के कारण देश में अनेक अधिकोषों का विलीयन हुआ, जिसकी वजह से अधिकोषण-व्यवसाय में साधारण जनता पूंजी का विनियोग करना समुचित नहीं समझती। इतना ही नहीं अपितु आज भी अधिकोषों के अंशों में परिकाल्पनिक व्यवहार होते हैं, जिसकी वजह से जनता का विश्वास इनमें नहीं जम पाता।

२. भारतीय जनता स्वभावतः ही अपने धन को अपने पास ही रखना अधिक सुरक्षित समझती है, उसका विनियोग करना पसन्द नहीं करती और न विनियोग के लिये अच्छे साधन ही उपलब्ध होते हैं जिसकी वजह से अधिकोषों को निक्षेप रूप में पर्याप्त मात्रा में कार्यशील पूंजी भी नहीं मिल पाती।

३. हमारे देश में हिन्दू और मुसलमान उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम (Hindu & Muslim Laws of Inheritance) भी ऐसे हैं जिनकी वजह से अधिकोषों को ग्राहकों से ऋण भुगतान के समय अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। प्राधि-सम्बन्धी भी अनेक वैधानिक अड़चनें होती हैं जिसकी वजह से प्राधि पर ऋण देने के लिए अधिकोष सहज में तैयार नहीं होते।

---

* विशेष विवरण के लिए देखिये : 'अधिकोषण संकट एवं उसके कारण'

४. भारतीय अधिकोषों को देश में स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने तक सरकार की ओर से एवं अर्ध सरकारी संस्थाओं की ओर से किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिला क्योंकि यदि सरकारी एवं अर्ध सरकारी संस्थाएं इन अधिकोषों से लेन देन करतीं तो इनकी साख भी बढ़ती, इनकी व्यापारिक उन्नति भी होती तथा इनके निक्षेप भी बढ़ते। परन्तु देश में विदेशी सरकार होने के कारण उसने सर्वत्र यूरोपीय अधिकोषों को ही अपने लेन देन से प्रोत्साहित किया।

५. विनिमय अधिकोष एवं यूरोपीय अधिकोष देश में होने के कारण तथा सरकार की मुक्त व्यापारिक नीति (Free Trade Policy) इस सम्बन्ध में होने के कारण देश का लाभकर व्यवसाय विनिमय अधिकोषों के एकाधिकार में ही था। और जो भारतीय अधिकोष विदेशी विनिमय व्यापार करना भी चाहते थे वे इन अधिकोषों की स्पर्धा में ठहर नहीं सकते थे, अतः इनकी उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई क्योंकि विदेशी अधिकोषों की केवल शाखाएं भारत में थीं एवं उनके प्रमुख कार्यालय विदेशों में थे एवं उनकी साख एवं सम्बन्ध अन्य विदेशी अधिकोषों से अच्छे थे।

६. विनिमय अधिकोषों ने अपना व्यापार केवल आयात-निर्यात केन्द्रों तक ही सीमित न रखते हुए देश के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में भी अपनी शाखाएं खोल रखीं थीं तथा वे अंतर्गत व्यापारिक सुविधाएं प्रदान कर भारतीय अधिकोषों की प्रतियोगिता करते थे। ये विनिमय अधिकोष अधिक संगठित एवं अच्छी आर्थिक स्थिति में होने की वजह से जनता का विश्वास भी इनमें शीघ्र ही स्थापित हो जाता था जिससे उनके पास निक्षेप भी अधिक परिमाण में होते थे। इस प्रकार विनिमय अधिकोषों की प्रतिस्पर्धा में भारतीय अधिकोषों के न टिक सकने के कारण उनका व्यापार-क्षेत्र भी सीमित होगया, इतना ही नहीं अपितु विदेशी अधिकोषों के कर्मचारी भारतीय अधिकोषों के विरुद्ध जनता में भी अविश्वास उत्पन्न कर देते थे, जिसकी वजह से नए अधिकोष पनपने नहीं पाते थे और न पुराने अधिकोषों का कार्य-क्षेत्र ही बढ़ पाता था। इतना ही नहीं अपितु विदेशी अधिकोषों की समाशोधन-गृहों में अधिक सदस्यता होने के कारण वे भारतीय अधिकोषों को समाशोधन-गृहों की सदस्यता से भी वंचित रखते थे। इन दोनों कारणों की वजह से भारतीय अधिकोषों की प्रगति में अनेक बाधाएं उपस्थित होती थीं।

७. देश के व्यापार का अधिकांश भाग विदेशियों के हाथ में रहता था तथा बहुत ही सीमित व्यापार भारतीयों के हाथ में रहने के कारण विदेशी व्यापारी विदेशी अधिकोषों से ही अपना लेन देन विशेषतः रखते थे।

८. उपर्युक्त बाह्य कठिनाइयों के अतिरिक्त भारतीय अधिकोषों को एक ओर इम्परियल बैंक से तथा दूसरी ओर स्वदेशी अधिकोषों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इम्पीरियल बैंक को सरकार की ओर से अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं तथा सम-सरकारी संस्था होने कारण उसके साधन भी अपरिमित हैं जिससे वह सहज में जनता का विश्वास-पात्र बनता है। इससे उसकी निक्षिप्त राशि बढ़ती है जिसकी प्रतियोगिता अन्य भारतीय अधिकोष नहीं कर सकते। दूसरी ओर स्वदेशी अधिकोष अपनी निजी पूंजी से जनता से लेन देन करते हैं एवं उनसे ऋण प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की औपचारिकता (Formalities) नहीं करनी पड़ती एवं उनकी कार्य-पद्धति भी सीधी-साधी एवं सरल रहती है जिसकी वजह से ग्रामीण क्षेत्र में उनका प्रभाव अधिक होने से व्यापारिक अधिकोषों को ग्रामीण क्षेत्रों में भी विकास के लिए असुविधा का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार व्यापारिक क्षेत्रों में इम्पीरियल बैंक की तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वदेशीय अधिकोषों की प्रतियोगिता के कारण उनको विकास के लिए अनेक असुविधाएं एवं अड़चनें होती हैं। इस असुविधा का स्पष्ट उल्लेख केन्द्रीय अधिकोष जांच समिति के वृत्तलेख (Report) से भी स्पष्ट होता है जिसके अनुसार

> "एक ओर भारतीय व्यापारिक अधिकोषों को स्वदेशी अधिकापों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है तो दूसरी ओर विनिमय अधिकोष एवं इम्पीरियल बैंक से प्रतिद्वन्दिता करनी पड़ती है जिसकी वजह से वे संकटमय एवं संदेहात्मक परिस्थिति तथा तीव्र प्रतियोगिता में जीवन-यापन करते हैं।"[1]

९. भारत में अभी तक शाख अधिकोषण का अभाव रहा है तथा कमजोर अधिकोष भी येनकेन प्रकारेण अपना अस्तित्व बना रखने का प्रयत्न करते रहे किन्तु अंत में उनका विलीयन हुआ जिसका प्रभाव हमारे अधिकोषण विकास पर बुरा पड़ा। अतः अच्छे अच्छे आधिकोषों में शाख-अधिकोषण की प्रवृत्ति नहीं है अतः उस प्रवृत्ति का निर्माण आवश्यक है।

किन्तु द्वितीय युद्ध काल में यह प्रवृत्ति इतनी अधिक प्रसृत हुई कि अब अधिकोषों को अपनी अलाभकर शाखाएं बंद करनी पड़ रही हैं तथा सब अधिकोष आर्थिक संगठन एवं मजबूती की ओर प्रयत्नशील हैं जो निस्संदेह भारतीय अधिकोषण के भविष्य का शुभ सूचक है।

व्यापारिक अधिकोषों की उन्नति कैसे हो? उपर्युक्त कठिनाइयों को देखते हुए, इन कठिनाइयों का निवारण किये बिना हमारे व्यापारिक अधिकोषों का भविष्य उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता और न अधिकोषण के

[1] *See for detailed study* C. B. E. *Report, pages 389–391.*

विकास एवं उन्नति के बिना देश के व्यापार, कृषि एवं उद्योगों की उन्नति ही हो सकती है। अधिकोषण प्रगति में बाधक जो अनेक कारण थे उनमें से बहुतांश देश का राजनैतिक स्वरूप बदलते ही जा चुके हैं। देश की समुचित अधिकोषण उन्नति के लिए एवं उनका विकास मजबूत नींव पर आधारित होने के लिये अब देश में अधिकोषण विधान भी १९४९ में स्वीकृत हो चुका है, इसी प्रकार देशहित में अधिकोषण व्यवस्था का समुचित नियंत्रण करने एवं सरकार की मौद्रिक एवं आर्थिक नीति को पूर्ण रीति से कार्यान्वित करने के हेतु रिज़र्व बैंक का भी राष्ट्रीयकरण हो चुका है। फिर भी कुछ बातें ऐसी अवश्य हैं जिनमें सुधार होने की आवश्यकता है :—

१. केन्द्रीय अधिकोषण जांच समिति ने भारतीय अधिकोषों को प्रोत्साहन देने के लिये यह सिफारिश की थी कि अधिकोषों को नई नई शाखाएं खोलने का अवसर दिया जाय तथा रिज़र्व बैंक उसमें सक्रिय सहयोग एवं राशि जमा कर सहायता दे। जब ये अधिकोष समर्थ हो जायें तब वह राशि क्रमशः आहरित करले। इसी प्रकार अधिकोषों को राशि स्थानांतरण की तथा विपत्रों के अपहरण की सुविधाएं भी दे। जिनमें कुछ सुविधाएं रिज़र्व बैंक ने दी हैं जैसे राशि स्थानांतरण की सुविधाएं इम्पीरियल बैंक के माध्यम से दी जाती हैं। परन्तु यह कहना न होगा कि ये राशि स्थानांतरण की सुविधाएं केवल उन्हीं स्थानों पर उपलब्ध हैं जहाँ अधिकोष का कार्यालय हो तथा राशि स्थानांतरण शुल्क भी अधिक है। अतः शाखा अधिकोषण में विकास होने की दृष्टि से एवं ग्रामीण जनता को अधिकोषण सुविधाएं देने की दृष्टि से ग्रामीण अधिकोषण जांच समिति ने राशि-स्थानांतरण शुल्क को कम करने की तथा सुविधाएं बढ़ाने की सिफारिश अपने १९५० में प्रकाशित वृत्तलेख में की है।[1] इतना ही नहीं अपितु भारत का विस्तार देखते हुए नए अधिकोषों की स्थापना की जगह वर्तमान अधिकोषों का अपनी शाखाएं खोलना ही अधिक हितकर है जिससे अधिकोषों के व्यापार एवं साख में वृद्धि होगी।[2]

२. उत्तराधिकार नियमों तथा आधि प्रलेख सम्बन्धी ऋण देने में जो वैधानिक अड़चनें व्यापारिक अधिकोषों को उपस्थित होती हैं उनको निवारण करने का शीघ्र प्रयत्न किया जाय।

३. अधिकोषों को चाहिये कि वे "एक व्यक्ति—एक अधिकोष" इस प्रथा को प्रोत्साहन दें एवं इसके लिये भावी ग्राहकों को यदि उनका लेखा किसी

[1] *For detailed study refer to Rural Banking Enquiry Committee's Report.*

[2] *Dr. L. C. Jain, 'The Monetary Problems of India'*

अन्य अधिकोष में है तो उन्हें ग्राहक न बनावें। इस पद्धति के अपनाने से वे अधमर्ण की वैयक्तिक साख पर ऋण दे सकेंगे तथा इस प्रकार के ऋणों को अधिक देकर प्रोत्साहित करना चाहिये। इसीके साथ अधिकोष रोक ऋण प्रथा को क्रमशः कम कर दें तथा विपत्रों का उपयोग बढ़ाने का प्रयत्न करें एवं व्यापारिक विपत्रों का अपहरण अधिकांश परिमाण में किया करें।

४. अधिकोषण विकास में जो सबसे बड़ी बाधा आंग्ल भाषा की है, उस बाधा को दूर करने के लिये प्रांतीय भाषाओं का उपयोग करना प्रारम्भ कर देना चाहिये तथा विदेशी व्यवहारों के लिये ही आंग्ल भाषा का उपयोग वे किया करें। जिससे सामान्य जनता भी उनसे लेन देन कर सकेगी तथा उनका व्यापारिक क्षेत्र भी बढ़ेगा।

५. व्यापारिक अधिकोषों के विकास एवं उन्नति के लिये भारतीय सरकार को चाहिये कि वह सहकारी अधिकोषों की भांति इनको प्रोत्साहन देने के लिये भी समुचित नीति का अवलम्ब करे तथा इनसे भी लेन देन सम्बन्ध प्रस्थापित करे। इसी प्रकार इन अधिकोषों को करों आदि में सुविधाएं भी देनी चाहिये। अपने ऋण-कार्यों के कुछ भाग का संचालन भी इन अधिकोषों के हाथ में देना चाहिये जिससे वे अपनी समुचित उन्नति कर सकें।

६. अधिकोषों को चाहिये कि वे अपनी कार्य-शैली की त्रुटियों का निवारण करें। वर्तमान परिस्थिति में अधिकोष इस ओर प्रयत्नशील हैं। उनको चाहिये कि योग्य कर्मचारियों के निर्माण के लिये उनकी शिक्षा की व्यवस्था का प्रबन्ध सार्वदेशिक अधिकोष संघ द्वारा किया जाय। तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिये वे स्वदेशी अधिकोषों को अपना माध्यम बनालें अथवा यथासंभव उनको अपना अभिकर्ता बनालें, जिससे स्वदेशी अधिकोषों के क्षेत्र में भी इनका कार्य-विस्तार सफलता पूर्वक हो सकेगा।

७. अधिकोषों को अपनी कार्यशैली का औपचारिक भाग यथासंभव टालना चाहिये तथा जनता को अधिकाधिक सुविधाएं देने का प्रयत्न करना चाहिये जिससे कृषिज एवं औद्योगिक आवश्यकताओं की उन्नति में भी वे हाथ बटा सकें। ग्रामीण क्षेत्रों की शाखाओं में कार्यालय समय भी समुचित एवं जनता की दृष्टि से सुविधाजनक होना चाहिये। कार्यक्षमता एवं सुविधा की दृष्टि से स्वदेशीय अधिकोष तथा इम्पीरियल बैंक से आवश्यक बोध लेना चाहिये।

८. वर्तमान अखिल भारतीय अधिकोष संघ को देश के सब अधिकोषों को अपना सदस्य बनाकर उनमें पारस्परिक सहयोग एवं सहकारिता की वृद्धि

करनी चाहिये जिससे प्रतियोगिता एवं गलाकाट-प्रतिद्वंदिता का निराकरण होकर अधिकोपण की समुचित उन्नति हो। इस संघ को अपनी शाखाएं आवश्यकतानुसार विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित करनी चाहियें तथा उनकी असुविधाओं का निराकरण करने का प्रयत्न करना चाहिये। सरकार को भी इस संघ को मान्यता देकर इस संघ के सुझावों पर सहानुभूति से विचार करना चाहिये।

९. व्यापारिक अधिकोषों के प्रतिस्पर्धियों का समुचित रूप से नियंत्रण करना चाहिये—जिससे विनिमय-अधिकोषों का कार्यक्षेत्र केवल आयात निर्यात केन्द्रों तक ही सीमित रहे। इसी प्रकार स्वदेशीय अधिकोषों का भी नियंत्रण करने के लिये रिज़र्व बैंक को प्रयत्न करना चाहिये जिससे ये प्रतिस्पर्धा न कर सकें। विदेशी विनिमय-अधिकोषों को अपनी शाखाएँ देश के अन्य भागों से हटाने के लिये तथा नई शाखाएँ खोलने के लिये निर्बन्ध लगाना चाहिये। इसी प्रकार के निर्बन्ध व्यापारिक अधिकोषों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा निवारण के लिये भी होने चाहियें; अच्छा हो यदि रिज़र्व बैंक इन अधिकोषों की निक्षेप ब्याज-दर का नियमन कर दे जिससे अधिक निक्षेप आकृष्ट करने के लिये ब्याज-दर का प्रलोभन न दिया जा सके। स्वदेशीय अधिकोषों का नियंत्रण इस सावधानी से होना चाहिये जिससे ग्रामीण साख-सुविधाओं में बाधा न हो।

१०. निक्षेपकों के निक्षेपों की सुरक्षा के लिये भी अधिकोषों को विशेष ध्यान रखना चाहिये। तथा निक्षेपों की सुरक्षा के लिये अमेरिका की भाँति हमारे यहाँ निक्षेपों की आगोप-प्रथा एवं निक्षेप आगोप प्रमंडलों की स्थापना होनी चाहिये जिससे अधिकोपण व्यवसाय की अवश्य ही अच्छी उन्नति होगी।[1] इससे दो प्रमुख लाभ होंगे :—

अ. अधिकोषों की ऋण-प्रदाय नीति में समानता आवेगी।

ब. तथा आगोप प्रमंडलों द्वारा अधिकोषों की ऋण प्रदायक नीति पर कुछ अंश में प्रतिरोध रहेगा।

इससे देश के अधिकोपण संकटों का निवारण हो सकेगा। यहाँ पर यह बात ध्यान में रखनी होगी कि कमजोर एवं अव्यवस्थित अधिकोषों के कारण सुदृढ़ अधिकोषों को बेकार ही असुविधाएं सहनी पड़ती हैं; इसी वजह से निक्षेप आगोप पद्धति संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में सफल नहीं हुई। परन्तु जैसा अर्थ सचिव ने २२ नवम्बर १९५० को संसद् में कहा है कि "यह देखा गया

[1] विशेष विवरण के लिये देखिये Commerce, 30-9-50.

कि इस योजना का उपयोग में लाना बहुत कठिन है जब तक कि देश के अधिकोषण स्तर में अधिक सुधार होकर उसकी असमानता कम नहीं हो जाय, जिसके बाद ही आगोप का प्रभार देश के अधिकोषों में समान रूप से वितरण होगा।[१] अतः निक्षेपों की सुरक्षा की दृष्टि से अधिकोषों में पारस्परिक सहयोग होना ही आवश्यक है।

उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जनता भी समुचित अधिकोषण विकास एवं उन्नति में अपना पूर्ण सहयोग दे। तथा अधिकोष योग्य एवं अनुभवी कर्मचारी एवं अधिकारी प्राप्त करने के लिये हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक का अनुकरण कर सकते हैं। यह अधिकोष वाणिज्य तथा विधान के विशारदों (B. Com. & LL. B) तथा वाणिज्य-रत्नों (M. Com.) को अपने यहाँ अधिकारी (Officer) की शिक्षा देता है तथा शिक्षा-अवधि में उनको केवल पारितोषण (Honorarium) दिया जाता है। इस पद्धति के अपनाने से योग्य एवं अनुभवी कर्मचारियों का अभाव दूर हो सकता है। भारत की राजनैतिक परिस्थिति बदल जाने से गत वर्षों में अधिकोषण स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया है एवं हो रहा है। इसी प्रकार एकत्रीकरण (Amalgamation) एवं विलीयन के लिये भी अधिक सुविधाएँ अधिकोषण-विधान के अन्तर्गत दी गई हैं तथा एकीकरण एवं शाख-विस्तार के नियंत्रण के लिये रिज़र्व बैंक को भी अधिकोषण-संशोधन-विधान द्वारा अधिक अधिकार दिये गए हैं जिससे रिज़र्व बैंक अब व्यापारिक अधिकोषण की समुचित उन्नति की देख रेख कर सकता है तथा वर्तमान अधिकोषों की आर्थिक स्थिति का परीक्षण की योजना भी बनाली है, जिसके अन्तर्गत वह अधिकोषों का परीक्षण कर रहा है। इन सब बातों को देखते हुए एवं उपर्युक्त सुधारों के साथ हम यह विश्वास से कह सकते हैं कि भारतीय अधिकोषण का भविष्य आशातीत उज्ज्वल है।

प्रश्न संग्रह

१. 'भारतीय व्यापारिक अधिकोषों का विकास'—इस विषय पर संक्षिप्त एवं उद्बोधक निबंध लिखिये।

---

[१] *The possibility of devising some kind of Deposit Insurance System in the country had been considered by the Reserve Bank. But it was found that it would be practically difficult to institute such a system unless Banking standards in the country were further improved and made a little less unequal. It was only then that the burden of such insurance would spread evenly over the banks in the country.*

Hindustan Times, 24-11-50.

२. 'अधिकोषण संकट' से आप क्या समझते हैं ? भारत में अधिकोषों के विलीयन के कारणों की समीक्षा तथा उससे बचने के लिये क्या उपाय हैं ? लिखिये ।

३. द्वितीय महायुद्ध का भारतीय अधिकोषण पर क्या प्रभाव हुआ ? उसके भविष्य के विषय में आप क्या समझते हैं ?

४. भारतीय संयुक्त स्कंध अधिकोषों के कौनसे कार्य हैं ? क्या आपकी दृष्टि से ये अधिकोष अत्यधिक सावधान एवं पिछड़े विचारों (Conservative) के हैं ? यदि हाँ, तो उनको कृषि, व्यापार एवं उद्योगों के लिये उपयोगी बनाने के लिए आप अपने सुझाव दीजिये ।

(आगरा बी. कॉम. १९४८)

५. भारतीय अधिकोष कौनसे प्रमुख कार्य करते हैं ? देश के अधिकोषण का विकास एवं उन्नति के लिए कौनसे सुधार आवश्यक हैं ?

(आगरा बी. ए. १९३४ व १९२२)

६. देश की अधिकोषण-अर्थ-व्यवस्था में स्वदेशीय अधिकोष, इम्पीरियल बैंक तथा संयुक्त स्कंध-अधिकोषों के पारस्परिक सम्बन्ध के महत्व की समीक्षा कीजिये । (यू. पी. इन्टर १९३२)

७. भारतीय अधिकोषण में कौनसे प्रमुख दोष एवं त्रुटियां हैं ? उनके निवारण के लिए आप कौनसे सुझाव रखते हैं ? (यू. पी. इन्टर १९४१, १९४४)

८. भारतीय अधिकोष अपने ग्राहकों को जो विभिन्न सुविधाएँ देते हैं उनका उल्लेख कीजिये । और यह भी संक्षेप में बताइये कि व्यापारियों के लिए वे कहाँ तक उपयोगी हैं ?

९. भारतीय अधिकोषण की प्रमुख त्रुटियों की समीक्षा कीजिये । विपत्र-अपहरण की सुविधाओं के अभाव का भारतीय-मुद्रा-विपणि पर क्या प्रभाव होता है ? यह भी बताइये । (यू. पी. इन्टर १९४३)

१०. 'अधिकोषण संकट' किन कारणों से निर्माण होता है ? केन्द्रीय अधिकोष ऐसे संकट काल में देश के अधिकोषण-संगठन की किस प्रकार सहायता करता है ? ऐसी परिस्थिति में रिज़र्व बैंक किस प्रकार सहायता कर सकता है ? (यू. पी. इन्टर १९४४)

११. व्यापारिक अधिकोष तथा इम्पीरियल बैंक भारतीय उद्योगों को किस प्रकार आर्थिक सहायता करते हैं ? कुछ सुझाव दीजिये, जिससे कि इस कार्य में ये अधिक उपयोगी हो सकें । (यू. पी. इन्टर १९४९)

१२. भारत में १६४० के बाद संयुक्त स्कंध अधिकोषों की प्रगति के लिए कौनसे कारण जिम्मेदार हैं ? अभी जो सुविधाएं वे दे रहे हैं उनके अतिरिक्त कौनसी अधिक सुविधाएं आपके मत से, उन्हें देनी चाहियें ?

(आगरा बी. कॉम. १६४७)

१३. भारत में संयुक्त स्कंध अधिकोषों की कौनसी कठिनाइयाँ एवं त्रुटियाँ हैं ? उनके सुधार के लिये अपने सुझाव प्रस्तुत कीजिये ।

(यू. पी. इन्टर १६४६)

१४. भारत में अधिकोषण-क्षेत्र की प्रगति का परीक्षण कीजिये तथा उसके सुधार के लिए कौनसे सुधार आप आवश्यक समझते हैं ?

(यू. पी. इन्टर १६४७)

अध्याय १५

इम्पीरियल बैंक ऑफ इन्डिया

1955. स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया.

वैसे तो इम्पीरियल बैंक की आवश्यकता सन् १९२६ से ही प्रतीत हो रही थी किन्तु उस समय सरकार ने इस ओर कोई भी ध्यान न दिया। परन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात् तथा जो महान् अधिकोषण संकट का समय आया तो इसकी आवश्यकता का तीव्रता से अनुभव किया गया तथा १९२० में बम्बई, मद्रास एवं बंगाल के तीनों प्रेसीडेंसी अधिकोषों को मिलाकर एक नया अधिकोष स्थापित करने के लिए, जो सरकारी शेषों को जमा रखे एवं सरकार की ओर से लेन देन करे तथा देश के अधिकोषण विकास की देख रेख करे एवं अधिकोषण सुविधाएं बढ़ावे, एक विधान "इम्पीरियल बैंक ऑफ इन्डिया एक्ट" के नाम से स्वीकृत किया गया। इस विधान के अनुसार तीनों प्रेसीडेंसी अधिकोषों के एकत्रीकरण द्वारा इम्पीरियल बैंक की १९२१ में स्थापना की गई। १९३४ में इम्पीरियल बैंक एक्ट का संशोधन किया गया।

इम्पीरियल बैंक की स्थापना के पूर्व : इसका हम पिछले अध्याय में उल्लेख कर चुके हैं कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने अपनी व्यापारिक सुविधाओं के लिये बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रान्तों में क्रमशः १८०६, १८४० तथा १८४३ में बैंक ऑफ बंगाल, बैंक ऑफ बॉम्बे तथा बैंक ऑफ मद्रास नाम से तीन अधिकोष स्थापित किये। इनकी स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी कि ये बिना किसी प्रकार की हानि के जनता को अधिकोषण सुविधाएँ दें तथा आवश्यकता के समय ईस्ट इन्डिया कम्पनी को भी आर्थिक सहायता दें। सरकारी कार्य एवं सरकार की ओर से लेन देन करना भी इनका एकाधिकार था। इनकी पूंजी विदेशी थी तथा ⅕ भाग ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने भी दिया था, जिसके बदले उसे संचालक सभा के कुछ संचालक नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त था। १८२३ में बैंक आफ बंगाल को पत्रमुद्रा चलन का, १८३९ में शाखाएँ खोलने की भारतीय विनिमय कार्य करने की आज्ञा दी गई। इस समय विदेशी विनिमय व्यापार यह अधिकोष नहीं कर सकता था। पत्रमुद्रा चलन का अधिकार १८६२ में इस अधिकोष से छीन लिया गया।

इसी प्रकार बैंक ऑफ बाम्बे तथा बैंक ऑफ मद्रास की भी स्थापना क्रमश: १८४० तथा १८४३ में हुई एवं इनको भी पत्रमुद्रा चलन का अधिकार था जो १८६२ में छीन लिया गया। किंतु सरकार की ओर से लेन देन करने का एकाधिकार इन्हें भी प्राप्त था तथा ये भारतीय व्यापारियों को भी आर्थिक सुविधाएं तथा अधिकोषण सुविधाएँ दे सकते थे किंतु विदेशी विनिमय व्यापार तथा ६ मास से अधिक काल के लिये ऋण नहीं दे सकते थे।

इन दोनों अधिकोषों में भी ईस्ट इन्डिया कंपनी ने पूंजी का कुछ भाग लगाया था। इसके बाद १८६८ में जब रुई के परिकाल्पनिक व्यवहारों के कारण बैंक ऑफ बॉम्बे की बहुत हानि हुई, तो उसका विलीयन कर १ करोड़ रुपये की पूंजी से इसी नाम का दूसरा अधिकोष खोल दिया गया। इस परिस्थिति की वजह से सरकार ने इन अधिकोषों में उसके जो अंश थे वे सब बेच दिये, जिससे उसका संचालक-निर्वाचन का अधिकार भी जाता रहा। १८७६ में एक प्रेसीडेंसी बैंक एक्ट स्वीकृत हुआ, जिसके अनुसार प्रेसीडेंसी अधिकोषों के कार्य पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए। इनकी कार्य-शैली में अनेक दोष होने के कारण इनका एकीकरण कर एक अधिकोष अखिल भारतीय अधिकोष बनाने की मांग क्रमशः १८६० तथा १८७६ में रखी गई। इनके मुख्य दोष निम्नलिखित थे :—

१. इन्होंने केवल उन्हीं स्थानों पर अपनी शाखाएं खोली जहाँ पर इनको अधिक धन लाभ मिल सकता था।

२. भारतीय व्यापारिक आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति, पूंजी की कमी की वजह से ये नहीं कर सकते थे, इस कारण देश में मुद्रा तथा साख का अभाव रहता था और ब्याज दर भिन्न भिन्न रहती थी। इनको पत्रमुद्रा-चलन का अधिकार न होने से साख एवं मुद्रा का परस्पर संबंध भी नहीं था। जो आर्थिक विकास के लिये आवश्यक होता है।

३. भारतीय अधिकोषण विकास में इन्होंने कुछ भी संतोषप्रद कार्य नहीं किया।

उपर्युक्त एकीकरण की मांग पर कोई विचार नहीं किया गया। फिर १८६८ में फाउलर समिति ने तथा १९१३ में चेम्बरलेन समिति ने केन्द्रीय अधिकोष की आवश्यकता को बताया परन्तु उस समय भी इस दिशा में कुछ नहीं हुआ और न किया गया। परंतु देश के महान् अधिकोषण संकट ने (१९१३-१७) अधिकोषण पद्धति के सुसंचालन एवं मज़बूती के लिये इसकी आवश्यकता को प्रमाणित कर दिया। फलस्वरूप १९२० में

इम्पीरियल बैंक एक्ट स्वीकृत होकर १९२१ में इम्पीरियल बैंक की स्थापना की गई। इसने २७ जनवरी १९२१ से कार्यारम्भ किया।

स्थापना के उद्देश्य : इसकी स्थापना के निम्न उद्देश थे :—

१. सरकार के अधिकोषिक का कार्य करना तथा सरकार को राशि स्थानान्तरण की सुविधाएँ देना।

२. कुछ अंश में केन्द्रीय अधिकोष के कार्य करना अर्थात् अधिकोषों का अधिकोषिक तथा सरकार के अधिकोषिक का कार्य करना, तथा

३. देश की अधिकोषण सुविधाओं में वृद्धि करना एवं देश के अधिकोषों की सुदृढ़ता की देखरेख करना।

इम्पीरियल बैंक का संगठन : इसकी अधिकृत पूँजी ११७५ लाख रुपये की थी जो ५०० रुपये के २२५००० अंशों में विभाजित है, जिसमें से आधा भाग परिदत्त पूँजी है एवं शेष संचित-देय (Reserve Liability) है। इस अधिकोष ने १९२२ से १९३१ तक १६% तथा उसके बाद १२% प्रतिवर्ष लाभांश वितरण किया। १० दिसम्बर १९४८ में इसकी संचिति प्रणीवि ६२५ लाख रुपये की थी तथा कुल निक्षेप २,८७१,८३२,००० रुपये थे।

प्रबंध : १९३४ के पूर्व इम्पीरियल बैंक का प्रबंध केन्द्रीय सभा तथा तीन स्थानीय संचालक सभाओं की देखरेख में होता था। केन्द्रीय सभा के १६ सदस्य थे जिनको गवर्नर कहते थे जिनमें से दो व्यवस्थापक (Managing) गवर्नर तथा भारतीय स्वार्थों की रक्षा के लिये ४ गैर सरकारी अधिकारी गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इनके अतिरिक्त चलन नियंत्रक (Currency Controller) भी रहता था जो भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करता था। शेष ९ में तीनों स्थानीय सभाओं के (बंबई, कलकत्ता, मद्रास) अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा कार्यवाह (President, Vice President & Secretary) रहते थे। इस प्रकार १६ सदस्य केन्द्रीय सभा में थे। चलन नियंत्रक को यह अधिकार था कि सरकारी निक्षेप अथवा अर्थनीति संबंधी किसी भी निर्णय को कार्यरूप में परिणत न होने दे, तथा ऐसा प्रस्ताव सरकार के निर्णय के लिए भेज दे। इसी प्रकार वह इम्पीरियल बैंक की नीति तथा रोक-निधि संबंधी आज्ञा भी दे सकता था। अधिकोष की आर्थिक स्थिति संबंधी कोई भी विवरण सरकार को प्राप्त करने का अधिकार था। इसी प्रकार सरकार किसी भी अंकेक्षक की नियुक्ति अधिकोष के लेखापुस्तकों का अंकेक्षण (जांच) करने के लिये तथा वृत्तलेख देने के लिए

कर सकती थी। इस प्रकार इम्पीरियल बैंक के अंशधारियों का अधिकोष
होते हुए भी उसके ऊपर सरकार का पूर्ण नियंत्रण था।

अधिकोष के कार्य : १९२० के विधान के अनुसार इम्पीरियल बैंक
के कार्यों पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए थे क्योंकि वह सरकार के अधिकौषिक
का कार्य करता था, इसलिए वह परिकाल्पनिक व्यवहारों में न फँसे तथा
दीर्घकालीन ऋण न दे, यह तथा अन्य निर्बन्ध आवश्यक ही थे। इम्पीरियल
बैंक के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :—

१. वह सरकार का अधिकौषिक था तथा सरकारी रोक-शेषों
(Cash Balances) की व्यवस्था का भार भी उस पर था। वह सरकार
के कोषों (Treasuries) की व्यवस्था निःशुल्क करता था एवं सरकार की
ओर से लेन देन करना, ऋणपत्रों का निर्गमन तथा शोधन करने का
उत्तरदायित्व भी पूर्ण करता था।

२. केन्द्रीय अधिकोष के कुछ कार्य भी इम्पीरियल बैंक करता था।
भारत के अधिकांश अधिकोष अपने निक्षेप इस अधिकोष में रखते थे तथा
समाशोधन गृहों का प्रबन्ध करने का कार्य भी इसी का था। वह अधिकोषों
को राशि स्थानांतरण की सुविधाएं देता था जिसके बदले में वह कुछ शुल्क
लेता था जो सरकार द्वारा नियंत्रित था, क्योंकि इम्पीरियल बैंक को सरकारी
कोषों से निःशुल्क राशि-स्थनांतरण की सुविधाएं सरकार ने प्रदान की थीं।
यह कार्य जहाँ इम्पीरियल बैंक की शाखाएं थीं, शाखाओं द्वारा होता था।
विपत्रों तथा मान्य प्रतिभूतियों पर अधिकतम ६ मास के लिये ऋण भी
इम्पीरियल बैंक अधिकोषों को दे सकता था। मौसमी मुद्रा की आवश्यकता
की पूर्ति के लिये इम्पीरियल बैंक पत्र-चलन विभाग से १२ करोड़ रुपये ऋण
प्राप्त कर सकता था जिसे वह अन्य अधिकोषों को पूर्ति के लिये उधार
देता था। इस ऋण राशि पर इम्पीरियल बैंक प्रथम ४ करोड़ की राशि पर
६% तथा शेष पर ७% प्रतिवर्ष ब्याज सरकार को देता था।

इम्पीरियल बैंक न्यासी प्रतिभूतियों (Trustee Securities) के
अतिरिक्त अन्य प्रतिभूतियों में विनियोग नहीं कर सकता था जैसे भारत एवं
ब्रिटिश सरकार की प्रतिभूतियाँ, कोष-विपत्र आदि।

३. इम्पीरियल बैंक पर विधान के अन्तर्गत प्रथम ५ वर्षों में १००
शाखाएँ खोलने का प्रतिबंध भी लगाया गया था जिसको इसने इस अवधि
में पूर्ण किया। (वर्तमान शाखाएँ ४०० हैं)।

४. इम्पीरियल बैंक की लन्दन शाखा भारत सचिव की रोक-राशि की

व्यवस्था तथा भारत के रुपये-ऋण (Rupee Debt) की व्यवस्था करती थी।

४. व्यापारिक अधिकोष होने की वजह से इम्पीरियल बैंक व्यापारिक अधिकोष के कार्य कुछ विशेष प्रतिबंधों के साथ कर सकता था। यह जनता के निक्षेप लेता था तथा व्यापारियों को ऋण देना, अधिकोषों को ऋण तथा विपत्र-अपहरण की सुविधाएं देने का कार्य भी करता था। व्यापारिक अधिकोषण कार्यों पर निम्न प्रतिबंध थे :—

अ. विदेशी विनिमय व्यवहार नहीं कर सकता था।

ब. ६ मास से अधिक काल के लिए ऋण नहीं दे सकता था।

क. निक्षेपों की स्वीकृति तथा ऋण का प्रदाय वह भारत के बाहर किसी भी व्यक्ति आदि से नहीं कर सकता था। केवल लन्दन स्थित शाखा को यह अधिकार था कि वह भारत के पुराने ग्राहकों से निक्षेप ले अथवा केवल बैंक के कार्य के लिये ही अपनी संपत्ति की प्रतिभूति पर ऋण ले।

ड. ऐसे विपत्रों का अपहरण करना जो ६ महीने की अवधि से अधिक के न हों तथा जिन पर दो व्यक्तियों अथवा सार्थों के हस्ताक्षर हों। इसी प्रकार यह अधिकोष केवल उन्हीं परक्राम्य विलेखों में व्यवहार कर सकता था जिनका भुगतान भारत अथवा लंका में हो।

इम्पीरियल बैंक ही केन्द्रीय अधिकोष क्यों नहीं? इसकी कार्य-प्रणाली एवं प्रतिबन्धों को देखते हुए यह प्रश्न उठता है कि जब यह अंशधारियों का अधिकोष होते हुए भी पूर्णरूप से सरकार के नियंत्रण में था तथा केन्द्रीय अधिकोष के कतिपय कार्य भी करता था तो फिर इसे ही केन्द्रीय अधिकोष में परिणत न करते हुए रिज़र्व बैंक की स्थापना की आवश्यकता क्यों हुई?

१. यह तो हम देख ही चुके हैं कि इम्पीरियल बैंक व्यापारिक अधि-कोषण कार्य कर सकता था, तथा उस पर ५ वर्ष में १०० शाखाएँ खोल कर अधिकोषण सुविधाएँ बढ़ाने का वैधानिक दायित्व था जिसे उसने पूरा किया। यही एक बात ऐसी थी जो इसे केन्द्रीय अधिकोष में परिणत न करने के लिये पर्याप्त थी। क्योंकि केन्द्रीय अधिकोष देश के अन्य अधिकोषों का सहयोगी होता है प्रतियोगी नहीं और इम्पीरियल बैंक अन्य अधिकोषों का प्रतियोगी ही बना रहा एवं आज भी उसके विरुद्ध अन्य अधिकोषों का यही आक्षेप है।

२. दूसरे, यदि इसे केन्द्रीय अधिकोष में परिणत किया जाता तो उसका व्यापारिक स्वरूप नष्ट होने की आवश्यकता थी अर्थात् उसकी शाखाएं बन्द

करनी पड़तीं जिससे देश के अधिकोषण विकास को धक्का लगता। यह भी ऐसे समय जब देश में अधिकाधिक अधिकोषों की आवश्यकता थी।

३. इसके लाभांश का नियंत्रण होना भी आवश्यक था, जो इसके अंशधारी कभी पसन्द नहीं करते।

४. इसने केन्द्रीय अधिकोष के अभाव को दूर करने का उत्तरदायित्व भी नहीं निभाया। क्योंकि अन्य व्यापारिक अधिकोषों का प्रतियोगी होने की वजह से यह अधिकोषों का अधिकौपिक नहीं बन सका। इतना ही नहीं अपितु अन्य अधिकोष ऋण की आवश्यकता के समय इम्पीरियल बैंक के दरवाजे खटखटाने में मानहानि समझते थे और जब कभी वे गये भी तो उन्होंने विपत्रों के अपहरण से राशि प्राप्त करने की अपेक्षा सरकारी प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर ही ऋण लिया। दूसरे, केन्द्रीय अधिकोष को पत्र-मुद्रा चलन का एकाधिकार होता है, वह भी इसे नहीं था। तीसरे, इम्पीरियल बैंक की अधिकोष-दर भी प्रभावी नहीं थी और न देश के अधिकांश अधिकोष अपनी राशि ही इम्पीरियल बैंक के पास निक्षेप में रखते थे, जिसकी वजह से न तो यह अधिकोषों का ही नियंत्रण कर सकता था और न मुद्रा-विपणि का ही—जो केन्द्रीय अधिकोष का प्रमुख कार्य होता है। चौथे, इसको सरकारी राशि की व्यवस्था आदि की सुविधाएं केवल भारत के लिये ही उपलब्ध थीं तथा यह भारत सरकार की ओर से विदेशों में राशि स्थानांतरण नहीं कर सकता था, जो कार्य आजकल केन्द्रीय अधिकोष करते हैं। इस प्रकार यह केन्द्रीय अधिकोष के रूप में यशस्वी न होते हुए, केवल व्यापारिक अधिकोष के रूप में ही कार्य कर सकता था।

(५) इम्पीरियल बैंक अपनी अराष्ट्रीय नीति की वजह से भारतीयों की सहानुभूति भी प्राप्त न कर सका तथा इसकी नीति सदैव ऐसी ही रही जिससे भारत एवं भारतीयों की अपेक्षा इङ्गलैंड एवं अंग्रेजों का ही हित हो। इसका संचालन भी प्रारंभ से ही अंग्रेजों के हाथ में रहा तथा उन्होंने वही नीति अपनाई जो इनके आकाओं की—प्रेसीडेंसी बैंकों की—थी। और इसके अंग्रेज संचालक देश की आवश्यकताओं को भी न समझ सकते थे और न समझ कर काम ही करते थे—विशेषतः जब उनके देश की ऐसे कार्यों से हानि की संभावना थी। इतना ही नहीं, हिल्टन यंग समिति के सामने इस बात के प्रमाण भी दिये गये थे कि साख-विलेखों के होते हुए भी इसने भारतीयों को ऋण नहीं दिया किंतु दूसरी ओर विदेशियों को ऋण दिया।

इम्पीरियल बैंक और संशोधित (१६३४) विधान : १६३४ में जिस

समय रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया की केन्द्रीय अधिकोष के नाते स्थापना करने का विधेयक स्वीकृत हुआ, उसी समय इम्पीरियल बैंक विधान में भी संशोधन किया गया; जिससे उसके व्यापारिक अधिकोषण कार्यों संबंधी प्रतिबंध हटाकर इम्पीरियल बैंक को पूर्णतः व्यापारिक अधिकोष बना दिया गया। इस संशोधन-विधान से इम्पीरियल बैंक की कार्यशैली एवं प्रबंध में निम्न परिवर्तन हुए :—

प्रबंध संबंधी संशोधन : अधिकोष का प्रबंध प्रबंध-संचालक (Managing Director) तथा उप-प्रबन्ध संचालक (Dy. Managing Director) द्वारा होता है जिनका निर्वाचन केन्द्रीय संचालक द्वारा ५ वर्ष की न्यूनतम अवधि के लिये होता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सभा के निम्न सदस्य होते हैं :—

१—प्रत्येक स्थानीय सभा का (बंबई, मद्रास तथा कलकत्ता) का अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा कार्यवाह,

२—प्रत्येक स्थानीय सभा के सदस्यों में से निर्वाचित एक एक सदस्य,

३—सरकार द्वारा मनोनीत असरकारी व्यक्ति (Non officials)

केन्द्रीय सभा पर यदि नया स्थानीय कार्यालय खोला जाय तो उस दशा में उस सभा के प्रतिनिधत्व के लिए भी स्थान दिया जायगा, जिनकी संख्या का केंद्रीय सभा द्वारा निर्णय होगा।

इस प्रकार केंद्रीय सभा के १६ सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त सरकार एक और अधिकारी मनोनीत कर सकती है जो केंद्रीय सभा की सभाओं में भाग लेता है किंतु उसे मतदान का अधिकार नहीं होता। केंद्रीय सभा अधिकोष की नीति निश्चित करने का काम जैसे ब्याज की दर आदि तथा साप्ताहिक विवरण की देखरेख करती है। केंद्रीय सभा की सभाएं क्रमशः बंबई, कलकत्ता मद्रास में तीन मास में एक बार होना अनिवार्य है। केंद्रीय सभा की सभाएं बारबार न हो सकने के कारण इसका प्रबंध प्रबंध-सभा (Managing Board) द्वारा किया जाता है जिसके दो सदस्य होते हैं।

इसके अतिरिक्त स्थानीय सभा की दृष्टि से बंबई, कलकत्ता, मद्रास में स्थानीय-सभाएं (Local Boards) हैं जिनके सदस्य उस कार्यालय क्षेत्र के अंतर्गत अंशधारियों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। स्थानीय कार्यालयों का प्रबंध स्थानीय अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष द्वारा होता है। स्थानीय सभा के ७ सदस्य होते हैं एवं ये सभाएं स्थानीय कार्यों की देखरेख करती हैं।

कार्य क्षेत्र : इस विधान की वजह से १९३५ से इम्पीरियल बैंक का

कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत हो गया है तथा उसे व्यापारिक अधिकोपण कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता है परंतु फिर भी रिज़र्व बैंक का एक मात्र अभिकर्त्ता होने के कारण आज भी उसके कार्यों पर कुछ निर्बन्ध रखे गये हैं।

इम्पीरियल बैंक निम्न कार्य कर सकता है :

१. कहीं भी अपनी शाखाएँ खोल सकता है अथवा अपने अभिकर्त्ता (Agencies) रख सकता है।

२. बिना गवर्नर जनरल की अनुज्ञा के किसी भी क्षेत्र में स्थानीय-प्रमुख कार्यालय (Local Head Office) खोल सकता है अथवा नई स्थानीय-सभाएं (Local Boards) बना सकता है। अब उसे सरकार को किसी प्रकार की आर्थिक सूचनाएँ देने की भी आवश्यकता नहीं रही है।

३. संयान-प्रतिभूतियों पर, स्थानीय सरकारों के ऋणपत्रों पर तथा अन्य प्रतिभूतियों पर, सीमित प्रमंडलों के ऋणपत्रों पर, पूर्ण दत्त अंशों पर, स्वीकृति विपत्रों पर तथा प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों पर इम्पीरियल बैंक ऋण दे सकता है तथा ऋण-पत्र एवं प्रतिभूतियों को बेच सकता है। वस्तु-अधिकार प्रलेखों पर तथा ऐसे ऋण-पत्रों पर जिनको भारत सरकार की स्वीकृति प्राप्त हो ऋण दे सकता है। ऐसे ऋण व्यापारिक कार्यों के लिए केवल ६ मास तथा कृषि कार्यों के लिये ६ मास की अवधि तक ही दे सकता है।

४. देश के बाहर भी यह जनता से निक्षेप ले सकता है, ऋण ले सकता है तथा ऋण दे सकता है। इसी प्रकार अपनी सम्पत्ति पर ऋण लेने की तथा अन्य अधिकोपण कार्य करने की भी पूर्ण स्वतंत्रता दी गई है।

५. विनिमय विपत्रों का आहरण (Drawing), स्वीकरण, अपहरण एवं क्रय-विक्रय, विदेशी विपत्रों का क्रय विक्रय, स्वर्ण एवं रौप्य का क्रय विक्रय भी यह कर सकता है। यह क्रियाएं वह देश में एवं विदेशों में भी कर सकता है।

६. सुरक्षा-निक्षेप (Safe custody deposits) स्वीकार करना।

७. रिज़र्व बैंक के अंशों की प्रतिभूति पर रोक ऋण तथा अन्य ऋण देना तथा अन्य कार्य जो विधान से स्वीकृत किये गए हों उनको कर सकता है। इसी प्रकार उपप्राधीयित (Hypothecated) वस्तुओं की प्रतिभूति पर ऋण दे सकता है।

८. लंदन स्थित कार्यालय भी सब प्रकार के अधिकोपण व्यवहार कर सकता है। एवं लंदन के अतिरिक्त अन्य देशों में भी शाखाएँ स्थापित कर सकता है।

६. कृषि साख की मौसमी आवश्यकताओं की पूर्ति के कृषि-पत्रों (Agricultural Papers) की प्रतिभूति पर ९ महीने तक की अवधि के ऋण दे सकता है।

रिज़र्व बैंक एवं इम्पीरियल बैंक : १९३४ के संशोधित विधान के अनुसार यह रिज़र्व बैंक के एक मात्र अभिकर्ता का कार्य करेगा। इसीके साथ वह अपने अन्य व्यापारिक कार्य भी करेगा। इम्पीरियल बैंक से रिज़र्व बैंक की ४५ वीं धारा के अनुसार समझौता हो गया है जिसकी अवधि १५ वर्ष की है एवं जो किसी भी पक्ष की ओर से ५ वर्ष की सूचना के बाद रद्द किया जा सकता है। किन्तु यह सूचना अवधि इस बात पर निर्भर है कि इम्पीरियल बैंक की आर्थिक स्थिति बराबर अच्छी रहे तथा वह समझौते के निबन्धों का पूर्णतः पालन करे। समझौते की शर्तें रिज़र्व बैंक विधान की तीसरी अनुसूची में दी हुई है। इस समझौते के अनुसार जिन स्थानों पर रिज़र्व बैंक की शाखाएँ नहीं हैं किन्तु इम्पीरियल बैंक की शाखाएँ हैं वहाँ इम्पीरीयल बैंक रिज़र्व बैंक की ओर से सरकारी राशि को निक्षेप में रखता है, सरकार के लेखे पर लेन देन करता है, राशि स्थानान्तरण करता है, तथा अन्य कार्य जो केंद्रीय अधिकोष करता है, वह कार्य भी करता है। इस कार्य के लिए रिज़र्व बैंक से इम्पीरियल बैंक को वर्तन मिलता है जो निम्नलिखित है :—

१. प्रथम १० वर्ष के लिये पहिले २५० क्रोड़ रुपयों पर १ आना प्रतिशत अथवा $\frac{१}{१६}$ रु० प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा इसके अतिरिक्त राशि पर $\frac{१}{२}$ आना प्रतिशत अथवा $\frac{१}{३२}$ रु० % प्रतिवर्ष—यह वर्तन उस सब लेन देन पर मिलता है जो सरकारी लेखे पर एक वर्ष में हो।

२. इस अवधि के अन्त में इस कार्य की पूर्ति में जो वास्तव-व्यय इम्पीरियल बैंक का हुआ उसके परीक्षण के बाद क्या वर्तन दिया जाय यह निश्चित होना था। यह व्यय उन सब शाखाओं के व्यय पर जो रिज़र्व बैंक की स्थापना के समय थीं पर निर्भर था। अतः १९४५ में आगामी ५ वर्षों के लिये जो वर्तन निश्चित हुआ वह निम्न है :—

(अ) प्रथम १५० करोड़ रु० के लिये $\frac{१}{१६}$% प्रतिवर्ष (१ रु० से १५० करोड़)

(ब) दूसरे १५० करोड़ रु० के लिये $\frac{१}{३२}$% प्रतिवर्ष, (१५० करोड़ १ रु० से ३०० करोड़ तक)

(क) तीसरे ३०० करोड़ के ऊपर दूसरे ३०० करोड़ के लिये $\frac{१}{६४}$% प्रतिवर्ष (३०० करोड़ १ रु० से ६०० करोड़ रुपये तक)

(ड) ६०० करोड़ के ऊपर $\frac{1}{32}$% प्रतिवर्ष ।

३. रिज़र्व बैंक की स्थापना के समय जो इम्पीरियल बैंक की शाखाएं थीं उनको चालू रखने के लिये रिज़र्व बैंक ने इम्पीरियल बैंक को १५ वर्ष में ६५ लाख रुपये देना तय किया था, जिसका वितरण निम्न प्रकार से होना था :—

(अ) प्रथम पाँच वर्षों में ९ लाख रुपये प्रतिवर्ष [४५ लाख रु०]
(च) दूसरे पाँच वर्षों में ६ लाख रुपये प्रतिवर्ष [३० लाख रु०]
(क) तीसरे पाँच वर्षों में ४ लाख रुपये प्रतिवर्ष [२० लाख रु०]

इस समझौते के अनुसार इम्पीरियल बैंक रिज़र्व बैंक का अभिकर्ता होने के कारण इम्पीरियल सरकारी लेखे की व्यवस्था, लेन देन, राशि स्थानांतरण आदि करता है इसलिये उसके कार्यों पर निम्नलिखित प्रतिबंध लगाये गये हैं :—

१. यह अपने अंशों पर ऋण नहीं दे सकता और कृषि कार्यों के लिये तथा अन्य कार्यों के लिए क्रमशः ९ तथा ६ मास की अवधि से अधिक ऋण नहीं दे सकता।

२. कोर्ट ऑफ वॉर्ड्स को तथा उसकी व्यवस्था में जो रियासतें हैं उनको यह बिना स्थानीय सरकार की स्वीकृति के तथा उनकी अचल सम्पत्ति की प्रतिभूति पर अथवा उनके द्वारा स्वीकृत, निर्गमित विलेखों की प्रतिभूति पर ऋण नहीं दे सकता।

इम्पीरियल बैंक का कार्य : इम्पीरियल बैंक के उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इम्पीरियल बैंक १९३५ तक एक व्यापारिक तथा सरकारी अधिकोष था, जो व्यापारिक कार्यों को करता था तथा सरकारी शेषों का स्थानांतरण, संचालन, लेन देन आदि करता था। इसके प्रारम्भ में जनता को एवं सरकार को इससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं तथा यह भी सोचा गया था कि यह आगे चलकर केन्द्रीय अधिकोष में परिणत हो जायगा परन्तु उसकी कार्यशैली से ये आशाएं पूरी न हो सकीं एवं केन्द्रीय अधिकोष अलग ही स्थापित करना पड़ा (जिसके कारण हम देख चुके हैं)।

इस अधिकोष से ये आशाएँ थीं कि यह अनेक नई-नई शाखाएँ खोलकर देश में अधिकोषण का प्रसार करेगा तथा भारतीयों को इससे काम करने की सुविधा प्राप्त होकर उन्हें अधिकोषण व्यापार की आधुनिक शिक्षा मिलेगी।

दूसरे, सरकारी राशि इस अधिकोष को प्राप्त होने के कारण मुद्रा-विपणि में मुद्रा एवं साख की मौसमी कमी जो रहती थी वह दूर हो जायगी, साख एवं मुद्रा का समुचित नियंत्रण होकर व्याज दर कम हो जायगी जिससे देश की कृषि एवं उद्योग एवं अर्थ-व्यवस्था की उन्नति होगी। तीसरे अधिकोषों को यह आशा थी कि इम्पीरियल बैंक उनका मार्ग प्रदर्शन करेगा एवं संकट-

काल में उनका सहायक होगा तथा सरकार को एवं उन्हें भी राशि स्थानांतरण की सुविधाएं मिलेंगी। इस प्रकार सरकार की ग्राहकों की एवं अधिकोषों की इस अधिकोष संबन्धी विविध आशाएँ थीं जिनमें से कुछ आशाओं की पूर्ति इसने की तथा कुछ की पूर्ति वह नहीं कर सका। इतना ही नहीं अपितु इसकी कार्य शैली युरोपीय व्यवस्था में होने के कारण भारतीयों की दृष्टि से सदोष रही।

इम्पीरियल बैंक ने पहिली आशा कुछ अंश में पूरी की तथा उसने विधान के अनुसार प्रथम पाँच वर्ष में १०० शाखाएँ खोल दीं तथा देश में अधिकोषण, सुविधाएँ बढ़ाने की ओर प्रयत्नशील रहा। प्रो० पाणंदीकर के अनुसार[1] इम्पीरियल बैंक की पिछले ८ वर्ष में ही १५० से अधिक शाखाएँ हो गई हैं जो विनिमय अधिकोषों की संपूर्ण शाखाओं के दुगुने से भी अधिक हैं। इस बैंक की शाखाएँ १६४१ में ४३३ थीं। परन्तु जहाँ तक भारतीयों का अधिकोषण-शिक्षा प्रदान का सम्बन्ध है, इम्पीरियल बैंक के कर्मचारी यूरोपीय रहे हैं तथा कुछ अंश में आज भी हैं जिसकी वजह से इम्पीरियल बैंक द्वारा भारतीयों को अधिकोषण शिक्षा मिलने में सार्वत्रिक निराशा हुई। हाँ यह हम कह सकते हैं कि इम्पीरियल बैंक की लिपिक (Clerks) तथा कर्मचारियों की आवश्यकता के कारण कुछ अंश में हमारी बेकारी का निवारण हुआ परन्तु अधिकोषण शिक्षा का प्रबन्ध न किया गया न किया ही।

जहाँ तक ग्राहकों का संबंध है तथा अन्य आशाओं का वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि इम्पीरियल बैंक से ग्राहकों को ऋण-सुविधाएं प्राप्त हुई तथा कुछ अंश में यह मौसमी मुद्रा तथा साख की आवश्यकता की पूर्ति करने में भी सफल रहा। इसी प्रकार विदेशी विनियोग कर्ताओं ने भी इस अधिकोष से पूर्ण लाभ उठाया, विनिमय-अधिकोषों की भी इसने जी खोल कर सहायता की। इसी प्रकार अंग्रेज व्यापारियों की आर्थिक स्थिति का ज्ञान भी यह अपने ग्राहकों को देता रहा क्योंकि इसकी शाखा लंदन में होने के कारण इसका लंदन मुद्रा-विपणि से प्रत्यक्ष संबन्ध था। किन्तु इसके यह सब कार्य सीमित ही रहे, यह पूर्ण रूप से न तो मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सका और न इसने अपनी पक्षपाती दृष्टि होने के कारण भारतीयों को ही ऋण की पूर्ण सुविधाएं दीं, जितनी यह अपने युरोपीय ग्राहकों तथा साथों को देता था। इस पक्षपाती नीति के कारण इसके विरुद्ध तीव्र आलोचना भी हुई एवं हो रही है।

मुद्रा-विपणि के विभिन्न अंगों का संगठन करने में यह सफल न रहा और न इसने स्वदेशीय अधिकोषों को ही अपने नियंत्रण में लाने का प्रयत्न

[1] *Banking in India, Page 273-75.*

किया। इसी प्रकार ब्याज की दर में भी न समानता रही और न कमी ही हुई। हाँ मौसमी आवश्यकताओं के समय ब्याज की दर जो अधिक ऊँची हो जाती थी उसे इतने ऊँचा न होने दिया।

इसी प्रकार अधिकोषों की मार्ग-दर्शन एवं सहायता संबंधी आशा को कुछ हद तक इसने पूर्ण किया। क्योंकि जब अलायंस बैंक ऑफ शिमला, टाटा इन्डस्ट्रियल बैंक, बंगाल नेशनल बैंक पर संकट आया तब इसने उसे निवारण करने का भरसक प्रयत्न किया परंतु परिस्थिति की विभीषणता की वजह से इन अधिकोषों को विलीयन से न बचाया जा सका। इसी प्रकार १९२६ में कलकत्ता एवं बंबई स्थित सेंट्रल बैंक ऑफ इन्डिया के कार्यालय भी संकट-ग्रस्त परिस्थिति में थे तब उसका निवारण करने में इम्पीरियल बैंक ने सफलतापूर्वक कार्य किया। इसने अधिकोषों को राशि स्थानान्तरण की सुविधाएं भी प्रदान कीं। इसके लिये अधिकांश शुल्क $\frac{1}{16}$% प्रतिशत १०,००० एवं इससे अधिक रुपयों के स्थानान्तरण के लिये जहाँ उन अधिकोषों की शाखाएं नहीं थीं, था, किंतु अधिकोषों को अपनी एक शाखा से दूसरी शाखा के लिए राशि स्थानांतरण शुल्क इसका आधा अर्थात् $\frac{1}{32}$% प्रतिशत अथवा $\frac{1}{2}$ आना प्रति सैंकड़ा था। केंद्रीय अधिकोषण-जांच-समिति के अनुसार तथा ग्रामीण अधिकोषण जांच-समिति के अनुसार यह शुल्क अधिक है अतः इसमें अधि-कोषण विकास की दृष्टि से कमी करने की सिफारिश ग्रामीण अधिकोषण जांच-समिति के वृत्तलेख में की गई है। क्योंकि शुल्क की अधिकता की वजह से पूंजी में गतिशीलता नहीं आरही है।

इस प्रकार इम्पीरियल बैंक ने अधिकतर आशाएँ पूर्ण कीं किंतु अन्य अधिकोषों द्वारा तथा जनता द्वारा इस पर अनेक आक्षेप किये जाते हैं, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि रिज़र्व बैंक के होते हुए भी आज इसका स्थान देश के अधिकोषण कलेवर में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सहकारी अधिकोषों को भी अत्यन्त उदारतापूर्वक ऋण आदि देकर सहायता करता है तथा आवश्यकता के समय उनके निक्षेपों से अधिक राशि आहरित करने देता है जिससे इन दोनों का सम्बन्ध भी अच्छा ही रहा है। इसी प्रकार सरकार को कोषों के व्यय से भी इसने बचाया है क्योंकि जिन स्थानों पर इम्पीरियल बैंक की शाखाएँ हैं वहाँ सरकारी कोषों का कार्य यही करता है इसलिये सरकारी कोष कार्यालय (उन स्थानों के जहां इम्पीरियल बैंक की शाखाएँ हैं) बन्द कर दिये गये हैं। सब जनता का विश्वास भी इसने अपनी कार्य-क्षम कार्य शैली के कारण सम्पादन कर लिया है तथा देश में अनेकों अधि-कोषों के अस्तित्व में भी, ब्याज की दर कम होते हुए भी, इसके निक्षेप सबसे अधिक मात्रा में हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसने जनता का विश्वास

पात्र होकर उनमें बचत एवं अधिकोपण-रुचि का प्रादुर्भाव किया है। रिज़र्व बैंक के अभिकर्ता का एकाधिकार होने के कारण उसको आज भी यही विश्वास प्राप्त है, इसकी शाखाएं देश के किसी भी अधिकोष से अधिक हैं जिनकी संख्या १६४५ तथा १६४७ के बीच ४३३ से बढ़कर ४४४ होगई है। यह साप्ताहिक विवरण प्रकाशित करता रहता है जिससे जनता का इसमें अत्य-धिक विश्वास होने के कारण इसके निक्षेप भी सब अधिकोषों से अधिक हैं जो इसके स्थिति-विवरण [जो पृष्ठ ४६३ पर दिया हुआ है] से स्पष्ट है; जिससे इसकी तुलना अन्य महान् अधिकोषों से की जा सकती है जिनकी निक्षिप्त राशि सम्बन्धी आंकड़े अध्याय १४ में दिए गये हैं।

इम्पीरियल बैंक के विरुद्ध आक्षेप :

इतने कार्यों को सफलता से उसने किया एवं अधिकोपण विकास में संतोषप्रद प्रगति की, फिर भी इसकी कार्य-शैली के विरुद्ध अन्य संयुक्त स्कंध अधिकोषों के अनेक आक्षेप हैं, जो नीचे दिये गये हैं :—

१. केवल एक ही व्यापारिक अधिकोष को जिसकी आर्थिक स्थिति अन्य अधिकोषों की अपेक्षा सुदृढ़ है—रिज़र्व बैंक के अभिकर्ता होनें के कारण सरकारी कोष एवं राशि संबंधी लेनदेन का एकाधिकार है; यह वैयक्तिक एकाधिकार है, न तो देश के हित ही में है और न देश के अन्य अधिकोषों के ही हित में हैं, न जनता के ही हित में। क्योंकि यह इन असामान्य सुविधाओं के कारण देश के अन्य व्यापारिक अधिकोषों का प्रतियोगी हो गया है जिससे भारतीय अधिकोष अपनी उन्नति नहीं कर सके। हाँ, इस प्रतियोगिता से जनता को कुछ अंश में लाभ अवश्य हुआ है क्योंकि उन्हें सस्ती व्याज की दरों पर ऋण मिल जाता है।

२. इम्पीरियल बैंक की पूँजी अधिकांश विदेशी है तथा इसका प्रबंध भी यूरोपीय संचालकों एवं अधिकारियों के हाथ में है, जिससे उसकी व्यवस्था में न तो भारतीयों का हाथ ही है और न यह भारतीयों को अधिकोपण व्यवसाय की शिक्षा ही दे रहा है। अब गत कुछ वर्षों से विदेशी पूंजी क्रमशः कम होकर भारतीयों के हाथों आ रही है, फिर भी विदेशियों का इसके व्यवस्थापन में अधिक प्रभाव आज भी है परन्तु दुःख में सुख इतना ही है कि केन्द्रीय सभा के लिए सरकार की ओर से निर्वाचन आरंभ कर दिया गया है।

३. यूरोपीय प्रबंध में होने के कारण इसके यूरोपीय अधिकारी देश की आवश्यकताओं को नहीं समझ सके तथा इनकी नीति पक्षपाती रही है जिससे भारतीय धन से भारतीय औद्योगिक उन्नति की अपेक्षा यह विदेशियों को ऋण

देयता			संपत्ति		
१—पूँजी			१. विनियोग :—		
अ. अधिकृत	११,२५,००,०००		(i) सरकारी प्रतिभूतियां	१५३,८८,२१,०००	
ब. निगमित एवं प्रार्थित	११,२५,००,०००		(ii) अधिकृत विनियोग	१०,२६,००,०००	१६४,१७,२१,०००
क. आहुत (Called up)			२. अग्रिम :—		
(i) पूर्ण दत्त	३,७५,००,०००		ऋण	१५,६८,२४,०००	
(ii) दत्त (५०० रु० के			रोक ऋण तथा अधिविकर्ष	५२,६५,६५,०००	
१,५०,००० अंश)	१,८७,५०,०००	५,६२,५०,०००	अपहृत एवं क्रीत विपत्र	३,८८,२६,०००	७२,२३,१५,०००
२. अंशधारियों का संचित देय		५,६२,५०,०००	३. सभासदों का स्वीकृति		
३. संचिति भविनि		६,२५,००,०००	विपत्रों पर देय	—	
४. स्थायी निक्षेप, संचय अधि-		२८७,१८,३२,०००	४. मृत स्कंध (Dead Stock)	१,५५,०८,०००	१,५५,०८,०००
कोष, चल तथा अन्य लेखे			५. विविध	१,३६,४६,०००	१,३६,४६,०००
५. प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर			६. धातु	—	
ऋण, प्रति प्रविष्टि के अनुसार	—		७. रिज़र्व बैंक स्थित हस्तस्थ	५५,०६,०७,०००	
६. सभासदों के लिए स्वीकृति-			रोकड़		
विपत्र (Acceptances			अन्य अधिकोषस्थ रोकड़	६,४४,६६,०००	६१,५०,७३,०००
for Constituents)	—	२६,११,०००			
७. विविध (Sundries)					
योग		३००,८२,७३,०००			३००,८२,७३,०००

*Report of the National Planning Committee on Currency & Banking Pp. 51.

देकर विदेशी व्यवसायों की उन्नति करता है। इसी प्रकार भारतीय अधिकारी भी नियुक्त नहीं करता।

४. मुद्रा-विपणि की भी यह उल्लेखनीय उन्नति नहीं कर सका है क्योंकि विपत्रों के उपयोग एवं अपहरण को प्रोत्साहन देने की अपेक्षा यह रोक-ऋण ही अधिक देता है।

५. अभारतीय प्रबंध होने के कारण इसका प्रबन्ध व्यय बहुत अधिक होता है तथा इसकी अनेक शाखाएँ ऐसे स्थानों पर हैं जो अलाभकर हैं। यह भी आक्षेप इसके ऊपर किया जाता है।

६. इम्पीरियल बैंक एक्ट की द्वितीय अनुसूची के नियम ५१ (Regulation 51 Schedule II) के अनुसार अधिकोष के व्यवस्थापक अंशधारियों की ओर से मत दे सकते हैं। यह अधिकार इसके व्यवस्थापकों के लिए महत्वपूर्ण है एवं संचालकों का निर्वाचन, कुछ विशेष व्यक्तियों के हाथ में रहता है जिससे व्यवस्था-सम्बन्धी वैयक्तिक केन्द्रीकरण होता है। ऐसा होने से नौकरशाही (Bureaucratic) पद्धति का अवलंब हो सकता है, जो देश एवं जनता के हित की दृष्टि से अवांछनीय है।

७. इम्पीरियल बैंक ने व्यापार का अधिक केन्द्रीकरण कर लिया है तथा यह अविकसित क्षेत्रों में अधिकोपण सुविधाएँ देने के लिये अनिच्छुक है, जो कि भारत जैसे विशाल देश के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

८. अधिकोषों का इसकी व्यवस्था के विरुद्ध यह भी आक्षेप है कि इम्पीरियल बैंक के मुफस्सिल क्षेत्र के कार्यालयों एवं सरकारी कोषों में कम मूल्यों की पत्र-मुद्राएँ स्थानांतरण अथवा अन्य कार्यों के लिये स्वतंत्रता से नहीं ली जातीं। इतना ही नहीं अपितु इसके सभी कार्यालयों में कम मूल्य की पत्रमुद्राओं को विशेष प्रकार से छांटकर ही देना पड़ता है, जिसके लिये अन्य अधिकोषों को अधिक कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है तथा उनका व्यय भी बढ़ता है; जो विशेषतः छोटे २ व्यापारिक अधिकोषों को अधिक भाररूप होता है। मुफस्सिल कार्यालयों एवं सरकारी कोषों में कम मूल्यों की पत्र-मुद्राएँ देने के सम्बन्ध में राशि भी निश्चित कर दी गई है, जिससे अधिक राशि की ऐसी पत्रमुद्राएँ वहाँ स्वीकृत नहीं होंगी और यह निश्चित राशि अपर्याप्त है। इतना ही नहीं अपितु कहीं कहीं तो ऐसी पत्रमुद्राएँ सप्ताह में केवल कुछ निश्चित दिनों में ही ली जाती हैं, जिससे व्यापारिक अधिकोषों को राशि स्थानांतरण, पत्रमुद्राओं के वर्गीकरण आदि में अधिक असुविधाएं होती हैं।

उपर्युक्त दोषों की वजह से इसके विरुद्ध जनता में काफी क्षोभ रहा है और विशेषतः १९३४ से जब सरकार का नियंत्रण भी इस अधिकोष की केन्द्रीय सभा पर न रहा। अतः कुछ लोगों का विचार है कि इम्पीरियल बैंक विधान का ही पूर्णतः संशोधन होना चाहिये अथवा प्रतिबन्ध लगाने चाहियें। परन्तु इस अधिकोष की महत्त्वपूर्ण परिस्थिति देखते हुए, एवं यह विचारते हुए कि जिस अधिकोष ने देश का अधिकोषण विकास किया तथा जिस की रिज़र्व बैंक को आज भी मुद्रा-विपणि नियंत्रण के लिये आवश्यकता है एवं रहेगी, ऐसे अधिकोष के विधान का पूर्णतः संशोधन करते हुए यदि इन दोषों के निवारणार्थ एवं देशहित के लिये तथा अधिकोषण विकास के लिये जो सुधार आवश्यक हैं वे सुधार ही अवश्य हो जाने चाहियें जिससे इसका प्रबन्ध विदेशियों के हाथ से भारतीयों के हाथ में आजाय।

इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण : गत कुछ वर्षों से, विशेषतः भारतीय स्वातन्त्र्योदय के साथ उपर्युक्त दोषों के निवारणार्थ इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण का प्रश्न उपस्थित हुआ है क्योंकि यह अधिकोष विदेशी पूंजी, विदेशी प्रबंध में संचालित होने के कारण भारतीय अधिकोषों का एवं भारतीय हितों का शत्रु समझा जाता है। इस प्रश्न को रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीय-करण करते समय १९४८ में फिर उपस्थित किया गया था। तत्कालीन अर्थ-मंत्री श्री जॉन मथाई ने कहा था कि "तांत्रिक समस्याओं के परीक्षण की दृष्टि से एवं विनियोग-विपणि तथा तत्कालीन अव्यवस्थित आर्थिक परिस्थिति पर राष्ट्रीयकरण से जो दुष्परिणाम होंगे उनको देखते हुए वर्तमान परिस्थिति में सरकार इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण करना ठीक नहीं समझती।" किंतु सरकार इम्पीरियल बैंक के दोषों का निवारण करेगी यह आश्वासन उस समय अर्थ सचिव ने दिया था। इसके उपरांत १९५०-५१ का आय-व्यय पत्रक उपस्थित करते समय भी इसीकी पुनरावृत्ति हुई तथा कहा गया कि देश की साख-व्यवस्था एवं अधिकोषण उन्नति की दृष्टि से इम्पीरियल बैंक का वर्तमान परिस्थिति में राष्ट्रीकरण करना देशहित में न होगा। नवम्बर १९५० में राष्ट्रीयकरण का प्रश्न अधिकोष संशोधन विधेयक (१९५०) की बहस में फिर से दुहराया गया जब अर्थ मंत्री श्री चिंतामण देशमुख ने कहा कि उनको यह पूर्ण विश्वास है कि "इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीकरण का प्रयत्न देश के आर्थिक हितों में न होगा" तथा यह भी कहा कि "इम्पीरियल बैंक की बहुत सी अंश-पूंजी भारतीयों के अधिकार में है तथा उसके कर्मचारियों का भी राष्ट्रीयकरण हो रहा है तथा कुछ वर्षों में ही इम्पीरियल बैंक हमारे नियंत्रण में आ रहा है। अतः हमारे निजी हितों की दृष्टि से ऐसा कोई भी

कार्य जो शीघ्रतापूर्वक किया जायगा वह अहितकर होगा तथा उससे इस माध्यम के उपयोग को भी हानि होगी।"[१] इस प्रकार १६४८ में जो दृष्टिकोण हमारे भूतपूर्व अर्थमंत्री द्वारा रखा गया था वही दृष्टिकोण इस संबंध में आज भी है। उन्होंने यह भी कहा कि "हमारे अधिकोपण कलेवर में इम्पीरियल बैंक एक आवश्यक अंग है तथा ऐसा कोई भी कार्य नहीं होना चाहिये जिससे उसकी उपयुक्तता में हानि हो विशेपकर उस परिस्थित में जब हम नए अधिकोपण विधान द्वारा अपने अधिकोपण कलेवर का समुचित भित्ती पर संगठन कर रहे हैं।"[२] इस प्रकार से इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण का प्रश्न फिर स्थगित हो गया है। ऐसी अवस्था में यही आवश्यक है कि इस अधिकोप के दोषों का निवारण कर उससे अधिकतम लाभ उठाया जाय। जैसा कि अर्थ-सचिव ने इसी भाषण में कहा था कि ग्रामीण अधिकोपण जांच-समिति के सुझाव सरकार के विचाराधीन हैं, तथा उस संबंध में रिज़र्व बैंक से सम्मति एवं सुझाव माँगे गए हैं उनके आने पर विचार किया जायगा। अतः उनको कार्यान्वित करने की ओर सरकार आवश्यक कदम शीघ्रतिशीघ्र लेगी, यह हमें आशा है।

इम्पीरियल बैंक का भविष्य :

ग्रामीण अधिकोपण जांच-समिति की सिफारिशों के अनुसार इम्पीरियल बैंक हमारे अधिकोपण कलेवर का एक महत्वपूर्ण अंग है तथा रिज़र्व बैंक का, देश की अधिकोपण एवं कोप क्रियाओं के लिए एक आवश्यक हस्तक बन जायगा। अतः ग्रामीण अधिकोपण समिति के सुझावों के अनुसार भविष्य में इसकी क्या स्थिति होगी—ये निम्न सुझावों से स्पष्ट हो जाता है :—

१. इम्पीरियल बैंक को सरकारी कोषों की व्यवस्था एवं सरकार की ओर से लेन देन करने का अधिकार है इस कारण से ही यह देश हित में कार्य नहीं करता है एवं अधिकोषों का प्रतियोगी बन बैठा है। अतः यह

---

[१] *The Imperial Bank was a very fine instrument of banking; technically considered and it is going to be amenable to our control as the years pass by and its seems prejudicial to our own interest to take any hasty action which will impair the use of that instrument".*

[२] *In the Banking system of the country the Imperial Bank forms the backbone and it is in our interests to see that nothing is done to impair the value of that leavening in our present banking system especially as we are making attempts to see that banking is consolidated on sound lines with the help of the new Banking Act.*

—Hindustan Times, Nov. 24, 1950.

एकाधिकार इससे छीन लिया जाय अथवा इसको सरकार पूर्णतः अपने नियंत्रण में रखे। जिसके लिए (अ) प्रबन्धक एवं उप-प्रबन्धक की नियुक्ति की मान्यता केन्द्रीय सरकार से प्राप्त की जाय; तथा जो सरकार का विश्वास-पात्र व्यक्ति नहीं है उसे निकालने का अधिकार भी केन्द्रीय सरकार को हो। (ब) सरकारी नीति संबंधी निर्णय के पूर्ववत् अधिकार सरकार अपने हाथ में ले। (क) केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधित्व अधिकोष की केन्द्रीय सभा पर अधिक प्रभावी बनाया जाय। (ड) सरकार के मनोनीत संचालकों को मतदान का एवं सब सभाओं में सम्मिलित होने का अधिकार हो।

२. अधिकोष के संचालकों को इम्पीरियल बैंक विधान की अनुसूची २ नियम ४१ के अन्तर्गत रद कर दिया जाय तथा भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान १९४९ की १२वीं धारा लागू की जाय जिससे प्रत्येक वैयक्तिक अंशधारी की मत-दान-शक्ति कुल मतदान-शक्ति के ५% मतों तक सीमित हो।

३. इम्पीरियल बैंक के उच्च पदों का राजनैतिक परिवर्तन स्वरूप भारतीयकरण हो। इस संबन्ध में जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं अधिकोष ने भारत-सरकार को आश्वासन दिया है कि सब उच्चपदों का भारतीयकरण १९५५ तक होगा किन्तु यह आवश्यक है कि उच्चपदों की नियुक्ति सेवाओं की अवधि पर निर्भर न रहते हुए कार्यक्षमता पर ही अधिक निर्भर हो।

४. अधिकोष अधिक स्थानीय प्रमुख कार्यालय स्थापित करे जिससे स्थानीय कार्यक्षमता को प्रोत्साहन मिले एवं प्रादेशिक वितरण भी हो। ऐसा करने से अधिकोष की स्थानीय एवं केन्द्रीय सभाओं में सब प्रदेशों का प्रतिनिधित्व हो सकेगा। स्थानीय कार्यालयों संबंधी निर्णय इम्पीरियल तथा रिज़र्व बैंक के विभिन्न क्षेत्रों के समुचित पर्यवेक्षण के बाद हो जिससे अधिकोषण सुविधाएं अधिकाधिक केन्द्रों को दी जा सकें।

५. राशिस्थानान्तरण शुल्क को इम्पीरियल बैंक ५००० रु० तक तथा ५००० से अधिक रुपयों के स्थानान्तरण के क्रमशः १/१६% से १/३२% तथा १/३२% से १/६४% प्रतिशत घटा दे। इसी प्रकार ५००० रु० तक की साप्ताहिक राशि स्थानान्तरण की वर्तमान निःशुल्क सुविधाएं हटा दी जायँ जिससे व्यापारिक अधिकोष किसी भी स्थान से—चाहे वहाँ उनकी शाखा हो अथवा न हो—रिज़र्व बैंक के किसी भी लेखे में राशि-स्थानांतरण कर सकेंगे।

उपर्युक्त सुझावों के कार्यरूप में परिणत हो जाने पर, तथा अधिकोषण विधान द्वारा जो रिज़र्व बैंक को अधिकार दिये गये हैं उसमें इम्पीरियल बैंक की स्थिति संतोषजनक होकर भारतीय-अधिकोषण में महत्त्वपूर्ण हो जायगी,

उसके कार्य क्षेत्र का भी विस्तार होगा एवं उसके ऊपर जो वर्तमान आक्षेप किये जाते हैं उनका भी निराकरण हो जायगा ।

फिर भी देश के राजनैतिक परिवर्तन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि बैंक आगामी नीति में परिवर्तन कर राष्ट्रीय दृष्टि को अपनावे एवं उन कार्यों को न करे, जो अन्य संयुक्त स्कंध व्यापारिक अधिकोषों को अपनाने में असुविधाजनक हैं। १९३४ के संशोधित विधान के अनुसार इम्पीरियल बैंक विदेशी विनिमय कार्य कर सकता है। परन्तु अभी तक यह व्यापार विदेशियों के हाथ में है। अतः इस व्यापार को उसे शीघ्रातिशीघ्र अपनाना चाहिये जिससे देश का धन विदेशों को जाने से रोका जा सके। इम्पीरियल बैंक विधान में उसके अंशधारियों में भारतीयों का क्या परिमाण हो इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। अतः राष्ट्रीय हित की दृष्टि से इस सम्बन्ध में संशोधन होना आवश्यक है जिससे उपर्युक्त सुझावों के कार्यान्वित होने पर इसके विरुद्ध आक्षेपों का एवं त्रुटियों का निवारण तो होगा ही और इसके राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता भी न रहेगी। इम्पीरियल बैंक को देश के अविकसित क्षेत्रों में एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपनी शाखाएं खोल कर तथा अन्य अधिकोषों को इस सम्बन्ध में आवश्यक मार्ग-दर्शन एवं प्रोत्साहित कर देश में अधिकाधिक अधिकोषण सुविधाएं देनी चाहियें और यह कार्य वह अपनी विशेष स्थिति के कारण सहजता में कर भी सकता है; जिससे इम्पीरियल बैंक का देश हित में अधिकतम उपयोग हो सकेगा।

प्रश्न संग्रह

१. इम्पीरियल बैंक केन्द्रीय-अधिकोष एवं व्यापारिक अधिकोष दोनों के कार्य करता है। इन कार्यों का भेद बताते हुए लिखिये कि आप इस विधान से सहमत हैं क्या ? इसे केन्द्रीय अधिकोष में परिणत क्यों नहीं किया गया ?

२. इम्पीरियल बैंक के कौनसे कार्य हैं ? क्या इसका राष्ट्रीयकरण होना चाहिये ? (अजमेर बोर्ड, इन्टर—१९५०)

३. इम्पीरियल बैंक के स्थिति-विवरण का निदर्शन स्थिति-विवरण बनाकर, उसके कोई भी चार पदों का (Items) का स्पष्टीकरण कीजिये।

४. ग्रामीण अधिकोषण जाँच-समिति के सुझावों को देखते हुए इम्पीरियल बैंक का क्या भविष्य है ?

५. इम्पीरियल बैंक के कौन से कार्य हैं ? (यू० पी० इन्टर १६४२) इम्पीरियल बैंक की स्थापना से क्या आशाएं थीं ? वे कहां तक पूरी हुईं ?

६. इम्पीरियल बैंक का रिज़र्व बैंक के साथ जो सम्बन्ध है, उसके संदर्भ में इम्पीरियल बैंक का भारतीय मुद्रा-विपणि में क्या स्थान है ? समालोचना कीजिये। [यू० पी० इन्टर १६४०]

७. रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व इम्पीरियल बैंक का भारत में क्या स्थान था ? रिजर्व बैंक की स्थापना से उसमें क्या परिवर्तन हुआ ?
[यू० पी० इन्टर १६४४]

८ इम्पीरियल बैंक की वर्तमान स्थिति समालोचना कीजिये ? उसकी क्रियाओं पर कौन से निर्बन्ध लगाये गये हैं ? [यू० पी० इन्टर १६४६]

९. इम्पीरियल बैंक के कार्यों को बताइये। उसके विरुद्ध क्या आक्षेप हैं ? उनका निवारण आप कैसे करेंगे ?

अध्याय १६

विनिमय अधिकोष

इम्पीरियल बैंक और रिज़र्व बैंक को छोड़कर आज भी भारत का अधिकोषण व्यवसाय विशेष रूप से अनुसूची बद्ध तथा विनिमय अधिकोषों के हाथ में रहा है। इतना ही नहीं अपितु विनिमय अधिकोषों की स्थापना भारतीय अधिकोषों से बहुत पहिले होने के कारण 'आधुनिक अधिकोषण पद्धति के प्रणेता' वास्तव में विनिमय अधिकोष ही हैं। इनका विशेषतः विदेशी व्यापार को साख-सुविधाएँ देना एवं आर्थिक सहायता देना—यही कार्य प्रमुख है, परंतु आजकल ये व्यापारिक अधिकोषण कार्य भी करने लगे हैं, जिससे ये भारतीय संयुक्त स्कंध अधिकोषों की प्रतियोगिता में हैं। ये अधिकोष विदेशी हैं तथा इनके प्रमुख कार्यालय इङ्गलैंड, पूर्वी एशिया अथवा अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र) में हैं तथा इनकी प्रमुख कार्यशील पूंजी बाहर से ही आती थी जिसके लिए ये अपने प्रमुख कार्यालयों में अधिक निक्षेप आकृष्ट करने के लिए व्याज की दर भी अधिक दिया करते थे। वैसे तो विनिमय अधिकोषों का कार्य कुछ मात्रा में भारतीय अधिकोष भी करते हैं अतः कुछ भारतीय अर्थशास्त्रियों के अनुसार इनको विदेशी-विनिमय अधिकोष कहना ही अधिक उचित होगा।

इनका विकास : इनका उद्‌गम ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में हुआ जिस समय कुछ अभिकर्तृत्व-गृहों की स्थापना विदेशी व्यापार की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत में की गई। ये गृह विदेशी विपत्रों के आहरण, अपहरण तथा स्वीकृति का कार्य करते थे तथा वे विनिमय अधिकोषों की स्थापना के सदा विरोधी रहे। १८३३ में केवल एक ही विदेशी विनिमय अधिकोष था। परंतु १८५३ में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन का अंत हो चुका था तथा विशेष विरोधी वातावरण का भी अंत हो चुका था, नये अधिकोषों की स्थापना होने लगी। अभिकर्तृत्व गृहों में थामस कुक एंड-संस का नाम उल्लेखनीय है जो आज भी प्रवासगमन (Tourist

Traffic) के लिए आर्थिक सुविधाएं देते हैं। १८५३ में चार्टर्ड बैंक ऑफ इंडिया, ऑस्ट्रेलिया एंड चायना एवं मर्केन्टाइल बैंक की तथा १८६६ में नेशनल बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना हुई। नेशनल बैंक ऑफ इंडिया का प्रमुख कार्यालय आगे लंदन में ले जाया गया। १८५३ के पूर्व जो एकमेव विदेशी विनिमय अधिकोष था उसका नाम ओरिएन्टल बैंकिंग कार्पोरेशन था जिसकी स्थापना १८४२ में हुई थी एवं इस अधिकोष का विलीयन १८८४ में हो गया। इसके बाद अन्य देशों के अधिकोषों की भी स्थापना भारत में होने लगी जिनका विदेशी व्यापार भारत के साथ चलता था एवं है केवल इटली और बेलजियम दो ही ऐसे देश हैं जिनके अधिकोषों की स्थापना भारत में नहीं हुई। आजकल भारत में १५ विदेशी विनिमय अधिकोष हैं :—

		प्रधान कार्यालय
१.	चार्टर्ड बैंक ऑफ इन्डिया, आस्ट्रेलिया एंड चायना (१८५३)	लंदन
२.	ईस्टर्न बैंक लिमिटेड (१९०९)	,,
३.	मर्केन्टाइल बैंक ऑफ इन्डिया लिमिटेड (१८५८)	,,
४.	नेशनल बैंक ऑफ इन्डिया (१८६६)	,,
५.	हॉंगकॉंग एन्ड शांघाय बैंकिंग कार्पोरेशन	हॉंगकॉंग
६.	ग्रिन्डले एन्ड कम्पनी लिमिटेड (नेशनल प्रॉविन्शियल बैंक के नियंत्रण में)	लन्दन
७.	बैंक ऑफ चायना लिमिटेड	लन्दन
८.	नीदरलैंड्स इन्डिया कमर्शियल बैंक लि०	ऍमस्टर्डम
९.	थॉमस कुक एंड सन्स (प्रवासगमन की सुविधाएं देता है)	—
१०.	नेशनल सिटी बैंक ऑफ न्यूयार्क	न्यूयार्क
११.	बैंक ऑफ कम्युनिकेशन्स लिमिटेड (अब नहीं है)	—
१२.	नीदरलैंड्स ट्रेडिंग सोसायटी	ऍमस्टर्डम
१३.	अमेरिकन एक्सप्रेस इङ्क (प्रवासगमन की सुविधाएँ देती है)	न्यूयार्क
१४.	बैंको नेशनल अल्ट्रॉमरिनो	लिस्बन
१५.	लॉयड्स बैंक लिमिटेड	लन्दन
१६.	कामर्टॉयर नेशनल डी एस्कॉम्प्टी (Escompte) ऑफ पैरिस	पैरिस
१७.	यॉकोहामा स्पेशी बैंक लिमिटेड (जो १९४१ में बन्द होगया)	

वर्तमान विनिमय अधिकोषों को हम उनकी व्यापार की दृष्टि से दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं :—

१. ऐसे अधिकोष जिनके प्रधान कार्यालय विदेशों में हैं और जिनका अधिकांश व्यवसाय भारत में होता है एवं जिनके कुल निक्षेपों का २५ प्रतिशत अथवा इससे अधिक भाग भारतीयों से निक्षिप्त है। उदा० चार्टर्ड बैंक ऑफ इन्डिया आस्ट्रेलिया एन्ड चायना, नेशनल बैंक ऑफ इन्डिया, मर्केन्टाइल बैंक ऑफ इन्डिया लिमिटेड, ईस्टर्न बैंक लिमिटेड, थॉमस कुक एन्ड संस। इस श्रेणी के अधिकोष १९४६ में केवल ३ ही रह गये।

२. ऐसे अधिकोष जिनके प्रधान कार्यालय विदेशों में हैं एवं भारत में वे केवल उनके अभिकर्ता का कार्य करते हैं, जिनका अधिकतर व्यापार विदेशों में ही है तथा जिनकी निक्षिप्त राशि का केवल २५% से कम भाग भारतीय है। इस श्रेणी में पहिली श्रेणी के अधिकोषों को छोड़कर अन्य अधिकोषों का समावेश होता है। १९४६ में ऐसे अधिकोषों की संख्या १२ थी।

इन अधिकोषों की सारणी (Table) सामने पृष्ठ ५०३ पर दी गई है जिससे इनकी परिस्थिति की पूर्ण कल्पना हो सकती है।

इनकी वर्तमान स्थिति : विदेशी विनिमय अधिकोषों के हाथ में ही भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अधिक भाग है। इस प्रकार के अधिकोषों की भारत के विभिन्न भागों में १९४७ में ८० शाखाएँ थीं। इन अधिकोषों के निक्षेप भारत में कितने हैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती, और जो भी जानकारी मिलती है वह केवल रिज़र्व बैंक के पास जो विवरण भेजा जाता है उसीसे मिलती है।[1] उनकी कार्यशील पूंजी अधिकतर भारत से ही प्राप्त होती थी तथा गत ३० वर्षों में भारत की मुद्रा-विपणि पर इनकी विशेष आर्थिक परिस्थिति के कारण तथा इनका विदेशी मुद्रा-विपणियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहने के कारण बहुत अधिक प्रभाव रहा है। ये अधिकोष अभी तक रिज़र्व बैंक के नियंत्रण में नहीं आये हैं क्योंकि भारत के कोई भी विधान इनके प्रधान कार्यालय विदेशों में समामेलित होने के कारण लागू नहीं होते। अतः इनकी यहाँ की आर्थिक स्थिति सम्बन्धी कोई भी विशेष जानकारी नहीं मिलती। जैसा कि अगले पृष्ठ (५०३) के विवरण से स्पष्ट है इनके निक्षेप भी भारतीय अनुसूची बद्ध अधिकोषों की अपेक्षा अधिक हैं तथा अधिक निक्षेपों को आकृष्ट करने के लिये ये चल निक्षेपों पर भी व्याज देते हैं; जिससे भारतीय अधिकोषों के व्यापार पर प्रभाव पड़ता है तथा ये इनकी प्रतियोगिता करते हैं; जिसकी वजह से भारत का विदेशी व्यापार इन्हीं के एकाधिकार में है।

---

[1] *Time of India Year Book 1949, Pages 313.*

तुलनात्मक विवरण :

विनिमय अधिकोष तथा अनुसूची बद्ध अधिकोष[1]

३१ दिसंबर को		अधि० की सं०	दत्त पूँजी तथा निधि	बर्मा तथा भारत स्थित निक्षेप	भारत एवं बर्मा में रोकड़ शेष	अनुसूची बद्ध अधिकोषों के निक्षेप
			पौं० (१०००)	रु० (१०००)	रु० (१०००)	रु० (१०००)
१९३१	(अ)	६	१८,२७७	४४,३६,२०	६,६२,७१	६२,२६,४४
	(ब)	११	१६७,६८७	२३,११,०६	२,१८,०२	
१९३२	(अ)	७	१८,७५०	४८,३१,००	५,७८,६६	७२,३४,००
	(ब)	११	१५५,०९६	२४,७५,५६	३,८१,३३	
१९३३	(अ)	७	१८,८१६	४५,३२,२८	५,३०,३९	७१,६७,४२
	(ब)	११	१२४,२६४	२५,४६,१८	१,४१,५७	
१९३४	(अ)	७	१९,०००	४५.६६,७६	४,३५,५५	७६,७७,२६
	(ब)	१०	१२२,६१८	२५,७३,२१	३,३२,७३	
१९३५	(अ)	७	१९,००४	५०,४९,६५	७,७३,२२	८४,४४,६१
	(ब)	१०	११८,०३०	२५,६८,६८	४,८१,८६	
१९३६	(अ)	६	१२,३८६	३४,३४,४७	६,३४,०७	९८,१४,२६
	(ब)	१३	११५,९०६	४०,८८,०८	४,०१,२४	
१९३७	(अ)	६	१२,३७७	३३,६८,३३	६,५१,७४	१००,२६,५०
	(ब)	१२	११५,९३५	३९,५२,६८	४,०६,३१	
१९३८	(अ)	५	९,४५७	२८,३३,९७	३ ७७,२७	९८,०८,२७
	(ब)	१३	१२२,०५९	३८,८६,४५	२,६७,१४	
१९३९	(अ)	५	१४,२३०	३०,३२,५२	३,०८,६२	१००,७३,४९
	(ब)	१४	१११,०३५	४३,७५,३०	४,३०,१३	
१९४०	(अ)	५	८,४२५	३५,४५,४८	४,५९,७८	११३,९८,४५
	(ब)	१५	१२०,२६१	५०,११,९९	११,९३,५०	
१९४४	(अ)*	५	१६,९९७	१०१,९१,३१	१४,७४,०४	४७५,३४,००
	(ब)	१०	११७,००५	६३,२९,८२	१०,०७,०५	
१९४५	(अ)*	६	१८,७९७	११३४१४७	१५,५२,२०	६०१,१७,१०
	(ब)	९	१३४,१३३	७०,३२,०३	११,२९,८८	
१९४६	(अ)*	३	६,६७५	६१,२९,७०	७,५६,८४	६२४,३२,२०
	(ब)	१२	१४९,४४७	११९,९८,७६	२४,४५,३५	

सूचना : 'अ' श्रेणी के अधिकोषों में उन्हीं अधिकोषों का समावेश है जिनका भारत में अधिक व्यापार है तथा जिनके भारतीय निक्षेप २५% से अधिक है। 'ब' श्रेणी में उन अधिकोषों का समावेश है जिनका व्यापार विदेशों में अधिक है तथा जिनके निक्षेप २५% से भारत में कम है।

[1] Sources
(i) Hindustan Year Book—by Sarkar.
(ii) Times of India Year Book—1949
(iii) Statistical Tables, 1948—Reserve Bank of India.

* १९४४, १९४५, १९४६ के आंकड़ों में ब्रह्मदेश का समावेश नहीं है।

भारतीय अधिकोषों ने विदेशी व्यापार क्यों नहीं अपनाया ?

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं इनकी पूर्व स्थापना के कारण इनका मुद्रा-विपणि पर अधिक प्रभाव था तथा ये कार्यशील पूंजी के लिये प्रारम्भ में विदेशी निक्षेपों पर निर्भर रहते थे। दूसरे, विदेशी होने के कारण इनका विदेशी मुद्रा-विपणियों से अधिक सम्पर्क रहता था जिससे वे भारतीय अधिकोषों को प्रतियोगिता में नहीं टिकने देते थे। तीसरे, विदेशी अधिकोषों की कार्यशील पूंजी भी भारतीय अधिकोषों की अपेक्षा अधिक थी तथा आर्थिक साधन भी बहुत थे, जिस वजह से भारतीय अधिकोष इनकी प्रतियोगिता नहीं कर सकते थे और न वे इस स्थिति में ही थे कि वे अपनी शाखाएं विदेशों में स्थापित कर पाते एवं न उनकी विदेशों में शाखाएं ही थीं जिनके द्वारा वे विदेशी व्यापार कर पाते। देश में केवल एक ही अधिकोष ऐसा था जिसके आर्थिक साधन एवं कार्यशील पूंजी अधिक थी इम्पीरियल बैंक, जो इस कार्य को कर सकता था परन्तु १९२५ तक इसको यह कार्य करने की वैधानिक अनुमति नहीं थी, जिसकी वजह से यह कार्य नहीं कर सका। परन्तु रिज़र्व बैंक की स्थापना के बाद विदेशी विनिमय व्यापार करने की इसे स्वतंत्रता दी गई फिर भी इम्पीरियल बैंक ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। अब १९३६ में सेंट्रल बैंक ऑफ इन्डिया ने अपनी एक शाख विदेशी विनिमय कार्य के लिये लन्दन में सेंट्रल एक्सचेन्ज बैंक ऑफ इन्डिया के नाम से खोली थी परन्तु १९३८ में उसका अन्तर्भाव (Absorption) बर्कले बैंक में हो गया। १९४६ में बैंक ऑफ इन्डिया ने इस कार्य को आरम्भ किया तथा लन्दन में एक शाखा की स्थापना की है एवं १९५० में इसने अपनी एक शाखा जापान में भी खोली है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय अधिकोषों के हाथ में ही यह व्यापार केन्द्रित रहे जिससे लाखों रुपयों की अदृश्य आयात (Invisible Imports) रोकी जा सके। इन कारणों के अतिरिक्त निम्न कारणों की वजह से भी भारतीय अधिकोष इस कार्य को न अपना सके :—

(i) विदेशी विनिमय कार्य करने के लिए कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता थी; परन्तु जहाँ भारतीय व्यापार के लिए ही कुशल कर्मचारी उपलब्ध नहीं थे वहाँ विदेशी विनिमय के विशेषज्ञ भारत में प्राप्त होना तो असंभव ही था।

(ii) यदि भारतीय अधिकोष विदेशों में अपनी शाखाएं खोलते भी तो वहाँ वे अपनी कार्यशील पूंजी के लिए अधिक निक्षेप प्राप्त नहीं कर सकते थे जैसा कि विदेशी अधिकोषों को प्राप्त है क्योंकि भारतीय अधिकोषण की

कार्यक्षमता विदेशी अधिकोषों की तुलना में कम थी तथा विदेशियों में राष्ट्रीय भावना भी अधिक तीव्रता से काम करती है जिसका भारतीयों में आज भी अभाव है।

(iii) केंद्रीय अधिकोषण जाँच-समिति के अनुसार भारतीय अधिकोष अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-विपणियों से सम्पर्क नहीं रख सकते थे क्योंकि उनके प्रधान कार्यालय भारत में थे। इस कारण उनको न तो अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा परिस्थिति का यथावत ज्ञान ही हो सकता था और न उन्हें आयात निर्यात विपत्र ही संग्रहण के लिए मिल सकते थे। ये सुविधाएं विदेशी अधिकोषों को प्राप्त हैं क्योंकि उनके प्रधान कार्यालय विदेशों में हैं।

(iv) भारतीय अधिकोषों के आर्थिक साधन बहुत कम थे तथा उनका व्यापार क्षेत्र अधिक था, जिसकी वजह से विदेशी विनिमय-व्यापार की अपेक्षा उनके साधनों का भारत में ही अधिक लाभदायक उपयोग हो सकता था, इस वजह से भी भारतीय अधिकोषों ने विदेशी विनिमय-व्यापार की ओर दुर्लक्ष किया।

(v) इसके अतिरिक्त भारतीय अधिकोषों को विदेशों में शाखाएं स्थापित करने के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता थी और है भी। इसके साथ ही वह शाखा कुछ वर्षों तक हानि होते हुए भी चालू रहनी चाहिये, परंतु ऐसा करने के लिए आज भी अधिकतर अधिकोषों के पास पर्याप्त आर्थिक साधन नहीं है जिसकी वजह से भारतीय अधिकोष इस व्यापार को न अपना सके।

(vi) विदेशी अधिकोषों की कट्टर प्रतियोगिता।

विनिमय अधिकोषों के कार्य : विदेशी विनिमय अधिकोष भारत के विदेशी व्यापार में निम्न कार्य करते हैं :—

(i) भारत के विदेशी व्यापार को विदेशी विनिमय-विपत्रों के आहरण, स्वीकृति तथा अपहरण द्वारा अर्थिक सहायता देना जिससे भारतीय बन्दरगाहों से विदेशी बन्दरगाहों पर तथा विदेशी बन्दरगाहों से भारतीय बन्दरगाहों पर वस्तुओं का आयात निर्यात हो सके।

(ii) भारत के बन्दरगाहों से आन्तरिक शहरों एवं व्यापारिक केंद्रों में माल पहुँचाना तथा भारत के व्यापारिक केन्द्रों एवं आंतरिक शहरों से निर्यात के लिए बन्दरगाहों पर माल पहुँचाने की सुविधाएँ देना।

(iii) अन्य अधिकोषण क्रियाएँ करना जैसे विदेशों में राशिस्थानांतरण की सुविधाएँ देना, विदेशी विपत्रों का अपहरण, निक्षेपों की स्वीकृति तथा आंतरिक व्यापार की सुविधाएं देना आदि।

इनकी कार्य पद्धति : इनमें से पहिले कार्य में आर्थिक सुविधाएँ निम्न रीति से दी जाती हैं :—

(i) विशेषतः ऐसा होता है कि विदेशी आयात-कर्ता अपने लंदन अधिकोष से साख सुविधाएं प्राप्त करता है जिसकी सूचना वह भारत स्थित विनिमय-अधिकोष द्वारा निर्यात-कर्ता को देता है। इस साख पर निर्यात-कर्ता उस व्यापारी के नाम विपत्रों का आहरण करता है जिसके साथ वहन पत्र, गोप लेख, बीजक तथा कभी-कभी संवेष्टन पत्र भी लगा देता है। ये विपत्र वह भारत स्थित विनिमय-अधिकोष को बेचकर राशि प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार भारतीय व्यापारी को उसकी निर्यात वस्तुओं का मूल्य मिल जाता है।

इस प्रकार के विपत्र दृश्य-विपत्र होते हैं जिनकी अवधि ६० दिन की होती है तथा दो प्रकार से लिखे जाते हैं :—

१. शोधन प्रलेख (Documents against Payment) तथा Delivery

२. स्वीकृति प्रलेख (Documents against Acceptance)

शोधन प्रलेखों की राशि विनिमय अधिकोषों की लंदन स्थित शाखाओं को व्यापारी से तत्काल ही मिल जाती है जिससे उनको जो रुपया उन्होंने भारत में दिया उसका भुगतान इङ्गलैंड में स्टर्लिंग में मिल जाता है। इन विपत्रों पर व्याज दर कम लगती है।

स्वीकृति प्रलेख : यदि स्वीकृति प्रलेख हुआ तो भारतीय व्यापारी को तत्काल ही व्याज आदि काटकर राशि दे दी जाती है। इस विपत्र को विनिमय अधिकोष अपनी लंदन स्थित शाखा में भेज देता है जहाँ पर वह व्यापारी के अधिकोष द्वारा स्वीकृत करा लिया जाता है। इस प्रकार स्वीकृति प्राप्त करने पर उस विपत्र को लंदन मुद्रा-विपणि में अपहृत कराकर स्टर्लिंग में राशि मिल जायगी। ये विपत्र दो अंग्रेजों के हस्ताक्षर होने पर बैंक ऑफ इङ्गलैंड से भी अपहृत कराया जा सकता है।

इस प्रकार दोनों ही दशाओं में विनिमय अधिकोषों को अपनी भारत में दी हुई राशि का भुगतान इङ्गलैंड में मिल जाता है। दूसरे प्रकार के विपत्रों पर व्याज की दर अधिक होती है क्योंकि उनका भुगतान स्वीकृत होने के ६० दिन बाद मिलता है अतः इस अवधि के लिए विनिमय अधिकोष व्याज लेता है।

कभी-कभी जब इङ्गलैंड का आयात-कर्ता इङ्गलैंड के अधिकोष से अनिरसनीय साख पत्र (Irrevocable letter of Credit) नहीं प्राप्त

करता तो उस दशा में विपत्र का अपहरण कर निर्यातकर्ता उसे विदेशी विनिमय अधिकोष के माध्यम से संग्रहण के लिये भेजता है। इस दशा में व्यापारी को विपत्र की अवधि समाप्त होने तक राशि नहीं मिलती, यदि वह स्वीकृति-प्रलेख है तब। परन्तु यह पद्धति विशेष प्रचार में न होते हुए, इङ्गलैंड के सभी आयातकर्ता अनिरसनीय साख पत्र प्राप्त कर लेते हैं। इन व्यवहारों के लिये विनिमय अधिकोषों की शाखा आयात एवं निर्यात केन्द्रों में होना आवश्यक होता है, जिससे इस प्रकार के व्यवहारों में सुगमता होती है।

(ii) जब कोई भारतीय व्यापारी इङ्गलैंड से माल आयात करता है तो उस दशा में भी ६० दिन अवधि के शोधन प्रलेख निर्यातकर्ता भारतीय आयात कर्ता के नाम लिखता है तथा उनका अपहरण वह लंदन के किसी ऐसे अधिकोष से करा लेता है जिसकी शाखा भारत मे है। इस विपत्र का 'विनिमय अधिकोष' के नाम से उपप्राधीयन (Hypothecation) कराकर लंदन अधिकोष इसे भारत स्थित विनिमय अधिकोष के पास भेज देता है। यदि यह शोधन-विपत्र है तो भारतीय आयातकर्ता से तुरंत ही उसे भुगतान मिल जायगा तथा भारतीय व्यापारी को माल मिल जायगा। परन्तु यदि स्वीकृति विपत्र हुआ तो स्वीकृति करने के बाद उसे माल मिल जायगा। तथा परिपक्व तिथि पर विनिमय अधिकोष उससे राशि ले लेगा। ये विपत्र ६० दिन अवधि के होने की वजह से भारतीय व्यापारी को शोधन विपत्र का भुगतान करने के लिए ६० दिन की अवधि मिलती है जिस समय में वह राशि की व्यवस्था कर सकता है। परन्तु यदि वह भुगतान करने के पूर्व माल लेना चाहता है तो उस दशा में उसे प्रन्यस्त प्राप्ति (Trust Receipt) लिखकर विनिमय अधिकोष को देनी पड़ेगी, जिससे भुगतान समय पर न होने पर वह व्यापारी के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही कर सकेगा। यह पद्धति भारतीय आयात कर्ताओं में विशेष रूप से प्रचलित है। इस सुविधा के लिये ब्याज देना होगा।

इसकी दूसरी पद्धति है जो यूरोपीय सार्थों में ही प्रचलित हैं। इस पद्धति के अनुसार यदि माल का आयात किसी ऐसी व्यापारी संस्था ने किया हो जिसकी शाखा इङ्गलैंड में भी है तो निर्यात-कर्ता लंदन मुद्रा-विपणि पर विपत्र लिखेगा जिसकी स्वीकृति होने पर निर्यात-कर्ता अपहरण कराकर अपने निर्यात माल का मूल्य प्राप्त कर लेगा। जिस अधिकोष ने इस विपत्र को स्वीकृत किया है वह अधिकोष उस विपत्र को अपनी भारतीय शाखा में भेजेगा तथा यह शाखा इस विपत्र की राशि निर्यातकर्ता के भारतीय कार्यालय से प्राप्त कर लेगी—इस प्रकार इस पद्धति में आयात-कर्ता को भुगतान करने के

लिये ६० दिन की अवधि मिल जाती है तथा निर्यात-कर्ता को भी राशि मिल जाती है। भारत स्थित विनिमय-अधिकोप इस प्रकार संग्रहित राशि को अपने लंदन कार्यालय में भेज देगा जिससे वह उस विपत्र का भुगतान परिपक्व तिथि पर कर सकेगा। इस प्रकार के व्यवहार तभी संभव होते हैं जब आयातकर्ता और निर्यात-कर्ता सार्थ एक ही हों; जैसे मेसर्स ग्रिफिन एन्ड टैटलॉक, लंदन तथा ग्रिफिन एन्ड टैटलॉक, कलकत्ता।

बंदरगाहों से आंतरिक व्यापार केन्द्रों में माल पहुँचाना तथा व्यापारिक केन्द्रों से बंदरगाहों पर माल ले जाने में आर्थिक सहायता देना।

इनको यह कार्य करना इसीलिये संभव होता है कि इन्होंने अपनी शाखाएँ केवल बंदरगाहों अथवा आयात निर्यात केन्द्रों तक ही सीमित न रखते हुए देश के व्यापारिक केन्द्रों में भी खोल रखीं हैं। इस प्रकार विनिमय अधिकोपों की १९४७ में भारत में कुल शाखाएं निम्न प्रकार से थीं :—

लायड्स बैंक	१८	कार्यालय	संख्या
ग्रिन्डले बैंक	१४	,,	,,
नैशनल बैंक ऑफ इंडिया	११	,,	,,
चार्टर्ड बैंक ऑफ इंडिया	६	,,	,,
मर्केन्टायल बैंक	८	,,	,,

तथा शेष २० कार्यालय अन्य विनिमय अधिकोपों के थे। इसके अतिरिक्त कुछ विदेशी विनिमय अधिकोपों ने भारतीय अधिकोपों के अंश खरीद कर उन पर भी अपना प्रभुत्व एवं नियंत्रण कर रखा है जैसे चार्टर्ड बैंक ऑफ इंडिया, आस्ट्रेलिया एवं चायना ने अलाहाबाद बैंक के अधिकांश अंश खरीद लिये हैं जिनकी संख्या केन्द्रीय अधिकोपण जांच-समिति के वृत्तलेख के अनुसार १९२७ में १९६०५९ थी, जब कि कुल अंशों की संख्या २५६४१६ थी। जिससे देश के आंतरिक व्यापार का भी बहुत सा भाग उनको मिल जाता है—१९५५ में अलाहाबाद बैंक की कुल शाखाएं ७५ थीं।

अब मान लीजिये कि कानपुर का कोई व्यापारी लंदन से आयात करता है तो उसके नाम आहरित किया हुआ विपत्र चार्टर्ड बैंक की कानपुर शाखा को भेज दिया जायगा जहाँ पर उसे वहनपत्र आदि मिल जायेंगे तथा वह भुगतान भी कर देगा। इसी प्रकार यदि उसे निर्यात करना है तो वह अपना लंदन के व्यापारी अथवा अधिकोप पर आहरित किया हुआ विपत्र स्थानीय शाखा को देकर अपना भुगतान वहीं पर प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार इनकी शाखाएँ होने से व्यापारी का आयात निर्यात में व्यय भी कम होता है तथा

सुगमता भी होती है क्योंकि उनको वहीं रहते हुए आयात निर्यात एवं विदेशी विनिमय की सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं और बंदरगाहों तक जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

३. अन्य अधिकोषण क्रियाएँ : उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त ये भारतीय जनता से माँग पर दिये जाने वाले निक्षेप भी लेते हैं तथा इन पर ब्याज देते हैं; अभिकर्तृत्व सुविधाएं देते हैं तथा भारतीय व्यापारियों को ऋण आदि की सुविधाएँ देते हैं। आंतरिक व्यापार को भी ये आर्थिक सहायता देते हैं जिसकी वजह से ये भारतीय अधिकोषों के प्रतियोगी बन बैठे हैं तथा इनके आर्थिक साधन इत्यादि भी अधिक सुदृढ़ होने की वजह से भारतीय अधिकोष इनकी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। यही कारण है कि इनके निक्षेप भी भारतीय अधिकोषों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। क्योंकि भारतीय जनता का विश्वास आज भी इनमें बहुत अधिक है। ये स्वर्ण चांदी का क्रय विक्रय भी करते हैं तथा आन्तरिक विपत्रों का अपहरण करते हैं और अन्य सभी कार्य करते हैं जो भारतीय संयुक्त स्कंध अधिकोषों के हैं। इन्होंने कई व्यापारों को तो आर्थिक सहायता देने का एकाधिकार सा स्थापित कर लिया है जो इनको विदेशी विनिमय व्यापार से भी अधिक लाभदायक होता है जैसे दिल्ली तथा अमृतसर का वस्त्र व्यवसाय, कानपुर का चर्म व्यवसाय आदि।

विनिमय अधिकोषों की कार्य-पद्धति की त्रुटियाँ एवं उनके दोष : इनकी कार्य-पद्धति एवं क्रियाओं के विरुद्ध अनेक आक्षेप हैं जो भारतीय दृष्टि से अहितकर है। उन्होंने अपना व्यापार केवल विदेशी विनिमय तक ही सीमित न रखते हुए अन्य अधिकोषण कार्यों को भी अपनाया जिनकी वजह से भारतीय अधिकोष पनप नहीं सके। इतना ही नहीं अपितु इन्होंने भारतीय अधिकोषों की कट्टर प्रतियोगिता की। केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति[1] के सामने जो भारतीय व्यापारियों एवं अधिकोषों की साक्ष्य हुई उससे उनकी कार्य-पद्धति पर एवं दोषों पर समुचित प्रकाश पड़ता है। इनकी मुख्य त्रुटियाँ निम्न हैं :—

१. विदेशी विनिमय अधिकोषों के प्रधान कार्यालय विदेशों में हैं जहाँ से उनकी नीति का सूत्र-संचालन होता है, जो भारतीयों के हित में कभी नहीं हो सकता और न उससे भारत का विदेशी व्यापार ही पनपने पाया क्योंकि वे भारतीय परिस्थिति से सदा अनभिज्ञ बने रहे। भारतीयों का इनकी नीति निर्धारण में कोई हाथ न रहा।

[1] *Page* 320—324

२. इनका पंजीयन एवं समामेलन विदेशों में होने के कारण उनकी शाखाएँ स्वतंत्ररूप से यहाँ काम करती हैं तथा उनके ऊपर भारतीय विधान के अन्तर्गत कोई भी नियंत्रण अथवा निर्बन्ध लागू नहीं होते।

३. भारतीयों को उनकी आर्थिक स्थिति का पूरा-पूरा विवरण भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि उनका भारत के कार्य सम्बन्धी कोई भी अलग स्थिति-विवरण आदि प्रकाशित नहीं होता है, जिससे भारतीय निक्षेपकों की पूर्ण सुरक्षा नहीं हो सकती।

४. आयात निर्यात विपत्रों का आहरण स्टर्लिंग अथवा विदेशी मुद्रा में होने के कारण उनका अपहरण केवल विदेशी मुद्रा-विपणियों में ही होता है जिससे यहाँ की मुद्रा-विपणि को इन विपत्रों से किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं मिलता और न विपत्र-विपणि का ही विकास होता है। यदि ये आयात निर्यात विपत्र भारतीय मुद्रा में आहरित किये जायं तो भारतीय आयात-कर्ताओं को अवश्य ही लाभ होगा, जिसके न होने से आजकल यह लाभ केवल विदेशियों को ही मिलता है।

५. यह अधिकोष भारतीय आयात-कर्ताओं को विशेष सुविधा नहीं देते क्योंकि इनके ऊपर आहरित किये जाने वाले विपत्र शोधन-प्रलेख होते हैं। परन्तु विदेशियों पर आहरित किये जाने वाले विपत्र स्वीकृति-प्रलेख होते हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि भारतीय आयात-कर्ताओं को प्रन्यास-प्राप्ति लिख देने पर माल का प्रदान तत्काल हो जाता है परन्तु इस प्रकार की प्राप्ति से वस्तुओं पर वैधानिक अधिकार विनिमय-अधिकोषों का ही रहता है।

६. विनिमय-अधिकोष भारतीयों को साखपत्र की सुविधाएँ नहीं देते और यदि देते भी हैं तो उन्हें जिस राशि की सुविधाएँ दी जाती हैं उस राशि की १५ से २५% राशि विनिमय-अधिकोषों के पास जमा करनी पड़ती है क्योंकि विनिमय अधिकोषों की दृष्टि से इनके आर्थिक साधन पर्याप्त नहीं होते। परन्तु यह बात विदेशी आयातकर्ताओं के लिये लागू नहीं है।

७. केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति को इस प्रकार के प्रमाण भी दिये गये हैं कि विनिमय-अधिकोष भारतीय व्यापारियों के साख का सत्य एवं पूर्ण विवरण नहीं देते, इतना ही नहीं अपितु भारतीयों की आर्थिक परिस्थिति के विषय में विरोधी आर्थिक दशा बताते हैं तथा विदेशियों का विवरण सही सही देते हैं; जिससे भारतीय व्यापारियों को विदेशी व्यापार में अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है तथा इसके साथ ही भारत के विदेशी व्यापार पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

८. विनिमय-अधिकोषों ने विदेशी-व्यापार को भारतीयों के हाथ से निकाल कर विदेशियों को देने में भी अनेक अनुचित कार्यों का उपयोग किया, जिससे विदेशी व्यापार में भारतीयों का भाग केवल १५% प्रतिशत ही रहा।

९. विनिमय-अधिकोषों की कार्य-पद्धति ऐसी रही है जिससे भारतीय वहन-व्यवसाय (Shipping Industry) तथा आगोप-प्रमंडलों को इन्होंने प्रगति नहीं करने दी तथा विदेशी प्रमंडलों को प्रोत्साहित किया क्योंकि जो भारतीय इनसे आर्थिक व्यवहार करते हैं उनको ये बाध्य करते हैं कि वे अपना माल विदेशी जहाजों द्वारा भेजें तथा गोप-लेख भी विदेशी आगोप-प्रमंडलों से प्राप्त करें। इससे भारतीय आगोप-प्रमंडलों को होने वाली हानि २ से ३ करोड़ तक आँकी गई है।[1]

१०. भारतीयों से विनिमय-अधिकोष अधिक परिमाण में निक्षेप स्वीकृत करते हैं जिससे वे विदेशी व्यापार करते हैं। इससे भारतीय संयुक्त-स्कंध अधिकोषों को व्यापारिक हानि तो होती ही है, इसके अतिरिक्त उस निक्षिप्त राशि से होने वाला लाभ भी विदेशियों को मिलता है तथा भारतीय भुगतान शेष (Balance of Payments) पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

११. इन्होंने भारतीय मुद्राविपणि को भी दो भागों में विभक्त कर दिया है, जिसमें विदेशी विनिमय-अधिकोषों का विदेशी भाग पर अत्यधिक प्रभाव रहा तथा इनको विदेशी मुद्राविपणियों के सम्पर्क में रहने से ऋण-प्रदायक राशि का भी कभी अभाव नहीं रहा; जिसकी वजह से मुद्राविपणि के इस अंग पर रिज़र्व बैंक का प्रभाव भी विशेष न रहने से मुद्राविपणि का संगठन एवं नियंत्रण न हो सका।

१२. विदेशी अधिकोष भारतीयों की निक्षिप्त राशि से विदेशी व्यापार कर विदेशियों को आर्थिक प्रोत्साहन देते रहते हैं जिससे देशी उद्योग-व्यवसाय को हानि होती है तथा देशी पूंजी विदेशियों के हाथ में चली जाती है।

१३. विदेशी विनिमय-अधिकोष पिछली एक शताब्दी से यहाँ काम करते हैं परन्तु इन्होंने भारतीयों की उच्च स्थान पर नियुक्ति नहीं की और न भारतीयों को विदेशी विनिमय-व्यापार की कार्यक्षमता एवं शिक्षा प्राप्त करने का अवसर एवं सुविधाएं ही दीं, जिससे भारतीय अधिकोष इस व्यापार को अपनाने में हमेशा कार्यक्षम कर्मचारियों को प्राप्त न कर सके। इससे भारत की अपरिमित हानि हुई।

---

[1] *An Outline of Banking System in India*— M. V. Subbarao.

१४. भारतीय व्यापारी जब विदेशों को माल निर्यात करते हैं तो उनके विपत्रों का अपहरण बिना किसी पर्याप्त प्रतिभूति लिये विदेशी विनिमय अधिकोप नहीं करते परन्तु विदेशीय निर्यातकों से इस प्रकार की प्रतिभूति न लेते हुए उनके विपत्रों का अपहरण करते हैं।

१५. विदेशी विनिमय-अधिकोपों का भारतीय समाशोधन गृहों में अधिक सदस्यता होने से अधिक प्रभाव रहता है जिससे भारतीय अधिकोपों को सदस्यता से वंचित करने का प्रयत्न करते हैं तथा "विनिमय अधिकोप संघ" (Exchange Banks Association) की सदस्यता भी भारतीयों को नहीं मिलती इसके साथ ही इस संघ के नियमों में भारतीय व्यापारियों के परामर्श से बिना ही परिवर्तन करते रहते हैं तथा ये नियम विशेषतः ऐसे होते हैं जिससे भारतीय व्यापारियों को विशेष असुविधाएँ होती हैं।

इसके अतिरिक्त गत २५ वर्षों से विदेशी विनिमय-अधिकोप भारत के व्यापारिक केन्द्रों में अपनी शाखाएं स्थापित करके संयुक्त-स्कंध अधिकोपों की भी प्रतियोगिता करते हैं, जिससे भारत को आर्थिक हानि होती है तथा अधिकोपण विकास समुचित रूप से होने नहीं पाता। इन उपर्युक्त कारणों की वजह से भारतीय व्यापारियों एवं अधिकोपों ने इनके विरुद्ध अनेक आक्षेप किये।

विदेशी विनिमय अधिकोपों की भारत को देन :

उपर्युक्त आक्षेपों के होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि इन्होंने ही भारत में आधुनिक अधिकोपण पद्धति का बीजारोपण किया, भारतीयों में अधिकोपण प्रवृत्ति का निर्माण किया तथा अधिकोपों में जनता का विश्वास निर्माण किया। इसी प्रकार इन्होंने प्रथम महायुद्ध काल तक एवं प्रथम युद्ध काल में अपनी विशेष स्थिति की वजह से विदेशी विनिमय की सुविधाएं दीं तथा भारत को अंतर्राष्ट्रीय एवं विदेशी व्यापार बढ़ाने में प्रोत्साहन दिया। और यह सब उन्होंने ऐसी विषम एवं विरोधी परिस्थितियों में किया, जब देश में न तो कोई भारतीय अधिकोप ही थे और न जनता को अधिकोपों में विश्वास ही था और न विदेशी व्यापार के लिये विशेष आर्थिक सुविधाएँ ही उपलब्ध थीं।

किन्तु १९३५ से परिस्थिति बदल चुकी है, देश में अनेक अधिकोपण संस्थाएँ स्थापित हो चुकी हैं तथा उनमें कई तो विदेशी-विनिमय व्यापार करने के लिये पूर्णतः समर्थ हैं। परन्तु यह काम तभी हो सकता है जब विदेशी

विनिमय-अधिकोषों की प्रतियोगिता से भारतीय अधिकोषों को बचाया जाय, तथा भारतीय अधिकोषों को विनिमय-व्यापार करने के लिये अधिक सुविधाएँ दी जायँ तथा भारतीयों में भी राष्ट्रीय-जागरण हो जिससे वे विदेशियों की अपेक्षा भारतीय व्यापारियों को तथा भारतीय अधिकोषों को प्रोत्साहन देने के लिये उनके पास ही अपने निक्षेप रखकर उनके आर्थिक साधन सुदृढ़ बनावें।

विदेशी विनिमय अधिकोषों का नियंत्रण : अब भारतीय स्वतंत्रता के साथ विदेशी विनिमय अधिकोषों को भी भारतीय अधिकोषों का सहयोगी बनना चाहिये तथा उनकी व्यापारिक प्रवृत्ति में परिवर्तन करना चाहिये। देश की स्वतंत्रता के साथ एवं रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीयकरण हो जाने से यह आशा थी भारत स्थित विदेशी विनिमय अधिकोषों पर कुछ वैधानिक नियंत्रण लगाये जायेंगे परन्तु खेद है कि ऐसा न हुआ। १९४९ के भारतीय अधिकोषण विधान की धारा ११ (२) के अनुसार केवल उनपर पूँजी एवं निधि सम्बन्धी नियंत्रण लगाया गया तथा धारा २२ (१) के अनुसार अनुज्ञापत्र रिज़र्व बैंक से प्राप्त करना अनिवार्य बनाया गया है। परन्तु यह आसानी से प्राप्त हो सकता है एवं बिना किन्हीं निर्बन्धों के। किंतु राजनैतिक परिस्थिति के परिवर्तन के साथ भी इनके नियंत्रण की अधिक आवश्यकता हो जाती है जिससे ये भारतीय अधिकोषों की प्रतियोगिता न कर सकें।

इस प्रतियोगिता को नियंत्रित करने के लिये केवल तीन ही मार्ग हो सकते हैं।

१. वर्तमान विदेशी विनिमय-अधिकोषों के व्यापारिक कार्यों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए जायँ।

२. विदेशी अधिकोषों को अनुज्ञापत्र देने की पद्धति का अवलम्ब किया जाय, तथा

३. भारतीयों को विदेशी विनिमय क्षेत्र में लाने के लिये अधिक प्रोत्साहन मिलें।

इस हेतु केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति ने मुक्त-व्यापार नीति (Free Trade Policy) का परित्याग करने के लिये सुझाव रखा था जिससे कोई भी विदेशी अधिकोष अपनी शाखा भारत में स्थापित न कर सके। दूसरा सुझाव यह था कि भारत स्थित विदेशी अधिकोषों को केन्द्रीय अधिकोष से—जर्मनी इटली, कैनाडा आदि देशों की भांति-अनुज्ञापत्र प्राप्त किये बिना व्यापार करने की स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिये। यह अनुज्ञापत्र देने अथवा न देने का अधिकार भी केन्द्रीय अधिकोष को प्राप्त होना चाहिये। इस सम्बन्ध में समिति का

यह मत था कि ऐसा करने से विदेशों में भारतीय अधिकोषों के साथ परस्पर व्यवहार अच्छा होगा, निक्षेपकों का हित होगा तथा रिज़र्व बैंक को देश के विनिमय अधिकोषों पर नियंत्रण करने का अधिकार मिलेगा।[1] कुछ साक्षियों का ऐसा भी कहना था कि विदेशी अधिकोषों का व्यापारिक क्षेत्र भी सीमित कर देना चाहिये जिससे वे भारतीयों के निक्षेप न ले सकें परन्तु समिति इस सुझाव के विरुद्ध थी (पृष्ठ ३३६)। इसके अतिरिक्त अधिकांश सदस्यों का यह मत था कि वर्तमान अधिकोषों के लिये अनुज्ञापत्र दे देना चाहिये तथा उनको भविष्य में शाखा खोलने के लिये भी नियंत्रित कर देना चाहिये। परन्तु इन सुझावों का विरोध विदेशी विशेषज्ञों ने तथा इम्पीरियल बैंक के प्रतिनिधियों ने किया, क्योंकि उनका कहना था कि विदेशी अधिकोषों के पास पर्याप्त साधन होने की वजह से उनको इस विषय में पूर्ण स्वातन्त्र्य होना चाहिये। दूसरे, समिति भी इस विचार से सहमत नहीं थी क्योंकि इसका प्रभाव विदेश-स्थित भारतीय अधिकोषों पर भी पड़ता, जो उस समय तक इस क्षेत्र में नहीं थे। समिति के अन्य सुझाव निम्नलिखित हैं :—

१. भारतीय आगोप-प्रमंडलों को प्रोत्साहन देने के लिये समिति ने यह सुझाव रखा कि विनिमय-अधिकोष भारतीय आगोप-प्रमंडलों के साथ समझौता करलें जिससे उनके गोप-लेख वे मान्य किया करें तथा उनकी आर्थिक परिस्थिति की जाँच पड़ताल के लिये उनसे स्थिति-विवरण अथवा अन्य किसी प्रकार के सामयिक विवरण लिया करें।

२. विदेशी अधिकोषों को उच्च अधिकारियों के पदों पर भारतीयों की नियुक्ति करनी चाहिये तथा इस व्यवसाय की शिक्षा-प्राप्त करने के लिये भारतीयों को पर्याप्त सुविधाएँ देनी चाहियें। इससे उनका भारतीयों के साथ अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है।

३. इन्हें भारतीय अधिकोषों के साथ भी समझौता कर लेना चाहिये जिससे भारतीय अधिकोष भी इस व्यापार को कर सकें। ऐसी दशा में विनिमय व्यापार से होनेवाला लाभ विदेशी एवं देशी अधिकोषों में विभाजित कर लिया जाय जिससे पारस्परिक सहयोग बढ़ सकेगा।

---

[1] *The introduction of a similar system .. is necessary partly in the interests of the depositors, partly for sensiiring the grant of reciprocal treatment in foreign countries to Indian Banks and partly for giving the Reserve Bank some control over the banks operating in this country.*

—Pp. 329—30

४. विदेशी विनमय-अधिकोषों की शाखाओं पर एक 'स्थानीय सलाहकार समिति' भी होनी चाहिये जो इन अधिकोषों की ऋण-नीति का निर्धारण किया करे तथा उन्हें भारतीय आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए सलाह दिया करे। यह आवश्यक नहीं कि सलाहकार समिति की सलाह अधिकोषों को मान्य ही हो। इस प्रकार की स्थानीय समितियों से भारतीय व्यापारियों के साथ उनके अच्छे सम्बन्ध हो सकते हैं।

५. 'विनिमय अधिकोष संघ' की सदस्यता भारतीय अधिकोषों के लिये भी खुली रहे तथा संघ के नियमों का परिवर्तन अथवा संशोधन भारतीय व्यापारियों के परामर्श से हो। इससे भारतीयों को उनकी सूचना मिलती रहेगी और भारतीय आवश्यकताओं को ध्यान में भी रखा जा सकेगा तथा इन नियमों की पूर्ति करने में भी भारतीय व्यापारियों को जानकारी होने की वजह से सुविधा होगी।

६. समिति की यह भी सिफारिश थी कि विदेशी अधिकोष अपनी कार्य-पद्धति में भारतीयों को अधिक सुविधाएं देने की दृष्टि रखें अर्थात् वे भारतीयों को उनकी इच्छानुसार निर्यातकर्ताओं को देशी मुद्रा में विपत्र आहरित करने की सुविधाएँ दें जो भारत में अपहृत हो सकेंगे तथा भारतीय विपत्र-विपणि भी विकसित हो सकेगी। इसी प्रकार आयात व्यापारियों के विपत्रों को खरीदने के स्थान पर उनको स्वीकृत किया करें जिससे उनका अपहरण लंदन मुद्रा विपणि में हो सकेगा तथा भारतीयों को वहाँ की सस्ते व्याजदरों का लाभ प्राप्त हो सकेगा। इतना ही नहीं अपितु इस प्रकार की स्वीकृति एवं सुविधाएँ भारतीय व्यापारियों को बिना किसी प्रकार की प्रतिभूति के देनी चाहियें।

उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त कुछ भारतीय अर्थशास्त्रियों की, जिनमें श्री मनु सुबेदार तथा श्री० सरकार प्रमुख थे, सम्मति यह थी कि विनिमय अधिकोषों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जावे क्योंकि अधिकोषण व्यवसाय का देश की आर्थिक स्थिति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इनकी यह भी सम्मति थी कि अनुज्ञापत्र स्वीकृत करने, नवकरण करने तथा रद्द करने सम्बन्धी सब अधिकार रिज़र्व बैंक को होने चाहियें तथा अनुज्ञापत्र स्वीकृत करने के लिए निम्न निर्बन्धों का पालन विनिमय अधिकोषों द्वारा होना चाहिये था:—

१. (i) निक्षेप : पहिला निर्बन्ध निक्षेप सम्बन्धी था कि भारत में केवल वे ही अधिकोष निक्षेप स्वीकार करें जिनका समामेलन भारत में हुआ हो अथवा जिनके संचालक भारतीय हों—परन्तु इस निर्बन्ध का विरोध हुआ अतः समिति ने इसे छोड़ दिया।

(ii) विदेशी अधिकोषों को उनकी कार्यशील पूँजी का ४०% प्रतिशत भाग विदेशों से लाना चाहिये तथा शेष भारत में लेना चाहिये जिससे भारतीयों का कुछ नियन्त्रण रहे। भारत में उन्हें केवल उतने ही निक्षेप लेने चाहियें जितने भारत के विदेशी व्यापार के लिए आवश्यक हैं। दूसरा मत यह भी था कि इनके भारतीय निक्षेपों पर ½% की दर से निक्षेप कर भी लगाना चाहिये।

परन्तु समिति के सदस्यों की सम्मति थी कि यदि ऐसा प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो देश की अधिकोषण पद्धति पर बुरा प्रभाव होगा जिससे भारतीय व्यापारियों को अधिकोषण सुविधाएँ कम मिलेंगी।

२. दूसरा प्रतिबन्ध व्यापारिक क्षेत्र के विषय में था। विनिमय अधिकोष अपना व्यापार केवल बन्दरगाहों तक ही सीमित रखें तथा देश के व्यापारिक केन्द्रों में शाखाएँ न खोलें—परन्तु बहुमत इसका विरोधी था क्योंकि आन्तरिक केन्द्रों के व्यापारियों को विदेशी व्यापार की जो सुविधाएं मिलती थीं वे उन्हें प्राप्त न होतीं, इससे विदेशी व्यापार को भी धक्का लगता।

३. अनुज्ञापत्र देने के लिये तीसरा निर्बन्ध यह होना चाहिये कि विनिमय अधिकोषों का एक व्यवस्थापक तथा एक अधिकारी छोड़कर शेष कर्म-चारी भारतीय होने चाहियें जिससे विदेशी व्यापार का अनुभव भारतीयों को भी प्राप्त हो सके।

४. अनुज्ञा-प्राप्त अधिकोषों को अपना भारतीय-व्यापार सम्बन्धी स्थिति-विवरण, अन्य कोई विवरण एवं वृत्त-लेखों की प्रतिलिपि अनुज्ञा देने वाले अधिकारी को भेजनी चाहिये तथा इस अधिकारी को यह भी अधिकार हो कि वह जो भी कोई सूचना आवश्यक समझे वह इनसे प्राप्त कर सके।

५. अनुज्ञाप्राप्त विनिमय अधिकोषों को पुनः अपहरण की सुविधाएं देने न देने का तथा समाशोधन गृहों के सदस्य बनाने, न बनाने का अधिकार रिज़र्व बैंक को होना चाहिये।

६. अनुज्ञाप्राप्त अधिकोष किसी भी राष्ट्र विरोधी आन्दोलन अथवा प्रतिक्रियाओं में भाग न लें तथा जहाँ तक भारतीय व्यापार सम्बन्धी किसी भी वैधानिक कार्यवाही का सम्बन्ध है, भारतीय विधान उन पर लागू हो।

७. विदेशी अधिकोष भारतीय अधिकोषों का नियंत्रण करने के हेतु से भारतीय अधिकोषों के अंश आदि न खरीदें और न खरीदने की उन्हें अनुमति ही दी जाय।

८. भारतीय सम्पत्ति उनके हाथ में जाने से रोकने के लिए विदेशी अधिकोषों पर यह भी प्रतिबंध लगाया जाय कि वे प्रन्यास व्यापार (Trust-Business) भारत में न कर सकें।

भारतीय विनिमय-अधिकोष :

भारतीय व्यापारियों की असुविधाओं एवं भारतीय विदेशी व्यापार की उन्नति की दृष्टि से केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति ने यह सुझाव भी किया कि जो भारतीय अधिकोष अच्छी स्थिति में हैं उन्हें विदेशों में शाखाएँ खोलनी चाहियें और यदि वे अपनी शाखाएँ न खोल सकें तो विदेश स्थित अधिकोषों से अपने सम्बन्ध स्थापित कर लेने चाहियें जिससे वे अपने ग्राहकों को विदेशी व्यापार के लिए सुविधाएँ दे सकें तथा नई शाखाएँ खोलने में जो प्रारंभिक व्यय होता हैं वह भी न हो। उन्होंने यह भी सुझाव रखा कि रिज़र्व बैंक की स्थापना के बाद इम्पीरियल बैंक लंदन में शाखा होने से यह कार्य कर सकता है, अतः उसे इस व्यापार की ओर ध्यान देना चाहिये तथा रिज़र्व बैंक इस कार्य में उसे आवश्यक सहायता एवं सहायोग दे। कुछ सदस्यों का यह भी मत था कि भारतीय तथा विदेशी मिलकर संयुक्त विनिमय अधिकोषों की स्थापना करें, जिनकी पूंजी सम्मिलित हो तथा लाभ-वितरण भी समान हो। इसके अतिरिक्त कुछ सदस्यों का यह मत था कि विदेशी अधिकोषों की प्रतियोगिता भारतीय विनिमय अधिकोष नहीं कर सकते इसीलिये सरकार ही इस कार्य को अपनावे तथा एक भारतीय विनिमय अधिकोष की स्थापना करे जिसकी पूंजी तीन करोड़ हो तथा यह तीन वर्षों में भारतीय अधिकोषों से प्राप्त की जाय।

परन्तु इस प्रकार अनेक सुझावों के होते हुए भी इस दिशा में प्रत्यक्ष कार्य नहीं हो सका है, अपितु विदेशी विनिमय अधिकोषों का आज भी देश के अधिकोषण व्यवसाय पर पूर्ण प्रभाव है। विदेशी अधिकोषों ने भी इस सुझाव की ओर न तो कोई ध्यान दिया है और न कार्यप्रणाली में ही परिवर्तन किया है। हाँ, अधिकोषण विधान के अनुसार विदेशी अधिकोषों को अब रिज़र्व बैंक से धारा २२ के अनुसार अनुज्ञापत्र प्राप्त करना होगा तथा यह अनुज्ञापत्र उन्हें तभी प्राप्त हो सकता है जब वे इस विधान का पूर्णतः पालन करें। इम्पीरियल बैंक ने भी अभी तक इस व्यवसाय को नहीं अपनाया है। हाँ गत कुछ वर्षों में भारतीय अधिकोषों ने विदेशी अधिकोषों से समझौते कर सम्बन्ध प्रस्थापित कर लिये हैं जैसे बैंक ऑफ मैसूर ने ईस्टर्न बैंक से, पंजाब नेशनल बैंक ने मिडलैंड बैंक से आदि। अतः १९४९ से रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण होजाने से हम भविष्य के लिये यह आशा कर सकते हैं कि

विनिमय अधिकोपण क्षेत्र में भारतीय अधिकोषों की प्रगति अवश्य होगी तथा रिज़र्व बैंक भी इन्हें इस कार्य में पूर्ण रूप से सहयोग एवं सहायता देगा तथा हमारी राष्ट्रीय सरकार भी भारतीय अधिकोषों को अपना विनिमय व्यापार देने में सहयोग देगी।

प्रश्न संग्रह

१. भारत में विनिमय-अधिकोष कौनसे कार्य करते हैं ? उनके विरुद्ध कौनसे आक्षेप हैं ? (आगरा बी० कॉम १९४७)

२. "भारतीय अधिकोपण-पद्धति में विनिमय अधिकोष अनियंत्रणीय तथा असंविलीयनीय (unabsorbable) भाग है"—विवेचन कीजिये। (आगरा बी० काम० १९४५)

३. भारत स्थित विनिमय अधिकोषों की कार्यप्रणाली बताइये ? उनके विरुद्ध कौनसे आक्षेप हैं ? (इन्टर यू० पी० १९४२)

४. भारत स्थित विदेशी विनिमय अधिकोषों के नियंत्रण एवं सुधार के लिये केन्द्रीय अधिकोपण जाँच समिति के प्रस्ताव बताइये ? ये कहाँ तक कार्यान्वित हुए ?

५. विदेशी विनिमय अधिकोषों की कार्य-प्रणाली के कौन से दोष हैं ? किस तरह से उनका निवारण हो सकता है ?

६. देश के विदेशी व्यापार को विनिमय अधिकोष किस प्रकार आर्थिक सहायता देते हैं ? उनकी कार्य-प्रणाली में सुधार करने के लिए कुछ सुझाव कीजिये। (यू० पी० इन्टर १९४४)

अध्याय १७

रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया

जिस समय प्रथम युद्धकाल (१६१४-१६१६) में स्वर्ण-मान का विश्व के सब राष्ट्रों द्वारा परित्याग हो चुका था उस समय स्वर्ण-मान के पुन: संस्थापन के लिये जो अंतर्राष्ट्रीय अर्थ-परिषद ब्रुसेल्स में १६२० में हुई थी, उसमें "जिन देशों में केन्द्रीय अधिकोष नहीं हैं वहाँ पर शीघ्र ही केन्द्रीय अधिकोष की स्थापना की जाय" इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, जिसे सब राष्ट्रों की अनुमति प्राप्त थी। कुछ अंश में स्वर्ण-मान की कार्य-योजना को सफल बनाने के लिये एवं केन्द्रीय अधिकोष का अभाव दूर करने के लिये ही भारत में १६२० के विधान द्वारा इम्पीरियल बैंक की स्थापना हुई परन्तु यह अधिकोष इस कार्य को नहीं कर सका और न कर सकता ही था, इस हेतु केन्द्रीय अधिकोष की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। वैसे तो चेम्बरलेन समिति १६१३ के वृत्त-लेख के साथ ही प्रो० कीन्स की केन्द्रीय अधिकोष की योजना प्रकाशित हुई थी किन्तु हमारी विदेशी सरकार ने उस ओर दुर्लक्ष्य किया। इस प्रश्न की पुनरावृत्ति १६२७ में हिल्टन यंग समिति ने की तथा उन्होंने सिफ़ारिश की कि चलन एवं साख का समुचित नियंत्रण करने के लिये शीघ्रातिशीघ्र इसकी स्थापना की जानी आवश्यक है। इसी प्रकार भारतीय अर्थशास्त्रियों में से अनेकों का यह विचार था कि अधिकोषण एवं साख व्यवस्था के सुसंचालन के लिये ऐसे अधिकोष की आवश्यकता थी।

रिज़र्व बैंक की स्थापना क्यों? इसकी स्थापना की आवश्यकता निम्न कारणों से थी।

१. रुपये के अंतर्बाह्य मूल्य में स्थायित्व लाने की आवश्यकता थी, जो कार्य केवल रिज़र्व बैंक ही कर सकता था। क्योंकि रुपये के मूल्य में आंतरिक परिवर्तन होने का कारण मुद्रा का आवश्यकतानुसार संकोच एवं प्रसार न होता था। जिसकी आवश्यकतानुसार पूर्ति अथवा संकोच रिज़र्व

बैंक पत्र-मुद्रा चलन एवं सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय का एक मात्र अधिकारी होने के रूप में कर सकता था।

इसी प्रकार रुपये की आंतरिक मूल्य-स्थिरता पर उनका वाह्य मूल्य निर्भर रहता है तथा विदेशी मुद्रा की माँग एवं पूर्ति पर भी। अतः विदेशी विनिमय की माँग एवं पूर्ति का आवश्यकतानुसार समायोजन, स्वर्ण के विदेशों में क्रय विक्रय द्वारा करने का एकाधिकार रिज़र्व बैंक को दिया जाने से यह कार्य भी वह कर सकता था—परिणामतः रुपये के अन्तर्वाह्य मूल्य में स्थायित्व रहता।

२. भिन्न-भिन्न अधिकोषों की निधि का केन्द्रीयकरण करने के लिये भी इस अधिकोष की आवश्यकता थी जिससे अधिकोषण कलेवर के दोषों का निवारण हो सके। रिज़र्व बैंक की स्थापना के पूर्व भिन्न-भिन्न अधिकोषों को अपने पास कुछ रोकनिधि रखनी पड़ती थी जो निष्क्रिय थी अथवा जिसका अन्य अधिकोषों द्वारा उपयोग नहीं हो सकता था क्योंकि अधिकोषों में पारस्परिक सहयोग नहीं था। किंतु रिज़र्व बैंक की स्थापना से यह सोचा गया था कि भिन्न २ अधिकोष अपनी निधि रिज़र्व बैंक के पास रखेंगे तथा उनको अपने पास निधि नहीं रखनी पड़ेगी तथा सब की निधि रिज़र्व-बैंक में होने से निधि का केन्द्रीयकरण होगा। इसका उपयोग रिज़र्व बैंक अन्य अधिकोषों को सहायता देने में करेगा, जिससे निष्क्रिय धन का अधिकतम उपयोग होकर देश की मुद्रा एवं साख पद्धति लोचदार एवं अधिक गतिशील होगी। इससे हमारे अधिकोषण कलेवर में भी सुव्यवस्था का निर्माण होगा।

३. देश की मुद्रा एवं साखनीति का न्याय पूर्ण एवं समुचित प्रबंध : करने के लिये भी केन्द्रीय अधिकोष की आवश्यकता थी। यह अधिकोष व्यापारिक आवश्यकताओं के अनुसार देश की मुद्रा एवं साख का समायोजन करेगा जिससे व्यापारिक तथा आर्थिक क्षेत्र में एवं मुद्राविपणि में समुचित सन्तुलन स्थापित हो सकेगा। यह कार्य अभी तक नहीं हो रहा था क्योंकि मुद्रा का नियंत्रण तो सरकार के अधिकार में था और साख का नियंत्रण इम्पीरियल बैंक के अधिकार में था। इन दुहरे अधिकारों के कारण देश की मुद्रा एवं साख व्यवस्था में समुचित सम्बन्ध नहीं था। इसी कार्य के लिये रिज़र्व बैंक को साख एवं मुद्रा नियंत्रण के एकाधिकार दिये जाने वाले थे—जिससे (i) मुद्रा चलन का एकाधिकार इसे मिलना था,

(ii) अन्य अधिकोषों की निधि (२ के अनुसार) इसके पास रखी जानी वाली थी,

(iii) विभिन्न क्रियाओं द्वारा साख नियंत्रण—अधिकोष-दर अथवा अपहार-दर द्वारा विवृत-विपणि क्रियाओं आदि द्वारा—करने जिससे यह विपत्रों का अपहरण, सरकारी लेन देन एवं लेखे की व्यवस्था, सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय आदि का एकाधिकार भी इसे मिलना था।

४. सरकार की ओर से जन-ऋण (Public Debts) की व्यवस्था एवं सरकार के अधिकौषिक का कार्य, एवं सरकार को आवश्यकता के समय आर्थिक सहायता देने का कार्य करने के उद्देश से एवं सरकार की मुद्रा एवं आर्थिक नीति पर सम्मति एवं सलाह देने के लिये इस अधिकोष की आवश्यकता थी क्योंकि अभी तक विदेशी लेन देन, विदेशी विनिमय व्यवहार सरकार की ओर से करने वाली कोई भी अधिकृत संस्था नहीं थी। इनमें से कतिपय कार्य इम्पीरियल बैंक करता था परन्तु उसको दिये गये विशेष अधिकार देश एवं जनता के हित में न थे।

५. भारतीय कृषि-कार्यों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये भी इस अधिकोष की आवश्यकता थी, क्योंकि यह कृषि-साख के लिये आवश्यक नियोजन करेगा। इसीलिये इस अधिकोष के अन्तर्गत कृषि-साख-विभाग (Agricultural Credit Department) खोला गया। कृषि-साख की पूर्ति के जो आवश्यक अङ्ग थे—अर्थात् सहकारी एवं स्वदेशीय अधिकोष—उनको नियंत्रण कर समुचित आर्थिक सहायता देने का भी दायित्व यह निभाता।

६. देश की अधिकोषण-प्रणाली के समुचित नियंत्रण के लिये तथा भारतीय मुद्रा-विपणि के विभिन्न अङ्गों के संगठन के लिये भी इस अधिकोष की आवश्यकता थी, जिससे अधिकोषण-कलेवर का सुदृढ़ संगठन संभव हो। जैसा कि हम देख चुके हैं भारतीय मुद्रा-विपणि के विभिन्न अङ्गों में पारस्परिक सहयोग का अभाव है तथा स्वदेशीय अधिकोष अनियंत्रित हैं, जिससे अधिकोषण सुधार एवं विकास-क्रियाओं सम्बन्धी पर्याप्त एवं सही-सही आँकड़े (सांख्यिकी—Statistics) भी जनता को उपलब्ध नहीं हैं। इसलिये इन मुद्रा विपणि के विभिन्न अङ्गों को नियंत्रित कर उनमें पारस्परिक सहयोग निर्माण कर देश की मुद्रा, साख एवं अधिकोषण व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिये भी इस अधिकोष की आवश्यकता थी।

७. अन्य राष्ट्रों के साथ मौद्रिक प्रतिस्पर्धा एवं मौद्रिक कार्य संचालन के लिये भी इस अधिकोष की आवश्यकता थी—और विशेषतः इसलिये कि

देशों में जब केन्द्रीय अधिकोष स्थापित हो चुके थे, विभिन्न देशों से मौद्रिक सम्पर्क बढ़ाने के लिये भी इसकी अधिक आवश्यकता थी।

इन सब विभिन्न उद्देश्यों को लेकर इसकी स्थापना के लिए १९२७ में रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया विधेयक विधान-सभा में स्वीकृति के लिए रखा गया किंतु उस समय विधान सभा के अध्यक्ष (President) की उसकी उपस्थिति के लिए आज्ञा न मिलने से वह विधेयक वापिस ले लिया गया। १९३४ में जब प्रांतीय स्वायत्ता (Provincial Autonomy) सब प्रांतों को १९३५ से मिलने वाली थी उस समय केन्द्रीय अधिकोष की अतीव आवश्यकता थी जिससे विभिन्न प्रांतों की आर्थिक नीति को संघ के हित में नियंत्रण किया जा सके। इसलिये १९३४ में "रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया विधेयक" स्वीकृत हुआ तथा १ अप्रेल १९३५ में इसकी स्थापना की गई।

अंशधारियों का अधिकोष अथवा सरकार का अधिकोष : विधेयक की स्वीकृति पूर्व यह अधिकोष अंशधारियों का हो अथवा सरकारी हो इस सम्बन्ध में चर्चा हुई, जिसमें दोनों पक्षों ने अपनी अपनी दलीलें पेश कीं, जिनमें से कुछ नीचे दी गई हैं :—

१. सरकारी अधिकोष के पक्षकारों का कहना था—पत्रमुद्रा आदि के संचालन से होने वाला लाभ जनता के हित के लिए ही उपयोग में आना चाहिये और यह तभी हो सकता है जब केन्द्रीय अधिकोष सरकार का हो।

२. हिस्सेदारों का अधिकोष सदैव अधिकाधिक लाभ कमाने की ओर प्रयत्नशील होगा और इस अधिकोष को विशेषाधिकार प्राप्त होने से इसका वैयक्तिक नियंत्रणों में होने से जनता का हित न होगा और न यही संभव है कि राष्ट्र के हित में ही सदैव इसकी नीति रहेगी।

३. भारत में यूरोपीय पूंजी अधिक है तथा इसके अधिकतर अंश यूरोपीय खरीदेंगे जिससे इस पर उनका प्रभुत्व रहेगा एवं संचालन नीति भी जो उन्हें एवं उनके देश के हित में होगी—वही अपनायेंगे जिससे देश हित की हानि होगी।

४. अन्य देशों के केन्द्रीय अधिकोष अंशधारियों के होते हुए भी वे सरकारी नियंत्रण में होते हैं तथा उनका गवर्नर एवं उप-गवर्नर भी सरकार नियुक्त करती है जिसको अधिकोष की नीति-निर्धारण के अपरिमित अधिकार होते हैं। अतः हिस्सेदारों का अधिकोष होना न होना एक सा ही है, इसलिये सरकारी अधिकोष ही स्थापित किया जाय।

५. संयान, प्रेपालय आदि जनहित व्यवसायों का जब सरकार नियंत्रण एवं संचालन कर रही है अतः इस महत्त्वपूर्ण अधिकोष का संचालन भी सरकार को करना चाहिये क्योंकि जनता का उस पर विश्वास अधिक है।

उपर्युक्त दलीलों को देखते हुए, एवं केन्द्रीय अधिकोषों के अधिकार एवं उत्तरदायित्व को देखते हुए उसका नियन्त्रण सरकार द्वारा होना ही चाहिये क्योंकि "सरकार का केन्द्रीय अधिकोष की कार्य-क्षमता से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध होता है तथा उसकी नीति की ओर वह दुर्लक्ष नहीं कर सकती"[१]-विशेषतः युद्धकाल में तो उसका केन्द्रीय अधिकोष पर पूर्ण नियन्त्रण होता है।

किन्तु ऊपर जो दलीलें दी गई हैं उनके विरुद्ध, जो अंशधारियों के अधिकोष के पक्ष में थे उन्होंने निम्नलिखित दलीलें रखीं:—

१. देश के आर्थिक हित की दृष्टि से यह अधिकोष किसी भी राजनैतिक प्रभाव से अलिप्त होना आवश्यक है जिससे वह अबाधित रूप से अपना महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभा सकेगा। अतः यदि वह सरकार का अधिकोष होगा तो राजनैतिक प्रभाव रहेगा जिससे उसकी कार्यशीलता में राजनैतिक पक्ष भेद के कारण बाधा होगी अतः हिस्सेदारों का अधिकोष होना चाहिये।

२. विश्व के विभिन्न देशों के केन्द्रीय अधिकोष अधिकतर अंशधारियों के हैं और जहाँ भी सरकारी नियन्त्रण में हैं वहाँ पर नियन्त्रणों को मर्यादित किया गया है, जिससे देश का अधिकाधिक हित-साध्य हो। अतः अंशधारियों का अधिकोष ही भारत में होना चाहिये।

३. अंशधारियों के अधिकोष में भिन्न भिन्न हितों का प्रतिनिधित्व हो सकता है तथा अधिकोष की नीति एवं अंशधारियों की सुरक्षा का दायित्व संचालकों पर होता है एवं कार्यक्षमता भी अधिक होती है जो सरकारी अधिकोष में सम्भव नहीं होता।

४. जहाँ तक यूरोपीय पूँजीपतियों अथवा अन्य पूँजीपतियों के प्रभाव का भय है—प्रत्येक अंशभागी के लिए अधिकतम-अंश-मर्यादा विधानतः निर्धारित कर देनी चाहिये जिससे यह भय न रहेगा। उसी प्रकार अंशधारियों के लिए अधिकतम लाभांश निर्धारित एवं सीमित कर देना चाहिये, जिससे अधिक लाभ होने पर वह सरकारी आय में जमा किया जाय।

---

[१] *"A Government has a vital concern in the efficiency of a Central Bank and cannot be indifferent to its policy."*

—Kisch & Elkin on "Central Banks"

उपर्युक्त दलीलों में उस समय यह निर्णय किया गया कि कोई भी मुद्रा-सम्बन्धी संस्था या अधिकोष राजनैतिक हस्तक्षेप से दूर रहना चाहिये, इस दलील ने प्रभावी कार्य किया एवं रिज़र्व बैंक अंशधारियों का अधिकोष बनाया गया जो ३१ दिसम्बर १६४८ तक रहा जिसके बाद १ जनवरी १६४६ से उसका राष्ट्रीय-करण हो गया है।

रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण : उपर्युक्त चर्चा से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके जन्मकाल से ही उसके राष्ट्रीय-करण को समर्थन करने वाला एक पक्ष था परन्तु उस समय इसका राष्ट्रीय-करण न होते हुए अंशधारियों के अधिकोष के रूप में यह अस्तित्व में आया। १६४७-१६४८ में स्वर्गीय शरतचन्द्र वसु ने प्रस्ताव केन्द्रीय संसद में उपस्थित किया, जिसके उत्तर में तत्कालीन अर्थमंत्री आर्चीबाल्ड रॉलेन्डस ने कहा कि इसका राष्ट्रीय-करण अब तक क्यों नहीं हुआ, यही एक प्रश्न है क्योंकि मेरे विचार से तो इसका कारण यही था कि रिज़र्व बैंक जैसी संस्था को, जिसका भारत के आर्थिक जीवन में इतना महत्वपूर्ण स्थान है, उसे विधान-सभा अनुत्तरदायी व्यवस्थापन में देने को तैयार नहीं थी। मुझे इस विषय में अत्र शंका नहीं है कि निकट भविष्य में ही रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण हो जायगा। १६४७ फरवरी में फिर से इसी की पुनरावृत्ति हुई तथा अर्थसचिव ने इस प्रश्न पर विचार किया जायगा, यह आश्वासन दिया तथा यह भी कहा कि जब राष्ट्रीय-करण देशहित में लाभप्रद होगा, उस समय ऐसा करने में सरकार को लेशमात्र भी हिच-किचाहट न होगी। परिणाम स्वरूप प्रस्ताव वापिस लिया गया। किन्तु इसके बाद ही १६४७-४८ के आय-व्यय पत्रक की बहस होते समय इस बात का प्रभावी प्रतिपादन किया गया कि देश में स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय सरकार के होते हुए ऐसी महत्वपूर्ण संस्था का—केन्द्रीय अधिकोष का—राष्ट्रीय-करण शीघ्र ही होना चाहिये। इसके पश्चात् १६४८ में रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी विधेयक भारतीय संसद में प्रस्तुत किया गया जो ३ सितंबर १६४८ को स्वीकृत हुआ। इसके अनुसार रिज़र्व बैंक जनवरी, १, १६४६ से राष्ट्रीय व्यवस्थापन में आया तथा उसके सारे अंश सरकार ने ११८॥=) प्रति १०० रु० के अंश के खरीद लिये हैं।

राष्ट्रीय-करण ही क्यों ? रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीय-करण के पक्ष में निम्न दलीलें रखी गई थीं :—

१. युद्धोत्तर पुनर्निर्माण योजनाओं की सफलता के लिये यह आवश्यक था कि केंद्रीय अधिकोष का राष्ट्रीयकरण हो। क्योंकि केंद्रीय सरकार के अधि-

कार में जो थोड़े से कार्य हैं उनको छोड़कर अन्य कार्यों के लिये प्रांतों को पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। अतः प्रांतीय सरकारों की विभिन्न आर्थिक नीति का अनुसरण होना संभव था जिससे यह संभव था कि केंद्रीय सरकार की आर्थिक योजनाएँ सफल न हो पातीं। किन्तु केंद्रीय अधिकोष के राष्ट्रीयकरण होने से उनकी एवं केन्द्रीय सरकार की नीति में समानता रहती तथा आर्थिक योजनाओं की सफलता के लिये यह आवश्यक था कि रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण हो।

२. रिज़र्व बैंक के ऊपर यह भी आक्षेप था कि उसकी मुद्रा-नीति संतोषप्रद नहीं रही विशेषतः युद्धकाल में; जिससे पत्रमुद्रा का अधिक प्रसार हुआ तथा मूल्यस्तर बढ़गया जिसको स्थायी रखने के लिए रिज़र्व बैंक ने कोई प्रयत्न नहीं किया। अतः रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण होने से यह दोष दूर हो सकता था। इसके अतिरिक्त कोई भी संस्था जो साख एवं मुद्रा का नियंत्रण करती है उसका राष्ट्रीय-करण ही देश के हित में होता है।

३. किसी भी देश की अर्थ-व्यवस्था का राजनीति से घनिष्ठ संबंध होता है। क्योंकि जैसे आर्थिक परिस्थिति के अनुसार राजनीति में आवश्यक परिवर्तन होते हैं उसी प्रकार राजनैतिक दृष्टिकोण के अनुसार अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन किये जाते हैं। देश में स्वतंत्र सरकार की स्थापना से इस बात की अधिक आवश्यकता थी इन दोनों का घनिष्ठ संबंध एवं एकांगी अधिकार हो जिससे आर्थिक नीति राजनीति से विसंगत न हो, इसलिये रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण होना आवश्यक था।

४. अन्य देशों में भी विशेषतः इङ्गलैंड में बैंक ऑफ इङ्गलैंड का भी राष्ट्रीय-करण हो चुका था जहाँ सरकार की मौद्रिक एवं आर्थिक नीति को केन्द्रीय अधिकोष ही कार्यान्वित करते थे। भारत के लिये यह तभी संभव होता यदि रिज़र्व बैंक राष्ट्रीयकृत होता—अतः राष्ट्रीय-करण होना आवश्यक था।

५. केन्द्रीय अधिकोष की मौद्रिक नीति से देश की वृत्ति (Employment) प्रभावित होती हैं। युद्ध के बाद अ-वृत्ति समस्या (Unemployment problem) बहुत ही तीव्र हो गई थी, जिसका समुचित हल तभी हो सकता था जब देश की केन्द्रीय सरकार की इच्छानुरूप केन्द्रीय अधिकोष की मुद्रानीति होती। जिसके लिए रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण आवश्यक समझा गया।

६. भारत में सामान्य जनता के वर्तमान जीवनस्तर को ऊँचा करने के लिए आर्थिक-विषमता का निवारण, आय-वृद्धि तथा उत्पादन वृद्धि की भी आवश्यकता थी। जिसके लिये सरकारी अर्थनीति एवं मौद्रिक नीति के अनु-

सार ही एवं इनके सहयोग में केन्द्रीय अधिकोष की नीति होना आवश्यक था अतः इसके लिए रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण ही एक मार्ग था।

७. युद्ध के कारण सभी देशों के आर्थिक कलेवर अस्तव्यस्त हो गए थे तथा अनेक नई नई आर्थिक समस्याएँ प्रत्येक देश के सामने थीं। उदा० विदेशी व्यापार का स्थायित्व, विनिमय-दर का स्थायित्व तथा भुगतान का शेष आदि। इनको समुचित रूप से हल करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से देश की आगामी आर्थिक नीति का निर्धारण आवश्यक था। अतः रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण आवश्यक था। इसी के साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-प्रणीधि तथा अन्तर्राष्ट्रीय अधिकोष से किसी भी देश के व्यवहार केन्द्रीय अधिकोष द्वारा ही होते हैं। अतः उन व्यवहारों को देश की आर्थिक नीति से संगत होने के लिये यह आवश्यक समझा गया कि रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण हो।

८. देश के अधिकोषण स्तर को सुधारने के लिए देश के उपलब्ध गुणों (Talents) का समुचित उपयोग होकर कार्यक्षमता में वृद्धि तभी सम्भव थी जब रिज़र्व बैंक राष्ट्रीयकृत होती। इसके साथ ही जनता का विशेषतः भारतीय जनता का उसकी निजी सरकार में अधिक विश्वास होने के कारण अधिकोष संस्थाओं में अधिक विश्वास उत्पन्न हो कर अधिकोषण विकास के लिए भी रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण आवश्यक था।

९. रिज़र्व बैंक के जन्म से लेकर १४ वर्ष की अवधि में रिज़र्व बैंक भारतीय मुद्राविपणि को न तो संगठित ही कर सका, न विपत्र-विपणि की स्थापना में सफल रहा और विशेषतः स्वदेशीय अधिकोषों को तो वह अपनी अनेक योजनाओं से भी नियन्त्रित न कर सका। इसके लिए ऐसा कहा जाता है कि रिज़र्व बैंक को इन कार्यों की पूर्ति के लिए कड़े निर्बन्धों में कार्य करना पड़ता था। अतः कार्यों के सङ्गठन के लिए, सुधार एवं उन्नति के लिए रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण होना आवश्यक था।

१०. रिज़र्व बैंक को देश की अधिकोषण परिस्थिति का समुचित एवं सही ज्ञान होने के लिए उसे अन्य अधिकोषों से—जो नियन्त्रित नहीं थे—आवश्यक विवरण प्राप्त करने में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती थीं, जिनकी प्राप्ति के लिए रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण आवश्यक समझा गया। राष्ट्रीय-करण से वह एक सरकारी विभाग होने की वजह से किसी भी अधिकोषण संस्था अथवा सार्थ से आवश्यक विवरण आदि प्राप्त कर सकेगा।

उपर्युक्त कारणों की वजह से राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध कुछ थोड़े से आक्षेप होते हुए भी अर्थसचिव लियाकत अली खाँ ने २७ फरवरी १९४७ को अपने

आय-व्यय पत्रक-भाषण में यह कहा कि—"मैंने इस विषय में सोचा तथा मुझे यह विश्वास हो गया है कि राष्ट्रीयकरण से होने वाले लाभ कोई भी सम्भाव्य हानि से अधिक ही होंगे। इसलिये मैं इस निर्णय पर आ गया हूँ कि रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये"। इसके बाद २ सितम्बर १९४८ को राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी विधेयक स्वीकृत हुआ तथा १ जनवरी १९४९ से रिज़र्व बैंक राष्ट्रीय संस्था हो गई है।

रिज़र्व बैंक का विधान (१९३५-१९४८):

पूँजी: रिज़र्व बैंक की कुल पूँजी ५ करोड़ रुपये है जो १०० रु० के ५ लाख हिस्सों में विभाजित एवं परिदत्त है। इस अधिकोष का कोई भी प्रधान-स्थान (Head Quarter) नहीं है अपितु इसके पाँच प्रमुख कार्यालय बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, रंगून तथा दिल्ली में थे जिनमें से रंगून का कार्यालय द्वितीय महायुद्ध काल में १९४२ में बन्द किया गया, जो अब पुनः अगस्त १९४५ में खोल दिया गया है। प्रत्येक प्रमुख कार्यालय क्षेत्र की पूँजी निर्धारित कर दी गई है।

1 कलकत्ता	१४५	लाख रुपये
2 बम्बई	१४०	,, ,,
3 दिल्ली	११५	,, ,,
4 मद्रास	७०	,, ,,
5 रंगून	३०	,, ,,
जोड़	500	

केन्द्रीय धारा सभा तथा केन्द्रीय सरकार की पूर्व सम्मति प्राप्त करने पर एवं केन्द्रीय सभा की सिफारिश होने पर अधिकोष की अंश-पूँजी कम या अधिक की जा सकती है।

अंशधारी: इस राशि से अधिक के अंश इस क्षेत्र में नहीं खरीदे जा सकते थे। इसका हेतु यह था कि अधिकोष की सत्ता विशेष क्षेत्र के व्यक्तियों में ही केन्द्रित न हो। कोई भी व्यक्ति जो ब्रिटिश भारत का, ब्रह्मदेश का अथवा देशी रियासत का रहवासी; अङ्गरेज प्रजाजन जिसका वास्तव्य संयुक्त-राज्य (U. K.) में है, अथवा सम्राट् के किसी भी उपनिवेश का प्रजाजन—जो उपनिवेश ब्रह्मी अथवा भारतीयों के सम्बन्ध में कोई विवेचन (Discrimination) न करता हो; तथा कोई भी सहकारी संस्था अथवा प्रमंडल जो भारतीय विधान के अन्तर्गत पंजीयित है अथवा जो प्रमंडल संसद (Parliament) के विधानान्तर्गत है अथवा भारतीय उपनिवेश के नियमों के अन्तर्गत है—जिन उपनिवेशों की सरकार सम्राट् (His

Majesty) के भारतीय अथवा ब्रह्मी प्रजाजनों के सम्बन्ध में विवेचन नहीं करती—तथा उसकी शाखा भारत अथवा ब्रह्मदेश में है—रिज़र्व बैंक की अंशधारी हो सकती हैं। १९३७ में ब्रह्मदेश के अलग हो जाने से आवश्यक परिवर्तन विधान में हो गये हैं।

मत-दान : अधिकोष की सत्ता का केन्द्रीकरण प्रतिबन्धित करने की दृष्टि से प्रत्येक अंशधारी की मत संख्या भी सीमित कर दी गई है। जिसके अनुसार अधिकोष की सामान्य सभा (General Meeting), अथवा स्थानीय सभा के किसी सदस्य के चुनाव के समय प्रत्येक अंशधारी प्रति पाँच अंशों के लिए एक प्रमत दे सकता है, परन्तु ये मत अधिक से अधिक दस होंगे।

अधिकोष की व्यवस्था : अधिकोष की सामान्य व्यवस्था का निरीक्षण एवं संचालन का भार केन्द्रीय सभा पर है जिसके १६ सदस्य हैं।

१. एक गवर्नर तथा दो उप-गवर्नर जो केन्द्रीय सभा की सिफारिश को ध्यान में रखकर केन्द्रीय सरकार नियुक्त करती थी। इनकी नियुक्ति पाँच वर्ष के लिये होती थी परन्तु इस अवधि के बाद उनकी नियुक्ति पुनः हो सकती थी। गवर्नर को ही मतदान का अधिकार रहता था तथा ये तीनों ही सदस्य केन्द्रीय सभा की सभा में भाग ले सकते थे। गवर्नर की अनुपस्थिति में यदि लिखित अधिकारपत्र हो तो उप-गवर्नर एक मत दे सकता था। इनको अधिकोष वेतन देता है।

२. केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत चार संचालक, जो भिन्न भिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा जिन हितों के प्रतिनिधि इस सभा के सदस्य सामान्यतः नहीं हो सकते।

३. आठ संचालक जो भिन्न भिन्न स्थान के अंश-पंजी (Share Registers) के अंशधारियों द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। बम्बई, कलकत्ता तथा दिल्ली के अंशधारी दो-दो तथा मद्रास एवं रंगून के अंशधारी एक-एक संचालक निर्वाचित कर सकते हैं।

४. केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत एक कर्मचारी—इसे सभा में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है किंतु मतदान का नहीं—यह व्यक्ति जब तक गवर्नर-जनरल चाहे सदस्य-संचालक रहता है। इसको मतदान का अधिकार नहीं होता।

इस सभा के अतिरिक्त पाँचों कार्यालयों की एक एक स्थानीय सभा होती है जो केन्द्रीय सभा के निर्दिष्ट कार्यों की देखरेख एवं पूर्ति करती है तथा उन सब मामलों पर अपनी सम्मति प्रकट करती हैं जो केन्द्रीय सभा उनके विचारार्थ

भेजे। इसके साथ ही केन्द्रीय सभा पर अपने सदस्यों को संचालक पद के लिए निर्वाचित करने का अधिकार भी इन्हें होता है।

प्रत्येक स्थानीय सभा के आठ सदस्य होते हैं जिनमें से पाँच स्थानीय पंजीयित अंशधारियों (Registered Shareholders) द्वारा अंशधारियों में से चुने जाते हैं। शेष तीन केन्द्रीय-सभा स्थानीय अंशधारियों में से मनोनीत करती है, जिससे भिन्न भिन्न हितों का प्रतिनिधित्व हो सके।

राष्ट्रीय-करण के उपरान्त : १ जनवरी १९४९ को रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीय-करण हो जाने से रिज़र्व बैंक विधान में भी आवश्यक परिवर्तन किये गए हैं जिससे प्रबंध में परिवर्तन हो गया है। अतः अब हम संशोधित विधान देखेंगे।

पूँजी : रिज़र्व बैंक की पूँजी अभी तक जो अंशधारियों के स्वामित्व में थी उसका हस्तांतरण केन्द्रीय सरकार को होगया, जिसके लिए अंशधारियों को प्रत्येक १०० रु० के अंश के बदले ११८ रु० १० आने मिले। इस राशि का १८ रु० १० आ० भुगतान रोक किया गया तथा शेष १०० रु० के बदले उन्हें ३% प्रतिशत ब्याज देनेवाले ऋण-प्रतिज्ञार्थ पत्र—प्रथम-विकास-ऋण-(First Development Loans) बंध दिये गए जिनका भुगतान १५ अक्तूबर १९७० अथवा १९७५ में सरकार की इच्छानुसार तीन मास की पूर्व सूचना के बाद किया जायेगा।

प्रबंध : रिज़र्व बैंक का अब प्रबन्ध-भार केन्द्रीय सरकार पर है जो अधिकोष के गवर्नर की सम्मति से राष्ट्रीय एवं जनहित की दृष्टि से उसे आदेश देती रहती है जिसके अनुसार केन्द्रीय सभा द्वारा संचालन होता है। गवर्नर को केन्द्रीय सभा के आदेशों का पालन करना पड़ता है जिसके साथ ही वह अधिकोष की व्यवस्था भी करता है। वर्तमान केन्द्रीय सभा के सदस्य १४ हैं जो सब के सब केन्द्रीय सरकार द्वारा, भिन्न भिन्न हितों को दृष्टि में रखते हुए मनोनीत किये जाते हैं तथा निम्न हैं :—

(अ) एक गवर्नर तथा दो उप-गवर्नर—इनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती है तथा ये वेतन-प्राप्त कर्मचारी होते हैं। अवधि, मतदान सम्बन्धी अधिकार पूर्ववत् ही हैं। वर्तमान गवर्नर सर श्री. राम राव हैं।

(ब) चार संचालक—जिनको केन्द्रीय सरकार चार स्थानीय सभा के सदस्यों में से प्रत्येक स्थान से एक के हिसाब से मनोनीत करती है। इनकी अवधि भी पांच वर्ष की होती है जिसके बाद ये पुनः मनोनीत किये जा सकते हैं।

(क) छै संचालक—केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं तथा दो संचालक क्रमशः एक, दो तथा तीन वर्ष बाद निवृत्त (Retire) होते हैं।

(ङ) एक सरकारी अधिकारी—जिसको केन्द्रीय सरकार मनोनीत करती है। तथा यह केन्द्रीय सरकार की इच्छानुसार किसी भी समय तक काम कर सकता है। इसको मतदान का अधिकार नहीं रहता।

स्थानीय प्रबंध के लिए चार स्थानीय सभाएँ क्रमशः बम्बई, कलकत्ता, मद्रास तथा दिल्ली में हैं, जो केन्द्रीय सभा के आदेशानुसार प्रबन्ध करती हैं तथा पूछे जाने पर आवश्यक मामलों पर अपनी सम्मति देती हैं। केन्द्रीय सभा के सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार इनको अब नहीं रहा। प्रत्येक स्थानीय सभा के पाँच सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा होती है।

केन्द्रीय सभा की एक वर्ष में छै सभाएँ होनी चाहियें परन्तु तीन महीने में एक सभा तो अवश्य होनी ही चाहिये। गवर्नर को यह अधिकार है कि वह केन्द्रीय सभा की सभा बुलाए, उसी प्रकार कोई भी तीन संचालक गवर्नर से सभा बुलाने के लिए निवेदन कर सकते हैं।

संगठन : रिज़र्व बैंक का कार्य पाँच मुख्य विभागों में विभाजित है :—

१. चलन-विभाग (Issue Department) : जिसका प्रमुख कार्य पत्रमुद्रा को चलाना है। यह विभाग पत्र मुद्राओं का प्रधान अथवा गौण मुद्राओं में परिवर्तन भी करता है। सर्व प्रथम यही विभाग कार्यान्वित किया गया जिससे सरकारी चलन विभाग की व्यवस्था इसे प्राप्त हुई। इसी प्रकार स्वर्ण-मान निधि का भी हस्तांतरण हुआ जो चलन विभाग की सम्पत्ति में मिला दिया गया।

२. अधिकोषण विभाग (Banking Department) : यह विभाग १ जुलाई १९३५ को खोला गया जिस दिन से अनुसूची बद्ध अधिकोषों ने अपनी याचित एवं काल देय का वैधानिक अनुपात ५% तथा २% इसमें निक्षेप में रखना प्रारम्भ किया। इसी दिन से समाशोधन गृहों का कार्य भी इम्पीरियल बैंक से इसको हस्तांतरित हुआ। इसके अतिरिक्त सरकारी व्यवहारों का लेन देन तथा सरकार की ओर से राशि-स्थानांतरण करना एवं सरकार को राशि स्थानांतरण की सुविधाएँ तथा अन्य आर्थिक सहायताएँ प्रदान करने का कार्य भी इसी विभाग का है।

३. कृषि-साख-विभाग (Agricultural Credit Department) यह विभाग केन्द्रीय एवं प्रांतीय सरकारों को तथा सहकारी संस्थाओं को कृषि-साख संबंधी सुविधाएं देने के लिये खोला गया है। इसमें कृषि-साख के विशेषज्ञ कार्य करते हैं तथा अधिकोषों को एवं प्रांतीय सरकार तथा सहकारी संस्थाओं को आवश्यक सलाह देने का कार्य करते हैं।

४. सांख्यिकी विभाग (Statistical Department) : इसका कार्य मुद्रा, कृषि, उत्पादन, लाभांश आदि विभिन्न विषयों सम्बन्धी अनुसंधान करना तथा इनके आंकड़े प्रकाशित करना है।

५. विनिमय विभाग (Exchange Department) : विदेशी विनिमय-दर स्थायी रखने के लिये विदेशी विनिमय का निश्चित दरों पर क्रय विक्रय करने का कार्य यह विभाग करता है। रिज़र्व बैंक के स्थानीय प्रमुख कार्यालयों के अतिरिक्त इसकी एक शाखा लंदन में भी है जो अप्रेल १९४६ में खोली गई थी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार की आज्ञा से वह किसी भी स्थान पर अपने कार्यालय स्थापित कर सकता है। रिज़र्व बैंक केन्द्रीय कार्यालय अब स्थायी रूप से बंबई में रहेगा।—इसकी वर्तमान शाखाएँ बंबई, मद्रास, दिल्ली, कलकत्ता, रंगून, कराची, कानपुर तथा लाहौर में हैं।

रिज़र्व बैंक के कार्य :

रिज़र्व बैंक विभिन्न प्रकार के कार्य करता है, जिनमें कुछ कार्य तो ऐसे हैं जो उसे विधानतः रिज़र्व बैंक विधान की १७ वीं धारा के अंतर्गत करने पड़ते हैं तथा कुछ कार्य ऐसे हैं जो देश का केन्द्रीय अधिकोष होने के नाते करता है। इस प्रकार कार्यों की दृष्टि से रिज़र्व बैंक के कार्य हम दो भागों में बाँट सकते हैं :—

१. केन्द्रीय अधिकोषण कार्य तथा २. सामान्य अधिकोषण कार्य।

केन्द्रीय अधिकोषण कार्य : रिज़र्व बैंक-ऑफ-इन्डिया-विधान के अनुसार रिज़र्व बैंक केन्द्रीय अधिकोष के कार्य करता है जिससे वह मौद्रिक स्थिरता तथा देश हित के लिए साख एवं चलार्थ के कार्यों को अच्छी तरह से कर सके। ये कार्य निम्न हैं :—

१. पत्र-मुद्रा चलन : देश की साख एवं मुद्रा के नियंत्रण करने के लिए इसे अन्य केन्द्रीय अधिकोषों की भाँति पत्र-मुद्रा चलन का एकाधिकार प्राप्त है (धारा २२)। यह कार्य पत्र-चलन विभाग करता है जो अधिकोषण विभाग से अलग है तथा जिसका स्थिति-विवरण भी अधिकोषण विभाग से

अलग बनाया जाता है एवं साप्ताहिक प्रकाशन होता रहता है। चलन विभाग की सम्पत्ति स्वर्ण मुद्रा, स्वर्ण खंड, स्टर्लिंग प्रतिभूतियाँ, रुपये के सिक्के तथा रुपये की प्रतिभूतियों में रखी जाती हैं। इसे पत्रमुद्रा-निधि (Paper Currency Reserve or Reserve Banking) कहते हैं, जो धारा ३३ के अनुसार रखना अनिवार्य है। इस कुल सम्पत्ति का ४०% भाग स्वर्ण मुद्रा, स्वर्ण, तथा विदेशी प्रतिभूतियों में रखना पड़ता है परन्तु किसी भी समय स्वर्ण ४० करोड़ रुपये के मूल्य से कम नहीं होना चाहिये। इस सम्पत्ति का शेष ६०% प्रतिशत भाग रुपये में सरकारी प्रतिभूतियों तथा कोष-विपत्र आदि में अथवा अन्य प्रतिभूतियों में जिनका भुगतान देश में ही हो—रखा जाता है। स्वर्ण का मूल्यांकन ८·४७५१२ ग्रेन प्रति रुपये की दर से किया जाता है तथा प्रतिभूतियों का मूल्यांकन उनके 'विपणि-मूल्य के हिसाब से। इस सम्पत्ति का जो भाग स्वर्ण, तथा स्वर्ण मुद्रा तथा प्रतिभूतियों में होता है उसका $\frac{१७}{२०}$ भाग देश के किसी अधिकोष की शाखा के पास अथवा अपनी शाखा में रखना अनिवार्य है, शेष $\frac{३}{२०}$ भाग विदेशों में रखा जा सकता है।

रिज़र्व बैंक को २, ५, १०, ५०, १००, १००० तथा १०००० रु० की पत्रमुद्राएँ चलाने का अधिकार धारा २४ के अन्तर्गत प्राप्त है परन्तु सन् १९४६ से १००० तथा १०,००० की पत्र-मुद्राएँ बन्द कर दी गई हैं। तथा १९४३ से इसे १ रु० की पत्र-मुद्रा चलाने का अधिकार प्राप्त है।

१९३८ से रिज़र्व बैंक ने अपनी पत्र-मुद्राएँ चलाईं जिसके पूर्व केन्द्रीय सरकार की पत्र मुद्राएँ एक विशेष समझौते के अनुसार चलन में थीं।

रिज़र्व बैंक के चलन विभाग के सम्पत्ति विभाग में वे ही "विदेशी प्रतिभूतियाँ" रखी जाती हैं जिनका अंतर्राष्ट्रीय मुद्राप्रणाली के सभासद-देशों में ही भुगतान होने वाला हो। विधान के अनुसार इसमें निम्न प्रतिभूतियों का समावेश है :—

१. वे प्रतिभूतियाँ जो अंतर्राष्ट्रीय मुद्राप्रणाली के सदस्य देशों के केन्द्रीय अधिकोष द्वारा चलन विभाग की सम्पत्ति की प्रतिभूति पर निर्गमित की गई हों अथवा उस देश के किसी अन्य अधिकोष द्वारा निर्गमित की गई हों;

२. वे विपत्र जिनका भुगतान सभासद देशों में होनेवाला हो, जिनपर दो अच्छे हस्ताक्षर हों तथा उनकी परिपक्व तिथि ९० दिन के अन्दर हो; तथा

३. सभासद देशों की सरकार द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियाँ जिनकी अवधि ५ वर्ष की हो।

२. अधिकोषों का अधिकोषिक : (i) देश की अधिकोषण पद्धति को नियमन करने का उत्तरदायित्व भी रिज़र्व बैंक पर है। रिज़र्व बैंक के पास अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को अपनी कुल याचित देय का ५% तथा काल देय का २% रखना पड़ता है, जिसको संकट काल में अन्य अधिकोषों की सहायता के लिए रिज़र्व बैंक स्वतंत्रता से संकटापन्न अधिकोषों की सहायता के लिए, उनको ऋण देने के लिए उपयोग कर सकता है। अर्थात् जिस प्रकार व्यापारिक अधिकोष जनता से निक्षेप स्वीकृति कर उनको ऋण आदि देकर सहायता प्रदान करते हैं उसी प्रकार रिज़र्व बैंक अन्य अधिकोषों के उपर्युक्त निक्षेप लेकर उन्हें संकटकाल में ऋणादि देकर सहायता करता है। रिज़र्व बैंक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उन सब अधिकोषों से रहता है जिनकी पूंजी तथा निधि मिलाकर ५,००,००० रुपये से अधिक है तथा जिनका समावेश रिज़र्व बैंक की अनुसूची दो में लिखा गया है; ऐसे अधिकोषों को अनुसूची-बद्ध अधिकोष कहते हैं।

इन अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को संकट-काल में रिज़र्व बैंक से सहायता प्राप्त होती रहती है जिससे देश को अधिकोषण संकट से बचाकर देश की अधिकोषण व्यवस्था को संगठित एवं नियमित किया जा सकता है।

(ii) इन निक्षेपों का उपयोग रिज़र्व बैंक को साख नियंत्रण करने में भी सहायक होता है, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वैधानिक अनुपात में परिवर्तन कर साख का नियंत्रण घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है।

(iii) इसी प्रकार साख का नियंत्रण विवृत विपणि क्रियाओं द्वारा तथा अधिकोष-दर एवं अन्य मार्गों से भी किया जाता है। [देखिये-अध्याय १०]

३. विनिमय दर सम्बन्धी उत्तरदायित्व : रिज़र्व बैंक पर, जैसे कि हम देख चुके हैं, यह भी जिम्मेदारी है कि वह रुपये के विनिमय मूल्य अथवा बाह्यमूल्य में स्थायित्व रखे, इसलिये विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय निश्चित दरों पर करने का भार इस पर धारा ४० के अंतर्गत है। मूलतः इस पर स्टर्लिङ्ग को बेचने एवं खरीदने की जिम्मेदारी थी जिसकी दर १ शि० ५ $\frac{4 9}{6 4}$ पेंस या १ शि० ६ $\frac{3}{1 6}$ पेंस से अधिक या कम नहीं होना चाहिये। परन्तु इस १९४७ में भारत अंतर्राष्ट्रीय मुद्राप्रणीचि का सभासद हो जाने से इस सम्बन्ध में आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया है तथा धाराएँ ४० व ४१ संशोधित कर दी गई हैं। अब रिज़र्व बैंक विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय अधिकृत व्यक्तियों के साथ ऐसी दरों पर कर सकता है जो सरकार अंतर्राष्ट्रीय मुद्राप्रणीचि के निर्बन्धों के साथ निश्चित करे। इस प्रकार का क्रय-विक्रय

१ लाख रुपये से कम मूल्य का नहीं किया जा सकता तथा उन्हीं व्यक्तियों के साथ ये व्यवहार हो सकते हैं जिन्हें विदेशी विनिमय-नियंत्रण विधान १९४७ (Foreign Exchange Regulation Act 1947) के अनुसार विदेशी विनिमय के क्रय विक्रय का अधिकार प्राप्त हो। आज भी यह रुपया एवं स्टर्लिङ्ग के बीच का विनिमय मूल्य १ शि० ५$\frac{61}{64}$ तथा १ शि० ६$\frac{3}{16}$ पेंस की सीमा में रखने के लिये बाध्य है, तथा यह मूल्य सरकार के आदेशानुसार किसी भी समय परिवर्तित किया जा सकता है।

४. सरकार का अधिकोपिक : सरकार के अधिकोपण कार्यों को करने का उत्तरदायित्व भी रिज़र्व बैंक पर है। धारा २० के अनुसार रिज़र्व बैंक केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों का तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्य अन्य सरकारों का एवं देशी रियासतों का निक्षेप स्वीकृत करता है तथा उनके लेखे पर, उनको निक्षिप्त राशि तक ही—भुगतान कर सकता है। इसी प्रकार उनके विदेशी विनिमय व्यवहारों का, राशि-स्थानांतरण का, जन ऋण प्रबन्ध का, तथा अन्य अधिकोपण क्रियाएँ करने का उत्तरदायित्व रिज़र्व बैंक पर है। यह अधिकोप सरकार के कोष के अभिकर्ता का कार्य भी करता है।

सरकारी निक्षेप पर रिज़र्व बैंक किसी भी प्रकार का ब्याज नहीं देता। सरकार को साख, मुद्रा एवं आर्थिक नीति सम्बन्धी सलाह समय समय पर देता रहता है। रिज़र्व बैंक सरकारी कोष-पत्रों के, जन-ऋण आदि अन्य ऋण एवं विनियोग-पत्रों के निर्गमन के अधिकृत अभिकर्ता का कार्य भी करता है।

५. अन्य केन्द्रीय अधिकोपण सम्बन्धी कार्य : केन्द्रीय अधिकोपों के उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त, देश का शीर्ष अधिकोप (Apex Bank) होने की वजह से तत्सम्बन्धी एवं सहायक अन्य कार्य भी करता है। जिनमें विभिन्न प्रकार के चलन की पूर्ति, राशि स्थानांतरण की सुविधाएं देना, समाशोधन गृहों का प्रबन्ध, आर्थिक मामलों पर सलाह देना तथा अधिकोपण सम्बन्धी सांख्यिकी (Statistics) को एकत्रित एवं वितरित करना आदि कार्य भी करता है।[1] क्योंकि सरकारी कोषों का एकमात्र प्रबन्धक तथा अभिकर्ता होने के कारण देश के अन्य अधिकोषों को एवं जनता को राशि स्थानांतरण की सुविधाएँ यह दे सकता है। धारा ५८ के अंतर्गत समाशोधन-गृहों का प्रबन्ध भी यह करता है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं यह देश की सरकार को तथा देश के अधिकोषों को आर्थिक एवं

---

[1] *Functions & Working of The Reserve Bank of India*
By J. B. Taylor, Pp. 11-13

अधिकोषण सम्बन्धी सलाह भी समय समय पर देता रहता है। देश की अधिकोषण-परिस्थिति-दर्शक तालिकाएँ आदि सरकार को भेजने का एवं उनके प्रकाशन का दायित्व भी विधान की धारा ५३, ५२ (२) तथा ४३ के अनुसार-रिज़र्व बैंक का है, जिससे जनता को भी देश की आर्थिक एवं अधिकोषण परिस्थिति का ज्ञान मिल सके।

सामान्य अधिकोषण कार्य : उपर्युक्त केन्द्रीय अधिकोषण कार्यों के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक निम्न अधिकोषण क्रियाएँ भी कर सकता है, जिनका उल्लेख विधान की १७ वीं धारा में किया गया है :—

१. केन्द्रीय, प्रांतीय तथा स्थानीय सरकारों से, अधिकोषों से तथा अन्य व्यक्तियों से निर्व्याज (Without Interest) निक्षेप लेखे खोल सकता है तथा उनके निक्षेप स्वीकृत कर सकता है।

२. (i) व्यापारिक एवं वाणिज्य व्यवहारों के विपत्रों का एवं प्रतिज्ञा-अर्थ-पत्रों का क्रय, विक्रय एवं अपहरण कर सकता है परन्तु ये विपत्र ६० दिन की अवधि से अधिक अवधि के न हों तथा उन पर दो अन्य अच्छे हस्ताक्षर हों, जिनमें से एक हस्ताक्षर किसी अनुसूची-बद्ध अधिकोष का होना चाहिये।

(ii) इसी प्रकार कृषि कार्यों के लिये तथा फसल को वेचने के हेतु से जिन विपत्रों अथवा प्रतिज्ञा अर्थ-पत्रों का आहरण किया गया हो, ऐसे विपत्रों का क्रय-विक्रय तथा अपहरण कर सकता है किंतु ऐसे विपत्रों तथा प्रतिज्ञा-अर्थ पत्रों का भुगतान भारत में होने वाला हो, ६ महीने की अवधि के हों तथा इन पर दो अच्छे हस्ताक्षर हों, जिनमें से एक अनुसूची-बद्ध अधिकोष अथवा प्रांतीय सहकारी अधिकोष का होना आवश्यक है।

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणीवि के सभासद देशों में भुगतान वाले विपत्रों का क्रय-विक्रय तथा अपहरण केवल अनुसूची-बद्ध अधिकोषों के साथ ही कर सकता है; यदि इनकी अवधि ६० दिन की हो।

(iv) केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों की प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय करना। इनमें अवधि सम्बन्धी निर्बन्ध नहीं है।

(v) किसी भी विदेशी सरकार की प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय करना, जिनकी अवधि १० वर्ष से अधिक न हो।

३. स्वर्ण मुद्रा, स्वर्ण तथा विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय करना एवं अनुसूची बद्ध अधिकोषों के साथ विदेशी विनिमय का क्रय विक्रय करना जिनका न्यूनतम मूल्य १००,००० रुपया हो।

४. (i) केन्द्रीय, तथा प्रान्तीय सरकारों को अधिकतम ६० दिन की अवधि के लिए ऋण देना।

(ii) इसी प्रकार अनुसूची-बद्ध एवं प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों को, स्थानीय सरकारों को, लङ्का की प्रमुख मौद्रिक संस्थाओं को मान्य प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर ६० दिन की अधिकतम अवधि के लिए ऋण अथवा अग्रिम देना। इस प्रकार के ऋण माँग पर भुगतान वाले हों अथवा किसी निश्चित अवधि की समाप्ति के बाद भुगतान होने वाले हों परन्तु इनकी अवधि ६० दिन से अधिक नहीं होनी चाहिये। अचल सम्पत्ति की प्रतिभूति पर यह ऋण नहीं दे सकता।

५. धन, प्रतिभूतियाँ, आभूषण आदि सुरक्षा के लिये स्वीकृत करना, एवं ऐसी सुरक्षा के लिये प्राप्त प्रतिभूतियों के व्याज अथवा लाभांश का संग्रहण करना।

६. ऐसी किसी भी चल अथवा अचल सम्पत्ति का विक्रय करना जो अधिकोष के अधिकार में ऋणों के भुगतान स्वरूप आई हो तथा उसका मूल्य वसूल करना।

७. किसी भी देश के केन्द्रीय अधिकोष के साथ लेखा खोलना तथा अभिकर्तृत्व समझौता करना किन्तु ऐसा अधिकोष अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राप्रणीवि के सदस्य देश का होना चाहिये। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय अधिकोष के साथ लेन देन करना।

८. अपने व्यापारिक कार्यों की आवश्यकता के लिए देश के किसी भी अनुसूची-बद्ध अधिकोष से अथवा किसी भी अन्य देश के केन्द्रीय अधिकोष से अधिकतम १ मास की अवधि के लिए ऋण लेना परन्तु ऐसे ऋणों की राशि जो अनुसूची-बद्ध अधिकोषों से ली जाय वह अधिकोष की पूँजी से अधिक न हो।

९. स्थानीय, प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकार के अभिकर्ता का कार्य करना तथा उनकी ओर से स्वर्ण, विपत्र, रौप्य, प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय करना, प्रतिभूतियों तथा अंशों का व्याज अथवा लाभांश संग्रहण करना, जन ऋण का निर्गमन करना तथा अन्य कार्य—जो १९४९ के अधिकोषण विधान, तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राप्रणीवि के अनुसार वह कर सकता है—करना।

१०. अपने कार्यालयों पर तथा अभिकर्ताओं द्वारा भुगतान होने वाले याचित-विकर्षों (Demand Drafts) का निर्गमन करना। तथा

११. मुद्रा तथा अधिकोषण सम्बन्धी अनुसन्धान एवं आँकड़ों का संग्रहण करना तथा उन्हें प्रकाशित करना।

रिज़र्व बैंक के लिए निषिद्ध कार्य : रिज़र्व बैंक विधान के अनुसार निम्नलिखित कार्यों को एवं अधिकोषण व्यवहारों को रिज़र्व बैंक नहीं कर सकता है :—

१. किसी भी व्यापार को करना अथवा किसी व्यवसाय अथवा उद्योग में विशेष रुचि रखना अथवा भाग लेना;

२. किसी भी अधिकोष अथवा प्रमण्डल के अंश खरीदना अथवा उनकी प्रतिभूति पर ऋण देना;

३. अचल सम्पत्ति की प्राधि पर ऋण देना अथवा अपने कार्यालयों के लिए आवश्यक सम्पत्ति को छोड़कर किसी भी प्रकार की अचल संपत्ति खरीदना;

४. १७ वीं धारा के अतिरिक्त अन्य किसी भी परिस्थिति में ऋण अथवा अग्रिम देना;

५. निक्षेप तथा चल लेखों पर ब्याज देना; तथा

६. माँग पर भुगताए जानेवाले विपत्रों के अतिरिक्त अन्य विपत्रों का आहरण अथवा स्वीकृति करना।

रिज़र्व बैंक द्वारा साख-नियंत्रण : यह तो हम बता ही चुके हैं कि रिज़र्व बैंक देश हित के लिए मुद्रा एवं साख का समुचित नियंत्रण कर सके इसलिये अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को उसके पास अपने याचित एवं काल देय की क्रमशः ५% एवं २% रोकनिधि रखनी पड़ती है जिसकी न्यूनतम राशि १ लाख रुपये प्रति अधिकोष होनी चाहिये।[१] इसी के साथ अधिकोष मान्य विपत्रों के आहरण, क्रय एवं पुनः अपहरण संबंधी अपनी अधिकोष-दर समय समय पर प्रकाशित करता है जिस दर पर उसकी विवृत विपणि क्रियाएँ आधारित होती हैं तथा जिस दर के अनुसार मुद्रा-विपणि की ब्याज दरों का भी नियमन होता है। अतः यह साख एवं मुद्रा नियंत्रण रिज़र्व बैंक किस प्रकार करता है यह देखना आवश्यक है।

अधिकोष दर : यह तो हम पहिले ही बता चुके हैं कि साख-नियंत्रण के लिए अधिकोष दर का मार्ग सबसे प्रथम इस देश में इम्पीरियल बैंक द्वारा

---

[१] *Report of the National Planning Committee on Currency & Banking.—Pp 44.*

ही अपनाया गया परन्तु इम्पीरियल बैंक की संयुक्त स्कन्ध-अधिकोषों के साथ प्रतियोगिता होने की वजह से तथा भारतीय मुद्रा-विपणि के विभिन्न अंगों में पारस्परिक असहकारिता, प्रतियोगिता तथा असंगठन के कारण अधिकोष दर साख नियंत्रण में अप्रभावी रही। इस दर के अप्रभावी रहने का एक और कारण यह था कि इम्पीरियल बैंक इस दर का अपने लाभ की दृष्टि से अधिक उपयोग करता था। तीसरे, विनिमय-अधिकोषों का अन्य देशों की मुद्रा विपणियों से प्रत्यक्ष संबंध होने के कारण वे अपनी मौद्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति विदेशी विपणियों से कर लेते थे तथा इम्पीरियल बैंक के ऊपर कम निर्भर रहते थे। चौथे, मुद्रा-नियंत्रण एवं साख-नियंत्रण का उत्तरदायित्व विभाजित था अर्थात् सरकार मुद्रा का नियंत्रण करती थी और साख का नियंत्रण इम्पीरियल बैंक।

किंतु रिज़र्व बैंक की स्थापना होने से यह दुहरा नियंत्रण अब नहीं रहा। फिर भी रिज़र्व बैंक की अधिकोषण-दर प्रभावी रूप से काम नहीं कर सकती क्योंकि सबसे प्रथम किसी भी केन्द्रीय अधिकोष की साख-नियंत्रण शक्ति दो बातों पर निर्भर रहती है—एक तो माँग करने वाले कहाँ तक अपनी आवश्यकताओं के लिये अधिकोषों पर निर्भर रहते हैं तथा दूसरे, अधिकोष केन्द्रीय अधिकोष के ऊपर एवं अपने निजी साधनों पर कहाँ तक निर्भर रहते हैं। परन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं यहाँ जो रोकनिधि अधिकोषों को वैधानिक रूप से रिज़र्व बैंक के पास रखनी पड़ती है वह भारतीय आर्थिक परिस्थिति के अनुसार बहुत कम है, जिसकी वजह से साख-निर्माण के लिए अधिकतर अधिकोष अपने निजी साधनों पर ही निर्भर रहते हैं तथा इसकी स्थापना के बाद अभी तक ऐसा प्रसंग भी नहीं आया कि इसकी साख नियंत्रण शक्ति की परीक्षा हो सके क्योंकि बाजार की परिस्थिति अच्छी रहने के कारण अधिकोष इसके पास अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भी बहुत कम आये। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि रिज़र्व बैंक की स्थापना से मुद्रा-विपणि में, जो मौसमी मुद्रा की दुर्लभता हो जाती थी तथा ब्याज-दर में जो परिवर्तन होते थे, वे नहीं हुए तथा अधिकोष दर भी समान बना रहा—जो सत्य मुद्रा-विपणि पर रिज़र्व बैंक का प्रभाव रहा, इसी बात को प्रमाणित करता है।

विवृत विपणि क्रियाएँ : अधिकोष दर को अधिक प्रभावी करने के लिये रिज़र्व बैंक स्कंध-विनिमय विपणि में विधान द्वारा प्रमाणित (Approved) प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय कर सकता है परन्तु उसकी यह क्रय विक्रय शक्ति भी सीमित है क्योंकि रिज़र्व बैंक केवल मान्य प्रतिभूतियों एवं विपत्रों का ही क्रय विक्रय कर सकता है। भारत में न तो विपत्र-विपणि है और न विपत्रों

का अधिक उपयोग ही होता है और फिर यहाँ पर ऐसी स्कंध-विनिमय विपणियाँ भी नहीं हैं जैसी अमेरिका इङ्गलैंड आदि पाश्चात्य देशों में है जिससे इन क्रियाओं का मुद्रा-विपणि पर इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ सकता है।

अन्य उपाय : इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक साख-नियंत्रण के अन्य उपाय भी काम में ला सकता है जिसका उसे वैधानिक अधिकार प्राप्त है। जैसे जनता से प्रत्यक्ष व्यवहार करना; जिसके अंतर्गत यह अधिकोष जनता को मान्य प्रतिभूतियों के आधार पर सीधा ऋण दे सकता है, परन्तु उसने अभी तक ऐसा नहीं किया है।

यह ऐसा अधिकार रिज़र्व बैंक को प्राप्त है जिससे उसकी धाक संयुक्त स्कन्ध-अधिकोषों पर जमी हुई है एवं वे रिज़र्व बैंक की निर्धारित नीति के विरुद्ध जाने का साहस ही नहीं कर पाते।

इसके अतिरिक्त अन्य साख-नियन्त्रण के उपाय भारतीय मुद्राविपणि की परिस्थिति देखते हुए सफल नहीं हो सकते क्योंकि साख के लिए देश के अधिकोष रिज़र्व बैंक पर बहुत ही कम निर्भर रहते हैं तथा वे अपने पास ही पर्याप्त रोक निधि रखते हैं। हाँ, रिज़र्व बैंक का नैतिक प्रभाव अवश्य प्रभावपूर्ण रीति से कार्यान्वित हो सकता है परन्तु इसके लिए व्यापारिक अधिकोषों तथा अनुसूची-बद्ध अधिकोषों में एवं रिज़र्व बैंक में अधिकाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध एवं सहयोग रहना आवश्यक है।

रिज़र्व बैंक का स्थिति-विवरण : जैसा कि हम पहिले बता चुके हैं रिज़र्व बैंक का कार्य दो प्रमुख विभागों में विभक्त है—चलन विभाग तथा अधिकोपण विभाग। चलन विभाग केवल पत्र-मुद्रा तथा उसके परिवर्तन से सम्बन्ध रखता है तथा अधिकोपण विभाग अधिकोष की अधिकोष क्रियाओं से, साख-नियन्त्रण क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है। इन दोनों की आर्थिक स्थिति अधिक स्पष्ट हो तथा सम्पत्ति एवं देय का समुचित ज्ञान हो सके इस हेतु दोनों विभागों का स्थिति-विवरण अलग अलग बनाया जाता है, जिससे दोनों विभागों की सम्पत्ति, देय तथा कार्यों का सम्पूर्ण एवं स्पष्ट ज्ञान होता है। ये स्थितिविवरण भारत सरकार की पत्रिका (Government of India Gazette) में तथा अन्य समाचार पत्रों में साप्ताहिक प्रकाशित होते रहते हैं। इनका प्ररूप पृष्ठ ५४० एवं ५४१ पर दिया हुआ है, जिससे इनकी पूर्ण कल्पना हो सकती है।

रिज़र्व बैंक तथा कृषि-साख : रिज़र्व बैंक विधान के अनुसार रिज़र्व बैंक ने कृषि साख विभाग भी खोला है। जिसके निम्न कार्य हैं :—

Reserve Bank of India— Statement of Affairs for week ended 2nd September 1949

Issue Department रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया २ सितम्बर १९४९ साप्ताहिक अंत का स्थिति विवरण[1]

देयता	हज़ार	हज़ार	संपत्ति	हज़ार	हज़ार
अधिकोषण विभाग स्थित पत्रमुद्रा (Notes held in Banking Department)	३७,४०,७४		अः स्वर्ण मुद्रा एवं स्वर्ण खंड (i) भारत स्थित (Held in India)	४०,०१,७१	
			(ii) विदेशों में (Held outside India)	६१०,३४,३८	
			'अ' का योग		६,५०,३६,०९
			बः रुपये के सिक्के (Rupee Coin)		
चलित पत्रमुद्रा (Notes in Circulation)	१०,८३,७३,६१	११,२१,१४,३५	भारत सरकार की रुपये की प्रतिभूतियाँ (Government of India Rupee Securities)		५२,०१,५८
			आंतरिक विनिमय विपत्र एवं अन्य व्यापारिक पत्र (Internal Bills of Exchange and other Commercial Papers)		४,१८,७६,६८
देयता योग Total Liabilities		११,२१,१४,३५	संपत्ति योग (Total Assets)		११,२१,१४,३५

[1] *Commerce* 10. 9. 49.

(Reserve Bank of India) रिजर्व बैंक ऑफ इन्डिया

(Statement of Affairs for the week ended 2nd September 1949)

२ सितम्बर १६४६ को अंत होने वाले सप्ताह का स्थिति विवरण

देयता	रुपये	सम्पत्ति	रुपये
दत्त पूंजी (Paid up Capital)	५,००,००,०००	पत्र मुद्रा (Notes)	३७,४०,७४,०००
		रुपये के सिक्के (Rupee coin)	६,६७,०००
संचिति प्रणीवि (Reserve Fund)	५,००,००,०००	गौण मुद्राएं (Subsidiary Coins)	१,६४,०००
निक्षेप:— (Deposits)		क्रीत एवं अपहृत विपत्र (Bills-purchased & Discounted):-	
(अ) सरकारी (Government)		(i) आंतरिक (Internal)	५३,४८,०००
(i) केंद्रीय सरकार (Central Govt.)	१,१७,६०,३०.०००	(ii) बाहरी (External)	
(ii) अन्य सरकार (Other Govts.)	२४,६१,०६,०००	(iii) सरकारी कोष विपत्र (Govt. Treasury Bills)	१७,६८,००
		विदेश स्थित शेष (Balances-held abroad)	१,६७,६८,६६,०००
(ब) (i) अधिकोष (Banks)	८६,००,५५,०००	सरकार को दिये हुए ऋण एवं अग्रिम (Loans & advances to Governments)	१६,००,०००
(ii) अन्य (Others)	६१,३०,०३,०००		
देय विपत्र (Bills Payable)	३,१५,०७,०००	अन्य ऋण एवं अग्रिम (Other-loans & advances)	६,२८,६८,०००
अन्य देय (Other Liabilities)	५,०२,४५,०००	विनियोग (Investments)	६३,११,६०,०००
		अन्य सम्पत्ति	२,८०,४४,०००
रुपये (Rs)	३,११,२६,४६,०००	रुपये (Rs)	३,११,२६,४६,०००

१. कृषि-साख सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन के लिए कृषि-साख के विशेषज्ञ रखना तथा समय समय पर केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों एवं प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों को तथा अन्य अधिकोषण संस्थाओं को सलाह देना तथा उनका मार्ग-प्रदर्शन करना।

२. अपनी क्रियाओं को कृषि-साख से सम्बन्धित रखना तथा उन क्रियाओं द्वारा प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों को, अन्य अधिकोषों एवं संस्थाओं को—जो कृषि-साख से सम्बन्धित हों—सङ्गठित करना।

रिज़र्व बैंक कृषि कार्यों के लिए—यह हमारे देश का सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण व्यवसाय होते हुए भी किसी प्रकार की प्रत्यक्ष सहायता नहीं कर सकता और यह सहायता वह केवल प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों के एवं अनुसूची-बद्ध अधिकोषों के माध्यम से ही कर सकता है। इसी प्रकार कृषि-साख का क्षेत्र भी सीमित है क्योंकि यह केवल उन्हीं कृषि विपत्रों का अपहरण अथवा क्रय कर सकता है जो मौसमी साख की पूर्ति के लिये अथवा फसल को बेचने के लिये ही आहरित किये गये हों तथा जिनकी अवधि ९ मास से अधिक न हो। इन प्रतिबंधों के कारण रिज़र्व बैंक कृषि को पर्याप्त साख-सुविधाएँ देने में तथा उन्हें महाजनों के चंगुल से छुड़ाने में सफल नहीं हो सका है।

रिज़र्व बैंक का कृषि-साख विभाग तीन उपविभागों में विभाजित है :—

अ. कृषि साख-उपविभाग : ग्रामीण साख समस्याओं का विशेषतः सहकारिता आंदोलन के सम्बन्ध में, अध्ययन करता है तथा ग्रामीण ऋण ग्रस्तता के सम्बन्ध में विधान का अध्ययन करता है।

ब. अधिकोषण विभाग : इस विभाग के अधिकारी सहकारिता आंदोलन के सम्पर्क में रहकर तथा भारत के विभिन्न भागों में सहकारिता आंदोलन के विशेष लक्षणों की कार्य-प्रणाली का उन स्थानों पर जाकर अध्ययन एवं अनुसंधान करते हैं तथा उनके अध्ययन एवं अनुसंधान का परिणाम प्रकाशित करते हैं, इस प्रकार की सहकारिता आंदोलन सम्बन्धी ९ पत्रिकाएँ रिज़र्व बैंक प्रकाशित कर चुका है।

क. सांख्यिकी तथा अनुसंधान विभाग के अधिकारी अपनी सेवायें प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारों को, सहकारी अधिकोषों को तथा कृषि साख सुविधा देने वाले अन्य अधिकोषों को देते हैं, यदि वे इस विभाग से कृषि-साख सम्बन्धी सम्मति लें।

इस प्रकार इस विभाग ने कृषि-साख समस्याओं सम्बन्धी अधिक अनुसंधान किया तथा अन्य देशों से भी इस विषय की आवश्यक सामग्री एकत्रित की है। इसने समय-समय पर प्रकाशित होने वाले वृत्तलेखों से सरकार के सामने कृषि साख सुविधाएँ देने के लिये स्वदेशीय अधिकोषों को नियंत्रण करने सम्बन्धी तथा सहकारिता आन्दोलन के पुनर्संङ्गठन सम्बन्धी अनेक सुझाव भी रखे; क्योंकि वर्तमान दशा में स्वदेशीय साहूकार तथा महाजन ही ६० प्रतिशत कृषि-साख की पूर्ति करते हैं परन्तु अभी तक ये रिज़र्व बैंक के नियंत्रण में नहीं आ सके हैं। इसी प्रकार जैसा कि हम अभी देख चुके हैं रिज़र्व बैंक के हाथ बंधे हुए होने के कारण वह कृषि-साख की पूर्ति प्रत्यक्ष नहीं कर सकता और न उसके पास आस्ट्रेलिया के केन्द्रीय अधिकोष की भाँति ऐसी कोई निधि ही है जिससे वह कृषकों को प्रत्यक्ष सहायता कर सके।

इस सम्बन्ध में रिज़र्व बैंक ने स्वदेशीय अधिकोषों तथा सहकारी अधिकोषों द्वारा कृषि साख सुविधाएं पहुँचाने का प्रयत्न किया, परन्तु कोई परिणाम न निकला। रिज़र्व बैंक ने १९३८ की १४ मई को कृषि-साख की सुविधाएँ सहकारी अधिकोषों की मार्फत देने के लिये कार्य-क्रम एवं पद्धति बनाई जिससे प्रांतीय सहकारी अधिकोषों को रिज़र्व बैंक कृषि साख सम्बन्धी अधिक सुविधाएँ मिल सकती थीं परंतु इस योजना से केवल एक ही प्रांतीय सहकारी अधिकोष ने लाभ उठाया। इसी वर्ष जनवरी में महाजनों के माध्यम से कृषि साख सुविधाएँ देने की भी एक योजना बनाई गई थी, जिसके अनुसार कृषिज उपज की प्रतिभूति पर विपत्र लिखे गये। उनका अपहरण अनुसूची बद्ध अधिकोषों से २% प्रतिशत की दर से करने की सुविधाएँ दी जाने वाली थीं तथा इस सुविधा के अनुसार स्वदेशीय अधिकोष एवं महाजन किसानों से ४% प्रतिशत से अधिक व्याज नहीं ले सकते थे, परंतु अनुसूची-बद्ध अधिकोषों के विरोध होने के कारण यह योजना कार्यान्वित न हो सकी। इसके बाद सहकारी अधिकोषों को कृषि साख सुविधाएँ देने के हेतु रिज़र्व बैंक ने विधान की धारा १७ (२) (ब) तथा धारा १७ (४) (क) के अनुसार एक योजना बनाई। इस योजना के अनुसार फसल के बेचने के लिये कृषि साख सुविधाओं के लिए सहकारी अधिकोष अधिकोष-दर से १% प्रतिशत कम दर पर रिज़र्व बैंक से राशि प्राप्त कर सकते थे, लेकिन इसके साथ यह निर्बन्ध था कि इस कमी का लाभ कृषक अधमर्णों को प्राप्त हो। परन्तु इस योजना से जो आशाएँ थीं वे पूरी न हो सकीं क्योंकि केवल एक ही प्रांतीय सहकारी अधिकोष ने इस योजना के अंतर्गत २% प्रतिशत दर से राशि प्राप्त की और वह भी उसने कृषकों को ५% व्याज की दर से दी; जिससे

कृषकों को इस कम दर का कोई लाभ वास्तव में न मिल सका। १९४४ नवम्बर में इस योजना को विस्तृत करने के हेतु विपत्रों तथा प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों के अपहरण पर भी रिज़र्व बैंक ने १% प्रतिशत अवहार (Rebate) देना प्रारम्भ किया परन्तु ये विपत्र केवल कृषि साख की मौसमी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हों; १९४६ में अवहार १% से १½ प्रतिशत बढ़ा दिया गया। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के प्रांतीय सहकारी अधिकोषों के लिए तो रिज़र्व बैंक ने १½% प्रतिशत का विशेष अवहार देना स्वीकार किया जो उन्हें १९४६ मार्च तक मिल सकता था परन्तु केवल एक प्रांतीय सहकारी अधिकोष ने इस योजना के अन्तर्गत १९४७ दिसम्बर तक केवल ३९५ हजार रुपये की सहायता ली।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रिज़र्व बैंक ने अपनी ओर से, अपनी अधिकार सीमा में, कृषि साख सुविधाएँ बढ़ाने के लिए प्रयत्न किये परन्तु उन सुविधाओं से न तो महाजनों ने ही और न प्रांतीय सहकारी अधि-कोषों ने ही पूर्णतः लाभ उठाया। जहाँ तक विधान की धारा १७ (४) (ड) का सम्बन्ध है वह धारा अभी तक कार्यान्वित नहीं हुई है और न हो सकती है, जब तक भारत में अनुज्ञा-प्राप्त कोष्ठागारों (Licensed Warehouses) की स्थापना न हो। इस सम्बन्ध में रिज़र्व बैंक ने प्रांतीय सरकारों को अनुज्ञा-प्राप्त कोष्ठागारों की स्थापना के लिए स्मरण-पत्र (Memorandum) भी भेजा जिसमें भावी अनुज्ञा-प्राप्त कोष्ठागारों की स्थापना सम्बन्धी विधेयक की रूप-रेखा भी भेजी परन्तु अभी तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं हो सका क्योंकि इस सम्बन्ध में केवल दो-तीन प्रांतों में विचार ही किया है कि कुछ किया जाय; परन्तु कोई आवश्यक कार्यवाही अभी तक नहीं की है।

आगे क्या हो ? इससे अब आगे क्या हो, जिससे कृषि-साख सुविधाओं को बढ़ाया जा सके; क्योंकि इसकी देश की खाद्यान्न परिस्थिति को देखते हुए अतीव आवश्यकता है। अधिकोषण जांच-समिति के वृत्तलेख में भी कृषि साख की और कोई निर्देश नहीं है क्योंकि उस समिति के सभासद यही सोचकर चले कि ग्रामों में पर्याप्त धन है, उसे केवल हमको सरकारी कार्यों के लिए ऋण रूप में खींचना है—जो बात उनके वृत्तलेख एवं प्रश्न-पत्रिका (Questionnaire) से स्पष्ट है। अतः कृषि साख सुविधाएं बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि आस्ट्रेलिया के कृषि साख विभाग की भांति रिज़र्व बैंक को भी कृषकों को सहायता के लिये एक 'निधि' दी जाय। इसके साथ प्रांतीय सरकारों को शीघ्र ही अनुज्ञाप्राप्त कोष्ठागारों की स्थापना के लिए वैधानिक कार्यवाही करनी चाहिये तथा कोष्ठागार खोलना चाहिये जिससे

कृषि-विपत्रों का उपयोग बढ़े तथा रिज़र्व बैंक भी अपने विधान की धारा १७ (४) (ड) के अनुसार अधिक कृषि सुविधायें दे सके। अन्य पाश्चात्य देशों की भाँति रिज़र्व बैंक विधान में समुचित परिवर्तन कर कृषकों को दीर्घकालीन ऋणों की सुविधायें देने का प्रयत्न करना चाहिये जिसके लिए स्थायी कार्यशील पूँजी ऋण-पत्रों के निर्गमन द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

रिज़र्व बैंक तथा अनुसूची बद्ध अधिकोष :

रिज़र्व बैंक की स्थापना ने देश के संयुक्त स्कंध-अधिकोषों का विभाजन दो श्रेणियों में कर दिया है : अनुसूची-बद्ध अधिकोष तथा अन-अनुसूची-बद्ध अधिकोष।

अनुसूची-बद्ध अधिकोष : उन संयुक्त स्कंध-अधिकोषों को कहते हैं जिनका समावेश रिज़र्व बैंक विधान के अनुसार दूसरी अनुसूची में किया गया है। जो बैंक धारा ४२ (६) में दिये हुए सब निर्बन्धों की पूर्ति करता है वह अनुसूची-बद्ध अधिकोषों की अनुसूची में समाविष्ट किया जा सकता है, ये निर्बन्ध निम्नलिखित हैं :—

(अ) जो अधिकोष भारतीय प्रांतों में अपना व्यवसाय करते हों,

(ब) जिन अधिकोषों की दत्तपूंजी एवं निधि मिलाकर ५,००,००० रुपये से कम न हो,

(क) तथा जिनके विषय में रिज़र्व बैंक को यह विश्वास हो कि वे अपने निक्षेपकों के हितों में व्यापार कर रहे हैं।

ऐसे सब अधिकोष अनुसूची-बद्ध अधिकोषों की अनुसूची में समाविष्ट किये जाते हैं। इस प्रकार के अधिकोषों की संख्या ३१ मार्च १९५० को १०० थी तथा उनकी कार्यालय संख्या २९१२ थी।[1] जिन अधिकोषों का समावेश अनुसूची में नहीं है उन्हें अन-अनुसूची बद्ध अधिकोष कहते हैं। अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को रिज़र्व बैंक से जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं वे उन्हें कुछ निर्बन्धों की पूर्ति करने के बाद ही मिल सकती हैं। ये निर्बन्ध विधान के अनुसार निम्न हैं :—

१. प्रत्येक अनुसूची-बद्ध अधिकोष को अपनी याचित देय का ५% तथा काल देय की २% प्रतिशत राशि रिज़र्व बैंक के पास निक्षिप्त करनी पड़ती है। [धारा ४२ (१)];

---

[1] *Report on Currency & Finance 1949-50, Issued by the Reserve Bank of India.*

२. प्रत्येक अनुसूची-बद्ध अधिकोष को केन्द्रीय सरकार तथा रिज़र्व बैंक को साप्ताहिक विवरण भेजना आवश्यक होता है [धारा ४२ (२)] जिसमें निम्न लिखित बातों का समावेश होना चाहिये :—

(अ) याचित तथा काल देय की राशि;
(ब) पत्रमुद्रा तथा सरकारी पत्रमुद्राओं की राशि जो भारत में है;
(क) अधिकोष के पास भारत में कितने रुपये तथा कितनी अन्य मुद्रायें हैं;
(ड) अग्रिम, ऋण तथा अपहृत विपत्रों की राशि;
(ग) अधिकोष के पास रोकड़ कितनी है।

उपर्युक्त विवरण पर अधिकोष के दो संचालकों के, व्यवस्थापकों के अथवा अन्य उत्तरदायी अधिकारियों के हस्ताक्षर होना अनिवार्य है।

जो अधिकोष अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण साप्ताहिक विवरण नहीं भेज सकता उसे रिज़र्व बैंक इस आशय का मासिक विवरण भेजने की अनुमति दे सकता है। इन्हीं विवरणों के आधार पर रिज़र्व बैंक धारा ४३ के अनुसार अनुसूची-बद्ध अधिकोषों का एकत्रित विवरण (Consolidated Statement) प्रकाशित करता है।

उपर्युक्त विवरण न भेजने पर अधिकोष के संचालकों पर अथवा दोषी अधिकारियों पर जब तक यह विवरण न भेजा जाय १०० रु० प्रति दिन के हिसाब से दंड हो सकता है। दूसरे, जो अधिकोष अपने याचित एवं काल देय की क्रमशः ५% व २% राशि रिज़र्व बैंक में नहीं रख पाते उनसे कमी पर धारा ४२ (३) के अनुसार अधिकोष-दर से कुछ अधिक ब्याज रिज़र्व बैंक वसूल कर सकता है, अथवा उनको निक्षेप स्वीकार करने से रोक सकता है अथवा उनके संचालकों को दंड दे सकता है।

इन निर्बन्धों की पूर्ति के फलस्वरूप अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को रिज़र्व बैंक से कुछ विशेष सुविधायें प्राप्त होती हैं जिनमें सब से महत्त्वपूर्ण सुविधा उनको विपत्रों आदि के अपहरण की तथा अन्य मान्य प्रतिभूतियों की प्रतिभूति पर ऋण प्राप्त करने की मिलती है तथा विपत्रों के क्रय विक्रय की भी सुविधाएँ मिलती हैं जिनका विवरण रिज़र्व बैंक के कार्यों में हम कर चुके हैं। किन्तु ऋण आदि की सुविधाएँ देने के पूर्व रिज़र्व बैंक यह देख लेता है कि अधिकोष की ऋण-नीति कैसी है तथा किन कार्यों में ऋणों का उपयोग होगा ? केवल प्रतिभूति की अच्छाई पर ही ऋण नहीं देता क्योंकि इन ऋणों का दुरुपयोग न हो इसका उत्तरदायित्व अधिकोषण विकास की दृष्टि से देखने का उत्तरदायित्व उसका है। रिज़र्व बैंक बिना किसी कारण दिये किसी भी अनुसूची-बद्ध

अधिकोष को ऋण देने से भी इन्कार कर सकता है। अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को राशि-स्थानांतरण की सुविधाएँ भी प्राप्त होती हैं जो निम्न प्रकार से दी जाती हैं :—

१. (i) रिज़र्व बैंक के कार्यालयों एवं शाखाओं में उसके लेखे से १०,००० रु० तक की निशुल्क राशि स्थानांतरण सुविधा,

(ii) किसी भी स्थान से जहाँ रिज़र्व बैंक का अभिकर्तृत्व कार्यालय है (इम्पीरियल बैंक) तथा अनुसूची-बद्ध अधिकोष का कार्यालय, उप-कार्यालय, शाखा अथवा शोध्य-कार्यालय (Pay Office) है उस स्थान से उस अधिकोष के रिज़र्व बैंक स्थित प्रधान लेखे में ५००० रु० तक सप्ताह में एक बार के लिये निशुल्क राशि-स्थानांतरण सुविधा;

(iii) उसके रिज़र्व बैंक स्थित प्रधान लेखे में राशि स्थानांतरण के लिए अन्य सुविधाएँ १/६४% की दर से दी जाती है परन्तु इसका न्यूनतम शुल्क एक रुपया होगा।

(iv) अन्य राशि-स्थानांतरण सुविधाएँ जिनमें रिज़र्व बैंक अथवा उसके अभिकर्ता के कार्यालयों में जो लेखे हैं उनमें राशि स्थानांतरण हो सकता है। जिसके लिए निम्न शुल्क दर हैं :—

(अ) ५००० रु० तक १/१६% (न्यूनतम शुल्क १ रु०)

(ब) ५००० रु० से ऊपर ३/३२% (न्यूनतम शुल्क ३ रु० २ आ०)

२. उपर्युक्त सुविधाओं के अतिरिक्त किसी भी तीसरे व्यक्ति के नाम राशि तार-प्रेषण अथवा विकर्ष से भेजने के लिये निम्न सुविधाएँ दी जाती हैं परन्तु कोष अभिकर्ताओं (Treasury Agencies) पर मर्यादित राशि आहरित की जा सकती है एवं भेजी जा सकती है :—

(अ) ५००० रु० तक १/१६% (न्यूनतम शुल्क १ रु०)

(ब) ५००० रु० से अधिक ३/३२% (,, ,, ३ रु० २ आ०)[1]

अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को इस शुल्क के अतिरिक्त तार-प्रेषण शुल्क भी देना पड़ता है, यदि तार से राशि-स्थानांतरण किया जाय।

रिज़र्व बैंक को यह अधिकार है कि यदि किसी भी अधिकोष की दत्त पूंजी तथा निधि मिलाकर ५ लाख रुपये से कम हो, जिसकी अधिकोषण क्रियाएँ देश के हित में न हों, जिसने अधिकोषण व्यवसाय करना स्थगित कर दिया हो अथवा जिसके परीक्षण से रिज़र्व बैंक को संतोष न हो तो उसे अनुसूची से अलग कर सकता है।

---

[1] *Functions & Working of the Reserve Bank of India*
—J. B. Taylor, Page 49

रिज़र्व बैंक का अन-अनुसूची-बद्ध अधिकोषों से सम्बन्ध : अतालिकाबद्ध अधिकोषों को हम दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—एक तो वे जिनकी दत्त पूंजी एवं निधि मिलाकर ५०,००० रुपये से अधिक हो तथा दूसरे वे जिनकी पूंजी एवं निधि इस राशि से कम हो। इनमें से रिज़र्व बैंक केवल पहिले प्रकार के अधिकोषों से, जो भारतीय प्रमंडल-विधान के अंतर्गत समामेलित (Incorporated) हों तथा इस विधान की धारा २७७ (फ) के अनुसार अधिकोपण व्यापार करते हों, सम्बन्ध रखता है; उन्हें समय-समय पर आवश्यक सलाह देता है तथा उनके कार्यों का परीक्षण एवं निरीक्षण भी करता है। भारत में अन-अनुसूची-बद्ध अधिकोषों की संख्या—३१ मार्च १९५० को ३६४ थी[1] एवं इन अधिकोषों को रिज़र्व बैंक से राशि-स्थानांतरण की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जो १ अक्तूबर १९४० से दी गई हैं जिससे रिज़र्व बैंक का इनसे सम्बन्ध प्रस्थापित हो सके एवं सम्बन्ध को और भी बढ़ाने के लिये १९४५ से अन-अनुसूची-बद्ध अधिकोष भी रिज़र्व बैंक में अपने लेखे खोल सकते हैं। परन्तु उनकी निक्षेप-राशि १०,००० रु० से कम न होगी और ये लेखे चल-लेखे न होते हुए केवल पारस्परिक समाशोधन कार्य कर सकेंगे। राशि स्थानांतरण सुविधाएँ निम्न हैं :—

५००० रु० तक	$\frac{1}{16}$ प्रतिशत
५००० रु० से अधिक	$\frac{1}{32}$ प्रतिशत

रिज़र्व बैंक अब अधिकोपण प्रमंडल-विधान (१९४९) की धारा ३५ के अनुसार देश के सभी अधिकोषों का निरीक्षण कर सकता है तथा इस निरीक्षण-कार्य का श्रीगणेश भी रिज़र्व बैंक ने कर दिया है तथा १९५० के कार्य-क्रम के अनुसार ३९ अधिकोषों का निरीक्षण होने वाला था। इस अधिकार के कारण रिज़र्व बैंक का सम्बन्ध देश के सभी अधिकोषों से स्थापित होगा तथा देश के अधिकोपण स्तर में सुधार होगा क्योंकि इस धारा के अनुसार रिज़र्व बैंक का उत्तरदायित्व बढ़ गया है तथा वह अधिकोषों के अच्छे प्रबन्ध के लिये भी उत्तरदायी है।

रिज़र्व बैंक तथा स्वदेशीय अधिकोष :

स्वदेशीय अधिकोषों का देश की साख-व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह हम पहिले (अध्याय १३) में देख चुके हैं जिनका नियंत्रण रिज़र्व बैंक अपनी विभिन्न योजनाओं के द्वारा करने में असफल रहा एवं यह हमारे मौद्रिक

[1] *Report on Currency & Finance 1949-50 of the Reserve Bank of India.*

विपणि का बहुत बड़ा दोष है जिसकी वजह से अधिकोष-दर भी प्रभावी रूप से साख-नियंत्रण कार्य नहीं कर पाती। इसके सम्बन्ध में हम अध्याय १३ में पर्याप्त लिख चुके हैं परन्तु फिर भी यहाँ पर इतना लिखना आवश्यक है कि देश की मुद्रा-विपणि के संगठन के लिये तथा विपत्र-विपणि का विकास हो सके इसलिये इनका नियमन एवं नियंत्रण होना अनिवार्य है। रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीयकरण हो जाने की वजह से अब हमें यह आशा है कि वह शीघ्र ही मुद्रा-विपणि के इस महत्वपूर्ण अङ्ग को नियमित एवं नियन्त्रित करने के लिए कदम उठायेगा—जिसके ऊपर ही रिज़र्व बैंक के साख-नियंत्रण की कृतकार्यता बहुत अंश में निर्भर है।

रिज़र्व बैंक का भारतीय मुद्रा-विपणि पर प्रभाव : हमारी मुद्रा-विपणि असंगठित है तथा उसके विभिन्न अंगों में पारस्परिक सहयोग न होने के कारण रिज़र्व बैंक की साख-नियंत्रण क्रियाओं का अन्य पाश्चात्य देशों की भाँति प्रभाव नहीं पड़ता है, जैसा कि हम पिछले पृष्ठों में देख चुके हैं। अतः इसके लिये रिज़र्व बैंक को मुद्रा-विपणि के संगठन की ओर प्रयत्नशील होना चाहिये तथा विपत्र-विपणि का विकास करने के लिए भी आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिये, जिससे वह भली भाँति एवं देशहित की दृष्टि से आवश्यकतानुसार साख-नियंत्रण करने में यशस्वी हो सके।

रिज़र्व बैंक द्वारा विनिमय नियंत्रण : द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही भारत सुरक्षा नियम के अनुसार रिज़र्व बैंक को विनिमय नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त हुआ तथा इस कार्य को करने के लिये रिज़र्व बैंक ने विनिमय-नियंत्रण विभाग को खोला। कोई भी व्यक्ति रिज़र्व बैंक से अनुज्ञा-पत्र प्राप्त किये बिना विदेशी विनिमय-व्यवहार नहीं कर सकता था एवं किन कार्यों के लिए विदेशी विनिमय प्राप्त हो सकता था इस संबंध में भी नियंत्रण लगाये गए थे जो २१ मार्च १९४७ तक चालू रहे। विनिमय नियंत्रण में अब ढिलाई कर दी गई है फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-प्रणीधि का भारत सदस्य होने से अब स्टर्लिङ्ग से रुपये का सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका है तथा भारतीय रुपया किसी भी देश की मुद्रा के साथ—जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-प्रणीधि के सदस्य हैं परिवर्तित हो सकता है। अतः रिज़र्व बैंक विधान की धाराएँ ४०–४१ में आवश्यक संशोधन किया गया है, जिसके अनुसार रिज़र्व बैंक विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित दरों पर कर सकता है। इस विनिमय नियन्त्रण करने के लिए २५ मार्च १९४७ को विदेशी विनिमय नियमन विधान १९४७ (Foreign Exchange Regulations Act, 1947) स्वीकृत हुआ। एवं १ अप्रेल से

न्वित किया गया। इसका उद्देश विदेशी विनिमय के परिकाल्पनिक व्यवहारों को रोकना है तथा केवल अधिकृत अधिकोष ही विदेशी विनिमय के व्यवहार कर सकते हैं जिनमें विदेशी विनिमय-तथा कुछ संयुक्त स्कन्ध अधिकोषों का समावेश है। यह विनिमय नियन्त्रण किस अंश तक रहेगा यह बात भुगतान शेष (Balance of Payments) तथा भारत सरकार का अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-प्रणीवि के प्रति जो उत्तरदायित्व है उसपर निर्भर रहेगा।[1] अर्थात् सरकार द्वारा निर्धारित आयात-निर्यात नीति के अनुसार विदेशी विनिमय का क्रय-विक्रय होगा। अधिकृत अधिकोषों को विदेशी विनिमय के क्रय-विक्रय का सामयिक लेखा भी देना पड़ता है जिससे विदेशी विनिमय की प्राप्ति एवं भुगतान के विषय में रिज़र्व बैंक को पूर्ण जानकारी रहे। प्रमुख देशों के बीच भारतीय रुपये की विनिमय दरों की तालिका नीचे दी हुई है:—

४'७६ रु० = १ अमरीकी डॉलर
१ रु० = १ शि० ६ पैंस अथवा १३'३३ रु० = १ पौंड

रिज़र्व बैंक से आशाएँ : रिज़र्व बैंक की स्थापना से देश को बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं क्योंकि १९३५ तक केन्द्रीय अधिकोष न होने से न तो हमारा अधिकोषण विकास ही हुआ और न अधिकोषण स्तर ही विशेष अच्छा रहा, मुद्रा-विपणि के विभिन्न अंग असंगठित रहते थे, मौसमी मुद्रा की दुर्लभता रहती थी, इम्पीरियल बैंक की अधिकोष-दर प्रभावशाली नहीं रहती थी। अतः इस अधिकोष की स्थापना से यह आशाएँ थीं कि रिज़र्व बैंक व्यापारिक अधिकोषों का नियन्त्रण एवं मार्ग-प्रदर्शन कर देश की अधिकोषण व्यवस्था को ऊँचे स्तर पर लायेगा; इस कार्य के लिए रोक निधि रखने सम्बन्धी विशेष वैधानिक अधिकार भी प्राप्त था। रिज़र्व बैंक मुद्रा-विपणि के विभिन्न अङ्गों को नियमबद्ध एवं नियन्त्रित कर उसे संगठित करेगा तथा व्यापारिक एवं अन्य अधिकोषों में पारस्परिक सहयोग की भावना निर्माण करेगा। देश में मौसमी साख एवं मुद्रा की जो दुर्लभता रहती है उसे दूर कर साख-नियन्त्रण देश के हित में सफलता से करेगा, जिसके लिए उसे पत्र-चलन का एकाधिकार अधिकोष-दर एवं विवृत्त विपणि क्रियाओं के उपयोग का वैधानिक अधिकार भी प्राप्त है।

अगर इन आशाओं की सफलताओं पर दृष्टिपात करें तो हमको यह दिखाई देगा कि रिज़र्व बैंक ये सब आशाएँ पूर्णरूप से पूरी न कर सका। अतः इसके विरुद्ध अनेक आक्षेप भी लगाये जाते हैं कि यह न तो मुद्रा-विपणि

[1] *Report of the Reserve Bank of India on "Currency & Finance 1946-47."*

को संगठित कर सका, न विपत्र-विपणि को बढ़ाकर अपनी अधिकोप-दर एवं विवृत-विपणि क्रियाओं द्वारा साख नियंत्रण कर सका। इसके साथ ही एक महत्वपूर्ण आक्षेप यह भी है कि इसने रुपये की बाह्य-मूल्य की स्थिरता रखने का अविरत प्रयत्न किया परन्तु आंतरिक मूल्य स्थिर रखने का प्रयत्न नहीं किया जिससे देश की अधिक हानि हुई। कृषि-साख की व्यवस्था भी यह समुचित रूप से आवश्यकतानुसार करने में असफल रहा, जिसको पूर्ण करने का वैधानिक उत्तरदायित्व इस पर था। न यह देश की पूंजी को गतिशील बनाकर भूमिगत द्रव्य को बाहर निकाल कर विनियोग कार्यों में लगाने में सफल रहा जिससे देश की औद्योगिक प्रगति भी न हो सकी। परन्तु यदि निष्पक्ष भाव से हम पिछले १५ वर्षों के कार्यों का अध्ययन करें तो हमको यह दिखाई देगा कि रिज़र्व बैंक से जो आशाएँ थीं उनको पूर्ण न कर सकने का सारा दोष केवल उस बैंक का ही न होते हुए उस परिस्थिति का भी है जिसमें रिज़र्व बैंक को कार्य संचालन करना पड़ा। इसके साथ ही रिज़र्व बैंक को विधान से सीमित अधिकार प्राप्त थे जिसकी वजह से भी वह अनेकों कार्य करने में असफल रहा। तीसरे १९४६ तक विदेशी सरकार थी जिसकी नीति का अनुसरण करने के लिये वह विधान के अनुसार बाध्य था और विदेशियों की नीति यह थी कि भारत की सम्पत्ति का विदोहन कर अँग्रेजी व्यापारियों को धारोष्ण दुग्धपान कराकर इङ्गलैंड के व्यवसाय एवं उद्योगों को पुष्ट एवं उन्नत करना।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए हम देखें तो मालूम होगा कि मुद्रा-विपणि में उसके द्वारा साख-नियंत्रण का जहाँ तक प्रश्न उठता है, साख की दुलर्भता निवारण करने में रिज़र्व बैंक सफल रहा। परन्तु नियंत्रण पूर्ण न कर सकने के कारण अनेक थे—१. पहले तो जैसा कि हम अन्यत्र कह चुके हैं—वैधानिक रोकनिधि जो अनुसूची-बद्ध अधिकोषों को रिज़र्व बैंक के पास रखनी पड़ती थी वह बहुत थोड़ी थी; इसलिए अतिरिक्त राशि अधिकोषों की निजी निधि में होने के कारण उनको रिज़र्व बैंक के पास ऋण लेने के लिये अथवा आर्थिक सहायता के लिये जाने की आवश्यकता ही नहीं हुई। रिज़र्व बैंक को आवश्यकतानुसार वैधानिक निधि में परिवर्तन करने का अधिकार भी विधान से नहीं दिया गया था। यदि इस वैधानिक निधि का अनुपात ७% की अपेक्षा १३ से १५% तक होता तो संभव था कि रिज़र्व बैंक साख नियंत्रण कार्य में पूर्णतः सफल होता क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर उनको रिज़र्व बैंक से सहायता के लिये आना ही पड़ता अन्यथा वे अधिकोष मुद्रा-विपणि को अधिक राशि नहीं दे सकते थे। अर्थात् विधान की त्रुटि की वजह से रिज़र्व बैंक साख-नियंत्रण में असफल रहा।

दूसरे—स्वदेशीय अधिकोष तथा महाजन जो विशेषतः ६०% साख की सुविधाएँ देते हैं, उन्हें रिज़र्व बैंक नियंत्रण में न ला सका; इसका प्रमुख कारण यह है कि इनका देश में इतना विस्तार है कि साख-व्यवस्था को अस्तव्यस्त किये बिना उनको नियंत्रित करना संभव नहीं; और साख-व्यवस्था यदि अस्त-व्यस्त हो जाती तो देश की कृषि एवं व्यवसायों को अपरमित हानि होती। जैसा कि हम बता चुके हैं रिज़र्व बैंक ने प्रयत्न किये, योजनायें बनाईं परन्तु वह सफल न हो सका। पर यह दोष अवश्य उसका माना जा सकता है। इस दोष की वजह से भी साख नियंत्रण करने में असफल रहा तथा उसका अधिकोष-दर अप्रभावी रहा।

तीसरे—स्वदेशीय अधिकोष विशेषतः अपनी सम्पत्ति से ही अधिकोषण व्यापार करते हैं तथा निक्षेपों पर नगण्य मात्रा में निर्भर रहते हैं तथा बिना किसी प्रतिभूति पर ऋणादि सुविधाएँ देते हैं एवं मन-चाहा व्याज भी वसूल करते हैं, जिसकी वजह से भिन्न भिन्न स्थानों के व्याज दरों में भिन्नता रहती है; परन्तु रिज़र्व बैंक इन पर तब तक नियंत्रण नहीं कर सकता जब तक उसका इनसे प्रत्यक्ष संबन्ध स्थापित न हो। इसीलिए वह व्याज दरों में समानता लाने में भी असफल रहा।

मुद्रा-विपणि में संगठन एवं सुदृढ़ता लाने में रिज़र्व बैंक असफल रहा इसका प्रमुख कारण यह था कि इसका नियंत्रण न तो स्वदेशीय अधिकोषों पर था और न अनुसूची-बद्ध अधिकोषों पर। अन-अनुसूची बद्ध अधिकोष भी कुछ मात्रा में ही १६४० की योजना के अनुसार इसके नियंत्रण में आ सके हैं परन्तु ये सब अंग विपत्रों के पुनः अपहरण की सुविधाओं के लिये न तो रिज़र्व बैंक पर ही निर्भर हैं और न अन्य अधिकोषों पर। इसकी वजह से ये अंग पूर्णतः अपने कार्यों में स्वतंत्र रहे। इसके अतिरिक्त अधिकोषों में पारस्परिक लेन-देन होता है जिसकी वजह से उनको रिज़र्व बैंक का आश्रय क्वचित ही लेने की आवश्यकता पड़ती है— इस कारण से रिज़र्व बैंक मुद्रा-विपणि में संगठन एवं सुदृढ़ता न ला सका। यह सुदृढ़ता एवं संगठन आने के लिये यह आवश्यक है कि अन-अनुसूची बद्ध अधिकोषों को भी मान्य अधिकोष (Approved Banks) की सूची में समाविष्ट किया जाय जो कार्य निरीक्षण-योजना (Inspection Scheme) की वजह से अब सम्भव हो सकता है।

रुपये का आंतरिक मूल्य स्थिर रखने में रिज़र्व बैंक असफल रहा क्योंकि उसने विशेषतः १६३६ के बाद स्टर्लिङ्ग प्रतिभूतियों के आधार पर कागज

देना शुरू किया जिससे मुद्रा-स्फीति हुई एवं देश की हानि हुई। यहाँ पर यह फिर कहना पड़ेगा कि यह दोष उसका नहीं था अपितु विदेशी सरकार का था, जिसके प्रभाव में उसे यह कार्य एक असाधारण परिस्थिति में करना पड़ा।

जहाँ तक अधिकोष-दर एवं विवृत विपणि क्रियाओं का सम्बन्ध है हम यह देख चुके हैं कि आजकल अधिकोष-दर विश्व के किसी भी देश में प्रभावशाली नहीं है। हाँ, यह मानना पड़ेगा कि उन देशों में आज भी व्याज की भिन्न-भिन्न दरों का उच्चावचन अधिकोष-दर के अनुसार होता है; परन्तु भारत में ऐसा नहीं होता अपितु व्याज दर समान रहते हुए भी भिन्न २ दरें समय-समय पर बदलती रहती हैं। इसका एकमात्र दोष स्वदेशीय अधिकोषों पर, महाजनों पर तथा उनकी क्रियाओं पर है जो नियमबद्ध न होने से अधिकोष-दर को प्रभावी नहीं होने देते। विवृत विपणि क्रियाओं के सम्बन्ध में भी हम देख चुके हैं कि रिज़र्व बैंक केवल कुछ विशेष प्रकार की प्रतिभूतियों का ही क्रय विक्रय कर सकता है, जिनके लिए देश की स्कंध-विनिमय-विपणि विस्तृत नहीं है। अतः आवश्यकता यह है कि रिज़र्व बैंक विधान में कुछ आवश्यकतानुसार संशोधन किये जायँ जिससे रिज़र्व बैंक वस्तु अधिकार-प्रलेखों आदि पर ऋण तथा अग्रिम दे सके; तभी विवृत विपणि क्रियाएँ यशस्वी हो सकती हैं। परन्तु यह कार्य वह अन्य अधिकोषों की प्रतियोगिता में न करते हुए केवल आवश्यकता के समय ही राष्ट्र एवं जन-हित की दृष्टि से करे। कृषि-साख का जहाँ तक प्रश्न है, हम यह देख चुके हैं कि रिज़र्व बैंक ने विधान के अन्तर्गत सुविधाएँ देने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु उन सुविधाओं से लाभ न उठाया गया अतः इसका दोष भी रिज़र्व बैंक का न होते हुए उन अधिकोषों का है जिन्होंने इसकी योजनाओं से समुचित लाभ न उठाया। ऐसा भी आक्षेप किया जाता है कि यह लाभ इसीलिये नहीं उठाया गया कि उसमें रिज़र्व बैंक द्वारा अनेक निर्बन्ध लगाये जाते हैं; परन्तु यह न भूलना चाहिये कि रिज़र्व बैंक विधान के अनुसार, बिना निर्बन्धों के वह भी तो कृषि-साख सुविधाएँ नहीं दे सकता है। अतः इस सम्बन्ध में भी वह दोषी न होते हुए वे संस्थाएँ दोषी हैं जिन्होंने इन योजनाओं का लाभ न उठाया तथा विधान भी दोषी है जिसमें भारतीय कृषिज आवश्यकतानुसार दीर्घकालीन ऋणों का नियोजन नहीं किया गया अपितु केवल ६० दिन की अवधि का—यह अवधि भारतीय कृषि की परिस्थिति को देखते हुए अपर्याप्त है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रिज़र्व बैंक कार्य सफलता पूर्वक करने में असफल रहा क्योंकि जिस परिस्थिति में उसने कार्यारंभ किया

वह मंदी का काल था। परंतु फिर भी उसने अधिकोष-स्तर को ऊँचा करने में एवं अधिकोषण संगठन को दृढ़ करने में प्रयत्न किया। अनेक अधिकोषों को विलीयन होने से बचाने में भी उसने विभाजन के समय सहायता प्रदान की; परंतु कुछ अधिकोष ही ऐसे थे कि उस परिस्थिति में उन्हें विधान के अनुसार सहायता नहीं दी जा सकती थी। उसके पूर्व इम्पीरियल बैंक की अधिकोष-दर जो अस्थायी रहती थी, उसको इसने स्थायी किया, जिसकी वजह से विभिन्न दरों में समानता तो नहीं आई फिर भी उनके उच्चावचन बहुत अंश में न होते हुए वे व्याज दरें नीची हुईं तथा उनमें जो अंतर था उसमें भी कमी हुई। प्रांतीय एवं केन्द्रीय सरकारों के ऋणों का निर्गमन भी इसने बड़ी कुशलता से किया तथा कम व्याज की दरों पर ऋण प्राप्त करने में अपरिमित सहायता प्रदान की। देश में अधिकोषण-विकास की प्रगति की तथा अधिकोषण सुविधाएँ भी बढ़ाईं। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी इसने यह कार्य सफलतापूर्वक किया जिसकी वजह से १९३५ से भारत के आर्थिक विकास में एक नये युग का—अधिकोषण युग का—प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ, यह तो मानना ही पड़ेगा। इसके साथ ही इसने मुद्रा-विपणि में जो मौसमी मुद्रा की दुर्लभता रहती थी उसका निवारण किया जिसका प्रभाव भी विभिन्न व्याज दरों को नीचा लाने में ही हुआ।

यह बैंक केवल दो आवश्यक बातें करने में असफल रहा। एक तो मुद्रा-विपणि को सुदृढ़ एवं संगठित बनाने में तथा दूसरे विपत्र-विपणि का विकास करने में—यह दोष इसका न होते हुए विधान का था क्योंकि यह प्रारंभिक अवस्था में था एवं इस कार्य को सरकार ही कुशलता से कर सकती थी। अब भविष्य में उसे चाहिये कि उसको जो अधिकोषण विधान की धारा ३५ में परीक्षण के अधिकार मिले हैं उनको दृष्टि में रखते हुए अनुसूची-बद्ध अधिकोषों की संख्या को, आवश्यक निर्बन्धों में ढिलाई करके बढ़ाने तथा देश के सभी अन-अनुसूची-बद्ध अधिकोषों का निरीक्षण करके सभी अन-अनुसूची-बद्ध—अधिकोषों एवं स्वदेशीय अधिकोषों को अपनी मान्य सूची में स्थान एवं आवश्यक सुविधाएँ देकर उनको नियंत्रण में लाने का प्रयत्न करे। इससे मुद्रा-विपणि का संगठन हो सकेगा। इसी प्रकार विपत्र-विपणि का विकास एवं स्थापना करने के लिए उसे आवश्यक कदम उठाना चाहिये। रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण हो जाने से तथा उसने जो अधिकोषों के परीक्षण का कार्यक्रम बताया है, उससे हम आशा कर सकते हैं कि अन्य अधिकोषों के पूर्ण सहयोग से रिज़र्व बैंक देश का अधिकोषण-स्तर सुसंगठित एवं सुदृढ़

करने में यशस्वी होगा तथा जिन कार्यों की पूर्ति करने में वह अभी तक असफल रहा है उनको भी पूर्ण करने में विशेष अधिकारों की वजह से सफल होगा।

प्रश्न संग्रह

१. रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया के वर्त्तमान विधान का विवेचन (Discuss) कीजिये। (अजमेर इन्टर १९५०)

२. देश की कृषि-साख व्यवस्था में रिज़र्व बैंक के कृषि-साख विभाग का क्या महत्त्व है ? वह इस कार्य में कहाँ तक यशस्वी रहा ? (अजमेर इन्टर १९५० [टिप्पणी]

३ रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में आप हैं क्या ? अपने कारण बताइये ? (अजमेर इन्टर १९४९)

४. रिज़र्व बैंक का राष्ट्रीयकरण हो जाने से देश को कौन से लाभ हुए तथा कौन से लाभ होने की आशा हैं ?

५. भारतीय मुद्रा-विपणि के कौन से दोष निवारण करने की आशाएँ रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया से थीं ? इस कार्य में रिज़र्व बैंक कहाँ तक यशस्वी हुआ ? (आगरा बी. कॉम. १९४६, १९४८)

६. रिज़र्व बैंक का विधान तथा कार्यों को संक्षेप में लिखिये ? (आगरा बी, कॉम. १९४८)

७. रिज़र्व बैंक के कार्यों क विवेचन कीजिये तथा उसके पिछले दस वर्षों के कार्यों की समालोचना कीजिये। (आगरा बी. ए. १९५०)

८. रिज़र्व बैंक द्वारा कार्यान्वित विनिमय-नियंत्रण पद्धति की रूप रेखा दीजिये। इस नियंत्रण के कौनसे हेतु हैं ? (आगरा बी. कॉम. १९४९)

९. रिज़र्व बैंक का वर्तमान संगठन बताइये। रिज़र्व बैंक के राष्ट्रीयकरण से भारत को कौनसे आर्थिक लाभ होंगे ?

१०. रिज़र्व बैंक ने स्वदेशीय अधिकोषों को नियंत्रण में लाने के लिए कौनसे उपाय किये ? उनमें उसे कहाँ तक सफलता मिली ?

११. केन्द्रीय अधिकोष के कार्य बताइये ? रिज़र्व बैंक इन कार्यों को कहाँ तक करता है ? (यू. पी. इन्टर १९४२)

१२. रिज़र्व बैंक का विधान एवं कार्यों का परीक्षण कीजिये। आप उसके संगठन एवं कार्य-पद्धति के सुधार के लिए कौनसे सुझाव करते हैं ? (यू. पी. इन्टर १९४७)

१३. किन कारणों की वजह से भारत में रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई ? उसका भारतीय अधिकोषण पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(यू. पी. इन्टर १६४३)

१४. रिज़र्व बैंक भारत सरकार के तथा अन्य अधिकोषों के कौनसे कार्य करता है ? (यू. पी. इन्टर १६४१)

१५. रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया के निम्न दो शीर्षकों के कार्यों का वर्णन कीजिये :—

(i) चलन सम्बन्धी कार्य,

(ii) अधिकोषण कार्य (यू. पी. इन्टर १६४०)

१६. वर्तमान स्थिति में ग्रामीण साख देनेवाली संस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन दीजिये। क्या रिज़र्व बैंक का भी ग्रामीण साख के सम्बन्ध में कुछ कर्तव्य है। (यू. पी. इन्टर १६४०)

अध्याय १८

औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था

देश के उपलब्ध साधनों का पर्याप्त एवं समुचित उपयोग करते हुए देश की आर्थिक व्यवस्था की उन्नति के लिये देश का औद्योगीकरण होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परन्तु भारत की वर्तमान स्थिति में जो उद्योग-धंधे हैं उनको पर्याप्त आर्थिक सुविधाएँ नहीं मिलतीं जिसकी वजह से नैसर्गिक साधनों की बहुलता होते हुए भी भारत का औद्योगिक विकास अभी तक पूर्ण रूप से नहीं हो सका है। औद्योगिक आयोग (Industrial Commission) ने तथा अधिकोषण जांच-समिति ने भी इस बात पर जोर दिया है कि यहाँ के उद्योगों को पर्याप्त आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, अतः देश में औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना होनी चाहिये।

औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना की आवश्यकता : उद्योगों की आर्थिक आवश्यकताएँ दो प्रकार की होती हैं :—

१. स्थायी पूँजी (Fixed Capital) : स्थायी पूँजी की आवश्यकता विशेषतः नए उद्योगों को होती है जिनको अपने यंत्र, सामग्री, भू गृहादि स्थायी संपत्ति के क्रय के लिए धन की आवश्यकता होती है। तथा जो उद्योग व्यवसाय पहिले से ही स्थापित हैं उनको अपनी जीर्ण संपत्ति की पुनः संस्थापना (Replacement) के लिए अथवा उद्योग के विस्तार के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है।

२. कार्यशील पूंजी—कार्यशील पूँजी की आवश्यकता उद्योगों की दैनंदिन आवश्यकताओं, उत्पादन के विपणन (Marketing) कच्चा माल आदि खरीदने के लिए होती है। इस प्रकार उद्योगों की आर्थिक आवश्यकताएँ दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन होती हैं। अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति तो व्यापारिक अधिकोष कर सकते हैं एवं करते भी हैं, परन्तु दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए देश में १९४९ तक कोई भी

संस्था अथवा अधिकोष नहीं था। अतः उद्योगों की प्रगति जैसी होना चाहिये एवं जिस प्रकार से हमारे उपलब्ध साधनों का उपयोग होना चाहिये वह नहीं हो रहा है। अतः देश के औद्योगिक विकास एवं प्रगति के लिए देश में औद्योगिक अधिकोषों की अतीव आवश्यकता है।

औद्योगिक अधिकोष ? ये वे अधिकोष हैं जो दीर्घकालीन आर्थिक सहायता देकर, उद्योगों की स्थापना एवं विकास के लिए उनकी स्थायी पूंजी की पूर्ति करते हैं। इस कार्य के लिए वे जो निक्षेप स्वीकारते हैं वे भी स्थायी निक्षेप तथा दीर्घकालीन होते हैं। इस प्रकार के अधिकोष नए नए प्रमंडलों के अंशों अथवा ऋण-पत्रों का अभिगोपन (Underwriting) भी करते हैं जिससे उनको स्थायी पूँजी प्राप्त हो सके।

प्रारम्भिक स्थिति : (i) हमारे औद्योगिक विकास के इतिहास के पन्ने पलटने से यह स्पष्ट हो जायगा कि भारत की वर्तमान औद्योगिक प्रगति का श्रेय विदेशियों को ही है जिन्होंने यहाँ प्रारम्भिक अवस्था में बड़े-बड़े कारखाने, जैसे कपड़े, जूट, ऊनी वस्त्र आदि के, खोले तथा इसके बाद क्रमशः जब भारतीय भी इन उद्योगों में अपनी पूँजी विनियोग करने लगे तब इन व्यक्तियों ने अथवा परिवारों ने अपनी लगाई हुई पूँजी क्रमशः जनता को बेच डाली तथा इस तरह हमारे देश में सीमित प्रमंडलों की स्थापना की पद्धति का श्री-गणेश हुआ। जिन व्यक्तियों ने यह कार्य प्रारम्भ किया था उन्होंने इन प्रमंडलों के साथ व्यवस्था सम्बन्धी समझौते कर लिए। इस प्रकार प्रबन्ध-अभिकर्ता-प्रणाली (Managing Agency System) का प्रादुर्भाव हुआ तथा विशेषतः इन्हीं लोगों तथा अभिकर्ताओं ने अपनी वैधानिक संचित राशि से उद्योगों की सहायता की। इससे हमारे प्रमंडलों के प्रबन्ध में एवं इस प्रणाली में अनेक दोष भी आ गये जिसका विवेचन हमारा विषय नहीं है। हमें यही जानना पर्याप्त है कि विशेषतः आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति इन प्रबन्ध-अभिकर्ताओं (Managing Agents) द्वारा ही होती थी। जिससे प्रमंडल एवं अंशधारियों को अनेक हानियाँ थीं :—

१. प्रबन्ध-अभिकर्ताओं का प्रमंडलों के ऊपर पूर्ण नियंत्रण रहता था जिससे तांत्रिक बातों (Technical Matters) की ओर पूर्ण दुर्लक्ष होता था तथा लाभ की ही वे अधिक चिन्ता करते थे जिससे यंत्रादि की घिसावट शीघ्र होकर उत्पादनाधिक्य भी हो जाता है।

२. इनका प्रभुत्व होने से प्रमंडल का संचालन ऐसे ही कुछ व्यक्तियों द्वारा होता है जो केवल धनी हैं परन्तु जिनमें औद्योगिक कार्यक्षमता का अभाव है।

३. प्रबन्ध-अभिकर्ता अनेक प्रमंडलों के प्रबन्धक होने की वजह से एक प्रमंडल पर होने वाले बुरे परिणामों का फल अन्य प्रमंडलों को भी भोगना पड़ता है।

४ इनके अधिक प्रभुत्व होने के कारण भारत में पूंजी एवं उद्योगों का केन्द्रीकरण कुछ इने गिने व्यक्तियों के हाथों में ही हो गया है जिससे पूंजी का समान वितरण नहीं होता और न अन्य व्यक्ति, जिनमें औद्योगिक योग्यता है, उद्योग प्रारम्भ कर सकते हैं।[1] जैसे भारत के सब महान् उद्योगों का स्वामित्व एवं प्रबन्ध केवल १० व्यक्तियों के हाथ में है।

इन बुराइयों की वजह से आजकल साधारण जन-मत यही है कि इस पद्धति का शीघ्रातिशीघ्र अन्त हो जाना चाहिये। इस आशय का विचार भी भारतीय सरकार ने १९४९ में किया था परन्तु वह पूर्ण न हो सका।

(ii) स्वदेशीय अधिकोष : उद्योगों को ऋण देने में इनका हाथ बहुत कम है अभी गत कुछ वर्षों से ये अहमदाबाद बम्बई की वस्त्र-निर्माणियों को ऋण देने लगे हैं, परन्तु फिर भी ऋण देने की अपेक्षा ये उनके पास स्थायी निक्षेप रखना ही अधिक पसन्द करते हैं। इनसे ऋण भ कम राशि के प्राप्त होते हैं जिससे औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तथा व्याज-दर भी अधिक होती है।

(iii) इसके बाद जनता का जब इनकी व्यवस्था तथा सुदृढ़ता में विश्वास हो गया तब ये प्रमन्डल जनता के स्थायी निक्षेप भी स्वीकारते थे जिससे बहुतांश में इनकी कार्यशील पूँजी का भाग भी पूर्ण हो जाता या तथा कुछ हद तक इनकी स्थायी पूँजी की आवश्यकताएँ भी पूर्ण हो जाती थीं। इस प्रणाली का प्रचार अहमदाबाद के वस्त्र-उद्योग में विशेष रूप से है; परन्तु वर्तमान अवस्था में उद्योग इन पर निर्भर नहीं रह सकते क्योंकि देश में अब अधिकोषण विकास अच्छा हो रहा है तथा अधिकोषों में जनता का विश्वास भी अधिक जम रहा है, जिससे भविष्य में औद्योगिक प्रमंडलों के पास निक्षेप नहीं जायेंगे।

(iv) औद्योगिक प्रमंडलों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति अंशों तथा ऋण-पत्रों के निर्गमन से पूर्ण होती है, जो भिन्न-भिन्न श्रेणी के विनियोग-कर्ताओं द्वारा खरीदे जाते हैं। प्रारम्भिक स्थायी पूंजी के लिये उद्योग इन अंशों एवं ऋण-पत्रों पर निर्भर रहते हैं तथा प्रमंडल के प्रारम्भ होने के बाद भी उपर्युक्त दो साधनों पर निर्भर रहते हैं, परन्तु पूंजी-विपणि के समुचित विकास के अभाव में इस स्रोत से पर्याप्त पूँजी प्राप्त नहीं होती है।

---

[1] *Who Owns India—by Ashok Mehta.*

(v) आधुनिक साधन हैं अधिकोष। परन्तु भारत में सभी अधिकोष व्यापारिक अधिकोषण कार्य करते हैं और इनके निक्षेप अल्पकालीन होने से वे उद्योगों की दीर्घ-कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते, परन्तु उनकी अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। परन्तु इसमें भी इनका भाग बहुत कम रहा है जो निम्न सारणी से स्पष्ट हो जाता है:—

	(कुल पूंजी का प्रतिशत)	
	अहमदाबाद	बंबई
१. अंश पूंजी	(३·४० ला० रु०) ३२ %	४६%(१२·१४ ला. रु.)
२. ऋणपत्र	(८·०० ,, ,,) १%	१०%(२·३८ ,, ,,)
३. प्रबंध अभिकर्ताओं से	(२·६४ ,, ,,) २४%	२१%(५·३२ ,, ,,)
४. जन-निक्षेप	(४·२६ ,, ,,) ३१%	११%(२·७३ ,, ,,)
५. अधिकोषों से	(४·१२ ,, ,,) ४%	६%(२·२६ ,, ,,)

भारतीय उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए हमारे देश में औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना न हुई हो यह बात नहीं है। इस प्रकार का पहिला अधिकोष टाटा इन्डस्ट्रियल बैंक था जिसकी स्थापना १९२३ में हुई परन्तु आगे उसका अन्तर्भाव सेंट्रल बैंक ऑफ इन्डिया में हो गया क्योंकि इसकी कार्य-पद्धति का सबसे बड़ा दोष था अल्पकालीन निक्षेपों से दीर्घकालीन ऋण सुविधाएँ देना तथा एक ही उद्योग में अधिक राशि का फँस जाना। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ विशेष परिस्थिति को छोड़कर जब कि हमारे देश में मुद्रा की बहुलता रही, जैसे १९१९-२२ तथा १९४३-४७। उद्योगों को आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन का अभाव ही रहा। कतिपय प्रांतों ने उद्योगों को आर्थिक सहायता देने के लिए प्रयत्न भी किए तथा इन प्रांतों में औद्योगिक सरकारी-सहायता-विधान (State Aid to Industries Act) भी स्वीकृत हुए परन्तु उनकी कार्य-पद्धति सदोष होने से तथा कार्यक्षम कर्मचारियों के अभाव में उनको पर्याप्त आर्थिक सहायता देने में सफलता नहीं मिली। अतः औद्योगिक विकास की दृष्टि से औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना की स्वतंत्र भारत में अतीव आवश्यकता है जिससे हमारे अधिकोषण विकास का यह अभाव दूर होकर, उद्योगों को भी अपनी अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन आवश्यकता पूर्ति के साधन उपलब्ध होकर हमारे देश की औद्योगिक उन्नति हो सके। यह हर्ष की बात है कि हमारी

[1] *Report of the Central Banking Enquiry Committee—1931*

राष्ट्रीय सरकार ने इस अभाव को दूर करने के लिए औद्योगिक-अर्थ-प्रमंडल (Industrial Finance Corporation) की स्थापना की, जो १ जुलाई १९४७ से कार्य कर रहा है। यह ध्यान में रहे कि ऐसे एक अखिल भारतीय औद्योगिक अर्थ-प्रमंडल की स्थापना का सुझाव केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति ने किया था, जिसके विषय में हम आगे लिखेंगे।

औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था एवं व्यापारिक अधिकोष : जैसा हम बता चुके हैं, उद्योगों को व्यापारिक अधिकोषों से कोई विशेष सहायता नहीं मिली तथा उनके द्वारा दी जाने वाली सुविधाएँ अपर्याप्त थीं और वे औद्योगिक सुविधाएँ अपने व्यापारिक स्वरूप के कारण दे भी नहीं सकते थे जिसके निम्न कारण हैं: —

१. व्यापारिक अधिकोषों के निक्षेप अल्पकालीन होते हैं जिसकी वजह से वे उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण आदि सुविधाएँ नहीं दे सकते क्योंकि उन्हें हमेशा अपनी सम्पत्ति तरल रखनी पड़ती है क्योंकि उनके निक्षेप अधिकतर माँग पर देय होते हैं।

२. व्यापारिक अधिकोष प्रमंडलों के अंश-ऋण-पत्रादि खरीद कर उनको सहायता दे सकते थे तथा इन ऋण-पत्रों तथा अंशों को वे क्रमशः हस्तांरित कर सकते थे; परन्तु व्यापारिक अधिकोषों ने अपने व्यापारिक स्वरूप को देखकर यह नहीं किया। इतना ही नहीं, अपितु, उन्होंने अंशों ऋण-पत्रों आदि का अभिगोपन तक नहीं किया, जो वे बिना किसी प्रकार के विशेष खतरे के कर सकते थे। विदेशों में व्यापारिक अधिकोष यह कार्य करते भी हैं। इसका कारण यह बताया जा सकता है कि भारत में अभी तक विकसित पूँजी-विपणि (Capital Market) नहीं हैं जिनमें इनको सुगमता से बेचा जा सके।

३. इम्पीरियल बैंक भी इस कार्य को नहीं कर सकता था क्योंकि विधान के अनुसार यह ६ मास से अधिक अवधि के लिए राशि उधार नहीं दे सकता था। इसका अनुकरण अन्य व्यापारिक अधिकोषों ने भी किया।

४. व्यापारी अधिकोष हमारे देश में वैयक्तिक प्रतिभूति पर ऋण नहीं देते और किसी माल की प्रतिभूति देना भारतीय उद्योगपति मानहानि समझते थे, इसलिये भी व्यापारिक अधिकोष औद्योगिक आर्थिक सुविधाएँ न दे सके। और जो भी सुविधाएँ उन्होंने दीं वे केवल अल्पकालीन ही थीं।

५. दीर्घकालीन ऋण सुविधाएँ देने की अपेक्षा इनको अल्पकालीन सुविधाएँ देना ही अधिक उचित था जिससे उनकी सम्पत्ति में तरलता रहती। अतः वे उद्योगों की अधिक सहायता न कर सके।

६. व्यापारी अधिकोष अपने ऋणों के लिए तरल प्रतिभूति चाहते हैं जो उद्योगों के पास नहीं थी तथा स्थायी सम्पत्ति की प्रतिभूति में, उस सम्पत्ति का समुचित मूल्यांकन होना आवश्यक होता है जिससे प्रतिभूति एवं ऋण में पर्याप्त अन्तर (Margin) रखा जा सके। इस प्रकार मूल्यांकन करने के लिए भारतीय अधिकोषों के पास विशेषज्ञ नहीं थे। जो कुछ भी सहायता उन्होंने की वह केवल कच्चे माल की प्रतिभूति पर की तथा अल्पकालीन निक्षेपों के आधार पर की, जिनका नवकरण करना रोकनिधि तथा निक्षिप्त राशि पर निर्भर रहता है; इस वजह से ये ऋणों का नवकरण नहीं कर सकते थे। इस कारण से इनकी ऋण-राशि में अनिश्चितता रहती थी। इसके अतिरिक्त अनेक अधिकोष तो ऐसे थे जो उद्योगों को ऋण देना अपने अस्तित्व को खतरे में डालना समझते थे, इस वजह से ये उद्योगों को पर्याप्त आर्थिक सुविधाएँ न दे सके।

७. केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति के सामने इस बात की भी शिकायत की गई थी कि इम्पीरियल बैंक के अधिकारी भारतीय तथा यूरोपीय होने के कारण यूरोपीय सार्थों एवं प्रमंडलों को ही राशि देते थे तथा पक्षपात से काम करते थे।

केवल दो ही मार्ग : उपर्युक्त कारणों की वजह से उद्योगों को आर्थिक सुविधाएँ देने में भारतीय व्यापारिक अधिकोष असमर्थ थे परन्तु इसका दोष केवल व्यापारिक अधिकोषों पर नहीं डाला जा सकता क्योंकि भारत की परिस्थिति ही कुछ ऐसी है जिसकी वजह से उनको यह सावधानी रखनी पड़ती है। यहाँ की जनता का विश्वास छोटे से छोटे कारण से भी हिल जाता है जैसे कि पीपुल्स बैंक के विलीयन के समय हुआ। अतः इस कमी को दूर करने के लिये केवल दो ही मार्ग हैं :—

१. देश के व्यापारिक अधिकोषों में ही ऐसा कुछ परिवर्तन किया जाय जिससे वे औद्योगिक सहायता कर सकें; तथा

२. उद्योगों को दीर्घकालीन अर्थ-सुविधाएँ देने के लिए अन्य देशों की भाँति औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना हो।

(अ) व्यापारिक अधिकोष जर्मनी के व्यापारिक अधिकोषों की तरह उद्योगों की आर्थिक सहायता कर सकते हैं तथा उन्हें स्थायी पूंजी दे सकते हैं। जर्मनी के अधिकोषों की इस व्यवस्था की पद्धति इस प्रकार है :—

(i) किसी भी उद्योग के चल-लेखा खोलने पर उसका संतुलन दैनिक न हो

कर षट्मासिक होता है। जो भी लेन देन अधिकोष और ग्राहक में होता है वह सब इसी लेखे में लिखा जाता है अर्थात् ऋण आदि की राशि तथा निक्षिप्त राशि की प्रविष्टियाँ भी इसी लेखे में होंगी। जिससे दीर्घ-कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

(ii) अथवा जर्मनी के व्यापारिक अधिकोष प्रारम्भिक पूंजी उद्योगों को देने की दृष्टि से उनके अंश खरीद लेते हैं जिससे उद्योगों को प्रारम्भिक पूंजी मिल जाती है, इसके बाद ये अंश जनता को वेच दिये जाते हैं। संभाव्य हानि के खतरे से बचने के लिये 'कंन्सोर्टियम' पद्धति (Consortium Model) पर अनेक अधिकोष मिलकर भी उद्योगों को आर्थिक सहायता दे सकते हैं। तथा इस कार्य को करने के लिये, तांत्रिक सलाह देने के लिये तथा औद्योगिक संपत्ति का मूल्यांकन करने के लिये विशेषज्ञों की नियुक्ति भी कर सकते हैं।

(iii) उद्योगों के साथ अधिक घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करने के लिए अधिकोष अपने प्रबंधक अथवा अन्य प्रतिनिधि को औद्योगिक प्रमंडल की संचालक समिति में भेजता है, जिससे उनके कार्यों का नियंत्रण होता है तथा ऋण देने वाले अधिकोषों को भी निश्चिन्तता होती है कि उनकी ऋण-राशि का अपव्यय नहीं हो रहा है।

(ख) अधिकोष कुछ निश्चित राशि के अंशों का निर्गमन करें, जिसकी पूंजी से केवल उद्योगों ही को आर्थिक सुविधाएँ दी जाँय।

(क) अधिकोषों को चाहिये कि वे औद्योगिक प्रमंडलों को आर्थिक सुविधाएँ वैधानिक साख पर भी दिया करें जिससे उनको कार्यशील पूंजी मिलती रहे क्योंकि वे तरल सम्पत्ति की प्रतिभूति नहीं दे सकते।

(ड) उद्योगों की स्थायी सम्पत्ति तथा पुनःसंस्थापन के समय अच्छे प्रमंडलों द्वारा निर्गमित अंशों अथवा ऋण-पत्रों का अभिगोपन कार्य भी करा करें। परन्तु इसमें सावधानी की यही आवश्यकता है कि व्यापारिक अधिकोष ये कार्य परिकाल्पनिक व्यवहारों की दृष्टि से न करें क्योंकि उनको सबसे प्रथम अपने निक्षेपकों की राशि की सुरक्षा की ओर दृष्टि रखनी पड़ती है।

२. औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना करना : यह दूसरा मार्ग क्योंकि उपर्युक्त सुझाव यदि कार्यान्वित हो जायँ तब भी व्या... औद्योगिक अर्थ-सुविधाएँ पूर्ण रूप से नहीं दे सकते क्योंकि क्षेत्र का ज्ञान सीमित होता है तथा भिन्न-भिन्न उद्यो... ।... ...गोगिक सुविधाएँ देने के ...

आवश्यकता है, जो स्थायी हो अथवा उनकी निजी पूँजी ही इतनी हो कि वे यह कार्य कर सकें। इतना ही नहीं अपितु अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों की समस्याएँ भिन्न होने की वजह से कार्यक्षमता की दृष्टि से यही अच्छा होगा कि "औद्योगिक अधिकोषों" की स्थापना ही अलग से की जाय। इस समय देश में केवल एक ही इस प्रकार की संस्था है जो गत २९ वर्षों से काम कर रही है। इसका नाम कनारा इन्डस्ट्रियल एँड बैंकिंग सिन्डिकेट लि० है जो उदीपी स्थान पर है। परन्तु केवल एक अधिकोष से काम नहीं चल सकता अतः नये अधिकोषों की स्थापना आवश्यक है। तथा ये अधिकोष ऐसे हों जिनके पास दीर्घकालीन विनियोग के लिये पर्याप्त साधन हों। अतः औद्योगिक अधिकोषों के साधन पर्याप्त मात्रा में अंशपूंजी के निर्गमन से तथा ऋण-पत्रों से विशेष रूप से प्राप्त करने चाहियें। इसके अतिरिक्त दीर्घकालीन निक्षेपों से भी। इन अधिकोषों को केवल औद्योगिक अर्थ सुविधाएँ ही देनी चाहियें, जिससे व्यापारिक अधिकोषण क्षेत्र तथा औद्योगिक अधिकोषण क्षेत्र विभिन्न हों तथा उनकी क्रियाएँ भी अलग अलग हों।

इनको अपने विनियोग एक ही उद्योग में न करते हुए भिन्न-भिन्न उद्योगों में करने चाहियें जिससे एक उद्योग के विलीयन से या डूबने से उनकी राशि न डूब जाय। अतः हानि की सम्भावना विभिन्न उद्योगों में राशि विनियोग करने से कम हो सकती है। इसीलिए यह भी कहा जाता है कि "उनके विनियोग एक ही क्षेत्र में नहीं होने चाहियें" (They must not lay their eggs in one basket) इस कार्य को ठीक रीति से एवं देश-हित के लिये संचालन करने के लिये उन्हें अपनी संचालक सभा में ऐसे संचालक नियुक्त करने चाहियें जिनको देश के विभिन्न उद्योगों का समुचित ज्ञान हो, जिससे उनकी ऋण-नीति सुदृढ़ होकर हानि की संभावना कम रहेगी। इस कार्य के लिये उन्हें विभिन्न उद्योगों की जाँच पड़ताल के लिये विशेषज्ञ भी अपने पास रखने चाहियें अथवा उनकी सहायता लेनी चाहिये परन्तु हमारे देश में जब तक तांत्रिक सलाह देने वाली स्वतंत्र संस्थाएँ नहीं हैं तब तक उन्हें ऐसे विशेषज्ञों की नियुक्ति करनी ही होगी।

इसके साथ ही देश की भूमिगत एवं निष्क्रय पूंजी को निकाल कर उसको विनियोग में लगाने का एवं नये नये विनियोग-साधन निर्माण करने का कार्य भी इन्हीं अधिकोषों को करना होगा जिससे भारतीय पूंजी गतिशील हो सके।

औद्योगिक अधिकोषों का अभाव कैसे दूर हो ? औद्योगिक अधिकोषों का अभाव दूर करने की दृष्टि से तथा उद्योगों को आर्थिक सुविधाएँ देने

की दृष्टि से अधिकोपण जाँच-समितियों ने प्रांतीय अर्थ-प्रमंडलों (Provincial Industrial Finance Corporation) की स्थापना करने का सुझाव रखा था। जिसकी अंश-पूंजी अंशों के निर्गमन से जनता से प्राप्त की जाय तथा जो कुछ कमी रहे उसे प्रांतीय सरकार दे, जिससे जनता का विश्वास भी इसमें स्थापित होगा। अतिरिक्त धन की आवश्यकता ऋणपत्र को बेच कर प्राप्त की जा सकती है, तथा इन ऋण-पत्रों की प्रत्याभूति (Guarantee) आवश्यकता पड़ने पर सरकार को देनी चाहिये। जो भी राशि उद्योगों को ऋण दी जाय वह विशेषतः नए उद्योगों की स्थापना के लिये तथा उद्योगों के विकास के लिये ही दी जाय तथा कार्यशील पूंजी के लिये उद्योग व्यापारिक अधिकोषों पर निर्भर रहें। परन्तु ये सुझाव अभी तक कार्यान्वित नहीं हुए हैं। हाँ, प्रांतीय औद्योगिक प्रमंडल केवल मद्रास तथा उत्तरप्रदेश इन दो प्रांतों में ही स्थापित हो चुके हैं परन्तु पर्याप्त साधनों के अभाव में इनका क्षेत्र बहुत ही सीमित है। इसके अतिरिक्त सौराष्ट्र सरकार ने भी औद्योगिक प्रमंडल (Industrial Corporation) की योजना बनाली है। आशा है कि वह शीघ्र ही कार्य रूप में परिणत होगी तथा अन्य प्रांत भी इस कार्य में पीछे न रहेंगे।

औद्योगिक अर्थ-प्रमंडल (Industrial Finance Corporation):

जैसा पहिले हम बता चुके हैं केन्द्रीय अधिकोपण समिति ने इस आशय का प्रस्ताव किया था कि एक अखिल भारतीय औद्योगिक-प्रमंडल स्थापित किया जाय क्योंकि प्रांतीय औद्योगिक-प्रमंडल औद्योगिक अर्थ सहायता का कार्य ठीक रीति से नहीं कर सकते। इसलिए देश की निष्क्रिय पूँजी को गतिशील बनाकर देश के उद्योगों की उन्नति के लिए अखिल भारतीय संस्था का होना आवश्यक है, जो प्रांतीय औद्योगिक-प्रमंडलों के साथ सहयोग करे। इसलिये १६४६ में 'औद्योगिक अर्थ प्रमंडल विधेयक' विधान सभा में रखा गया जो १६४८ फरवरी में स्वीकृत हो गया तथा १ जुलाई १६४८ से यह औद्योगिक अर्थ-प्रमंडल कार्य कर रहा है।

उद्देश : इस प्रमंडल का प्रमुख उद्देश भारतीय औद्योगिक संस्थाओं को दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन आर्थिक सहायता देना है; विशेषतः उस परिस्थिति में जब उनको साधारण अधिकोषण सुविधाएँ अपर्याप्त हों तथा पूँजी प्राप्त करने के अन्य साधन दुर्लभ हों।

पूँजी : प्रमंडल की अधिकृत पूँजी १० करोड़ रुपये की है जो ५ हजार रुपये के २० हजार अंशों में है। अंशों की मूल राशि तथा न्यूनतम लाभांश

की २½% प्रति वर्ष लाभांश मिलने की प्रत्याभूति केन्द्रीय सरकार ने दी है; इनमें से केवल ५००० अंशों का ही निर्गमन हुआ है जो निम्नलिखित रीति से खरीदे गए हैं :—

रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया	१ करोड़ रुपये	२००० अंश
भारत सरकार	१ „ „	२००० „
अनुसूची वद्ध अधिकोष	१·२५ „ „	२५०० „
आगोप प्रमंडल	१·२५ „ „	२५०० „
सहकारी अधिकोष	०·५० „ „	१००० „
योग	५·०० करोड़ रुपये	१०,००० अंश

औद्योगिक अर्थ प्रमंडल विधान की धारा ५ के अंतर्गत उपर्युक्त संस्थाओं के तथा प्रन्यस्त एवं अन्य आर्थिक संस्थाओं के बीच अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध भी लगाए गए हैं। इस प्रमंडल को अतिरिक्त पूँजी प्राप्त करने के लिए बंध (Bonds) बेचने के अधिकार भी प्राप्त है; जिसके अनुसार ७½ करोड़ रुपये के २¾% प्रति वर्ष व्याज देने वाले बंध १६४६-५० वर्ष में बेचे गये हैं जिससे उद्योगों को अधिक सहायता दी जा सके। ये बंध १६६४ में भुगताए जायेंगे तथा इनके व्याज एवं भुगतान सम्बन्धी प्रत्याभूति केन्द्रीय सरकार ने दी है।

अनुसूची-वद्ध अधिकोष, आगोप प्रमंडल तथा सहकारी अधिकोषों के अंशों का अभ्यंश निर्धारित किया गया था जिसमें से सब पूँजी आगोप प्रमंडलों द्वारा खरीदी गई, परन्तु सहकारी अधिकोष न खरीद सके इसलिए उनके अभ्यंश के ७६ अंश रिज़र्व बैंक तथा भारत सरकार ने खरीदे। इसके विपरीत अनुसूची-वद्ध अधिकोषों से अंशों के लिए ३०८५ प्रार्थना पत्र आए परन्तु उनको अभ्यंश के अनुसार केवल २५०० अंश ही दिये गए।

इस प्रमंडल के १६४८-१६४६ में बंबई, कलकत्ता तथा दिल्ली में तीन कार्यालय थे एवं १६४६-५० में इसकी एक शाखा मद्रास में भी स्थापित की गई तथा १६५०-५१ में कानपुर में एक शाखा की स्थापना होने वाली है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी केन्द्रीय सरकार की आज्ञा प्राप्त करने पर शाखाएँ खोली जा सकती हैं।

प्रबन्ध : प्रमंडल के कार्य का संचालन एवं प्रबन्ध का नियोजन संचालक सभा करेगी जिसके १२ संचालक होंगे जिनमें से ५ संचालक तथा प्रबन्ध संचालक की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार तथा रिज़र्व बैंक द्वारा की जायगी।

शेष ६ संचालकों का चुनाव वैधानिक अंश-धारियों (Constitutional Shareholders) द्वारा किया जायगा। प्रमंडल की संचालक सभा के अध्यक्ष (Chairman) आजकल सर श्री राम हैं।

कार्य : १, यह सीमित औद्योगिक प्रमंडलों को तथा सरकारी समितियों को २५ वर्ष की अधिकतम अवधि के लिए ऋण दे सकता है।

२. औद्योगिक प्रमंडलों के अंश तथा ऋण पत्रादि का अभिगोपन कर सकता है, तथा अभिगोपन उत्तरदायित्व लेने के परिणामस्वरूप रहने वाले अंश एवं ऋण-पत्रादि इसकी सम्पत्ति का एक भाग हो सकते हैं परन्तु निर्बन्ध यह है इन ऋण-पत्रों को तथा अंशों को ७ वर्ष के अंदर जनता को बेच देना होगा।

३. प्रमंडल ऋण-पत्रों के ब्याज तथा मूल राशि सम्बन्धी प्रत्याभूति भी दे सकता है यदि ऐसे ऋण-पत्र तथा ऋणों के भुगतान की अवधि २५ वर्ष से अधिक न हो। इस प्रत्याभूति के लिए वह वर्तन (Commission) लेने का अधिकारी होगा।

४. यदि किसी उद्योग को विदेशी मुद्रा में ऋण लेने की आवश्यकता पड़े तो प्रमंडल केन्द्रीय सरकार की आज्ञा प्राप्त करने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय अधिकोष से अथवा अन्य स्रोतों से ऋण प्राप्त करा दे सकता है।

५. इसके अतिरिक्त प्रमंडल को यह भी अधिकार है कि वह ऋण लेने वाले उद्योगों की संचालक सभा में अपना प्रतिनिधि मनोनीत करे अथवा ऋण के निर्बन्ध का उल्लंघन करने पर उस उद्योग को अपने अधिकार में ले ले।

६. प्रमंडल जनता से ५ वर्ष की न्यूनतम अवधि के निक्षेप भी स्वीकार कर सकता है परन्तु किसी भी समय निक्षिप्त राशि परिदत्त पूँजी तथा निधि के कुल योग के दूने से अधिक नहीं होनी चाहिये।

७. प्रमंडल को यह भी अधिकार है कि वह किसी ऋण प्राप्त करने वाले औद्योगिक प्रमंडल को तान्त्रिक सलाह देने का प्रबन्ध करने के लिए सलाहकार समितियाँ भी नियुक्त कर सकता है।

ऋण देने की शर्तें : प्रमंडल निम्नलिखित निर्बन्धों पर किसी सीमित लोक-प्रमंडल को (Public Limited Company) तथा सहकारी समितियों को जो वस्तुओं का निर्माण अथवा वस्तुओं के क्रियाकलाप (Processing) करती हैं, खनिज उद्योग करती हैं अथवा विद्युत का निर्माण एवं वितरण तथा अन्य किसी प्रकार की शक्ति का निर्माण एवं वित-

रण करती हो एवं जिसका कार्य-क्षेत्र औद्योगिक अर्थ-प्रमंडल-विधान द्वारा प्रस्तावित क्षेत्र में हो—ऋण दे सकता है। यह विधान भारत के निम्न प्रान्तों में लागू नहीं होता, अतः वहाँ के प्रमंडल ऋण भी प्राप्त नहीं कर सकते— हैदराबाद, कोचीन, त्रावनकोर, मैसूर, जम्मू तथा काश्मीर, कूच-बिहार[1]। ऋण देने सम्बन्धी निर्बन्ध निम्न हैं :—

(i) ऋण विशेषतः स्थायी एवं अचल सम्पत्ति खरीदने के लिए ही, एवं अचल सम्पत्ति की जैसे भूगृहादि, यंत्रअयंत्र आदि की प्रथम प्राधि (Mortgage) पर दिया जाता है। नियमानुसार यह प्रमंडल कच्चे या पक्के माल के उपप्राधीयन (Hypothecation) पर कार्यशील पूँजी के लिए ऋण नहीं देता क्योंकि यह कार्य व्यापारिक अधिकोषों का है, जिसके साथ प्रमंडल प्रतियोगिता नहीं करना चाहता।

(ii) दिये हुए ऋण-राशि का समुचित प्रबन्ध हो रहा है तथा समुचित रूप से व्यय हो रहा है इस बात की निश्चिति के लिए इन ऋणों की व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रत्याभूति औद्योगिक संस्था के संचालकों से उनकी वैयक्तिक स्थिति में ली जाती है जिससे उद्योग का प्रबन्ध भी समुचित रूप से हो सकेगा।

(iii) प्रमंडल को उद्योग की संचालक सभा में दो संचालकों की नियुक्ति करने का अधिकार भी होता है जिससे वे संचालक उद्योग के प्रबन्ध का निरीक्षण करते हैं तथा अर्थ-प्रमंडल के हित में ही उसकी व्यवस्था हो रही है— यह देखते हैं।

(iv) औद्योगिक प्रमंडल को उन्नतिशील वर्षों में होने वाले लाभ का लाभांश देने में ही वितरण न हो जाय इसलिये यह निर्बन्ध लगाया जाता है कि जब तक ऋण का भुगतान नहीं हो जाता तब तक ६% से अधिक वार्षिक लाभांश न दिये जायँ; परन्तु इस दर में दोनों की सम्मति से परिवर्तन हो सकता है।

(v) ऋण के भुगतान की अवधि सामान्यतः १२ वर्ष है, परन्तु अधिकतम अवधि जो अभी तक दी गई है वह १५ वर्ष की है। ऋण के भुगतान की अवधि इस निर्बन्ध के अतिरिक्त ऋण प्राप्त करने वाले प्रमंडल के व्यापारिक स्वरूप एवं उसके भविष्य के अनुसार निश्चित की जाती है।

(vi) ऋणों का भुगतान सामान्यतः समान-प्रभाग (Equal instalment) में होना चाहिये परन्तु यह प्रभाग कितने होंगे यह दोनों की

[1] *"Onlooker's" Industrial Review Bombay, Sept. 1950 Pp. 53*

संम्मति से निश्चित होता है। [अभी तक दिये गए ऋण नये प्रमंडलों को, अथवा उद्योगों के विस्तार के लिये दिये गए हैं जिनका दूसरे अथवा तीसरे वर्ष के अन्त में पहिला प्रभाग देना पड़ेगा तथा शेष ऋण का भुगतान समान प्रभाग में अथवा क्रम-वृद्धि-प्रभाग (Graduated Scale of Instalments) में भुगताया जायगा]।

(vii) प्राधीत सम्पत्ति, जिस पर ऋण प्राप्त किया जाता है, उसकी अग्नि, साम्प्रदायिक कलहों, विद्रोह आदि से सुरक्षा करने के लिये किसी अच्छे आगोप-प्रमंडल से आगोप कराना अनिवार्य है।

(viii) अर्थ प्रमंडल जब ऋण की राशि उद्योग को दे देता है तब यह देखने के लिये कि ऋण-राशि जिन कार्यों के लिये ली गई है उन्हीं के लिये उसका उपयोग हो रहा है, आवश्यक कदम उठाता है। इस हेतु उद्योग की योजनाओं का सामयिक निरीक्षण भी किया जाता है।

इस प्रमंडल ने ३० जून १९५० को दो वर्ष पूर्ण किये तथा इन दोनों वर्षों में उद्योगों से आर्थिक सहायता की माँग रही। १९४९ में कुल आवेदन पत्र १५६ थे जिनमें से समुचित रूप से एवं भावी योजनाओं के साथ भेजे गए आवेदन पत्र ९५ थे जिनकी कुल राशि १०,२३,१८,००० रु० थी। इस वर्ष के आवेदन पत्रों में (१९४९-५०) अनेक तो ऐसे थे जो समुचित रूप से नहीं भेजे गये थे तथा कुछ ऐसे भी थे जो विधान के बाहरी क्षेत्रों से आये थे। परन्तु विचारणीय आवेदन पत्र ६५ थे एवं कुल राशि ८,७५,६३,००० थी। इन आवेदन पत्रों में से जिनको स्वीकृत किया गया, जिनको निकाल दया गया तथा जिनको विचारार्थ रखा है उसकी सारणी आगे दी गई है :—

[हजार रुपयों में]

	३० जून १९४९ तक		३० जून १९५० तक	
आवेदन	संख्या	राशि	संख्या	राशि
प्राप्त आवेदन पत्र ...	९५	१०,२३,१८	६५	८,७५,६३
स्वीकृत ,, ,, ...	२१	२,४२,२५	२३	३,७७,००
अस्वीकृत ,, ,, (Rejected Applications)	३३	१,८८,५५	४४	४,३०,६५
वर्षांत में बचे हुए विचारार्थ आवेदन पत्र	४१	४,८८,३८	१९	१,८४,००
व्यपगत आवेदन पत्र (Lapsed Applications)	—	—	२०	२,८०,००

इस अवधि में जिन उद्योगों को सहायता दी गई उसकी सारणी निम्न है :—

उद्योग	स्वीकृत पत्र		योग
	१९४८-१९४९	१९४९-५०	
वस्त्र सम्बन्धी यंत्र (Textile Machinery)	४३,००,०००	८,००,०००	५१,००,०००
Mechanical Engineering	१०,००,०००	३९,००,०००	४९,००,०००
Electrical ,,	२६,००,०००	३७,५०,०००	६३,५०,०००
सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Textiles)	४०,००,०००	९२,५०,०००	१३२,५०,०००
ऊनी वस्त्र उद्योग (Woollen Textiles)	५,००,०००	—	५,००,०००
रेयन उद्योग (Rayon Industry)	—	५०,००,०००	५०,००,०००
रसायन (Chemicals)	५६,५०,०००	४,००,०००	६०,५०,०००
सीमेंट (Cement)	४०,००,०००	—	४०,००,०००
Ceramics & Glass	६०,००,०००	—	६०,००,०००
तेल-निर्माणी (Oil Mills)	१,७५,०००	—	१,७५,०००
विद्युत शक्ति (Electric Power)	३,००,०००	९,००,०००	१२,००,०००
धात्विक उद्योग (Metallurgical Industry)	३०,००,०००	—	३०,००,०००
लोहा तथा इस्पात (Iron & Steel)	१५,५०,०००	२७,००,०००	४२,५०,०००
अल्यूमिनियम (Aluminium)	—	५०,००,०००	५०,००,०००
शकर व्यवसाय (Sugar Industry)	—	२०,००,०००	२०,००,०००
खान व्यवसाय (Mining)	—	३०,००,०००	३०,००,०००
अवर्गीकृत (Unclassified)	११,५०,०००	१०,००,०००	२१,५०,०००
योग	३,४२,२५,०००	३,७७,००,०००	७१९,२५,०००

अर्थ प्रमंडल द्वारा दी गई प्रांत क्रमानुसार आर्थिक सहायता

(३० जून १९४९ तक)

प्रान्त	राशि (रुपये)	उद्योग संख्या
पश्चिमी बंगाल	७५,५०,०००	३
मद्रास	७५,००,०००	३
बम्बई	७३,००,०००	६
बिहार	५५,५०,०००	३
उड़ीसा	४०,००,०००	१
पूर्वी पंजाब	१५,००,०००	२
उत्तर प्रदेश	८,२५,०००	३
योग	३,४२,२५,०००	२६

इस प्रकार १९४९-५० तथा १९४८-४९ इन दो वर्षों में प्रमंडल ने क्रमशः ३,७७,००,००० तथा ३,४२,२५,००० की आर्थिक सहायता देश के प्रमुख उद्योगों को दी। ये ऋण-राशि ५ से ५½% ब्याज की दर पर दी गई है तथा इस ब्याज का भुगतान अधमर्ण उद्योगों को छैमाही करना होगा।

गत दो वर्षों की कार्य-पद्धति से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस अर्थ प्रमंडल ने अभी तक केवल उद्योगों को ऋण ही दिये हैं परन्तु अंशों का अभिगोपन एवं ऋण-पत्रों का अभिगोपन तथा प्रत्याभूति का कार्य नहीं किया है। इसका एकमेव कारण जो १९४९ के वृत्त-लेख से मिलता है वह है देश में स्कंध विनिमय-विपणि की मंदी तथा मुद्रा-विपणि की परिस्थिति। ऋणों की राशि भी उद्योगों ने पूर्ण नहीं ली थी क्योंकि १९४८-१९४९ की कुल ऋण राशि का केवल १३३ लाख रुपया ही उद्योगों ने काम में लिया था तथा शेष लिया जाने वाला था तथा १९४८-१९५० इन दो वर्षों की कुल ऋण-राशि का केवल ३,४१,७५,००० रुपया लिया गया था। सम्पूर्ण राशि एक साथ न लेने के कारणों में दो कारण प्रमुख हैं :—

पहिले, तो उद्योग अपनी आवश्यकतानुसार प्रमंडल से राशि लेते हैं जिससे उनको अपनी यंत्रसामग्री आदि के विक्रेताओं को भुगतान करने में सुगमता होती है; तथा

दूसरे, उद्योग ऋण स्वीकृत हो जाने के बाद अपनी योजनाओं का पुनः निरीक्षण करते हैं जिससे वे अन्य स्रोतों की खोज करते हैं जहाँ से वे सस्ते मूल्यों में यंत्रादि सामग्री प्राप्त कर सकें। विशेषतः रुपये के अवमूल्यन से यह प्रवृत्ति और भी बढ़ गई है।

अर्थ प्रमंडल की कठिनाइयाँ : इस वर्ष के वृत्त-लेख में इसके अध्यक्ष लाला सर श्रीराम ने प्रमंडल को कार्य करने में जो अनेक बाधाएँ भारत के सदोष औद्योगिक कलेवर होने के कारण आती हैं उनका भी उल्लेख किया है जो सर्वथा योग्य है क्योंकि गत दो वर्षों में विभिन्न उद्योगों से जो संपर्क हुआ है उससे उन्होंने यह भाँप लिया है कि देश के औद्योगिक कलेवर की नाड़ी कमजोर है। जो कठिनाइयाँ उन्होंने बताई हैं वे निम्न हैं :—

१. अर्थ प्रमंडल को आवेदन पत्रों पर विचार करने के लिये भावी योजनाओं का पूर्ण विवरण, जो आवश्यक होता है, वह अनेक उद्योगों द्वारा नहीं दिया जाता।

२. अनेक प्रमंडलों की स्थायी सम्पत्ति के प्राधीयन के समय में भी कठिनाइयाँ आती हैं क्योंकि अनेक प्रमंडलों की भूमि प्रबन्धक अभिकर्ताओं के स्वत्व में होती हैं तथा उसके ऊपर बनी हुई इमारत प्रमंडल की होती है। अतः जब तक भूमि का स्वत्व भी प्रमंडलों को प्राप्त नहीं हो जाता तब तक अर्थ प्रमंडल ऋण नहीं दे सकता। इस प्रकार भूमि एवं इमारत के स्वत्व निर्धारण में कठिनाई होती है।

३. अनेक आवेदन पत्रों के साथ जो योजनाएँ आती हैं वे पूर्ण एवं समुचित तांत्रिक सलाह से नहीं बनाई जाती हैं और न यंत्रादि की संभाव्य कीमतें ही दी जाती हैं और न उस योजना की पूर्ति के लिये कौनसे साधनों की आवश्यकता होती है, यह बतलाया जाता है।

४. अनेक प्रमंडलों के पास पर्याप्त कार्यशील पूंजी भी नहीं होती अथवा पूंजी कम होती है जिससे भावी योजनाओं की पूर्ति के लिये उनके पास पर्याप्त साधन भी नहीं होते।

५. कई ऐसे भी प्रमंडल होते हैं जो ऋण स्वीकृत हो जाने पर भी वैधानिक कार्यवाही की पूर्ति नहीं करते और न करने का प्रयत्न ही करते हैं, जैसे किसी यंत्रादि के आयात के लिए अनुज्ञापत्र लेना अथवा नियंत्रित वस्तुओं की प्राप्ति के आज्ञापत्र (Permit) लेना आदि।

अतः औद्योगिक प्रमंडलों को चाहिये कि वे इन कठिनाइयों का निवारण करने में तथा औद्योगिक अर्थ-प्रमंडल को अधिकाधिक सहायता प्रदान करने का अवसर देने में सहयोग प्रदान करें तथा औद्योगिक संगठन के जो अन्य दोष बताए गये हैं उनका भी निवारण करने का प्रयत्न करें। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इस प्रमंडल ने अपने दो वर्ष की आयु में अधिक प्रशंसनीय कार्य किया है, जो उसकी सफलता का द्योतक है। परन्तु वास्तविक सफलता की आशा तो तभी की जा सकती है जब ऋण-प्रदायक-उद्योग इस राशि का समुचित उपयोग करें तथा औद्योगिक संगठन को सुदृढ़ बनाने की ओर प्रयत्न-शील रहे।

औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति के लिये ऐसे प्रांतीय प्रमंडलों की भी आवश्यकता है, जो कुछ प्रान्तों में स्थापित भी हो गये हैं परन्तु यह आवश्यक है कि प्रान्तीय तथा केन्द्रीय प्रमंडलों के कार्य सहयोग से हों जिससे वे परस्पर-पूरक हो सकें तथा विरोधी न हों। इसलिये प्रान्तीय प्रमंडलों का कार्य-क्षेत्र प्रान्त के लघु, मध्यम, तथा कुटीर धंधों तक ही सीमित रखें, जिससे प्रान्तीय एवं केन्द्रीय प्रमंडलों के कार्य परस्पर विरोधी न होकर सहयोगी रहे तथा ऋण सम्बन्धी नीति तथा अन्य नीति में भी समानता रहें जिससे उपलब्ध साधनों का देश के औद्योगिक विकास के लिये पूर्ण उपयोग हो सके।

सरकार का यह प्रयत्न एवं कार्य प्रशंसनीय तो है ही क्योंकि इससे हमारे देश की एक बड़ी भारी कमी दूर हो गई है, फिर भी देश की विशालता एवं उत्पादन साधनों की उपलब्धता की दृष्टि से उद्योगों के विकास के लिये अधिक आर्थिक सहायता की आवश्यकता है ही। अतः देश में औद्योगिक अधिकोषों की स्थापना होना अब भी आवश्यक है।

प्रश्न संग्रह

१. भारत में औद्योगिक अधिकोषों के कार्यों की रूपरेखा आपके मतानुसार कैसी होनी चाहिये ? क्या आप इनकी स्थापना के पक्ष में हैं ?

(यू० पी०, इन्टर १९४६)

२. भारत के उद्योगों को आर्थिक सहायता किस प्रकार मिलती है ? यूरोपीय देशों की सुविधाओं से इन सुविधाओं में क्या कमी है ? देश के औद्योगिक विकास के लिये अधिकोषण कलेवर में कौनसे परिवर्तन किये जायँ ?

(आगरा, बी० कॉम १९४०)

३. भारतीय औद्योगिक अर्थ-प्रमंडल १९४८ के कार्य एवं कार्य-पद्धति को बताने वाली एक टिप्पणी लिखिये। (आगरा, बी० कॉम १९४९)

४. भारतीय औद्योगिक अर्थ-प्रमण्डल के दो वर्षों के कार्य की समालोचना कीजिये तथा उनकी कठिनाइयाँ बताइये ?

५. भारतीय उद्योगों की आर्थिक आवश्यकताएँ कौनसी हैं ? उनकी पूर्ति भारत में किस प्रकार होती है ? उनके सुधार के लिये सुझाव दीजिये ?

अध्याय १९

सहकारी अधिकोष

सहकारी अधिकोषों का उद्गम भारत में सर्व प्रथम कृषकों की ऋणग्रस्तता के निवारण के लिये तथा उन्हें सस्ती ब्याज दरों पर आर्थिक सहायता देने की दृष्टि से एवं उनको महाजनों के चंगुल से छुड़ाने के लिये किया गया जिसका श्रेय मद्रास प्रांत को तथा उसके प्रणेता श्री० फ्रेडिरिक निकोलसन को है। इन्होंने ही सर्व प्रथम १८९५-९७ की अपनी रिपोर्ट में सहकारी साख-समिति की स्थापना का सुझाव रखा जिससे "कृषक को जिस प्रकार की अति उच्चावचन होनेवाली स्थायी साख की आवश्यकता है वह प्राप्त हो सके", जिस वृत्त-लेख के परिणाम स्वरूप लार्ड कर्ज़न ने सर एडवर्ड लॉ की अध्यक्षता में एक समिति का आयोजन किया। इस समिति के सुझाव के अनुसार ही १९०४ में सहकारी साख-समिति विधान (Cooperative Credit Societies Act 1904) स्वीकृत किया गया।

सहकारिता तत्त्व का मूल मन्त्र ही " एक के लिये सब तथा सबके लिये एक " (All for one & one for all) यह है अर्थात् यह एक ऐसा संगठन है जिसमें सब व्यक्ति समान अधिकारों के साथ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये सामुदायिक रूप से काम करते हैं। इससे निर्धनों एवं निर्बलों में भी स्वावलंबन, आत्मविश्वास, बचत तथा विनियोग के तत्त्वों का प्रसार होता है।

सहकारी अधिकोष भी जैसा कि हम आगे देखेंगे जनता से लेन देन करते हैं परन्तु इनकी तथा व्यापारिक अधिकोषों की कार्य-प्रणाली में भेद होता है क्योंकि व्यापारिक अधिकोष केवल लाभ की दृष्टि से कार्य करते हैं परन्तु सहकारी अधिकोष पारस्परिक आर्थिक सहायता के उद्देश एवं सेवा-भाव से प्रेरित रहते हैं जिससे साधनहीन गरीबों को सहायता का स्रोत प्राप्त होता है तथा वे अपनी आर्थिक उन्नति कर सकते हैं। इनके संगठन की विशेषता यही है कि एक स्थान के कुछ साधनहीन व्यक्ति मिलकर कुछ चंदा करके तथा अंश

खरीद कर, अन्य लोगों से निक्षेप लेकर तथा उधार लेकर अपनी कार्यशील पूंजी प्राप्त करते हैं जिसे वे अपने सदस्यों को आवश्यकता के समय ऋण देते हैं। इस पद्धति के प्रमुख लाभ निम्न लिखित हैं :—

१. पारस्परिक सहयोग से काम करने के कारण नागरिकता की भावना बढ़ती है तथा आत्म-विश्वास भी जागृत होता है।

२. इनकी कार्यशील पूंजी छोटे छोटे स्रोतों से आती है जिनके पास देश के अन्य अधिकोषों की पहुँच नहीं होती, जिससे देश की निष्क्रिय पूंजी का उपयोग होकर मुद्रा एवं साख की गतिशीलता बढ़ती है तथा सार्वत्रिक आर्थिक उन्नति भी होती है।

३. जिनके पास साधनों की कमी है उनको सस्ते दरों पर ऋण मिलता है।

४. सदस्य इनके लेखे किसी समय पर निरीक्षण कर सकते हैं इसलिए महाजनी पद्धति की भाँति ये फँसाये भी नहीं जाते।

५. इसके साथ ही ग्रामीण जनता में बचत की भावना जागृत होती है।

इसी उद्देश्य से भारत में सहकारी संस्थाओं का उद्गम एवं विकास हुआ। ये सहकारी अधिकोष तथा साख-संस्थाएँ केवल कृषकों की साख आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उद्देश से ही बनाई गई थीं। तथा इनका सङ्गठन भी ग्रामीण साख की आवश्यकतानुसार ही बनाया गया है। साख-वितरण एवं अर्थ-व्यवस्था की दृष्टि से हम सहकारी अधिकोषों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, जो कृषकों एवं ग्रामीण जनता की मध्यकालीन अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं :—

(i) प्राथमिक सहकारी साख-समितियाँ
(Primary Cooperative Credit Societies)

अ. ग्रामीण सहकारी साख-समितियाँ
(Rural Cooperative Credit Societies)

ब. नगर-सहकारी साख-समितियाँ
(Urban Cooperative Credit Societies)

(ii) केन्द्रीय सहकारी अधिकोष
(Central Cooperative Banks)

(iii) प्रांन्तीय सहकारी अधिकोष
(Provincial Cooperative Banks)

सहकारी तथा व्यापारिक अधिकोष : इनका विवेचन करने के पूर्व

यहाँ यह आवश्यक है कि हम सहकारी अधिकोष तथा व्यापारिक अधिकोषों के क्रियाकलापों के साम्य भेद को देख लें :—

१. सहकारी अधिकोष तथा व्यापारिक अधिकोष दोनों ही निक्षेप स्वीकारते हैं पर व्यापारिक अधिकोष केवल ऐसे ही व्यक्तियों को ऋण देते हैं जो उनका महत्तम उपयोग कर सकें, न केवल उन लोगों को जिनकी राशि उनके पास निक्षिप्त होती है, परन्तु सहकारी अधिकोष केवल अपने सदस्यों को ही ऋण देते हैं। इस प्रकार व्यापारिक अधिकोष विनियोगक तथा विनियोग-प्रापकों को एकत्र लाने का कार्य करते हैं परन्तु सहकारी अधिकोष व्यापार की उन्नति की अपेक्षा अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

२. व्यापारिक अधिकोषों का अपने ग्राहकों के साथ विशेष सम्पर्क नहीं रहता परन्तु सहकारी अधिकोषों का एवं ग्राहकों का परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क रहता है क्योंकि सदस्य ही विशेषतः उनके ग्राहक होते हैं।

३. व्यापारिक अधिकोष अच्छी प्रतिभूति पर ही ऋण देते हैं और अच्छी प्रतिभूति केवल वे ही दे सकते हैं जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है, जिससे धनी व्यक्ति अधिक धनी होता है तथा निर्धन अधिक निर्धन अर्थात् धन के समान वितरण की भावना व्यापारिक अधिकोषों में नहीं होती—परन्तु सहकारी अधिकोष साधन-हीन व्यक्तियों की आर्थिक सहायता के लिए ही होते हैं, जिससे जनता में स्वावलंबन एवं बचत की जागृति होती है तथा वे अपनी आर्थिक उन्नति करने में सफल होते हैं। इतना ही नहीं अपितु सहकारी अधिकोषों की ऋण-नीति प्रजातन्त्रीय होने से वे ग्रामवासियों एवं नागरिकों में प्रजातन्त्रात्मक ढङ्ग पर सङ्गठन भरने की भावना भरते हैं जिससे सभी व्यक्तियों को कार्य करने के लिए समान अवसर प्राप्त होते हैं।

४. सहकारी अधिकोष अपने ग्राहकों का निजी अधिकोष होता है तथा विशेषतः उत्पादन-कार्यों के लिए ही ऋण देता है न कि उपभोग्य एवं सामाजिक आवश्यकताओं के लिए। इनके द्वारा दिए गए ऋणों पर ब्याज की दर भी कम होती है तथा यह कार्य-क्षेत्र में जो जनता होती है उसकी बचत को केन्द्रित करता है। परन्तु व्यापारिक अधिकोष ऋण किस कार्य के लिये जा रहा है यह न देखते हुए केवल यही देखते हैं कि उनकी प्रतिभूति तरल एवं विपराय है अथवा नहीं।

५. व्यापारिक अधिकोषों का संचालन, समामेलन आदि भारतीय प्रमंडल-विधान तथा भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान के अन्तर्गत होता है परन्तु सहकारी अधिकोषों का संचालन भारतीय सहकारिता-विधान के अन्तर्गत होता है।

६. सहकारी अधिकोषों के अंशधारी तथा सदस्य ही अधिकोष की कार्य-प्रणाली का संचालन आदि करते हैं परन्तु व्यापारिक अधिकोषों का प्रबन्ध संचालन अंशधारी न करते हुए संचालक एवं प्रबन्धक करते हैं।

इस प्रकार व्यापारिक अधिकोष एवं सहकारी अधिकोषों में सब से महत्त्व-पूर्ण अन्तर है कि सहकारी अधिकोष का प्रत्येक सदस्य, प्रत्येक अंशधारी उस अधिकोष का स्वामी होता है, वही उधार लेनेवाला होता है तथा ऋण देने-वाला भी होता है, इसलिये वह अपने उत्तरदायित्व को समझते हुए सजीवता से कार्य करते हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को वही कार्य सौंपा जाता है जिसके लिए वह योग्य होता है तथा वह सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहता है कि उसके ऋणों का सदस्यों की आर्थिक उन्नति के लिए समुचित उपयोग हो।

प्राथमिक सहकारी-साख समितियाँ :

जैसा कि हम बता चुके हैं सहकारी-साख समितियों का आन्दोलन १९०४ के सहकारी-साख-समिति विधान १९०४ से हुआ तथा पिछले ४७ वर्षों से वे देश में कार्य कर रही हैं। ये सहकारी समितियाँ १९०४ के विधान के अन्तर्गत पंजीयित होती हैं तथा उनका कार्य-क्षेत्र उस गाँव तक अथवा नगर तक सीमित रहता है, जिसमें उनका कार्यालय है। कार्य-क्षेत्र के अनुसार ये समि-तियाँ दो प्रकार की होती हैं:—

अ. ग्रामीण सहकारी साख-समितियाँ, तथा

ब. नगर सहकारी साख-समितियाँ

ग्रामीण सहकारी-साख-समितियाँ :

ये समितियाँ जर्मनी की रेफीसन समितियों (Raiffeissen Socie-ties) के नमूने पर बनाई जाती हैं तथा इनका कार्य-क्षेत्र किसी ग्राम विशेष तक अथवा विशेष ग्राम-समूह तक ही सीमित रहता है। एक ग्राम के कोई भी दस अथवा दस से अधिक व्यक्ति मिलकर ऐसी समिति बना सकते हैं तथा उस गाँव का अथवा ग्राम-समूह का कोई भी व्यक्ति इनका सदस्य हो सकता है।

इसकी पूँजी सदस्यों से प्रवेश-शुल्क लेकर, अंश-पूँजी विक्रय से तथा निक्षेप लेकर प्राप्त की जाती है। सदस्य तथा गैर सदस्य दोनों से निक्षेप लिये जाते हैं। इनके पास निक्षेप अधिक मात्रा में नहीं आते। यद्यपि निक्षेप लेने एवं आकृष्ट करने के उद्देश्य से ही इनकी स्थापना की गई थी परन्तु यह उद्देश्य बहुतांश समितियों के बारे में अभी तक सफल नहीं हो सका है। इनकी अंश-पूंजी भी अधिक नहीं होती क्योंकि जिस क्षेत्र में ये कार्य करती हैं, वहाँ की बचत पर्याप्त नहीं होती, जिसे वे विनियोग कर सकें क्योंकि साधारणतः

भारतीय किसान गरीब होता है। अतः इनको ऋणादि देने के लिये कार्य शील पूंजी केन्द्रीय सहकारी अधिकोषों से ऋण लेकर प्राप्त करनी पड़ती है।

समिति के सब सदस्य ग्राम विशेष अथवा विशेष ग्राम-समूह के रहने वाले होते हैं तथा इन समितियों के ७५% सदस्य कृषक होना आवश्यक है। सदस्यों का दायित्व असीमित होता है।

ये समितियाँ केवल अपने सदस्यों को ही ऋण देती हैं तथा ये ऋण केवल कुएं बनवाने के लिये, पुराने ऋणों के भुगतान के लिये, कृषिजन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अथवा अन्य उपयोगी एवं उत्पादक कार्यों के लिये ही दिये जाते हैं। परन्तु यह बात सदैव संभव नहीं हो सकती क्योंकि हो सकता है कि अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किसान महाजनों के पास से ऋण लें तथा उनके चंगुल में फँस जायँ। इसलिये समिति आवश्यकतानुसार सामाजिक एवं उपभोग्य कार्यों के लिये भी ऋण देती है परन्तु अनुत्पादक ऋणों के लिये अधिकतम मर्यादा प्रति व्यक्ति १०० रुपये की है। इस निर्बन्ध से व्यर्थव्ययिता को रोका जाता है। ऋण विशेषतः अचल सम्पत्ति की प्राधि पर अथवा एक या दो अन्य सदस्यों की जमानत पर दिये जाते हैं, परन्तु आजकल समितियों के कोष्ठागारों में रखे हुए उत्पाद (Produce) की प्रतिभूति पर भी ऋण दिये जाते हैं। कभी-कभी अधमर्ण सदस्य की वैयक्तिक साख पर भी ऋण दिये जाते हैं। ऋणों का भुगतान सुविधाजनक प्रभागों में किया जाता है तथा ऋण की अवधि १ से ३ वर्ष तक की होती है परन्तु किसी विशेष परिस्थिति में ५ वर्ष तक की अवधि दे दी जाती है। ऋणों के ब्याज की दर भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न होती है, जो विशेषत: ६½% से १२ प्रतिशत तक होती है।

समिति का प्रबन्ध सदस्यों द्वारा निर्वाचित व्यक्तियों की समिति करती है जिसमें एक अध्यक्ष तथा एक कार्यवाह होता है। समिति में यदि अंश-धारी नहीं हैं तो समिति का सम्पूर्ण लाभ संचिति-प्रणीधि में रखना आवश्यक होता है तथा इस लाभ का कुछ प्रतिशत भाग जन-हित कार्यों में व्यय किया जाता है परन्तु इसके लिये पंजीयक से आज्ञा लेनी पड़ती है। पृष्ठ ५८० पर इनकी १९४५ से १९४८ की प्रगति की सारणी देखिये, समितियों को अपने लेखे पूर्ण रखने पड़ते हैं, जिनका निरीक्षण पंजीयक द्वारा नियुक्त अंकेक्षक करता है तथा इन समितियों पर पंजीयक का पूर्ण नियंत्रण रहता है।

सहकारी साख-समितियों की १९४५-४६ से १९४७-१९४८ की प्रगति[1]

वर्ष	संख्या	सदस्य संख्या	निजी पूँजी	इनके प्राप्त ऋण तथा निक्षेप (वर्ष के अंत में)	कार्यशील पूँजी	वर्ष में दिये हुए ऋण	अदत्त ऋण (वर्ष के अंत में)
कृषि साख समितियां :—			ला	ख रु	प	यों	में
१९४५-४६	११२,९५१	३५,७५,४७०	१३२९·०८	१२६०·०३	२५८९·११	८२३·१०	१५८३·१७
१९४६-४७	८३,७७१	३१,७५,३८९	१०४२·८१	१११६·८९	२१५८·४७	९०२·९१	१४००·९९
१९४७-४८	८५,२६०	३४,८२,८५२	११३४·९५	१२५१·७४	२३८६·६९	१०४५·४१	१६०१·५५
१९४५-४६ एवं १९४७-४८ के बीच प्रतिशत वृद्धि (+) अथवा कमी (—)	—२४·५%	—२·६%	—१४·६%	—०·७%	—७·४%	+२६·८%	+१·२%
अन्य साख समितियां (Non-Agricultural Credit Societies)							
१९४५-४६	७,१८५	१६,३८,६६०	११६९·२२	२६६२·८०	३८३२·०२	२०५१·३२	१९१३·००
१९४६-४७	६,३७०	१५,५४,९३४	११२२·१२	२५४८·७७	३७०२·६६	२३७८·३३	२१३३·१४
१९४७-४८	६,५०५	१७,०२,२५५	१२३२·९६	२९६४·०५	४१९६·९९	२८३०·८६	२४६२·२६
१९४५-४६ से १९४७-४८ इस अवधि में प्रतिशत वृद्धि (+) अथवा कमी (—)	—९·५%	+३·९%	+५·५%	+११·३%	+९·५%	+३८·०%	+२८·७%

[1] "*Review of the Co-operative Movement in India* (1946-1948)"—Pp. 34

नगर सहकारी अधिकोष (समितियाँ) : नगर-सहकारी-अधिकोष जर्मनी के शुल्जे-डीलिटज्स नमूने पर (Schulze-Delitzsch) तथा इटली के लुजाट्टी अधिकोषों (Luzatti) के नमूने पर बनाई जाती हैं। इनका कार्य-क्षेत्र एक नगर (कस्बा) तक सीमित रहता है तथा इसके सदस्यों का दायित्व सीमित होता है किन्तु समिति के सदस्यों की इच्छानुसार असीमित दायित्व वाली भी बनाई जा सकती हैं। इनके सदस्यों में से ७५ प्रतिशत सदस्य कृषक नहीं होते।

इनकी पूँजी विशेषतः अंश बेचकर प्राप्त की जाती है तथा अंशों का मूल्य भी अधिक होता है जो विशेषतः ५ से १० रु० तक होता है। इनकी कार्यशील पूँजी विशेषतः सदस्यों के एवं गैर सदस्यों के निक्षेपों से ही प्राप्त होती है तथा ये अपने ऋण-कार्यों की राशि के लिये सरकार पर अथवा केन्द्रीय सहकारी अधिकोषों पर बहुत कम निर्भर रहती हैं। इतना ही नहीं अपितु इनके पास अधिक पूँजी रहती है, जिसको वे केन्द्रीय अधिकोष में निक्षेप लेखे में रखते हैं अथवा सरकारी प्रतिभूतियों तथा प्रमंडलों के अंशों में भी विनियोग करते हैं।

समिति को जो भी लाभ होता है उसका ¼ भाग संचिति-प्रणाधि में रखना अनिवार्य होता है तथा शेष का विशेषतः १० से १५ प्रतिशत जनहित कार्यों के लिये उपयोग में लिया जाता है और शेष लाभ का लाभांशरूप में वितरण किया जाता है। समिति का प्रबन्ध एक संचालक सभा करती है जिसमें एक अध्यक्ष, एक 'कार्यवाह तथा एक कोषाध्यक्ष (Treasurer) होता है; सभी संचालकों की नियुक्ति सदस्यों द्वारा की जाती है। सब संचालकों की सभा को साधारण समिति कहते हैं जो समिति की नीति का निर्धारण, लाभांश का वितरण करते हैं तथा कार्यवाह, अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष प्रबन्ध-समिति के सदस्य होते हैं तथा समिति के प्रबन्ध करने का उत्तरदायित्व इनका होता है।

ये साधारणतः केवल उत्पादन कार्यों के लिए ही ऋण देते हैं तथा ऋण उन्हीं कार्यों के लिए दिये जाते हैं जिनके लिए ग्रामीण-सहकारी समितियाँ देती हैं। ऋण की अवधि सामान्यतः २ वर्ष होती है परन्तु विशेष परिस्थिति में ३ से ५ वर्ष तक के लिए भी ऋण बढ़ा दिया जाता है। इनमें प्रतिभूतियों आदि संबन्धी निर्बन्ध भी ग्रामीण सहकारी साख समितियों की ही भाँति ही हैं। आजकल कुछ नगर सहकारी अधिकोष अपने सदस्यों को आधुनिक अधिकोषों की भांति रोक ऋण की तथा विपत्र एवं धनादेशों के संग्रहण की सुविधाएँ

भी देने लगे हैं। १९४५-४६ और १९४७ की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि समितियों की संख्या कम होते हुए भी उनकी पूंजी एवं ऋणों की वृद्धि हुई है जो प्रगतिसूचक है :—

	संख्या	कार्यशील पूँजी	प्रदत्त ऋण
१९४५-४६	१३०८	२३·४३ करोड़ रु०	९·९० करोड़ रु०
१९४७ के अंत में	१०९०	२६·९० ,, ,,	१४·७८ ,, ,,

सहकारी समिति-विधान के अनुसार दोनों ही प्रकार की समितियों पर पंजीयक का पूर्ण नियंत्रण रहता है तथा अंकेक्षण (Auditing) करने के लिए वह समितियों के अंकेक्षक की नियुक्ति करता है। अंकेक्षण प्रति वर्ष होता है जिससे समितियों की आर्थिक परिस्थिति की जानकारी हो सके। इसके साथ ही समितियों की आर्थिक परिस्थिति के अनुसार उनका अ, ब, क तथा ड, इन चारों वर्गों में वर्गीकरण किया जाता है तथा जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती, उन्हें 'ई' वर्ग में निकाल कर विलीयन कर दिया जाता है।

प्राथमिक सहकारी साख-समितियों की प्रगति १९२९ तक अबाधित रूप से होती गई परन्तु १९२९ की आर्थिक मंदी का इन समितियों पर बुरा प्रभाव पड़ा तथा अनेक समितियों की स्थिति विलीयन तक आ पहुंची थी क्योंकि अधिकतर सदस्य ऋणों का भुगतान करने में असमर्थ थे। आगामी दस वर्षों में (१९२९-३० से १९३९-४० तक) समितियों की ऋण प्रदायक शक्ति कुंठित हो गई थी जिससे ऋणों में कमी होगई थी तथा वीतकाल ऋणों की राशि १९३८-३९ में लगभग ११ करोड़ रुपये थी। परन्तु द्वितीय महायुद्ध ने परिस्थिति बदल दी। इसकी वजह से कृषिज वस्तुओं की कीमतें बढ़ने लगीं तथा कृषकों के पास धन की भी बहुतायत होगई जिससे १९४५-४६ में वीतकाल ऋणों की राशि ८·२३ करोड़ रुपये रह गई। इसके बाद क्रमशः समिति की संख्या में, सदस्यता में भी वृद्धि होती गई तथा समिति की पूंजी एक ओर तो बढ़ती गई और दूसरी ओर कृषकों को धन की आवश्यकता अधिक प्रतीत नहीं हुई। वीतकालीन ऋणों का भी भुगतान होते रहने की वजह से आर्थिक परिस्थिति में सुधार हुआ। कृषकों की इस समृद्धता की वजह से सहकारी साख-समितियाँ साख के साथ अन्य उत्पादन एवं वितरण कार्यों में भी भाग लेने लगीं परन्तु फिर भी ग्रामीण जनता एवं सहकारी समितियों का साख से घनिष्ठ सम्बन्ध आज भी है। परन्तु ये सहकारी समितियाँ भविष्य के ग्रामीण अधिकोषण विकास में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं यदि इनका संचालन समुचित रीति से किया गया और रिज़र्व बैंक ने उनका पर्याप्त मार्ग दर्शन किया। इस सम्बन्ध में प्रांतीय सहकारिता इन्स्टीट्यूट बम्बई के अवैतनिक कार्यवाह ने

जो परिपत्र पत्र (Circular Letter) सहकारिता-संस्थाओं को भेजा वह विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें उन्होंने कहा है :—

" सहकारिता आंदोलन बचत एवं निजी सहायता पर आधारित है। कोई भी सहकारिता कार्य तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसके सदस्य अपनी राशि का कुछ भाग निजी-सहायता (Self-help) से प्राप्त न करें। कृषि-साख-संगठन का प्रांत के पूर्ण भाग में ५ वर्ष में ऐसा विस्तार करना है जिससे कि प्रत्येक ग्राम में एक साख-समिति हो, जो सहकारी अधिकोषण विकास की निदर्शक हो। " परन्तु "अधिकोषण केवल ऋण देने में ही नहीं है अपितु उसके सहयोग में निक्षेप आकर्षण की योग्यता भी होनी चाहिये। यदि निक्षेप आकृष्ट न किये गये तो सारी योजना ही अस्तव्यस्त हो जायगी। अतः यह आवश्यक है कि सहकारी समितियाँ एवं सहकारी अधिकोषों को अपने सदस्यों की बचत एकत्र करने का आंदोलन करना चाहिये जिससे संगठन के लिये आवश्यक धन निजी राशि से ही प्राप्त हो सके "। अतः ग्रमीण अधिकोषण विकास की योजनाओं में ये समितियाँ तथा सहकारी अधिकोष अधिक महत्त्व-पूर्ण भाग ले सकते हैं तथा ग्रामीण अधिकोषण जाँच-समिति के वृत्तलेख में इनके कार्य-क्षेत्र के विकास के लिये योजनाएँ भी दी हुई हैं। यह वृत्तलेख अभी भारत सरकार के विचाराधीन है तथा शीघ्र ही कार्यान्वित किया जायगा। रिज़र्व बैंक भी इनके विकास के लिये समुचित सहायता देगा ही तथा इसका राष्ट्रीय-करण होजाने से सहायता का क्षेत्र विस्तृत होगा, ऐसी हमें आशा है।

केन्द्रीय सहकारी-अधिकोष :

प्राथमिक सहकारी साख-समितियों के साधन उनकी आवश्यकताओं की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। अतः इनकी सहायता के लिये ही ऐसे अधिकोषों का संगठन किया गया। केन्द्रीय सहकारी अधिकोष किसी विशेष क्षेत्र अथवा जिले की सहकारी-साख-समितियों के ऊपर होता है जिसका प्रमुख कार्यालय सुविधानुसार विशेष नगर में स्थापित किया जाता है तथा वह अपनी कुछ शाखाएँ भी अपने क्षेत्र में खोलता है। मैक्लेगन समिति के वृत्तलेख में इनका वर्गीकरण तीन वर्गों में किया गया है :—

अ. वे अधिकोष जिनकी केवल वैयक्तिक सदस्यता ही होती है;

ब. वे अधिकोष जिनकी सदस्य केवल सहकारी समितियाँ ही होती हैं। तथा

(क) वे अधिकोष जिनकी सदस्यता में व्यक्ति एवं समितियाँ दोनों ही होते हैं। समिति ने यह भी सुझाव दिया था कि पहिले वर्ग के अधिकोषों

उत्तेजन न दिया जाय क्योंकि उनमें कृषि-साख संबन्धी वही बुराइयाँ आ सकती हैं जो संयुक्त-स्कंध अधिकोषों में होती हैं। इस प्रकार के अधिकोष आजकल हैं भी नहीं। वर्तमान अधिकोषों में दूसरे एवं तीसरे प्रकार के ही अधिकोष पाये जाते हैं जिनको क्रमशः सहकारी अधिकोष संघ (Cooperative Banking Union) तथा सहकारी केन्द्रीय अधिकोष कहते हैं। इस प्रकार का पहिला अधिकोष मद्रास में १९०७ में स्थापित हुआ तथा १९११ में बम्बई में। परन्तु अधिकतर केन्द्रीय अधिकोषों की स्थापना सहकारिता विधान १९१२ के बाद ही हुई तथा बम्बई का केन्द्रीय अधिकोष जो १९११ में स्थापित हुआ था वह प्रांतीय अधिकोष में परिणत होगया।

केंद्रीय अधिकोषों का कार्यक्षेत्र भिन्न प्रान्तों में नगर या तहसील से तालुका अथवा जिले तक सीमित रहता है तथा अधिकतर अधिकोष तीसरे वर्ग के हैं।

केन्द्रीय अधिकोषण संघों की सदस्यता केवल सहकारी साख-समितियों तक ही सीमित रहती है तथा इनका प्रबन्ध सदस्यों द्वारा निर्वाचित संचालकों द्वारा किया जाता है। ये संघ अपने सदस्यों के कार्य का निरीक्षण करता है, उनकी राशि अपने पास निक्षेप में रखता है तथा उन्हें आवश्यकता पड़ने पर सहायता देता है। इसी प्रकार केंद्रीय अधिकोष भी सदस्य समितियों के कार्यों की देख भाल करते, निक्षेप रखते हैं तथा समितियों को एवं सदस्यों को आर्थिक सहायता देते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय अधिकोष दुहरे कार्य करते हैं, एक तो अपने सदस्यों की शेष निधि रखते हैं तथा दूसरे उन्हें आवश्यकता के समय आर्थिक सहायता देते हैं। ये जनता से निक्षेप भी स्वीकारते हैं। कुछ प्रान्तों में, विशेषतः मद्रास में तो स्थानीय अधिकारियों को अपनी राशि या तो सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग करनी पड़ती है या अनिवार्यतः केन्द्रीय अधिकोषों के पास जमा करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त ये अधिकोष अन्य अधिकोषण क्रियाएँ भी करते हैं; जैसे जनता के सब प्रकार के निक्षेप लेना, विपत्र धनादेश आदि का संग्रहण, विकर्षों का निर्गमन, प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय, आभूषणादि की सुरक्षा करने का कार्य आदि। कुछ प्रान्तों में अचल सम्पत्ति की प्रतिभूति पर ऋण देने का कार्य भी ये अधिकोष करते हैं।

इनकी पूँजी अंश-विक्रय से, इनकी सदस्य समितियों की संचिति-प्रणीवि तथा अन्य निधि के निक्षेप एवं जनता के निक्षेप से तथा स्थानीय अधिकारियों के निक्षेप से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त ये प्रान्तीय सहकारी अधिकोष, संयुक्त स्कन्ध अधिकोष से प्राप्त करते हैं। इम्पीरियल बैंक से इनको रोक ऋण भी प्राप्त होता है। राज-संत्रों में केन्द्रीय अधिकोषों को विशेष रूप से

राशि की सहायता मिलती है विशेषतः गवालियर में। सदस्य समितियों को ऋण देने के पूर्व, ये अधिकोष अपने अंकेक्षकों द्वारा उनकी आर्थिक परिस्थिति का निरीक्षण करा लेते हैं। ये निक्षेप लेते हैं इसलिये उसके भुगतान के लिए इनको अपने पास सम्पत्ति भी रखनी पड़ती है।

इसके अतिरिक्त कुछ प्रान्तों में ये अधिकोष समितियों के विकास के लिये प्रचार कार्य करते हैं तथा सहकारिता-शिक्षा का प्रबन्ध भी करते हैं।

इनको अपने व्यय आदि का भुगतान करने के बाद जो शुद्ध लाभ होता है उसका वितरण संचिति-प्रणीवि बढ़ाने में तथा लाभांश वितरण करने में करते हैं, इनके लाभांश की दर विभिन्न प्रान्तों में ३% से ६% होती है परन्तु सामान्यतः ५% से अधिक वार्षिक लाभांश नहीं दिया जाता—विशेषतः मद्रास प्रान्त में तो वैधानिक निर्बन्ध है कि ये ५% से अधिक लाभांश न दें क्योंकि अधिक लाभांश का वितरण सहकारिता-तत्त्व — लाभ की अपेक्षा सेवा दान— के विरुद्ध है। इन अधिकोषों के सम्बन्ध में "सहकारिता सम्बन्धी मद्रास समिति" ने लिखा था कि उन्होंने "सहकारिता-तत्त्वों पर कृषि-साख-सङ्गठन में अद्वितीय कार्य किया है तथा ग्रामीण विकास की, एवं सहकारिता-शिक्षा की योजनाओं में विशेष रूप से प्रगति की है।"

द्वितीय महायुद्ध का परिणाम इनकी प्रगति पर बड़ा ही अच्छा हुआ है जिससे इनकी संख्या में वृद्धि न होते हुए आर्थिक सङ्गठन अच्छा हो गया है जो (पृष्ट ४८६ पर दी हुई) सारणी से स्पष्ट है:—

इनके द्वारा दिये गए ऋणों के आंकड़ों से भी यह स्पष्ट है कि इनकी ऋण-क्रियाएँ कम हो गई हैं क्योंकि युद्ध काल में कृषिज वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाने से कृषकों को ऋण की आवश्यकता न रही जिससे समितियों द्वारा लिये जाने वाले ऋणों में भी कमी हो गई। इससे केन्द्रीय अधिकोषों के पास जमा राशि बढ़ती गई जिसका उन्होंने अन्य अधिकोषण क्रियाओं में उपयोग किया। युद्धोत्तर काल में भी इनकी प्रगति अच्छी रही।

प्रान्तीय सहकारी अधिकोष : प्रान्तीय सहकारी अधिकोष देश की सहकारिता-सङ्गठन के शीर्ष अधिकोष हैं जो प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों का सङ्गठन एवं नेतृत्व करते हैं एवं उनके कार्यों का निरीक्षण करते हैं। १६४८ में तथा वर्तमान काल में विभिन्न प्रान्तों एवं राज्य-संघों में कुल ११ प्रान्तीय अधिकोष हैं जिनकी कार्य शील पूँजी २४·०५ करोड़ रुपये हैं।

की स्थापना एवं विकास में भी सहयोग देते हैं जैसे गृह-निर्माण-समिति (Housing Society), विक्रय समिति (Sale Society) आदि। मेकलेगन समिति ने एक अखिल भारतीय सहकारी अधिकोष की स्थापना का भी प्रस्ताव किया था जो प्रांतीय अधिकोषों का शीर्ष अधिकोष हो, परन्तु रिज़र्व बैंक की स्थापना से ऐसे अधिकोष की आवश्यकता अब नहीं रही क्योंकि रिज़र्व बैंक अब इनको अपने कृषि-साख विभाग के माध्यम से विशेष रूप से सहायता करता है।[1]

द्वितीय महायुद्ध का प्रान्तीय अधिकोषों पर भी प्रगतिजनक प्रभाव हुआ है क्योंकि एक ओर तो इनके निक्षेप बढ़ते गये तथा दूसरी ओर ऋण-प्रदाय स्थायी रहा तथा अदत्त ऋणों का भुगतान भी सन्तोषजनक होता रहा, परिणाम स्वरूप इनके विनियोग बढ़ते गए जो युद्धकालीन प्रगति का एक विशेष लक्षण है। इनकी प्रगति की स्पष्ट कल्पना पृष्ठ २८६ पर दी हुई सारणी से हो सकती है :—

सहकारी-साख पद्धति की त्रुटियाँ :

१. हमारे देश के सहकारी सङ्गठन का सबसे बड़ा दोष तो यह है कि "सहकारी आन्दोलन जनता की आवश्यकता के फलस्वरूप निर्माण न होते हुए सरकारी नीति के एक भाग के रूप में विकसित हुआ" जिसकी वजह से वह जनता के उपर लादा गया। और आज भी सामान्य जनता के लोग जो सहकारी समितियों के सदस्य हैं इसके महत्व को नहीं जानते। इस सम्बन्ध में टाउन्सहेन्ड समिति (मद्रास) ने लिखा है कि "सहकारिता सम्बन्धी अज्ञान जो जनता ने नहीं अपितु उसके कर्मचारियों ने प्रकट किया वह आश्चर्यजनक है।" इसी प्रकार आसाम अधिकोषण जाँच-समिति ने लिखा है कि "ग्रामीण समिति से सदस्यों को यही बोध होता है कि वह एक अधि-कोष है, जिसका किसी न किसी प्रकार से सरकार से सम्बन्ध है तथा जहाँ से उन्हें साहूकार अथवा महाजनों की अपेक्षा कम दर पर ब्याज मिल सकता है तथा जिसके भुगतान की भी कोई जल्दी नहीं होती।"

२. साख समितियों का उद्देश केवल अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख-पूर्ति करने का होता है परन्तु इन्होंने अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋणों का अन्तर न जानते हुए दीर्घकालीन ऋण भी दिये; जिनका भुगतान प्राप्त करने में उन्हें असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

---

[1] अध्याय १६ "रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया"—कृषि साख विभाग—देखिये।

प्रांतीय सहकारिता अधिकोषों की क्रियाएं (१६३६-१६४८)

करोड़ रुपयों में

वर्ष	संख्या	सदस्य संख्या		कुल सदस्य	अंश पूंजी एवं निधि	निक्षेप	अर्थशील पूंजी	विनियोग	नये ऋण दिये	ऋणों का भुगतान मिला	अदत्त-ऋण (Loans Out-standing)	लाभ(+) अथवा हानि(–)
		व्यक्तिगत	केन्द्रीय अधिकोष व समितियां									
१६३६	१०	४१६६	१६,०८०	२३,२७६	१·६७	१०·७३	१२·८५	५·८४	७·३३	६·८५	६·६४	+·११
१६४०	१०	४४०७	१८,६७४	२३,३८१	२·२४	१०·५६	१३·४१	५·५८	७·०६	६·६१	७·०१	+·०६
१६४१	१०	४५३७	१८,८३८	२३,३७५	२·३८	१०·६२	१३·८६	५·६२	६·६३	६·६५	७·००	+·०८
१६४२	१०	४८५०	१८,७६८	२३,६२८	२·२७	११·५७	१४·५४	५·६०	७·६८	८·२५	६·५८	–·०१
१६४३	१०	५१६०	१८,६६५	२३,८५५	२·२३	१४·६१	१७·४८	६·८८	६·६५	१०·८३	५·६४	+·०८
१६४४	१०	५५६०	१६,१७१	२४,७३१	२·४५	१५·८६	१८·७४	१०·४६	१७·६०	१७·२४	६·१६	+·११
१६४५	११	६४६५	१६,५१६	३६,०१४	२·७१	१७·५७	२०·५८	११·६१	१६·३५	१६·०६	६·३७	+·१४
१६४६	१३	७७२८	२०,०५७	२७,७८५	३·०३	२१·६३	२४·६०	१४·७५	१६·८८	१७·१५	६·५४	+·१४
१६४७	११	६२७३	८,१०६	१४,३७६	२·५४	१७·८६	२१·६८	६·२१	२४·६८	२१·०६	६·०६	+·१४
१६४८	११	६५०८	८,५०५	१५,०१३	२·६०	२०·०६	२४·०५	११·४३	२२·७३	२२·६४	८·६६	+·१७

From an article titled "The Indigenous Bankers and Cooperative Banks by V. Sivaraman, Research Officer, R. B. I. Bombay—appeared in the Agricultural Economist"—Sept. 1950.

३. इनकी ऋण देने की प्रथा भी असुविधाजनक होती है तथा औपचारिकता का भाग अधिक होता है जिससे ऋण प्राप्त करने में पर्याप्त समय व्यतीत होता है। इसलिए इन असुविधाओं से बचने की दृष्टि से तथा आवश्यकता के समय तत्काल ऋण-राशि प्राप्त करने के लिये वह महाजनों के पास जाना ही अधिक पसन्द करता है, जिससे "महाजनों के चंगुल से छुड़ाने का उद्देश" सफल नहीं होता। अतः सहकारी अधिकोषों को अनावश्यक औपचारिकता (Formalities) को हटाना चाहिये जिससे उन्हें तत्काल ऋण प्राप्त हो सके तथा सहकारी समिति की क्रियाएँ वे समझ सकें।

४. सहकारी अधिकोषों में कर्मचारियों का एवं संचालकों का असहनीय नियंत्रण बढ़ता जा रहा है जिसकी वजह से सदस्यों में सहकारिता से अपने आपको अलग समझने की भावना पैदा होगई है। इससे भी मूल तत्त्व " एक के लिये सब तथा सबके लिये एक " असफल हो रहा है, इससे सदस्य संख्या भी कम होती जा रही है। इसलिए सहकारिता आंदोलन के कर्मचारियों को समुचित शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिये जिससे सहकारिता आंदोलन का विकास हो तथा वे सहकारिता तत्त्वों को समझ सकें एवं उन्हें कार्यान्वित कर सकें।

५. अधिकोषों के प्रबन्धक अथवा संचालक सदस्यों में से ही निर्वाचित होने के कारण वे अधिकोषण कार्यों से अपरिचित हैं जिससे उनका प्रबन्ध ठीक ठीक नहीं होता। दूसरे उनमें सेवा-भाव का अभाव होने की वजह से वे केवल अपने परिचितों को ही ऋण देते हैं तथा भुगतान न करनेवाले व्यक्तियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करते, जिससे अधिकोषों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है।

६. सहकारी साख-समितियों के तथा नगर अधिकोषों के लेखे ही न तो ठीक प्रकार से रखे जाते हैं और न उनका नियमित रूप से भली भाँति निरीक्षण ही होता है। अधिकोष की लेखा-पुस्तकों के निरीक्षण के लिये अंकेक्षक भी नियुक्त नहीं किये जाते जिससे अधिकोषों की राशि का दुरुपयोग होने लगा है।

७. अधिकांश साख-समितियों तथा अधिकोषों की आर्थिक स्थिति अभी तक खराब थी परन्तु युद्धकाल से इस स्थिति में अब सुधार होगया है। परन्तु फिर भी सहकारिता आंदोलन के कार्यकर्ताओं को अधिकाधिक निक्षेप आकृष्ट करने की आवश्यकता है जिससे वे सरकार पर निर्भर न रहें। इस आर्थिक कमजोरी के कारण वे महाजनों तथा स्वदेशीय अधिकोषों की प्रतिस्पर्धा

सफलता से नहीं कर सके तथा स्वदेशीय अधिकोषों को इनसे किंचित भी भय नहीं है।

८. समितियों द्वारा ली जाने वाली ब्याज की दर अधिक होती है। इस अधिक दर रहने का कारण उनकी कार्यशील पूंजी की कमी है तथा उन्हें अपने कार्यों की पूर्ति के लिये प्रांतीय तथा केन्द्रीय अधिकोषों से ऋण लेने पड़ते हैं, जिनपर ब्याज की दर अधिक ली जाती है। परिणाम यह होता है कि समितियाँ किसानों से अधिक ब्याज लेती है।

९. सहकारिता आंदोलन की निर्बलता का एक कारण यह भी है कि सहकारी विभाग के कर्मचारी आंदोलन का विकास एवं अपनी सफलता दिखाने के लिये बिना सहकारिता की शिक्षा दिये सहकारी समितियों की स्थापना करते हैं। तथा आर्थिक संगठन को विशेष महत्व नहीं देते, परिणामतः सहकारी समितियाँ विलीन हो जाती हैं, जिससे जनता का विश्वास इस आंदोलन में नहीं जम पाता।

१०. इस आंदोलन का दोष यह भी है कि समितियों तथा प्रान्तीय एवं केंद्रीय अधिकोषों के बीच ऋणों के आदान-प्रदान के लिये कागजी घोड़े ही अधिक दौड़ते हैं। अर्थात् पुराने ऋणों के भुगतान के लिये नये ऋण लिये जाते हैं जिससे वास्तविक आर्थिक परिस्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता तथा अधिकारी भी इस बात को नहीं समझ पाते। इससे समितियों की आर्थिक स्थिति में कमजोरी रहती है।

११. सहकारिता आंदोलन सरकारी नीति के फलस्वरूप होने के कारण, इनके सर्व सर्वा उत्तरदायी पंजीयक (Registrars) होते हैं जो सरकारी कर्मचारी होने से स्थानांतरित होते रहते हैं जिससे कभी भी एक नीति नहीं रह पाती। इसके साथ ही अन्य सरकारी कर्मचारियों की भाँति इनमें एकाग्रता का एवं वास्तव में कार्य करने का अभाव रहता है—हाँ दिखावा पर्याप्त होता है।

१२. और सबसे बड़ा दोष तो यह है कि जिस व्यक्ति-समूह के लिये—कृषक के लिये—यह आंदोलन प्रारम्भ किया गया है उसे "सहकारिता" क्या चीज है इसका भी ज्ञान तक नहीं रहता। इस कारण सहकारिता-समितियों का संचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथ में रहता है जो कृषक का पहिले से ही शोषण करते हैं। इसीलिये इसमें कागज पर एक चीज और वास्तव में दूसरी चीज—इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

इन सब दोषों के रहते हुए भी, सहकारिता आंदोलन ने बहुत कुछ

यशस्विता से काम किया है। कृषकों को कम व्याज पर ऋण देते हैं (देखिये सारणी) जिससे इस आंदोलन से धीमे धीमे देश में आर्थिक क्रान्ति हो रही है। जैसा कि रॉयल कृषि समिति ने लिखा है कि "सहकारिता आंदोलन के विषय में ज्ञान प्रसार हो रहा है, मितव्ययिता को प्रोत्साहन मिल रहा है... तथा कुछ मात्रा में महाजनों का प्रभुत्व कम हो गया है। परिणामत: कृषक की मनोवृत्ति में परिवर्तन हो रहा है।"

सहकारी अधिकोषों की उन्नति के लिए कुछ सुझाव :

सहकारिता आंदोलन की सफलता तथा उसको अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसके वर्तमान दोषों का निवारण किया जाय तथा आर्थिक संगठन मजबूत हो। कृषक इससे अधिकाधिक लाभ तभी उठा सकते हैं जब बहुमुखी-सहकारिता-समितियाँ (Multi Purpose Societies) स्थापित की जायँ जो कृषकों को ऋण देने के अतिरिक्त उनके जीवन के अन्य पहलुओं में भी नव-शक्ति का संचार करें, तभी इस आंदोलन से कृषकों की एवं कृषि की क्रांति हो सकती है। सहकारिता-समितियों की कार्य-प्रणाली अधिक सुविधाजनक एवं सुगम्य होनी चाहिये तथा इस आंदोलन के कर्मचारियों में सेवा-भावना होनी चाहिये। बम्बई, मध्य प्रदेश तथा मद्रास प्रांतों की भाँति सभी प्रांतों में सहकारिता की शिक्षा का विस्तृत प्रबन्ध किया जाय जिससे आंदोलन के लिये योग्य कर्मचारी मिल सकें, तथा जो जन-सेवा के भाव से कार्य करें एवं सदैव निजी स्वार्थ की अपेक्षा कृषकों एवं राष्ट्र की उन्नति की भावना का ध्यान रखें।

समितियों को चाहिये कि वे केवल अल्पकालीन तथा मध्यकालीन ही ऋण दें तथा दीर्घकालीन ऋण-प्रदान के लिये भू-प्राधि अधिकोषों की स्थापना एवं प्रसार किया जाय। नई समितियों की स्थापना के पूर्व उनकी आवश्यकता एवं उनका संगठन सुदृढ़ है या नहीं यह देख लिया जाय तभी स्थापना की अनुमति पंजीयक दें, इसके साथ ही वे यह भी देख लिया करें कि उस स्थान की जनता में सहकारिता-तत्त्वों का प्रचार कहाँ तक है। समितियों के समान प्रान्तीय एवं केंद्रीय अधिकोषों का निरीक्षण प्रमाणित अंकेक्षकों द्वारा ही होने का वैधानिक प्रबन्ध हो जिससे लेखा-पालन की त्रुटियों का निवारण हो तथा आर्थिक स्थिति का वास्तव ज्ञान प्राप्त हो सके। विशेषत: समितियों के लेखों का निरीक्षण केंद्रीय अधिकोष द्वारा, केंद्रीय अधिकोषों का प्रान्तीय अधिकोषों द्वारा तथा प्रान्तीय अधिकोषों के लेखे का निरीक्षण पंजीयक द्वारा नियुक्त अथवा प्रमाणित अंकेक्षकों द्वारा किये जाने का प्रबन्ध होना चाहिये, जो अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

ब्याज की दरों में कमी आनी चाहिये जिससे समितियों से कृषक महत्तम लाभ उठा सकें। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस दिशा में प्रांत की सभी अधिकोष समितियाँ सहयोग से कार्य करें तथा प्रांत भर में एक ही नीति का अवलंब करें; जिससे सहकारिता का अधिक प्रसार हो सके। ऋण प्रदाय भी अधिकतर ऐसे ही कार्यों के लिए होना चाहिये जिसमें ऋण लेने वाले व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति में सुधार हो।

इसके अतिरिक्त गाडगील समिति [(कृषि नीति उपसमिति) Sub-committee of Agricultural Policy Committee] की सिफारिशें भी माननीय हैं जो निम्नलिखित हैं :—

(i) सहकारी समितियों की जड़ सम्पत्ति (Frozen Assets) को तरल करना चाहिये तथा उनके स्वत्वों (Claims) का समायोजन सदस्यों की भुगतान शक्ति के अनुसार हो जाना चाहिये जिससे समितियाँ अपनी सामान्य क्रियाएँ कर सकें।

(ii) साख-समितियों का संगठन नियमित रूप से असीमित-देयता-सिद्धांत के आधार पर होना चाहिये जिससे सदस्यों में सामूहिक रूप से एवं सावधानी से कार्य करने की भावना जागृत हो। ....सीमित दायित्व का अवलंब भी हो सकता है यदि निधि का अधिकांश भाग अंशपूंजी के रूप से प्राप्त किया जाय......... ।

(iii) समितियों को अपने सदस्यों की सभी अल्पकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। मध्यकालीन ऋण केवल उत्पादन कार्यों के लिए ही दिये जायँ, तथा ऐसे ऋणों की राशि, पूंजी तथा निधि के योग से अधिक न हो तथा उस राशि से जो वे अन्य अर्थ अभिकर्ताओं (Financing Agencies) से प्राप्त कर सकें।

(iv) ऋणों की प्रतिभूति सामान्यतः वैयक्तिक साख ही होनी चाहिये तथा साख-योग्यता का निर्धारण सदस्यों की भुगतान-शक्ति पर निर्भर रहना चाहिये। परन्तु मौसमी सुविधाओं के लिए उनको सदस्यों की फसल पर वैधानिक अधिकार मिलना चाहिये, जो ऋण की आनुसंगिक प्रतिभूति रहे। प्राधिरूप प्रतिभूति दीर्घकालीन तथा अधिक राशि के ऋणों के लिए लेना उचित है परन्तु प्राधीयित सम्पत्ति आनुसंगिक प्रतिभूति ही होनी चाहिये।

Report of the Cooperative Planning Committee—1946 Pp. 72-73.

(v) ऋणों की स्वीकृति में कम से कम विलंब लगना चाहिये। इसकी सम्भावना के लिए प्रत्येक सदस्य की अधिकतम ऋण-राशि प्रति वर्ष निश्चित होनी चाहिये जिससे आवेदन-पत्र आने पर जाँच की विशेष आवश्यकता न रहे। सुव्यवस्थित समितियों के लिए रोक ऋण की तथा व्यक्तियों के लिये चलद-साख (Running Credit) की सुविधाएँ यथा-संभव देनी चाहिये। समितियों के जिम्मेदार अधिकारियों को आवश्यकता के समय कुछ मर्यादित राशि के ऋण स्वीकृत करने का अधिकार मिलना चाहिये।

(vi) ऋण राशि उसी समय दी जानी चाहिये जब उसकी वास्तव में आवश्यकता हो—क्योंकि वर्ष में केवल एक या दो दिन ही ऋण-वितरण होने से सहकारी अर्थ-व्यवस्था में लोच नहीं रहती जिससे कृषकों को महाजनों के पास जाना पड़ता है।

(vii) "ऋणों का भुगतान नियमित रूप से हो रहा है, इस ओर अधिक ध्यान चाहिये और जहाँ पर जान बूझ कर भुगतान न किया जा रहा हो वहाँ कड़ाई से भी काम लेना चाहिये। मौसमी आवश्यकता के लिए, दिये हुए ऋणों का भुगतान फसल के अन्त में हो जाना चाहिये। मध्य-कालीन ऋणों की अवधि तीन वर्ष की होनी चाहिये जो अपवादात्मक दशा में ५ वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है"—इस प्रकार इस समिति के अनुसार अल्पकालीन ऋण केवल फसल के आरम्भ से फसल के अन्त तक अर्थात् ६ से ६ महीने तक के लिये तथा मध्यकालीन ऋणों की अवधि ६ महीने से ३ वर्ष तक ही होनी चाहिये।

(viii) वर्तमान ऋणों पर ब्याज की दर ९% ली जाती है जो अधिक है तथा जिसे ६½% से अधिक नहीं जाने देना चाहिये। इसलिये सरकार को आवश्यकतानुसार समितियां की सहायता (Subsidize) देनी चाहिये; विशेषतः जिन समितियों का व्यापार कम है।

(ix) सहकारी अधिकोषों को अपना सङ्गठन समुचित अधिकोषण पद्धति पर करना चाहिये, जिससे वे ब्याज की सस्ती दरों पर निधि प्राप्त कर सकें।

(x) विशेष परिहार दरों पर (Special Concessional Rates) मौसमी कृषि कार्यों के लिये तथा फसल का विपणन करने के लिए ऋण की सुविधाएँ दी जा सकें इस हेतु रिज़र्व बैंक से उपलब्ध सुविधाओं का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिये।

(xi) सहकारी साख-समितियों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए उनकी साख क्रियाएँ विपणन समितियों (Marketting Societies) के साथ सम्बन्धित कर दी जानी चाहियें। इसलिये मद्रास प्रान्त की भांति "नियन्त्रित" साख (Controlled Credit) का उपयोग होना चाहिये।

(xii) समितियों को यह भी देखना चाहिये कि ऋणों का उपयोग समुचित हो रहा है अथवा नहीं और इस हेतु उन्हें सदस्यों की आवश्यकताओं के लिये ऋण-राशि मुद्राओं में न देते हुए उसका कुछ भाग जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो उन वस्तुओं में देना चाहिये। सदस्यों की कौटुम्बिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समितियों को क्रय-संघों (Purchasing Unions) से तथा उपभोक्ता-भंडारों से (Consumer's Stores) प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखना चाहिये।

भू-प्राधि अधिकोष (Land Mortgage Banks) :

कृषि व्यवसाय का संगठन औद्योगिक संगठन से भिन्न होने के कारण ही कृषकों को आर्थिक सहायता देने के लिये सभी देशों में कृषि-साख संगठन की समुचित व्यवस्था की गई है। जैसा कि हमने अभी तक देखा कृषि-साख सुविधाएँ देने के लिये हमारे देश में भी सहकारी आंदोलन सरकारी नीति का एक भाग ही है। सहकारी समितियाँ कृषकों को केवल अल्पकालीन एवं मध्यकालीन ऋण ही देती हैं यह भी हम देख चुके हैं। परन्तु कृषकों को, विश्व के किसी भी कोने में वे हों, दीर्घकालीन ऋण की भी आवश्यकता होती है जिससे वे अपने पुराने ऋणों का भुगतान कर सकें तथा अपनी भूमि का स्थायी सुधार भी कर सकें तथा आवश्यकतानुसार नई भूमि भी खरीद सकें। किसानों की इस दीर्घकालीन ऋण-आवश्यकताओं की पूर्ति भू-प्राधि-अधिकोष करते हैं।

भू-प्राधि अधिकोष उन्हें कहते हैं जो "कृषकों की भूमि की प्राधि पर उन्हें दीर्घकालीन ऋण देते हैं"। साधारणतः अमेरिका, इङ्गलैंड आदि देशों में दीर्घकालीन ऋणों की अवधि २० से ७५ वर्ष होती है परन्तु भारत में अधिकतम २० वर्ष के लिए ऋण दिये जाते हैं। (Central Banking Enquiry Committee Report)

भू-प्राधि अधिकोष क्या हैं? भू-प्राधि अधिकोषों की स्थापना दो प्रकार से की जाती है—

(i) सहकारी भू-प्राधि अधिकोष—ऐसे अधिकोष केवल प्राधित (Mortgaged) भूमि पर बंध बेच कर राशि प्राप्त करते हैं जिससे वे केवल अपने सदस्यों को ही ऋण की सुविधाएँ देते हैं। इसमें कभी कभी बाहर के व्यक्तियों को भी सदस्य बना लिया जाता है, जिससे अधिक पूंजी प्राप्त हो सके एवं अच्छे प्रबन्धक, संचालक अथवा कर्मचारी मिल सकें। ये अधिकोष लाभ के उद्देश से कार्य नहीं करते अपितु दीर्घकालीन ऋणों पर ब्याज की दर कम करना—यही इनका प्रथम लक्ष्य होता है।

(ii) संयुक्त स्कंध-भू-प्राधि अधिकोष—जो व्यापारिक अधिकोषों की भाँति सीमित दायित्व वाले होते हैं तथा सरकार पर इनका नियंत्रण होता है। इनकी पूंजी अंशों के, ऋणपत्रों के, तथा प्राधि-बंधों के विक्रय से प्राप्त होती है। भारत में इस प्रकार के अधिकोष न होते हुए केवल तीसरे वर्ग के ही अधिकोष पाये जाते हैं।

(iii) अर्ध-सहकारी भू-प्राधि अधिकोष—ये उन व्यक्तियों के एक संघ के रूप में होते हैं जिनको ऋण की आवश्यकता होती है तथा जिनकी पूंजी अंशों के विक्रय से प्राप्त की जाती है एवं इनके सदस्यों का दायित्व सीमित होता है। किंतु इनकी अधिकतर कार्य-शील पूंजी ऋणपत्रों के निर्गमन से प्राप्त की जाती है। भारत में इस प्रकार के अधिकोष ही अधिकतर हैं।

उद्गम तथा विकास : हमारे देश में इस प्रकार का सबसे पहिला सहकारी अधिकोष पंजाब में " झंग " नामक स्थान पर खोला गया था परन्तु उसका जीवन-काल शीघ्र ही समाप्त हो गया। इस प्रकार के अधिकोषों की स्थापना सर्व प्रथम १९२९ में मद्रास प्रांत में हुई जिसके बाद इसी वर्ष मैसूर में भी स्थापना हुई। मद्रास को इन अधिकोषों की स्थापना एवं प्रगति का श्रेय मिलता है तथा इस कार्य में आज भी उसी का उच्चांक है। भू-प्राधि अधिकोषों की स्थापना का प्रयत्न १८६३ में हुआ था जिस समय फ्रेंच क्रेडिट फौंसियर (French Credit Foncier) के नमूने पर एक अधिकोष की स्थापना हुई जिसने लगभग २० वर्ष काम किया परन्तु बाद में विलीन हो गया। इसके बाद १९२० में भी कई प्रयत्न हुए परन्तु " झंग " में ही स्थापना हो सकी, जो अधिकोष अल्पकालीन रहा। इन सब अधिकोषों के विलीयन का प्रमुख कारण यही रहा कि ये बड़े बड़े जमींदारों को ही सुविधाएँ देते रहे। परन्तु सबसे यशस्वी प्रयत्न मद्रास में हुआ जब १९२९ में प्राथमिक अधिकोषों के संगठन के हेतु केन्द्रीय भू-प्राधि अधिकोष की स्थापना की गई। १९४७-४८ में मद्रास में कुल १२० प्राथमिक भू-प्राधि अधिकोष थे। इसके बाद

मैसूर (१६२६), बम्बई (१६३५), उड़ीसा (१६३८) तथा कोचीन (१६३५) में इन अधिकोषों की स्थापना की गई। मध्य प्रांत में प्रांतीय सहकारी अधिकोष ही प्राथमिक भू-प्राधि अधिकोषों की सहायता करते हैं। "इसके अतिरिक्त भूप्राधि-अधिकोष अथवा समितियाँ पश्चिमी बंगाल, आसाम, उत्तर-प्रदेश तथा अजमेर मेरवाड़ा आदि प्रांतों में भी हैं परन्तु उनकी प्रगति विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं"।[1] बम्बई प्रांत में भी इस क्षेत्र में अच्छी प्रगति हुई है जहाँ एक प्रांतीय भू-प्राधि अधिकोष १५ प्राथमिक भू-प्राधि अधिकोष १६४७-४८ में थे। इनका भारत जैसे कृषि प्रधान देश में भी अभाव होना बड़ा ही खेद-जनक है क्योंकि इनके न होने से ही महाजनों पर कृषक निर्भर रहे तथा ऋण भार बढ़ता ही गया तथा इनको जहाँ थे वहाँ भी अधिक सफलता नहीं मिली। इस सम्बन्ध में रिज़र्व बैंक की पिछली समीक्षा में लिखा है कि "इतनी अधिक ग्रामीण जन-संख्या के होते हुए भी भारत में भू-प्राधि अधिकोषों को अधिक सफलता नहीं मिली। पंजाब में जहाँ सबसे पहिले ऐसे अधिकोष का निर्माण हुआ, कोई उन्नति नहीं हुई। अन्य प्रांतों में भी जैसे उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, अजमेर, उड़ीसा तथा बंगाल में भी भू-प्राधि अधिकोषों का कार्य संतोषप्रद नहीं रहा। केवल मद्रास ही में इन अधिकोषों ने कुछ उन्नति की है"।[2]

यहाँ हमको यह ध्यान में रखना चाहिये कि इन अधिकोषों के विकास का प्रथम युग १६२६ से प्रारंभ होता है जब कि मद्रास तथा मैसूर में केन्द्रीय भू-प्राधि अधिकोषों की स्थापना हुई। १६२६ से आर्थिक मंदी का काल भी प्रारंभ होता है, जिस समय कृषिज वस्तुओं के मूल्य धड़ाधड़ गिर रहे थे, भूमि का मूल्य भी कम हो गया था तथा किसानों को अपनी भूमि ऋणों के भुगतान के लिये बेचने की नौबत आगई थी। ऐसे संकट काल में भू-प्राधि अधिकोषों की स्थापना ने कृषकों को अमूल्य सहायता प्रदान की तथा उनकी भू-प्राधि पर ऋण देकर उनकी भूमि को महाजनों के हाथ बिकने से बचाया। परन्तु १६३६ से परिस्थिति ने पलटा खाया क्योंकि युद्ध के कारण कृषिज पदार्थों की बढ़ते हुए निर्यात के कारण, मूल्य बढ़ने लगा, कृषकों के पास धन आने लगा, जिससे उन्होंने अपनी ऋण-राशि का अवधि के पूर्व ही भुगतान कर दिया। जिसकी वजह से दीर्घकालीन ऋणों की प्राप्ति के लिये कृषकों को इनकी उपयुक्तता अब उतनी नहीं रही है परन्तु फिर भी ये स्थायी भूमि पर सुधार के लिये ऋण देकर भूमि की उत्पादन-क्षमता बढ़ाकर वर्तमान खाद्य-संकट का

[1] *Review of the Cooperative Movement in India 1946—1948*

[2] *Review of the Cooperative Movement in India 1939—1946*

निवारण करने में अधिक सहायक हो सकते हैं अतः इनको अब इस दिशा में प्रचार एवं प्रयत्न भी करना चाहिये। भू-प्राधि अधिकोषों की १९४६-४७ तथा १९४७-४८ की सामने दी हुई परिस्थिति दर्शक सारणी से इनकी वर्तमान स्थिति की पूर्ण कल्पना हो सकती है।

कार्यशील तथा अन्य पूँजी : इन अधिकोषों की कार्यशील पूँजी अंश बेचकर, निक्षेप की स्वीकृति से, ऋणपत्र तथा बंध बेचकर प्राप्त की जाती है। परन्तु विशेषतः अधिकांश भाग ऋण-पत्रों के विक्रय से प्राप्त होता है। इनके ऋण-पत्रों की मूल राशि तथा ब्याज के भुगतान की प्रत्याभूति सरकार देती है। एवं ये ऋण पत्र प्रन्यास-प्रतिभूतियों की श्रेणी के होते हैं। Trustee securities.

कार्य : ये दीर्घकालीन अवधि के लिये—सामान्यतः २० वर्ष के लिये—पुराने ऋणों के भुगतान के लिए ऋण देते हैं। भारतीय अधिकोषों ने यह कार्य अभी हाल ही में शुरू किया है। ऋण केवल सदस्यों को उनकी भूमि की प्राधि पर दिये जाते हैं तथा प्रत्येक सदस्य को दिये जाने वाले ऋण की अधिकतम राशि सामान्यतः १०,००० रु० अथवा प्राधित सम्पत्ति के मूल्य के ५०% प्रतिशत तक दिये जाते हैं। सब से पहिले ऋण प्रापक (Intending borrower) प्राथमिक भू-प्राधि अधिकोष को आवेदन देता है जो प्राधि के लिये जो सम्पत्ति है उस सम्पत्ति का मूल्य-निर्धारण, स्वत्व आदि की जाँच करता है तथा उसके बाद ऋण दिये जाते हैं। इस प्रकार की प्राधीत सम्पत्ति केन्द्रीय भू-प्राधि अधिकोषों को हस्तांतरित होती है, जिसकी प्रतिभूति पर वे आवश्यकता पड़ने पर नये ऋण-पत्र निर्गमित करते हैं। ऋणों पर ब्याज की दर ६ प्रतिशत से ९½ प्रतिशत ली जाती है। तथा निक्षेपों पर २½ प्रतिशत से ६ प्रतिशत तक ब्याज देते हैं। इन दरों की सारणी नीचे दी हुई है—

सारणी—ब्याजदर[1]

प्रान्त	प्राप्त ऋणों पर ब्याज की दर	दिये हुये ऋणों पर ब्याज की दर
मद्रास	५%	६%
बम्बई	५ ,,	६½ ,,
बंगाल	५ ,,	८¾ ,,
उड़ीसा	३½ ,,	७ ,,
उत्तर प्रदेश	५ ,,	७½ ,,
पंजाब	४½ ,,	७ ,,
मध्य-प्रदेश तथा बरार	५ ,,	७ ,,
आसाम	६ ,,	६¾ ,,
अजमेर-मेरवाड़ा	५½ ,,	८ ,,
मैसूर	६ ,,	७ ,,
बड़ौदा	२½ ,,	६ ,,
कोचीन	४ ,,	६ ,,

इनको होनेवाला लाभ लाभांश के रूप में सदस्यों को वितरित किया जाता है, परंतु लाभांश ५% से अधिक नहीं दिया जाता, तथा लाभांश दत्त पूंजी पर ही दिया जाता है।

इस प्रकार भू-प्राधि-अधिकोषों की सफलता प्राधित सम्पत्ति के सही २ मूल्यांकन पर तथा प्रभागों के नियमित भुगतान पर निर्भर रहती है। इन अधिकोषों ने ग्रामीण ऋणग्रस्तता के निवारण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

विकास-क्षेत्र : भारत में आज भी इनके विकास के लिये पर्याप्त क्षेत्र है क्योंकि यह एक कृषि-प्रधान देश है जिसमें कृषकों को अपनी भूमि के सुधार के लिए सदैव ही दीर्घकालीन ऋणों की आवश्यकता रहेगी। इनके विकास एवं प्रगति के लिए प्रांतीय तथा केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समितियों ने निम्न सिफारिशें की हैं।

भू-प्राधि अधिकोषों की स्थापना केवल सहकारी तत्त्वों पर ही होनी चाहिये तथा इनका कार्य-क्षेत्र इतना विस्तृत न हो जिससे इनका सम्बन्ध ही अधमर्णों से न रहे। अधिकोषों को अपनी आर्थिक सुदृढ़ता के लिये संचिति-

---

[1] *Statistical Tables Relating To Co-operative Movement in India 1941-42, 42-43*—(R. B. I.)

प्रणीवि का निर्माण करना चाहिये तथा लाभांश का वितरण तब तक न हो जब तक कि उनकी संचिति-प्रणीवि पर्याप्त न हो जाय। कार्यवाहक पूंजी अंशों द्वारा तथा ऋण-पत्रों द्वारा, विशेषतः ऋण-पत्रों के निर्गमन से ही प्राप्त करनी चाहिये जिनकी प्रत्याभूति सरकार दे। प्रांतीय सरकार को भी ऋण देकर उनकी सहायता करनी चाहिये। परन्तु ऋण-पत्रों की प्रत्याभूति के सम्बन्ध में लिखते हुए रिज़र्व बैंक ने अपनी समीक्षा में लिखा है कि "सरकारी प्रत्याभूति की प्रारंभिक अवस्था में आवश्यकता अवश्य हुई होगी, परन्तु वर्तमान स्थिति में इसकी अवधि अधिक नहीं बढ़ानी चाहिये और न अपरिमित राशि ही। एक स्थिति ऐसी आ जानी चाहिये जब भू-प्राधि अधिकोष अपने ही पैरों पर खड़े रहें तथा अपनी साख पर ही ऋण-पत्रों का निर्गमन करें क्योंकि ये संस्थाएँ कृषकों को दीर्घकालीन ऋण देने के लिये स्थायी संस्थाएँ हैं—अस्थायी नहीं।[1] भू-प्राधि-अधिकोषों को निक्षेप रखने की आज्ञा नहीं होनी चाहिये और यदि दी जाती है तो निक्षेपों का अवधि-काल अधिक होना चाहिये। ऋणों की व्याज-दर तथा अवधि अधमर्ण की आर्थिक स्थिति पर निर्भर रहनी चाहिये क्योंकि भारत में २० वर्ष की अधिकतम अवधि अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है। जैसे फिनलैंड में ३० वर्ष, चिली में ३३ वर्ष, न्यूझीलैंड में ३६½ वर्ष, आस्ट्रेलिया में ४२ वर्ष, इटली तथा जापान में ५० वर्ष, ५७ वर्ष स्विट्ज़रलैंड में, डेन्मार्क में ६०, हंगेरी में ६३ वर्ष, ६८½ वर्ष आयरलैंड में तथा फ्रांस में ७५ वर्ष है। ऋण केवल आर्थिक हित के कार्यों के लिये ही दिये जायँ तथा उनका समुचित उपयोग न हो रहा हो तो उन्हें तत्काल ही वापिस ले लिया जाना चाहिये। इसके साथ ही भू-प्राधि अधिकोषों को यह अधिकार दिया जाना चाहिये कि वे बिना न्यायालय की सहायता के प्राधित भूमि को बेचकर अपनी ऋण-राशि प्राप्त कर सकें अथवा बेच सकें, इसलिये सम्बन्धित विधानों में आवश्यक संशोधन कर देना चाहिये।

इन सुधारों के साथ भू-प्राधि अधिकोष अधिक सफलता से कार्य कर सकते हैं जिसकी वर्तमान समय में तथा भविष्य में भी तीव्र आवश्यकता रहेगी। अब उनको भूमि-सुधार के लिये अधिकाधिक मात्रा में ऋण देना चाहिये जिससे वे अधिक सफलता से अपनी अतिरिक्त पूँजी का उपयोग कर सकते हैं। दूसरे विभिन्न प्रान्तों में अनेक ऋण-ग्रस्तता सम्बन्धी जो विधान स्वीकृत हो चुके हैं उनसे महाजनों द्वारा दी जाने वाली साख भी कम हो गई

[1] *Review of Cooperative Movement in India(1946-48)* R. B. I.

है तथा कृषक इन अधिकोषों पर अधिक निर्भर रहने लगे हैं जो मद्रास [1] की स्थिति से स्पष्ट हो जाता है जहाँ प्रतिवर्ष ऋण की माँग बढ़ती जा रही है और ये सब भूमि-सुधार कार्य के लिये ही दीर्घकालीन अवधि के हैं:—

वर्ष (Year)	वर्षारम्भ के आवेदन पत्र (Application at the beginning of the year)	राशि (Amount)	लाखरुपयों में इस वर्ष में प्राप्त आवेदन पत्र (Applications Received)	
				राशि
१६४७-४८	२३८१	५०	५१३२	११६
१६४८-४६	२६८०	७२	६१२५	१५२
१६४८-४६ (वर्षान्त में)	४००५	१०२	—	—

ये ऋणों की बढ़ती माँग के कारण केवल दो ही प्रतीत होते हैं। पहिले तो बढ़ता हुआ जीवन मूल्य (Cost of living) तथा कृषियन्त्रों, खाद, बैलों आदि की बढ़ी हुई कीमतें तथा दूसरे महाजनों से साख-प्राप्ति का स्रोत बन्द हो जाना, जिससे उनकी निर्भरता इन अधिकोषों पर अधिक हो गई है।

यदि "भारत के विकास की योजनाएँ ध्यान पूर्वक बनाई गईं तथा विभिन्न सरकारी विभागों का सहयोग प्राप्त किया गया तो भू-प्राधि अधिकोष देश के कृषकों को भूमि का उत्पादन बढ़ाने में तथा देश को खाद्यान्न में स्वयं पूर्ण बनाने में महत्त्वपूर्ण तथा समुचित कार्य करेंगे" अतः मद्रास के अर्थ सचिव श्री गोपाल रेड्डी ने जैसा २० वीं भू-प्राधि अधिकोष वार्षिक परिषद् में कहा है "उनको भूमि सुधार पर उत्पाद के विनियोग के लिये ऋण देने पर अधिक केन्द्रीय-करण करना चाहिये" तथा इसमें वे अपने अस्तित्व को महत्त्वपूर्ण बना सकते हैं। स्पष्ट है कि भू-प्राधि अधिकोषों को आज भी अपरिमित विकास-क्षेत्र है।

सरकार एवं सहकारी अधिकोष : विभिन्न प्रांतीय सरकारें भी सहकारी आंदोलन को यशस्वी बनाने में दो प्रकार से सहायता करती हैं। एक तो वैधानिक सहायता, जिसके अन्तर्गत इनके समुचित विकास के लिए भिन्न-भिन्न विधान बनाये गए हैं तथा दूसरे आर्थिक सहायता देकर तथा अपनी राशि इन अधिकोषों एवं समितियों को ऋण देकर तथा उनके पास निक्षेप में रख कर। विभिन्न प्रांतों द्वारा दी गई सहायता तथा ऋण एवं निक्षेप जो सहकारी अधिकोषों के पास रहे उनके आँकड़े निम्न सारणी में दिये गए हैं :—

[1] 'Commerce'—*Page 366 of 4-3-50.*

प्रांतों में सरकार के रखे हुए निक्षेप तथा ऋण*

वर्ष	कुल कार्य शील पूंजी लाख रुपये	सरकारी ऋण लाख रुपये	ऋणों से कार्यशील पूँजी का प्रतिशत
१६४५-४६	१४४३३·४२	७४·०२	०·५१
१६४६-४७	१३३५१·२०	२३४·१२	१·७५
१६४७-४८	१४६८६·१३	२३६·८०	१·६१

सरकार द्वारा दी गई सहायता*

		१६४६-४७	१६४७-४८
उत्तर प्रदेश	...	३६८,४१६	८८४,३६२
बम्बई	...	२३७,२६४	२०४,३६२
पश्चिमी बंगाल	...	२००,०००	—
पूर्वी पंजाब	...	१५१,०६३	८३,६७१
मध्य प्रदेश व बरार	...	७६,१५३	७६,७६४
बिहार	...	७३,७६०	१६८,४६८
मद्रास	...	७३,५००	१४१,८००
उड़ीसा	...	१७,७४३	२६,५३३

रिज़र्व बैंक तथा सहकारी अधिकोष : रिज़र्व बैंक-विधान के अनुसार कृषि-साख की सुविधाएँ देने के लिये रिज़र्व बैंक में कृषि-साख-विभाग है, जो सहकारी अधिकोषों को उनकी ऋणनीति, आर्थिक संगठन आदि सम्बन्धी सलाह देता रहता है तथा उनको अन्य आर्थिक सुविधाएँ भी प्रदान करता है। यह विभाग सहिकारिता आंदोलन सम्बन्धी पुस्तकाएँ तथा समीक्षाएँ भी प्रकाशित करता है तथा सहकारिता आंदोलन सम्बन्धी सांख्यिकी भी। इस प्रकार की सहकारिता आंदोलन की २२ पुस्तिकाएँ अधिकोष ने अभी तक प्रकाशित की हैं।

इसके अतिरिक्त रिज़र्व बैंक, प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों के माध्यम से सहकारी समितियों को रिज़र्व बैंक विधान की धारा १७ (२) (ब) तथा १७ (४) (क) के अंतर्गत आर्थिक सहायता भी देता है, जिसका उल्लेख

*Cooperative Review 1946-48 (R. B. I.)

हम कर चुके हैं ।[१] रिज़र्व बैंक इनको राशि स्थानांतरण की सुविधाएँ तथा प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों द्वारा पृष्ठांकित विपत्रों को बेचने की तथा अपहरण करने की सुविधाएँ भी देता है । परन्तु ये विपत्र केवल मौसमी कृषि कार्यों के लिए तथा फसल का उत्पादन बेचने के लिये जो ६ माह की अवधि के हों उन्हीं तक सीमित हैं । प्रांतीय सहकारी तथा भू-प्राधि अधिकोषों को भी मान्य प्रतिभूतियाँ ऋण-पत्रों के आधार पर ३ माह के लिए ऋण देता है । अब रिज़र्व बैंक ने विधान की धारा १७ (४) (अ) के अंतर्गत केन्द्रीय भू-प्राधि अधिकोष, मद्रास के ऋण-पत्रों की प्रतिभूति पर ऋण देने की मान्यता भी दे दी है तथा इस अधिकोष के नये ऋण-पत्रों का कुछ भाग खरीदने की सम्मति भी दे दी है, जो रिज़र्व बैंक के इस कार्य के सहयोग की द्योतक है ।[२] तथा इस मान्यता से सहकारी अधिकोषों के ऋण प्रापक-साधनों में वृद्धि हो जाती है । इतनी सुविधाएँ प्राप्त होते हुए इनको अब व्यापारिक अधिकोषों पर सहायता के लिये निर्भर रहने की भी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि रिज़र्व बैंक से प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सहकारी भू-प्राधि अधिकोष तथा प्रांतीय सहकारी अधिकोषों द्वारा केन्द्रीय सहकारी अधिकोषों को तथा साख-समितियों को सहायता मिलती रहती हैं । हाँ, रिज़र्व बैंक सहकारी समितियों को तथा अधिकोषों को प्रत्यक्ष ऋण नहीं देता । इस सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि इनको रोक ऋण सुविधाएँ रिज़र्व बैंक से मिलनी चाहियें । परन्तु सहकारी अधिकोषों को अपना परावलंबित्व अब कम करना चाहिये जिससे वे अपने साधनों पर ही निर्भर रह सकें ।

इनका संगठन भी अब अच्छा हो गया है तथा ग्रामीण अधिकोषण जाँच-समिति ने सहकारी अधिकोषों की विकास-योजना भी भारत सरकार को प्रस्तुत की है, जिसके अनुसार उनको ग्रामीण क्षेत्र में अधिक विकास करना होगा । ये योजनाएँ अभी रिज़र्व बैंक के विचाराधीन हैं तथा वह इन योजनाओं को सरकार द्वारा कार्यान्वित कराने का प्रयत्न करेगा तथा जिस प्रकार केन्द्रीय भू-प्राधि अधिकोष मद्रास को ऋण-पत्रों सम्बन्धी सुविधाएँ अभी दी गई हैं उसी प्रकार अन्य सहकारी समितियों को भी कुछ अधिक सुविधाएँ प्रदान करेगा । साथ ही सहकारी अधिकोषों को भी चाहिये कि वे रिज़र्व बैंक को अधिकाधिक सहयोग दें तथा उसकी सुविधाओं से अधिकाधिक लाभ उठाकर उसे विपत्र-विपणि का विकास एवं मुद्रा-विपणि का संगठन करने में सफल बनावें ।

---

[१] *Review of The Cooperative Movement in India 1940-48* (R. B. I.)

[२] अध्याय १६ — रिज़र्व बैंक ऑफ इन्डिया "कृषि-साख विभाग" देखिये ।

प्रश्न संग्रह

१. कृषि-साख की कौनसी विशेषता है ? संयुक्त स्कंध अधिकोष कृषि-साख का पर्याप्त नियोजन करने में क्यों असमर्थ हैं ? रिज़र्व बैंक की उपस्थिति से कुछ विशेष अन्तर पड़ने की सम्भावना है क्या ?
(आगरा बी. कॉम. १६४१)

२. सहकारिता आंदोलन से कृषि साख सुविधाएं कहाँ तक पूरी की गई ? क्या आप सहकारी अधिकोषों को महाजन तथा व्यापारिक अधिकोषों से अधिक उपयुक्त समझते हैं ? क्यों ?

३. कृषकों की किस प्रकार की आर्थिक आवश्यकताएँ होती हैं ? उनको उसकी पूर्ति के कौनसे साधन उपलब्ध हैं ? क्या वे पर्याप्त हैं ?

४. कृषकों को दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकता क्यों होती है ? इस संबंध में भू-प्राधि अधिकोषों के कार्य एवं विकास बताइये (आगरा १६३६)

५. भारतीय कृषि-क्षेत्र में सहकारिता की व्याप्ति (Scope) का परीक्षण कीजिये। (आगरा १६४०; प्रयाग १६३६)

६. प्राथमिक समितियों को आर्थिक सहायता देने का भारत में क्या प्रबन्ध है ?

७. भारतीय सहकारिता संगठन में केन्द्रीय एवं प्रांतीय सहकारी अधिकोषों का क्या स्थान है ?

८. "भारत में सहकारिता आंदोलन सरकारी नीति का फल है न कि जनता की इच्छा का" समीक्षा कीजिये।

९. १६०४ से सहकारी साख आंदोलन की क्रियाएँ तथा विकास बताइये ? यह भी बताइये कि रिज़र्व बैंक इनकी किस प्रकार सहायता करता है तथा कर सकता है ? (बी. कॉम. १६४७)

१०. सहकारी साख आंदोलन कृषि-साख की पूर्ति करने में कहाँ तक सफल हुआ ? उसकी त्रुटियों के निवारणार्थ तथा उनको अधिक उपयोगी बनाने के लिये अपने प्रस्ताव रखिये।

अध्याय २०

सम-अधिकोषण संस्थाएँ

(Quasi-Banking Institutions)

भारत में विभिन्न प्रकार के जो आधुनिक ढङ्ग के अधिकोष हैं उनका अध्ययन हमने पिछले अध्यायों में किया। इनके अतिरिक्त देश में कतिपय ऐसी संस्थाएँ भी हैं जिनको हम वास्तव में अधिकोष नहीं कह सकते क्योंकि ये अधिकोषण सम्बन्धी जो आवश्यक कार्य हैं वे नहीं करते। कुछ तो ऐसे हैं जो केवल जनता से निक्षेप स्वीकारते हैं तथा कुछ ऐसे भी है जो केवल ऋण देने का कार्य करते हैं तथा इसके साथ निक्षेप भी स्वीकारते हैं परन्तु इनके निक्षेप माँग पर देय नहीं होते और न ये व्यापारिक कार्यों के लिए अल्पकालीन ऋण ही देते हैं। इसलिये इनको सम-अधिकोषण संस्थाएँ कहा जाता है। ये संस्थाएँ जनता से स्थायी निक्षेप अथवा बचत-निक्षेप स्वीकृत करती हैं तथा उनमें बचत की आदत पैदा करते हैं। कृषि कार्यों के लिए, पुराने ऋणों के भुगतान के लिए ऋण भी देते हैं। ऐसी संस्थाएँ जो भारत में कार्य कर रही हैं निम्नलिखित हैं, जिनका हम विस्तृत विवेचन करेंगे:—

(i) प्रेपालय संचय अधिकोष (Post Office Savings Banks)
(ii) निधि (Nidhis or Chit-Funds [of Madras])
(iii) ऋण कार्यालय (Loan Offices [of Bengal])।

प्रेपालय संचय अधिकोष : प्रेपालय-संचय-अधिकोष जनता से निक्षेप स्वीकारते हैं, उनको राशि स्थानांतरण की सुविधाएँ देते हैं तथा विनियोग साधनों की भी पूर्ति करते हैं। इस प्रकार के अधिकोषों का प्रारम्भ १८२३-२४ के लगभग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में सरकारी-संचय अधिकोषों के रूप में प्रेसीडेन्सी क्षेत्र में हुआ तथा इसकी उपयोगिता को देखते हुए १८७० में इसका विस्तार कुछ जिलों में किया गया जहाँ सरकारी कोष (Treasuries)

थे। इस प्रकार के अधिकोषों की स्थापना भारत में १८८१[1] में देश के सर्व भागों में की गई एवं इसी समय इन अधिकोषों ने पूर्वस्थापित कोष एवं सरकारी अधिकोषों को क्रमशः १८८६ में तथा १८९६ में आत्मसात किया। इस प्रकार के अधिकोष प्रेपालयों के विविध विभागों में से एक विभाग हैं। इनकी संख्या क्रमशः बढ़ती ही जा रही है तथा आजकल ये देश के विशेषतः सभी भागों में पाये जाते हैं जहाँ प्रेपालय हैं अथवा उनकी शाखाएँ हैं।

कार्य : ये अधिकोष चार कार्यों को करते हैं :—

१. जनता से निक्षेपों की स्वीकृति। ये निक्षेप सप्ताह में केवल एक बार ही कतिपय निर्बन्धों के साथ निकाले जा सकते हैं। इन अधिकोषों में केवल स्थायी तथा संचय निक्षेप ही लिये जाते हैं, चालू लेखे की सुविधाएँ नहीं दी जातीं। इन निक्षेपों के बदले में अधिकोष द्वारा ग्राहक-पुस्तिका दी जाती है जिसमें समय-समय पर दी हुई राशि एवं निकाली हुई राशि का लेखा रहता है। इस प्रकार की जमा की हुई राशि पर व्याज सर्व प्रथम ३% वार्षिक था जो क्रमशः कम होते होते अब केवल २% संचय-निक्षेपों पर दिया जाता है। इस लेखे में न्यूनतम मर्यादा २ रु० है। यदि किसी भी लेखे का मासिक माध्यम २०० रु० से अधिक है तो उस पर व्याज २% की दर से दिया जाता है।

२. ये सामान्य जनता को विनियोग के लिए भी सुविधाएँ देते हैं, जिनमें निम्न पत्रों का समावेश होता है :—

(i) प्रेपालय रोक प्रमाणपत्र[2] (P. O. Cash Certificates) विक्रय से,

(ii) सरकारी प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय जो प्रत्येक व्यक्ति के लिये ५०००) से अधिक के नहीं खरीदेगा।

(iii) सरकारी एवं विश्वविद्यालय के कर्मचारियों को जीवन-बीमे की सुविधाएँ देकर—

उपर्युक्त सब सेवाएँ जनता को निशुल्क की जाती हैं जिससे उनमें विनियोग करने की प्रवृत्ति का निर्माण होता है।

३. राशि-स्थानांतरण की सुविधाएँ देकर—परन्तु वास्तव में देखा जाय तो ये सुविधाएँ संचय-अधिकोष न देते हुए प्रेपालयों द्वारा दी जाती हैं

[1] *Hindustan Year-Book—S. C. Sarker.*

[2] आजकल उनकी जगह "राष्ट्रीय संचय प्रमाणपत्र" (*National Savings Certificates*) हैं।

अतः हम इन सेवाओं का समावेश प्रेपालय-संचय-अधिकोषों के कार्यों के अंतर्गत नहीं कर सकते।

इस प्रकार ये अपनी विभिन्न क्रियाओं द्वारा जनता में बचत की एवं विनियोग की प्रवृत्ति निर्माण करते हैं तथा ये अधिकोष सरकारी कर्मचारियों में अधिक लोक-प्रिय हैं। इसी प्रकार ग्रामीण जनता में बचत की आदत निर्माण करने के लिये भी ये अधिकोष अधिक उपयोगी हैं क्योंकि वहाँ की जनता को अधिकोषण सुविधाएँ उपलब्ध न होने से जो कुछ भी बचत होती है वह भूमिगत हो जाती है।

सुझाव : इनको अधिक उपयोगी बनाने के लिये भिन्न-भिन्न प्रांतीय तथा केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समितियों ने निम्न प्रस्ताव किए हैं :—

१. इनकी संख्या सरकार को बढ़ानी चाहिये; जिसमें गाँव के शिक्षकों से सहायता लेनी चाहिये। अभी हाल ही इन अधिकोषों की संख्या एक वर्ष में लगभग ५००० से बढ़ाने सम्बन्धी यातायात सचिव (केन्द्रीय) ने आश्वासन दिया था जिसके अनुसार कुछ स्थानों में प्रेपालय अधिकोषों की स्थापना भी हो गई है। इन अधिकोषों की वर्तमान संख्या लगभग १२,७०० है।

२. बचत की आदत बढ़ाने के लिये ब्याज की दर बढ़ानी चाहिये जिससे जनता आकृष्ट हो, क्योंकि वर्तमान दर बहुत ही कम है।

३. प्रेपालय-अधिकोष जनता को धनादेशों के संग्रहण की एवं धनादेशों द्वारा राशि निकालने की सुविधाएँ दें एवं राशि आहरण सम्बन्धी जो वर्तमान प्रतिबंध हैं उनको कुछ कम करे।

४. ये अधिकोष एक अधिकोष से दूसरे स्थानीय अधिकोष में लेखा-स्थानांतरण की एवं रुपया भिजवाने निशुल्क सुविधाएं भी दें तथा लेने देन का हिसाब प्रांतीय भाषाओं में रखें जिससे जनता को समझने में सुविधा हो।

५. संयुक्त-नाम पर लेखे खोलने की सुविधाएं भी इनको देनी चाहिये तथा लेखों की निक्षिप्त-राशि सम्बन्धी जो वर्तमान निर्बन्ध हैं उनमें भी ढिलाई आनी आवश्यक है।

प्रेपालय अधिकोषों सम्बन्धी आवश्यक विवरण[१]

वर्ष	प्रेपालय अधिकोष संख्या	निक्षेपकों की संख्या	अदत्त निक्षिप्त राशि	प्रेपालय रोक प्रमाण पत्र (अदत्त)
१९३५-३६	१२,९२६	३५,४१,५५३	६७,२५,१७२५२	६५९८ लाख
१९३६-३७	१२,६३१	३९२२,१४५	७१,६७,६७,०८३	६४,४० ,,
१९३७-३८	१२,६३१	३७,८६,४९५	७७,४९,१४,१७७	६०,२१ ,,
१९३८-३९	१२,१०९	४२,४०,७९१	८१,८६,०२,७५२	५९,५७ ,,
१९३९-४०	११,८७०	४५,८८,७५२	७८,३१,५६,८५	५७,०२ ,,
१९४०-४१		२८,४४,३२१	५९,५०,८१,०००	४६,९८ ,,
१९४१-४२		२७,५५,९६८	५२,०७,३६,०००	३९,०१ ,,
१९४२-४३				३४,५७ ,,
१९४९-५०			४४,११ लाख	११,३२ ,,

ग्रामीण अधिकोषण जाँच-समिति ने प्रेपालय अधिकोषों का प्रसार ग्रामीण जनता में बचत की रुचि निर्माण करने के लिये आवश्यक बताया है।

प्रेपालय रोक प्रमाणपत्र : प्रथम महायुद्ध काल में इनका चलन आरंभ हुआ। ये ५ वर्षों के लिए होते हैं जिस अवधि के बाद इनका भुगतान किया जाता है। ये १० रु० के मूल्य से लेकर १०० रु० तक के होते हैं किन्तु एक व्यक्ति १०,००० रु० के मूल्य से अधिक उन्हें नहीं खरीद सकता। इन पर प्रारंभ में ६% व्याज दिया जाता था जिसे १९३६ से २½% चक्र वृद्धि कर दिया गया है। इनका व्याज अवधि की समाप्ति के बाद ही मिलता है तथा इनका संधारक इनको किसी भी समय अपहृत करा सकता है जिस दशा में उसे प्रथम वर्ष का व्याज नहीं मिलता। केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति ने इनको अधिक आकर्षक बनाने के लिए यह सुझाव रखा था कि उन्हें खरीददार मृत्यु के बाद किसी अन्य व्यक्ति को इसकी सम्पत्ति का अधिकार दे सके।

ये प्रमाण पत्र विनियोग का सुलभ एवं सुरक्षित साधन होने से जनता द्वारा अधिक खरीदे जाते हैं।

राष्ट्रीय संचय प्रमाणपत्र : द्वितीय युद्ध काल में संचालित (१९४०) १० वर्ष अवधि के सुरक्षा संचय प्रमाणपत्रों (Defence Savings Certificates) की जगह इनका संचालन अक्तूबर १९४४ से हुआ। इन पर व्याज की दर ३½% प्रतिशत तथा अवधि १२ वर्ष की है, जिसके बाद इनका भुगतान होता है। ये तीन वर्ष तक अपहृत नहीं किये जा सकते परन्तु इसके बाद इनको कोई भी व्यक्ति प्रेपालय से रोकड़ में परिवर्तन करा सकता है। इन प्रमाण पत्रों का मूल्य भी १० रु० तथा इससे ऊपर होता है

[१] *Hindustan Year Book by N. C. Sarkar*

तथा इनकी राशि १२ वर्ष में डेढ़गुनी हो जाती है अर्थात् १२ वर्ष का सूद ५०% होता है। कोई भी व्यक्ति १०००० रु० से अधिक के प्रमाण-पत्र नहीं खरीद सकता।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं ये विनियोग के सुरक्षित एवं सुलभ साधन होने की वजह से कम आय वाले एवं सरकारी कर्मचारी इनमें अधिकतर विनियोग करते हैं। सुरक्षा संचय-प्रमाण-पत्र तथा राष्ट्रीय संचय-प्रमाण पत्रों का अदत्त (Outstanding) मूल्य १९४४ से १९४६ तीन वर्षों का मार्च ३१ को निम्न था [1]:—

वर्ष	सुरक्षा संचय प्रमाण पत्र	राष्ट्रीय संचय प्रमाण पत्र
३१मार्च १९४४	६९७ लाख रु०	८६५ लाख रु०
,, १९४५	६४२ ,, ,,	२८१९ ,, ,,
,, १९४६	५९२ ,, ,,	५१३० ,, ,,
,, १९४७	५१८ ,, ,,	७०६२ ,, ,,
,, १९५०	१०२ ,, ,,	४०५० ,, ,,

केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति ने जीवन आगोप की सुविधाएँ सामान्य सर्वसाधारण जनता को देने के लिये भी सुझाव रखा था परन्तु अभी तक इस ओर कोई कार्यवाही नहीं की गई है।

निधि (Chit Funds):

निधि अथवा चिट फंड इस नामाभिधान से पहचानी जाने वाली अर्ध-अधिकोषण संस्थाएँ मद्रास प्रान्त में अधिक प्रचलित हैं। यह कुछ व्यक्तियों का संगठन होता है जो भारतीय प्रमंडल विधान के अन्तर्गत पंजीयित होता है। मद्रास अधिकोषण जाँच-समिति के वृत्त लेख से यह मालूम होता है कि इनमें अधिकांश संस्थाओं का संगठन एवं कार्य बहुत अच्छा होता है परन्तु कुछ का कार्य संतोषप्रद नहीं है। इनकी स्थापना का हेतु बचत की भावना को निर्माण करना तथा परस्पर ऋण सहायता देने का होता है। इस प्रकार की पंजीयित निधियों (Registe- red Nidhis) की वर्तमान संख्या २२८ है, जिनमें से ५ अधिकोष तथा शेष निधि के शीर्षक से पंजीयित हैं।[1]

---

[1] *Report on Currency & Finance of Reserve Bank of India 1949-50, Page 205*

An Outline of Banking System in India By M. V. Subbarao, Pp. 52

कार्य : ये विशेषतः बचत की रुचि का निर्माण करते हैं तथा निक्षेपों की अधिक परिमाण में स्वीकृति करते हैं, पुराने ऋणों के भुगतान के लिए ऋण देते हैं, जिससे इनके सदस्य महाजनों के चंगुल से मुक्त हो जायँ। ये अपने सदस्यों के अतिरिक्त बाहरी व्यक्तियों को भी ऋण देते हैं तथा इनके दिये हुए ऋण केवल उत्पादन-कार्यों के लिये ही न होते हुए किसी भी कार्य के लिये होते हैं। निधियों में कुछ निधि तो ऐसी भी हैं जिन्होंने अपनी अंश-पूँजी भी बना ली है, जो सदस्यों द्वारा प्रभाग (Instalment) में दी जाती है तथा आवश्यकता पड़ने पर इसे वे निकाल भी सकते हैं। ऋण-कार्यों के लिए ये एक अलग निधि बना लेते हैं एवं इनके द्वारा दिये जाने वाले ऋणों पर व्याज भी कम होता है। परन्तु यदि ऋणों का भुगतान निश्चित अवधि में न किया जाय तो अधिक व्याज भी लेते हैं। सदस्यों से ये साधारणतः ६¼% व्याज लेते हैं।

सुझाव : इनका समुचित रूप से नियंत्रण करने के लिये केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति ने यह सिफारिश की थी कि इनके नियंत्रण के लिये एक अलग ही विधान बनना आवश्यक है जिसके अनुसार इनका पंजीयन हो तथा वे अपने कार्य के अतिरिक्त अन्य क्रियाएँ न करें। इनके संस्थापकों को अनुज्ञा-पत्र प्राप्त करने होंगे जो केवल उन्हीं को दिये जाँय जिनमें इस कार्य की समुचित योग्यता हो। ये निधियाँ लेन देन के पूर्ण लेखे रखें तथा उनका अंकेक्षण भी करावें। इसी प्रकार जो निधि अधिकोषण-कार्य समुचित रूप से करती हो उसका पंजीयन प्रमंडल-विधान के अनुसार 'अधिकोष' में हो।

ऋण कार्यालय :

ये संस्थाएँ विशेष रूप से बंगाल प्रान्त में मिलती हैं। इनकी संख्या में प्रथम विश्व-युद्ध के बाद अधिक वृद्धि हुई है। इनका अस्तित्व संयुक्त स्कंध अधिकोषों के साथ ही १८६०-७० के लगभग हुआ तथा ये बंगालियों द्वारा ही स्थापित किये गये एवं उन्हीं के संचालन में हैं। इनका पंजीयन भी भारतीय प्रमंडल विधान के अन्तर्गत होता है। इस प्रकार का सबसे प्रथम कार्यालय १८६५ में स्थापित हुआ। इनकी वर्तमान संख्या १००० तथा कार्यशील पूँजी ९ करोड़ रुपये है।[१] ये विशेषतः अपनी कार्यशील पूँजी निक्षेपों द्वारा प्राप्त करते हैं तथा इनकी व्याज की दर ४ से ८ प्रतिशत होती है जो निक्षेपों की अवधि पर निर्भर रहती है।

कार्य : ये विशेषतः जमींदारों को अथवा उनके किसानों को भूमि की, अथवा आभूषणादि की प्राधि पर ऋण देते हैं और कभी कभी अधमर्ण की

[१] *Banking in India by Dr. Panandikar Pp. 119.*

वैयक्तिक प्रतिभूति पर भी। ये औद्योगिक अथवा व्यापारिक कार्यों के लिए ऋण नहीं देते परन्तु यह प्रवृत्ति आजकल इनमें आगई है तथा ये अपना रुपया वस्त्र प्रमंडलों में रखते हैं। अरक्षित ऋणों पर इनकी ब्याज की दर बहुत होती है जो १२ से १८% तक होती है। ऋण किस उद्देश से लिया जाता है इसकी उन्हें चिन्ता नहीं होती अर्थात् ये किसी भी कार्य के लिए ऋण देते हैं। इस प्रकार इनका मुख्य कार्य १ वर्ष से ७ वर्ष तक की अवधि के स्थायी निक्षेपों की स्वीकृति करना तथा ऋण देना है।

सुझाव : केन्द्रीय अधिकोष जाँच-समिति ने इनको अधिक उपयोगी बनाने के लिए एवं इनके नियमन के लिये निम्नलिखित सुझाव किये हैं :—

अ. जो ऋण कार्यालय संयुक्त स्कंध पद्धति पर कार्य करते हों उनको विशेष अधिकोषण विधान के अन्तर्गत नियंत्रित करना चाहिये तथा अन्य कार्यालयों के लिये 'बंगाल ऋण कार्यालय विधान' बनाना चाहिये जिसके अनुसार उनका नियमन एवं नियंत्रण हो।

ब. ऋण-कार्यालयों को समुचित लेखा-पुस्तकें रखनी चाहियें तथा उनके अंकेक्षण की भी व्यवस्था करनी चाहिये।

क. इनको समुचित संचिति-प्रणीवि (Reserve Fund) का नियोजन भी करना चाहिये तथा इन पर पूँजी सम्बन्धी भी नियंत्रण लगाना चाहिये जिसके अनुसार नये कार्यालयों की न्यूनतम परिदत्त पूँजी २५,००० होनी चाहिये। तथा १०% लाभ को संचिति-प्रणीवि में डालना चाहिये।

ड. ऋण-कार्यालयों को अपने अंशों की प्रतिभूति पर ऋण नहीं देना चाहिये।

ग. इनको आर्थिक सहायता देने के लिये ऋण कार्यालय-अर्थ-प्रवन्धक प्रमंडल ((Loans Offices Finance Corporation) की स्थापना होनी चाहिये जो ऋण कार्यालयों को ऋण देकर आर्थिक सहायता करे।

इन सिफारिशों में से अभी तक कोई भी कार्यान्वित नहीं की गई। परिणाम स्वरूप १९४६ के संकट में अनेक ऋण-कार्यालयों का विलीयन हुआ।

प्रश्न संग्रह

१. भारत में कौन-कौनसी सम-अधिकोषण-संस्थाएँ हैं ? उनको अधिक उपयोगी बनाने के लिये क्या करना चाहिये ?

२. टिप्पणियाँ लिखिये :—

(i) प्रेषालय रोक प्रमाणपत्र
(ii) सुरक्षा संचय प्रमाणपत्र
(iii) राष्ट्रीय संचय प्रमाणपत्र
(iv) चिट-फंड

अध्याय २१

कृषिज अर्थ-व्यवस्था तथा सरकार

अभी तक के अध्यायों में हमने केवल उन्हीं संस्थाओं का उल्लेख ग्रामीण साख-व्यवस्था में किया था जो किसी न किसी रूप में अधिकोषों के अन्तर्गत आती हैं। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि कृषि सम्बन्धी अर्थ-व्यवस्था की पूर्ति में सरकार की सहायता नहीं है। सरकार भी अनेक मार्गों से कृषि-साख की पूर्ति करती है। इतना ही नहीं अपितु भूमि-सुधार-विधान (Land Improvement Act) १८७१, १८७३ एवं कृषक ऋण विधान १८८४ इस बात को प्रमाणित करते हैं कि कृषि सुधार के लिये सरकारी आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। इन विधानों के अन्तर्गत प्रांतीय सरकारों को कृषि सम्बन्धी कार्यों के लिये जैसे बीज खरीदना, पशु खरीदना तथा अन्य कार्यों के लिये ऋण देने के लिये विधान बनाने का अधिकार प्राप्त है। भूमि सुधार विधान के अंतर्गत ऋण केवल उन्हीं कार्यों के लिये दिये जा सकते हैं जिनसे भूमि में स्थायी सुधार हो तथा ये ऋण दीर्घकालीन अवधि के लिये दिये जाते हैं।

इनकी अवधि विधान के अनुसार अधिक से अधिक ३५ वर्ष है परन्तु व्यवहार में २० वर्ष के लिये ही दिये जाते हैं। दूसरे विधान के अनुसार—कृषक ऋण विधान (Agriculturists Loans Act) के अनुसार—कृषकों को उनकी अल्पकालीन आवश्यकताओं के लिये, जैसे बीज खरीदना, खाद खरीदना, पशु धन का क्रय आदि कार्यों के लिये ऋण दिये जाते हैं जिनकी अवधि १ से २ वर्ष तक सामान्यतः होती है। इस प्रकार इन ऋणों द्वारा सरकार अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष पूर्ति कृषकों को आर्थिक सहायता देकर करती है। इन ऋणों को तकावी ऋण कहते हैं।

इस प्रकार के तकावी ऋण कुल भारत में ९५ करोड़ रु० प्रति वर्ष दिये जाते हैं[1] जो भारत की विशालता की दृष्टि से बहुत ही कम हैं। इसके अतिरिक्त

---

१. भूमि सुधार विधान के अन्तर्गत ३५ करोड़ रुपये वार्षिक माध्यम है तथा कृषक ऋण विधान के अन्तर्गत ६० करोड़ रुपये वार्षिक माध्यम है।

"Indian Rural Problem"—Nanavati & Anjaria.

तकावी ऋणों की वितरण-पद्धति में ऐसे अनेक दोष हैं जिनकी वजह से कृषक सरकारी ऋणों की अपेक्षा महाजनों के दरवाजे खटखटाना अधिक पसन्द करते हैं।

सरकारी ऋणों में त्रुटियाँ :

१. सरकार द्वारा जो तकावी ऋण दिये जाते हैं उन पर अधिक सूद लिया जाता है। इस सूद की दर सामान्यतः ६½% प्रतिशत वार्षिक है। सरकार को इतना अधिक ब्याज नहीं लेना चाहिये। जब हम यह देखते हैं कि सहकारी अधिकोष भी ६% प्रतिशत ब्याज लेते हैं तो इस दर में कमी करनी चाहिये, जिससे ये अधिक आकर्षक हो सकें।

२. इन ऋणों के प्राप्त करने में भी अधिक कठिनाइयाँ होती हैं क्योंकि आवेदन-पत्र पटवारी के माध्यम से भेजा जाता है; जो आवेदन पत्र आगे भेजने के लिए रिश्वत अथवा अन्य किसी रूप में किसान से कुछ न कुछ धन खींचता है; इसके साथ ही तहसील के कर्मचारियों को भी मनाने के लिए कुछ भेंट चढ़ानी ही पड़ती है; जिससे ऋण प्राप्त करने के पूर्व ही उसे व्यर्थ हानि उठानी पड़ती है। अतः यह आवश्यक है कि ऐसे सभी कर्मचारी जो इस कार्य में लगाए जायँ उनमें राष्ट्रीयता की भावना होनी चाहिये तथा सहृदयता भी, जिससे इन अवैधानिक एवं अमानवी कृत्यों का निराकरण हो।

३. ऋण आवेदन-पत्र देने के बाद कई महीनों मिलता है, जिससे किसान को आवश्यकता के समय ऋण नहीं मिलता तथा उसकी आवश्यकतानुसार पर्याप्त राशि में ऋण नहीं दिया जाता—जो अखिल भारत में दिये जाने वाले ऋणों की कुल राशि से ही सूर्यवत् स्पष्ट है।

४. ऋणों को निश्चित तिथि पर भुगतान करना अनिवार्य होता है, अन्यथा सरकारी कर्मचारी कठोरता से ऋण वसूल करते हैं जिसका भुगतान करने के लिए उसे महाजन का आश्रय लेना ही पड़ता है। इस सम्बन्ध में उसकी फसल अथवा आर्थिक पात्रता की ओर किंचित भी ध्यान नहीं दिया जाता।

५. इसके साथ (जमानत) प्रतिभूति सम्बन्धी निर्बन्धों का भी पालन करना पड़ता है एवं प्रतिभूति देने के लिए निर्धन कृषक के पास समुचित साधन उपलब्ध नहीं होते।

६. इसके अतिरिक्त कृषक अशिक्षित होने के कारण उसे ऋण प्राप्त करने के विषय में न तो कुछ ज्ञान ही होता है और न उसे यह ज्ञान दिलाया ही जाता है।

उपर्युक्त दोषों पर भू-सिंचन-समिति (Irrigation Commission), पंजाब भू-आगम-समिति (Punjab Land Revenue Committee) तथा केंद्रीय अधिकोषण जाँच-समिति आदि ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। इन ऋणों का वितरण तभी कृषकों को आकर्षक हो सकता है जब वितरण क्रियाएँ शीघ्रगामी हों, जिससे कृषक को आवश्यकता के समय बिना विशेष विलंब के ऋण-राशि प्राप्त हो सके। इसी हेतु दुर्भिक्ष समिति (Famine Commission) ने १९ वीं शताब्दि में ही ऐसा प्रस्ताव किया था कि इनका वितरण कृषि-विभाग द्वारा किया जाय, न कि आगम विभाग (Revenue Department) द्वारा। इसलिये १९३१ में केंद्रीय अधि-कोषण समिति ने यह सुझाव किया था कि दुर्भिक्ष कालीन सहायता भी कृषकों को दी जानी चाहिये तथा ऋणों का वितरण यथासंभव शीघ्रता से हो, इसलिए यह कार्य सहकारी समितियों के द्वारा किया जाय परन्तु उसका भुगतान प्राप्त करने के लिए वे उत्तरदायी न रहें।

इस क्रिया में सुधार करने के लिए तथा ऋणों का आवश्यकतानुसार एवं यथा समय वितरण करने में कुछ प्रान्तों ने विशेष कार्य किया है जिसमें मद्रास तथा बम्बई प्रान्त विशेष उल्लेखनीय हैं।

कृषि साख प्रमंडल : इस सम्बन्ध में गाडगील समिति ने कृषि अर्थ उपसमिति (Agricultural Finance Sub-committee under The Agricultural Credit Organisation Committee 1947) ने सुझाव किया था। इन ऋणों का वितरण सहकारी समितियों के माध्यम से हो सकता है परन्तु इसकी संभावना न होने पर एक कृषि साख-प्रमंडल की स्थापना का सुझाव भी रखा था। इसी प्रकार मध्य प्रदेश में "तकावी नीति समिति" भी यही विचार कर रही है कि कृषकों को तकावी ऋणों की आर्थिक सहायता देने के लिए एक कृषि साख-प्रमंडल की स्थापना की जाय अथवा सहकारी अधिकोषों के माध्यम से ऋण का वितरण किया जाय। सहकारी नियोजन समिति[1] ने भी इस प्रश्न पर विचार किया तथा इस निर्णय पर पहुंची कि सहकारी अधिकोष तथा समितियाँ ग्रामीण जनता के सम्पर्क में होती हैं इस वजह से उनके द्वारा ही यह वितरण करना अधिक सुलभ एवं सुगम्य होगा अतः वर्तमान स्थिति में अलग से कृषि-अर्थ प्रमंडल की स्थापना की आवश्यकता नहीं है।

---

[1] *Cooperative Planning Committee appointed by The Government of India.*

प्रस्तावित-कृषि-अर्थ-प्रमंडल : कृषि-साख सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भारत सरकार ने कृषि अर्थ-प्रमंडल की अखिल भारतीय ढंग पर स्थापना करने का प्रस्ताव किया है।

"यह प्रमंडल एक प्रकार से भारत-संघ के सब प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों की शीर्ष-संस्था का कार्य करेगा। इसके अतिरिक्त यह बड़े-बड़े कृषकों को बड़ी राशि प्रत्यक्ष ऋण देने का कार्य भी करेगा। इस प्रकार यह प्रस्तावित कृषि-अर्थ-प्रमंडल कृषि व्यवसाय को अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करेगा।"

इस प्रकार की संस्थाएँ पाश्चात्य देशों में जैसे इङ्गलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आदि में हैं परन्तु इनके कार्यों में भिन्नता है। इङ्गलैंड में दीर्घकालीन, मध्यकालीन तथा अल्पकालीन कृषि-साख आवश्यकताओं की पूर्ति वहाँ के कृषि साख-प्रमंडल करते हैं तो दूसरी ओर अमेरिका में दीर्घकालीन आवश्यकताओं को पूर्ति संघीय कृषि क्षेत्र-प्रमंडल (Federal Farm Mortgage Corporation) करता है तथा मध्यकालीन एवं अल्पकालीन साख आवश्यकताओं की पूर्ति संघीय भू-अधिकोष करते हैं, इस प्रकार अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख से दीर्घकालीन साख को विभक्त किया गया है तथा संघीय कृषि-क्षेत्र-आधि-प्रमंडल इन अधिकोषों के शीर्ष प्रमंडल का कार्य करने के लिये ही स्थापित किया गया था। यदि इसी प्रकार से अल्पकालीन एवं मध्यकालीन साख से दीर्घकालीन साख व्यवस्था भिन्न कर दी जाय तभी भारतीय कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति सन्तोष-प्रद मार्ग से हो सकती है। परन्तु कृषि-अर्थ-प्रमंडल का सङ्गठन इस सावधानी से होना आवश्यक है जिससे उसकी क्रियाओं से सहकारी अधिकोषों की क्रियाएँ अबाधित रहें।[१]

परन्तु भारत जैसा विशाल देश जहाँ के कृषिक्षेत्र (खेत) भी छोटे छोटे हैं तथा कृषक भी असङ्गठित एवं साधन हीन है वहाँ पर इस प्रकार के प्रमंडल की बात जँचती नहीं, क्योंकि यह प्रमंडल दीर्घकालीन साख की पूर्ति उस कार्यक्षमता से नहीं कर सकता जब तक कि प्रान्तों में भी कृषि साख प्रमंडलों की स्थापना न की जाय तथा कृषि अर्थ प्रमंडल प्रान्तीय कृषि साख प्रमंडलों के शीर्षक का कार्य करें।

इस सम्बन्ध में भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों से सलाह ली थी तथा रिज़र्व बैंक की सम्मति माँगी थी, जिनमें रिज़र्व बैंक ने इसकी स्थापना

१ *Commerce 1950—Page 366.*

सम्बन्धी योजना को अव्यवहारिक बताते हुए यह राय दी कि विभिन्न समितियाँ इस निर्णय पर पहुँच चुकी हैं कि ऐसी संस्थाएँ प्रान्तीय क्षेत्र में स्थापित की जायँ क्योंकि भारत में खेती अल्प प्रमाण (Small Scale) पर होती है तथा जिन कृषकों से व्यवहार करना पड़ेगा वे इतनी अधिक संख्या में हैं कि प्रभावी निरीक्षण एवं कार्य क्षमता नहीं प्राप्त हो सकती। विदेशों की परिस्थिति भारतीय परिस्थिति से भिन्न है। इसके विपरीत कुछ प्रान्तीय सरकारों की दृष्टि से ऐसा प्रमंडल सहकारी अधिकोषों का प्रतियोगी बनेगा अतः बम्बई प्रान्त में आवश्यक कार्यवाही भी की जा रही है। आसाम प्रान्त ने केवल सम्मति दी कि यह प्रमंडल स्थापित किया जाय तथा प्रान्तीय सहकारी अधिकोषों को कम ब्याज पर ऋण देने की सुविधाएं दे।

अब इस आशय का विधेयक निर्वाचन-समिति को विचारार्थ दिया गया है। हाँ, यह बात निश्चित है कि इस सम्बन्ध में केन्द्रीय, प्रांतीय सरकारें तथा रिज़र्व बैंक के परस्पर सहयोग से कृषि-साख सुविधाओं को बढ़ाने के लिए, तथा कार्यक्रम बनाने के लिये कुछ न कुछ उपाय अवश्य ही निकल सकता है। देखना है कि भविष्य में क्या होता है?

प्रश्न संग्रह

१. सरकार कृषकों को कौनसी साख सुविधाएँ देती है? क्या वे पर्याप्त हैं—गुण-दोष विवेचन सहित बताइये?

२. कृषि साख-पूर्ति करने वाली कौनसी संस्थाएँ भारत में हैं? उनका संक्षिप्त विवरण देते हुए अपनी कृषि साख-सुधार योजना प्रस्तुत कीजिये।

३. प्रस्तावित कृषि अर्थ-प्रमंडल का क्या उद्देश्य है? क्या यह योजना भारत में यशस्वी रीति से कार्यान्वित हो सकती है? सकारण उत्तर दीजिये।

---

१ *Hindustan Times dated 24-11-50—Speech in the Parliament of the Honourable Finance Minister Shri Chintaman Deshmukh of 22-11-50*

अध्याय २२

भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान

समुचित एवं सुव्यवस्थित अधिकोषण विधान की आवश्यकता तो बहुत पहिले से ही अनुभव की जा रही थी क्योंकि देश के अधिकोषण व्यवसाय को नियंत्रित करने के लिए परक्राम्य-विलेख-विधान (१८८१) तथा भारतीय प्रमंडल विधान के अतिरिक्त कोई अन्य विधान न था। इस प्रकार की आवश्यकता पर सबसे प्रथम केन्द्रीय अधिकोषण जाँच-समिति ने १९३१ में ध्यान दिलाया था परन्तु उस समय अलग विधान को स्वीकृत न करते हुए केवल प्रमंडल विधान में ही संशोधन करना पर्याप्त समझा गया। उसके बाद १९३६ का भारतीय प्रमंडल (संशोधन) विधान आया जिसमें अधिकोषण प्रमंडलों संबंधी विशेष धाराएँ जोड़ी गईं। १९३९ में, इसके बाद, रिज़र्व बैंक ने भारत सरकार को तत्कालीन विधान की त्रुटियाँ बताकर नये विधान की आवश्यकता का महत्त्व भी समझाया क्योंकि देश के अनेक अधिकोष उस विधान में दी गई "अधिकोष" की परिभाषा में ही नहीं आते थे। परन्तु उस समय भारत सरकार के द्वितीय महायुद्ध में उलझी हुई होने के कारण कुछ न हो सका।

इसके बाद अधिकोषण-प्रमंडल विधेयक १९४५ बनाया गया किन्तु तत्कालीन केन्द्रीय विधान सभा के विलीयन हो जाने से विधेयक का भी कुछ न हुआ। १९४६ में दूसरा विधेयक "अधिकोषण प्रमंडल विधेयक (१९४६)" बना, जिसमें 'प्रवर-समिति' (Select Committee) द्वारा कुछ संशोधन होने के बाद वह जनवरी १९४८ में वापिस ले लिया गया। परन्तु २२ फरवरी १९४८ में दूसरा विधेयक पुनः प्रस्तुत किया गया जो फरवरी १७, १९४९ को स्वीकृत होकर, १६ मार्च १९४९ से "भारतीय अधिकोषण प्रमंडल विधान (१९४९)" इस नाम से लागू हो गया है। इस नियम की कुल धाराएं ५६ हैं, जिससे देश के अधिकोषण-कलेवर का संचालन एवं नियंत्रण हो रहा है। इस विधान के लागू हो जाने से देश के निक्षेपकों की अधिकोषों की असावधानी से होने वाली हानि भी न होगी और अधिकोषण संकट से होने वाली हानि का भय भी अब न रहेगा।

विधान से लाभ : १. समुचित अधिकोषण विधान से देश के निक्षेपकों की अधिकोषों की बेईमानी तथा असावधानी से होने वाली हानि से रक्षा होगी तथा ऐसे अधिकोषों के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही कर उन्हें दंडित भी किया जा सकेगा।

२. अभी तक जो अधिकोषण संकट आते रहे, उनके कारणों से यह स्पष्ट होता है कि अधिकोषण विधान का अभाव होने से उनके ऊपर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं था जिसकी वजह से देश की पूँजी की अपरिमित हानि अधिकोषों के विलीयन से होती रही। इस विधान के स्वीकृत होने से इस हानि का निवारण होगा एवं अधिकोषण-कलेवर सुदृढ़ बनेगा। इसके विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि अच्छे अधिकोषण अच्छे नियमों से नहीं बनते अपितु अच्छे अधिकोषिकों से बनते हैं परन्तु फिर भी नियम-उल्लंघन का भय सीधी राह अपनाने के लिए बाध्य तो करता है।

३. *अधिकोष समाज सेवा करने वाली संस्थाएँ हैं, इनका नियंत्रण समाज* हित के लिये अब नियमित रूप से हो सकेगा।

इस प्रकार अधिकोषण विधान बन जाने से भारत के अधिकोषण इतिहास में एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ है जिसकी वजह से अभी तक जो दोष विभिन्न विधानों में थे उनका भी निवारण हो गया है।

यह विधान भारत के सब प्रान्तों तथा रियासतों पर जो भारत में विलीन हो गई हैं—लागू होता है अर्थात् धारा ३ के अनुसार सहकारी अधिकोषों को छोड़कर भारत-स्थित सभी अधिकोषण प्रमंडलों को यह लागू होता है। अभी तक अधिकोषण सम्बन्धी कोई भी परिभाषा समुचित एवं स्पष्ट नहीं थी जिसका इसमें स्पष्टीकरण कर दिया गया है। इस विधान की धारा ५ व के अनुसार 'अधिकोषण' उसे कहते हैं "जिसमें जनता से उधार देने के लिए अथवा विनियोग के लिए निक्षेप स्वीकृत किये जायँ तथा जो धनादेश, विकर्ष अथवा आदेश अथवा अन्य प्रकार से निकाले जा सकें एवं माँग पर भुगताये जायँ।" कोई भी प्रमंडल इस व्यवसाय को तब तक नहीं कर सकता जब तक वह अधिकोष, अधिकौषिक अथवा अधिकोषण—इन शब्दों का प्रयोग अपने नाम के साथ न करे (धारा ७)। इसी प्रकार कोई भी अधि-कोष- प्रमंडल किसी भी प्रकार का व्यापार, क्रय विक्रय न अपने नाम से न दूसरों के नाम से कर सकता है (धारा ८)। अधिकोषण कार्यों की सूची धारा ६ में दी गई है। धारा १० के अनुसार कोई भी अधिकोषण प्रमंडल प्रबन्ध-अभिकर्ता की नियुक्ति नहीं करेगा और न ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति

करेगा जो दिवालिया हो, जो प्रमंडल से किसी भी प्रकार के वर्तन अथवा लाभ के रूप में (Remuneration) पारिश्रमिक लेता हो, जो किसी अन्य प्रमंडल का प्रबंधक, संचालक हो अथवा जिसकी नियुक्ति, प्रबन्धक के नाते ५ वर्ष से अधिक काल के लिए अनुबंध द्वारा की गई हो अथवा जो किसी अन्य प्रकार का व्यापार करता हो।

न्यूनतम निधि एवं दत्त पूँजी : इस विधान द्वारा अधिकोषों की न्यूनतम पूँजी तथा संचिति-प्रणीवि कितनी होनी चाहिये इस सम्बन्ध में कुछ निर्बन्ध लगाये गये हैं तथा ये निर्बन्ध भौगोलिक कार्य-क्षेत्रों के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं और केवल उन्हीं अधिकोषों पर लागू हैं जो भारत में पंजीयित हैं, (धारा ११) जो निम्न हैं :—

जो अधिकोष एक से अधिक प्रान्त में व्यवसाय करते हों उनकी दत्त पूंजी तथा निधि मिलाकर ५ लाख रुपये होगी। परन्तु यदि उनका व्यवसाय बंबई अथवा कलकत्ते में, अथवा दोनों में होगा तो उनको दत्त पूंजी एवं संचिति-प्रणीवि १० लाख रुपये न्यूनतम रखनी होगी।

यह निर्बन्ध विदेशी अधिकोषों की भारत-स्थित शाखाओं पर भी लगाया गया है जिसके अनुसार अन्य देश के पंजीयित अधिकोष यदि भारत में बंबई और कलकत्ता छोड़कर अन्य किसी स्थान में अधिकोषण व्यवसाय करें तो उनको न्यूनतम पूंजी एवं निधि १५ लाख रुपये रखनी होगी किन्तु यदि उनका व्यवसाय बंबई तथा कलकत्ते में अथवा किसी भी एक स्थान पर हो तो उन्हें २० लाख रुपये पूंजी एवं निधि रखनी होगी।

दत्त, प्रार्थित एवं अधिकृत पूँजी तथा मतदान : धारा १२ के अनुसार किसी अधिकोष की प्रार्थित पूंजी उसकी अधिकृत पूंजी के ५०% से कम नहीं होनी चाहिये और न उसकी दत्त पूंजी प्रार्थित पूंजी के ५० प्रतिशत से कम होनी चाहिये। यदि पूंजी बढ़ाई भी जाय तो वह इस नियमानुसार ही दो वर्ष की अवधि में होना चाहिये।

अधिकोष की पूंजी केवल सामान्य अंशों में ही होनी चाहिये अथवा सामान्य अंशों में तथा पूर्वाधिकारी अंशों में—जो १ जुलाई १९४४ के पहिले बेचे गये हों—हो सकती है।

प्रत्येक अंशधारी को अपने अंशों के अनुपात में मत-दान का अधिकार है परन्तु कोई भी एक अंशधारी संपूर्ण अंशधारियों के मतों के ५ प्रतिशत से अधिक मत नहीं दे सकता।

रोक निधि : प्रत्येक अनुसूची-बद्ध-अधिकोष को अपने याचित देय का ५ प्रतिशत तथा काल-देय का २ प्रतिशत रिज़र्व बैंक के पास निक्षेप में रखना पड़ेगा (R. B. I. Act, Sec. 42) इसके साथ ही धारा १८ के अनुसार प्रत्येक अन-अनुसूची बद्ध अधिकोष को याचित एवं काल देय का ५ प्रतिशत एवं २ प्रतिशत रोक निधि रिज़र्व बैंक के पास अथवा अपने पास अथवा कुछ रिज़र्व बैंक के पास एवं कुछ अपने पास रखना पड़ेगा। इस सम्बन्ध का गत मास के अन्तिम शुक्रवार का विवरण, याचित देय तथा माँग देय राशि के साथ रिज़र्व बैंक के पास प्रत्येक मास की १५ तारीख के पूर्व तीन प्रतिलिपियों में भेजना होगा।

अनुज्ञा-पत्र की प्राप्ति : धारा २२ के अनुसार रिज़र्व बैंक से अनुज्ञा-पत्र प्राप्त किये बिना कोई भी अधिकोष भारत में व्यवसाय नहीं कर सकता तथा यह अनुज्ञा-पत्र विधान के लागू होने के ६ मास में प्राप्त करना अनिवार्य है। नये अधिकोषों को भारत के किसी भी प्रान्त में व्यवसाय करने के पूर्व रिज़र्व बैंक को लिखित आवेदन-पत्र भेजकर अनुज्ञा-पत्र प्राप्त करना आवश्यक है। रिज़र्व बैंक यह अनुज्ञा-पत्र स्वीकृत करने के पूर्व किसी भी प्रमंडल की लेखा-पुस्तकों की जाँच कर सकता है अथवा निम्न विषय में संतुष्टि कर सकता है कि—

(i) प्रमंडल अपने निक्षेपकों के निक्षेप भुगतान करने के योग्य है अथवा नहीं;

(ii) प्रमंडल का प्रबन्ध निक्षेपकों के हित में ही हो रहा है अथवा नहीं, तथा

(iii) जो प्रमंडल भारतीय प्रांतों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में पंजीयित हैं, तो उस देश में भारतीय अधिकोषण प्रमंडलों के विरुद्ध किसी प्रकार के वैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है तथा यह प्रमंडल इस विधान की जो धारायें लागू हैं उनका पालन करता है अथवा नहीं।

उपर्युक्त बातों की जाँच होने पर यदि रिज़र्व बैंक को संतोष होता है तो वह अनुज्ञा-पत्र स्वीकृत करेगा परन्तु भविष्य में अनुज्ञा-पत्र प्राप्त कर लेने पर भी यदि कोई अधिकोष इन निर्बन्धों का पालन न करे तो रिज़र्व बैंक उसका अनुज्ञा-पत्र रद कर सकता है।

धारा २३ के अनुसार कोई भी अधिकोष रिज़र्व बैंक से लिखित स्वीकृति प्राप्त किये बिना किसी नई जगह पर शाखा नहीं खोल सकता और न शाखा का स्थानांतरण (उस शहर, नगर या गाँव के अतिरिक्त) अन्य स्थानों पर कर सकता है। ऐसे स्थानांतरण अथवा नई शाखा खोलने की अनुमति देने के पूर्व रिज़र्व बैंक उस अधिकोष की आर्थिक स्थिति, गत

इतिहास, सामान्य व्यवस्था, व्यवसाय, अर्जन शक्ति (Earning Prospects) तथा जनता के हित की दृष्टि से अधिकोष-प्रमंडल का निरीक्षण कर सकता है तथा इससे संतोष होने पर ही ऐसी अनुमति देगा।

अधिकोषण प्रमंडलों की सम्पत्ति :

धारा २४ : (१) प्रत्येक अधिकोषण प्रमंडल को इस विधान के लागू होने के २ वर्ष के अंत में कुल याचित एवं काल देय के २०% प्रतिशत के बराबर सम्पत्ति भारत में रोकड़, स्वर्ण तथा मान्य प्रतिभूतियों में प्रत्येक व्यापारिक दिनांत में रखनी होगी।

धारा २५ : किसी अधिकोषण प्रमंडल को अपने कुल काल एवं याचित देय के ७५% प्रतिशत के बराबर सम्पत्ति भारत में रखनी होगी। सम्पत्ति में उन्हीं प्रतिभूतियों का, प्रतिज्ञा अर्थ पत्रों का तथा विपत्रों का समावेश होगा जो रिज़र्व बैंक अपहृत, अथवा क्रय विक्रय कर सकता है तथा जिनकी प्रतिभूति पर वह ऋण देता है तथा आयात एवं निर्यात विपत्र जो भारत में अथवा भारत पर आहरित एवं भारत में शोध्य (Payable) हों तथा ऐसी मुद्राओं में हों जिनकी मान्यता रिज़र्व बैंक समय-समय पर सूचित करता है।

अधिकोषण प्रमंडलों पर विधान द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध :

धारा १४ : कोई भी अधिकोषण प्रमंडल अपनी पूंजी पर, उसकी प्रतिभूति आदि देकर प्रभार निर्माण नहीं कर सकता अर्थात् अपनी अदत्त पूंजी की प्रतिभूति पर ऋण आदि नहीं ले सकता।

धारा १५ : कोई भी अधिकोष अपनी अंश पूंजी पर तब तक लाभांश नहीं दे सकता जब तक पूंजीकृत व्ययों का—जिसमें प्रारंभिक व्यय, संगठन व्यय, अंश विक्रय पर वर्तन, दलाली, किसी भी प्रकार की हानि, राशि अथवा मूर्त संपत्ति पर किया हुआ किसी प्रकार का अन्य व्यय आदि सम्मिलित हैं—विलोपन न हो जाय।

धारा १६ : कोई भी अधिकोष ऐसे व्यक्ति की संचालक पद पर नियुक्ति नहीं कर सकता जो किसी अन्य अधिकोष प्रमंडल का संचालक हो।

धारा १७ : कोई भी अधिकोष लाभांश का वितरण तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह अपने लाभ का कम से कम २० % प्रतिशत संचिति प्रणीधि में जमा न करे; और यह संचिति प्रणीधि दत्त पूंजी के बराबर न हो जाय तब तक उसे ऐसा ही करना होगा।

धारा १६ : कोई अधिकोष प्रमंडल प्रन्यास-कार्य के अतिरिक्त विक्रय-साधक कार्य के अतिरिक्त, सुरक्षा निक्षेप व्यवस्था (Safe deposit Vaults) के अतिरिक्त तथा रिज़र्व बैंक की पूर्व अनुमति से अधिकोषण-कार्य के लिए आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त सहायक प्रमंडल (Subsidiary Company) की स्थापना नहीं कर सकता।

धारा २० : कोई भी अधिकोष न तो अपने अंशों की प्रतिभूति पर, तथा अपने संचालकों को विना किसी प्रतिभूति के ऋण नहीं दे सकता। इसी प्रकार ऐसे किसी भी सार्थ को अथवा वैयक्तिक प्रमंडल (Private Company) को ऋण नहीं दे सकता है जिसमें उसका कोई भी संचालक भागी हो, प्रबन्ध-अभिकर्ता हो अथवा ऋणों की प्राप्ति के लिये जमानतदार हो।

धारा २३ : रिज़र्व बैंक की अनुमति प्राप्त किये बिना कोई अधिकोष नई शाखा न खोल सकता है और न वर्तमान शाखा का किसी अन्य स्थान पर स्थानांतरण ही कर सकता है।

धारा ४४ : कोई भी अधिकोषण प्रमंडल रिज़र्व बैंक से लिखित प्रमाण पत्र प्राप्त किये बिना अपनी इच्छा से अपना व्यापार बंद नहीं कर सकता और यह अनुमति उसे तभी प्राप्त होगी जब रिज़र्व बैंक को यह विश्वास होगा कि वह अपने उत्तमर्णों का भुगतान करने योग्य है

धारा ४५ के अंतर्गत न्यायालय अधिकोषण प्रमंडलों की किसी भी प्रकार की एकीकरण-योजना को तब तक स्वीकृत नहीं कर सकता, जब तक उन्हें रिज़र्व बैंक इस आशय का प्रमाण पत्र न दे कि "वह एकीकरण निक्षेपकों के हित के लिये हानिकारक नहीं है"। इसी प्रकार कोई भी अधिकोष प्रमंडल किसी भी अन्य अधिकोष प्रमंडल के साथ एकीकरण की व्यवस्था नहीं करेगा अथवा एकीकरण में सहभागी न हो सकेगा जब तक वह रिज़र्व बैंक से लिखित आज्ञा प्राप्त न कर ले।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त—जैसा हम बता चुके हैं—कोई भी अधिकोषण प्रमंडल किसी प्रकार का व्यापारिक व्यवसाय, अपने नाम पर अथवा अन्य किसी व्यक्ति के नाम पर नहीं कर सकता। जो व्यक्ति दिवालिया घोषित किया गया हो, पागल हो, जो किसी अपराध में दंड पाया हुआ हो, अन्य व्यवसाय करता हो, अन्य किसी अधिकोषण प्रमंडल का संचालक अथवा प्रबंधक हो, ऐसे किसी भी व्यक्ति को कोई भी अधिकोषण-प्रमंडल संचालक नहीं नियुक्त कर सकता और न प्रबंध-अभिकर्ता की नियुक्ति ही कर सकता है। इसी प्रकार ऐसे व्यक्ति को भी संचालक नहीं नियुक्त कर सकता जिसके

साथ संचालक पद की धारणा के लिए ५ वर्ष से अधिक अवधि का अनुबंध किया गया हो अथवा जो प्रमंडल के लाभ पर किसी प्रकार का वर्तन लेता हो। कोई भी अधिकोपण प्रमंडल जो इस विधान के समय कार्य कर रहा हो उसे ६ मास के अन्दर अनुज्ञा-पत्र प्राप्त कर लेना होगा। कोई भी नया अधिकोपण प्रमंडल, रिज़र्व बैंक से अनुज्ञापत्र प्राप्त किये बिना अधिकोपण व्यापार नहीं कर सकता।

रिज़र्व बैंक के विधान द्वारा प्राप्त अधिकार: इस विधान के अन्तर्गत देश की अधिकोपण व्यवस्था को संगठित एवं नियंत्रित करने के लिये रिज़र्व बैंक को अनुसूची-बद्ध तथा अन-अनुसूची-बद्ध अधिकोपों पर अथवा सभी संयुक्त स्कंध अधिकोपों पर विशेष अधिकार दिये गए हैं:—

धारा १८ के अनुसार रिज़र्व बैंक सभी अधिकोपों के याचित एवं काल देय का ५% तथा २% अपने पास जमा कर सकता है तथा गत मास के अंतिम शुक्रवार का स्थिति-दर्शक विवरण सभी अधिकोपों को प्रत्येक मास की १५ तारीख तक इसे भेजना पड़ेगा।

धारा २१ के अंतर्गत रिज़र्व बैंक को अधिकार है कि वह अधिकोपण प्रमंडलों के दिये जाने वाले ऋणों को नियंत्रित कर सकता है। यदि रिज़र्व बैंक को यह ज्ञात हो जाय कि अधिकोप की ऋण नीति देश के हित में नहीं है तो वह किसी भी अधिकोप की अथवा सभी अधिकोपों की ऋण-नीति निर्धारित कर सकता है जो उन्हें पालन करनी होगी। रिज़र्व बैंक किसी भी अधिकोप विशेष को अथवा सभी अधिकोपों को यह आदेश भी दे सकता है कि किन कार्यों के लिये ऋण दिए जायें अथवा कितने ब्याज की दर पर ऋण दिए जायें अथवा प्रतिभूति एवं ऋणों में कितना अन्तर (Margin) रखा जाय। इस प्रकार का दिया हुआ आदेश सभी अधिकोपों को पालन करना होगा।

धारा २२: कोई भी अधिकोप रिज़र्व बैंक से अनुज्ञापत्र प्राप्त किये बिना अधिकोपण व्यवसाय नहीं कर सकता जो सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकोप है। इस धारा के अंतर्गत नए अधिकोपों को भी चाहे वे देशी हों अथवा विदेशी हों व्यवसाय करने के पूर्व तथा वर्तमान अधिकोपों को भी विधान लागू होने के ६ मास की अवधि में अनुज्ञापत्र प्राप्त करना आवश्यक है। इसी प्रकार यदि जिन निर्बन्धों पर अनुज्ञापत्र प्राप्त किया गया है उनका पूर्ण पालन न किया जाय तो उसे रद्द करने का अधिकार भी रिज़र्व बैंक को है।

धारा २३[1] : नई शाखाओं के खोलने के पूर्व अथवा शाखाओं के स्थानांतरण के पूर्व रिज़र्व बैंक की लिखित अनुमति प्रत्येक अधिकोष को प्राप्त करना अनिवार्य है।

धारा २७ के अन्तर्गत प्रत्येक अधिकोष को वैधानिक प्ररूप में सम्पत्ति एवं देयता दर्शक स्थिति-विवरण तथा अन्य आवश्यक विवरण रिज़र्व बैंक को नियत समय पर भेजने होंगे। परन्तु यदि किसी सूचना की रिज़र्व बैंक को आवश्यकता हो तो वह लिखित सूचना देने पर निश्चित अवधि में किसी भी अधिकोष से आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकता है तथा जनता के हित के लिये प्रकाशित भी करा सकता है।

धारा ३५ के अन्तर्गत रिज़र्व बैंक किसी भी समय अपनी इच्छा से अथवा केंद्रीय सरकार की आज्ञा प्राप्त होने पर किसी भी अधिकोष की लेखा-पुस्तकों का तथा अन्य सम्बन्धित विवरणों का निरीक्षण कर सकता है। ऐसे निरीक्षण के वृत्त-लेख की एक प्रतिलिपि निरीक्षित अधिकोष को देनी होगी। निरीक्षण किए जाने वाले अधिकोष के संचालकों एवं प्रबन्धकों का यह कर्तव्य होगा कि वे निरीक्षणाधिकारियों के समक्ष सभी प्रकार की लेखा-पुस्तकें अथवा अन्य सम्बन्धित पत्र आदि प्रस्तुत करें। यदि इस प्रकार के निरीक्षण करने के उपरांत रिज़र्व बैंक को इस बात का संतोष न हो कि उसका प्रबंध निक्षेपकों के हित में हो रहा है तो वह केंद्रीय सरकार के आदेश से उसे अपना व्यापार बन्द करने की आज्ञा दे सकता है अथवा उसे निक्षेप लेने से रोक सकता है।

धारा ३६ के अन्तर्गत रिज़र्व बैंक—

(अ) किसी भी अधिकोष को अथवा सभी अधिकोषों को किसी व्यवहार-विशेष अथवा विशेष व्यवहारों को करने से रोक सकता है अथवा उन्हें अन्य किसी प्रकार की सलाह भी दे सकता है।

(ब) संबंधित प्रमंडलों की प्रार्थना पर धारा ४५ के अनुसार होने वाले एकीकरण में मध्यस्थ बन कर अथवा अन्य किसी प्रकार से एकीकरण होने में सहायता कर सकता है।

(क) रिज़र्व बैंक विधान की धारा १८ (१) (३) के अनुसार किसी भी अधिकोषण प्रमंडल को ऋण अथवा अग्रिम देकर सहायता कर सकता है।

(ड) धारा ३५ के अन्तर्गत होने वाले निरीक्षण काल में अथवा निरीक्षण समाप्ति के बाद उस अधिकोष को लिखित आदेश दे सकता है कि—

---

[1] इसका पूर्ण विवेचन हम पहले कर चुके हैं।

(i) उस अधिकोष के संचालक रिज़र्व बैंक के वृत्त-लेख पर विचार करने के लिये सभा का आयोजन करे।

(ii) आदेश में दी हुई अवधि में वृत्त-लेख में दिये गए सुझावों का पालन करें।

अतिरिक्त अधिकार :

उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक को समय समय पर विवरण, स्थिति-विवरण तथा अन्य विशेष प्रकार की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने सम्बन्धी निम्न अधिकार प्राप्त हैं:—

१. धारा १७ के अन्तर्गत प्रत्येक अन-अनुसूची बद्ध अधिकोष को प्रत्येक मास की १५ तारीख तक ऐसा विवरण भेजना होगा जिसमें गत मास के अन्तिम शुक्रवार के दिन उसकी कुल याचित देय राशि, काल देय राशि तथा रोक निधि की राशि होगी।

२. धारा २० (२) के अन्तर्गत प्रत्येक अधिकोषण प्रमंडल को रिज़र्व बैंक के पास प्रस्तावित प्ररूप में एक ऐसा विवरण भेजना पड़ेगा जिसमें सम्पूर्ण अप्रतिभूत ऋणों तथा अग्रिमों की राशि होगी जो ऐसे प्रमंडलों को दिये गए हैं जिनमें अधिकोषण-प्रमंडल के संचालक अथवा अधिकोषण प्रमंडल का किसी न किसी प्रकार का हित (Interest) हो।

३. धारा २४ (३) के अन्तर्गत प्रत्येक अधिकोष प्रमंडल को रिज़र्व बैंक के पास प्रत्येक मास की १५ तारीख तक एक ऐसा विवरण भेजना होगा जिसमें धारा २४ (१) के अनुसार उसका याचित देय, काल देय तथा २५% सम्पत्ति किस प्रकार रखी गई है इसका विवरण होगा।

४ प्रत्येक अधिकोषण प्रमंडल को धारा २५ (२) के अंतर्गत एक ऐसा त्रैमासिक विवरण भेजना होगा जिसमें धारा २५ (१) के अनुसार याचित एवं काल देय तथा सम्पत्ति का वर्णन देना होगा।

५. धारा २६ के अंतर्गत प्रत्येक अधिकोष को वर्षान्त में एक ऐसा विवरण भेजना होगा जिसमें ऐसे लेखों का वर्णन हो जिनमें गत १० वर्षों से कोई लेना देना न हुआ हो तथा ऐसे प्रत्येक लेखे में कितनी निक्षिप्त राशि है।

६. धारा ३१ के अन्तर्गत प्रत्येक अधिकोषण प्रमंडल को धारा २९ के अनुसार जो स्थिति-विवरण एवं लेखा हो उनकी तीन प्रतिलिपियां, अंकेक्षक के वृत्त-लेख के साथ, एवं जिस प्रकार से प्रकाशित की गई हो, रिज़र्व बैंक के पास भेजनी होंगी।

७. अधिकोषण प्रमंडलों की पूंजी एवं कोष के मूल्यांकन में यदि किसी भी प्रकार की अव्यवस्था हो तो इस सम्बन्ध में रिज़र्व बैंक का निर्णय अंतिम निर्णय होगा।

अधिकोषण-प्रमंडल (संशोधन) विधान १९५० :

१९४९ में विधान की स्वीकृति के बाद एक ही वर्ष की अवधि में उसके संशोधन की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस संशोधित विधान के अनुसार १९४९ के विधान की कुछ त्रुटियाँ जो उस समय रह गई थीं उनका निवारण किया गया है। जिसके अनुसार निम्न संशोधन किये गए हैं :—

(i) धारा २३ के अनुसार रिज़र्व बैंक से नई शाखा खोलने के लिये अथवा स्थानांतरण करने के लिये पूर्व अनुमति लेना किसी भी अधिकोषण प्रमंडल को अनिवार्य था। परन्तु यह बात स्पष्ट नहीं थी कि यह धारा केवल भारत-स्थित अधिकोषों के लिये एवं उनकी भारतीय शाखाओं के लिये ही लागू थी अथवा विदेश स्थित शाखाओं के लिये भी। इसलिए इसका स्पष्टीकरण संशोधन द्वारा कर दिया गया है कि भारत में अथवा विदेशों में शाखा खोलने से पूर्व तथा भारत स्थित अथवा भारत के बाहर भी वर्तमान शाखा-स्थान परिवर्तन के लिये भी रिज़र्व बैंक की पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य है।

इस संशोधन से रिज़र्व बैंक को भारतीय अधिकोषों की विदेशी शाखाओं पर भी नियंत्रण करने का अधिकार मिल गया है।

(ii) धारा २५ के अनुसार अधिकोषों को याचित एवं काल देय की ७५% सम्पत्ति भारत में रखना अनिवार्य था परन्तु इसमें अब यह संशोधन कर दिया गया है कि ऐसी प्रतिभूतियाँ, आयात-निर्यात विपत्र आदि सब के सब अथवा उनका कुछ भाग भारत के बाहर भी रखा जा सकता है।

इस संशोधन से "सम्पत्ति" शब्द प्रयोग का विस्तार बढ़ गया है जो अधिकोषण प्रमंडलों के लिये भी सुविधाजनक ही है।

(iii) १९४९ के विधान में एकीकरण-प्रतिबन्धक केवल धारा ४५ ही थी परन्तु यह एकीकरण सुविधात्मक किस प्रकार होगा इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं था। अतः बदलती हुई परिस्थिति में कमजोर अधिकोषों का एकीकरण होना एवं सुविधाजनक होना आवश्यक था इस हेतु १९४९ के विधान में धारा ४४ (अ) बढ़ा दी गई है जिसके अनुसार रिज़र्व बैंक को एकीकरण योजनाओं सम्बन्धी अंतिम निर्णय देने का अधिकार दिया गया है तथा यह निर्णय सम्बन्धित अधिकोष-प्रमंडलों को पालन करना होगा।

(iv) अधिकोषण प्रमंडलों के विलीयन सम्बन्धी भी रिज़र्व बैंक को अधिकार अधिक दिये गये हैं जिसके अनुसार यदि रिज़र्व बैंक धारा ३६ के अनुसार शासकीय निस्तारक (Official Liquidator) नहीं है, अपितु अन्य कोई व्यक्ति है, और उसे न्यायालय ने किसी विषय पर रिज़र्व बैंक से सलाह लेने के लिये निर्देशित किया है, तो रिज़र्व बैंक को अब यह अधिकार है कि वह ऐसे निस्तारण सम्बन्धी कोई भी अभिलेखों (Records) का परीक्षण करे तथा जो सलाह वह उचित समझे दे। इसके अतिरिक्त दोषी व्यक्तियों को दंडित करने के लिये तथा ऐसा निस्तारण शीघ्रता से हो सके इसलिये रिज़र्व बैंक को विशेष अधिकार दिये गये हैं।

समालोचनात्मक अध्ययन : इस प्रकार रिज़र्व बैंक को अधिकोषण प्रमंडल विधान १९४९ तथा संशोधन विधान १९५० द्वारा अधिकोषों के संगठन एवं संचालन के लिये अनन्वित अधिकार दिये गये हैं। इस विधान से हमारे देश का अभी तक जो अव्यवस्थित अधिकोषण विकास हो रहा था वह नियंत्रित होगा तथा शाखाएँ जो कुछ व्यापारिक केन्द्रों में ही केन्द्रित हो रही थीं उस पर प्रतिबन्ध रहेगा तथा पूँजी विषयक धाराओं से अधिकोषण प्रमंडलों का आंतरिक आर्थिक संगठन अच्छा होगा तथा अशक्त अधिकोषण प्रमंडलों की स्थापना भी न हो सकेगी। इसी प्रकार रिज़र्व बैंक को जो निरीक्षण सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं उनकी वजह से अधिकोष कोई भी ऐसा कार्य न कर सकेंगे जो जन हित एवं निक्षेपकों के हितों के लिये हानिकारक हो।

परन्तु फिर भी इस विधान में संशोधन होने के बाद भी कतिपय त्रुटियाँ रह जाती हैं क्योंकि ऐसे छोटे-छोटे अधिकोष प्रमंडल जिनकी पूँजी एवं निधि ५ लाख रुपये से कम है, उन पर, स्वदेशीय अधिकोषों पर यह विधान लागू नहीं होता; जिनके हाथ में देश की लगभग ७५ प्रतिशत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण देना है तथा जो लगभग ९० प्रतिशत ग्रामीण साख की पूर्ति करते हैं। जिससे इस विधान के होते हुए भी भारतीय मुद्रा-विपणि के एक महत्त्वपूर्ण अंग पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि देश की साख-व्यवस्था को किसी भी प्रकार हानि न होते हुए किसी न किसी प्रकार का वैधानिक नियंत्रण इन पर लगाया जाय, जो देश के अधिकोषण विकास के लिये, मुद्रा-विपणि के संगठन के लिये, तथा साख एवं मुद्रा का संतुलित नियंत्रण होने के लिये आवश्यक है।

दूसरे, छोटे-छोटे अधिकोष प्रमंडलों पर वैधानिक नियंत्रण न रहना भी अच्छा नहीं है विशेषतः उस स्थिति में जब कि हमारा अधिकोषण कलेवर

अभी-अभी कुछ संभल पाया है क्योंकि इनके पास न तो पर्याप्त पूँजी ही होती है और न योग्य एवं अनुभवी कर्मचारी ही हैं, ऐसी अवस्था में अधिकोषण विकास केवल एक ही अङ्ग के नियंत्रण से समुचित एवं सुदृढ़ नहीं हो सकता। अतः सब अव्यवस्थित एवं विभक्त अङ्गों का एक छत्र में नियंत्रण होना अनिवार्य है। अन्यथा नियन्त्रित एवं सुव्यवस्थित अधिकोष-प्रमंडलों के कार्य-क्षेत्र प्रभावित होने की संभावना है, जो देश के लिये हितकर नहीं कहा जा सकता।

तीसरे, यह विधान धारा ३ अनुसार सहकारी अधिकोषों पर भी लागू नहीं होता। विशेषतः जब सहकारी अधिकोष भी व्यापारिक अधिकोषों की प्रतियोगिता करने लगें, उस दशा में यही आवश्यक है कि व्यापारिक एवं सहकारी अधिकोषों को समानता से नियंत्रित किया जाय। हाँ, यह बात ठीक है कि सहकारी भू-प्राधि अधिकोषों के लिये अलग विधान हो क्योंकि वे दीर्घ-कालीन आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। यदि यह नहीं हो सकता तो सहकारी अधिकोषों का कार्य-क्षेत्र पूर्णरूपेण वैधानिक रीति से मर्यादित कर दिया जाय।

चौथे, विधान से यह स्पष्ट मालूम होता है कि एकाधिकोष पद्धति का ही विशेष रूप से पालन किया गया है परन्तु भारत जैसे महान् देश के लिये, जिसमें २५०० नगरों में से केवल ४०० ही नगरों में अधिकोष अथवा उनकी शाखाएँ हैं और अधिकोषण विकास की आवश्यकता है, शाख-अधिकोषण के लिये समुचित नियोजन होना आवश्यक है जिससे देश की विभिन्न ब्याज दरों में समानता आ सके तथा सम्भाव्य हानियों का समुचित वितरण हो सके; व्यवस्था-व्यय कम होकर, अधिकोषण कार्य-क्षमता भी बढ़ेगी। विशेषतः अब तो इसके प्रोत्साहन की ओर भी अधिक आवश्यकता है, जब कि ग्रामीण अधिकोषण विकास की नई योजनाएँ बनाई जा रही हैं तथा भारत सरकार उनको कार्यान्वित करने की सोच रही है।

पाँचवें, सम्पत्ति का देयता के साथ अनुपात निश्चित न करते हुए यह आवश्यक था कि केवल सम्पत्ति इस अनुपात में होनी चाहिये, इस सम्बन्ध में प्रतिबन्ध न लगाते हुए यह प्रतिबन्ध लगाया जाता कि किसी विशेष प्रकार की सम्पत्ति ही अधिकोष अपने पास रखें; जिससे अवसाद के समय रिज़र्व बैंक उनकी प्रतिभूति पर आर्थिक सहायता कर सकता। क्योंकि अधिकोषों के विलीयन का कारण पर्याप्त सम्पत्ति का अभाव न होते हुए, सम्पत्ति की तरलता का अभाव था। इसलिए सम्पत्ति के अनुपात की अपेक्षा तरलता के लिए विशेष नियोजन किये जाते तथा वैधानिक प्रतिबन्ध लगाये जाते तो अधिकतर हितावह होता।[1]

---

[1] 'Commerce' 20-11-48

इसके अतिरिक्त अन्य भी कतिपय त्रुटियाँ रह गई हैं जैसे 'संचिति-प्रणाली' की सुस्पष्ट परिभाषा नहीं की गई है तथा रिज़र्व बैंक को अवसाद काल में विशेष सहायता देने के लिए विधान की धारा ४ के अन्तर्गत विशेष प्रयोजन नहीं किया गया है। किंतु हमें आशा है कि रिज़र्व बैंक इन त्रुटियों को अपने पूर्व अनुभव के बल पर शीघ्रातिशीघ्र दूर करने के लिये प्रयत्न करेगा।

हमें यह भी आशा है कि जो अपरिमित अधिकार रिज़र्व बैंक को मिले हैं उनको वह पूर्व अनुभव के बल पर तथा भारतीय मौद्रिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार देश-हित में समुचित रूप से उपयोग कर देश का अधिकोषण कलेवर सुव्यवस्थित एवं नियंत्रित कर सकेगा जिससे देश में अधिकोषण का अधिकाधिक प्रसार होकर देश की औद्योगिक एवं आर्थिक उन्नति पूर्ण कार्य-क्षमता के साथ हो सकेगी, जो निक्षेपकों की सुरक्षा का अंतिम साध्य है।

प्रश्न संग्रह

१. भारत में अधिकोषण विधान की आवश्यकता क्यों थी ? जो अधिकोषण विधान बना है उससे आप संतुष्ट हैं ?

२. अधिकोषण विधान में निम्न लिखित बातों सम्बन्धी क्या नियोजन किया गया है।

   (i) नवीन शाखाओं की स्थापना तथा शाखाओं का स्थानांतरण।
   (ii) अधिकोषों की ऋण प्रदायक क्रियाएँ।
   (iii) पूँजी एवं निधि सम्बन्धी धाराएँ।

३. अधिकोषण विधान १९४९-५० के अन्तर्गत अधिकोषण प्रमण्डलों की क्रियाओं पर कौनसे प्रतिबन्ध लगाये गए हैं ?

४. अधिकोषण विधान १९४९ तथा संशोधन विधान १९५० के अन्तर्गत रिज़र्व बैंक को कौनसे विशेष अधिकार मिले हैं ? क्या इन अधिकारों से अधिकोषण संकट का निवारण करने में रिज़र्व बैंक सफल हो सकेगा ?

५. अधिकोषण विधान १९४९ तथा संशोधन विधान १९५० का भारतीय अधिकोषण कलेवर पर क्या प्रभाव हुआ ?

६. अधिकोषण विधान की महत्त्वपूर्ण धाराएँ कौनसी हैं ? क्या अधिकोषण कलेवर के सुचारु संगठन के लिए उन्हें आप पर्याप्त समझते हैं ?

हिन्दी-अङ्गरेजी प्रतिशब्दों की आवश्यक सूची (२)

अंकन—Marking
अंकित—Marked
अंतर—Margin
अंतपुस्त—In-book
अंतर्शोधक—In-clearers
अंतर्लेखित स्कंध—
Inscribed stock
अंतर पणन—Arbitrage & Arbitrage charges
अंश—Share
अंशन—Rationing
अंशतः दत्त—Partly paid
अधिकोप—Bank
अधिकोपण—Banking
अधिकोप-स्वीकृति-विपत्र—
Bank Accceptances
अधिकोपण समाधान- विवरण—
Bank Reconciliation Statement
अधिकोप-लेखा—
Bank Account
अधिकोपण-विकर्ष—
Bank Draft
अधिकोप विपत्र—Bank Bill
अधिकोपण—Banking
अधिकोपण-कलेवर—
Banking Structure
अधिकोपण-दर—Bank Rate
अधिकोष-शुल्क—
Bank Charges
अधिकौपिक—Banker
अनुपर्णी—Allenge
अभिकर्ता—Agent
अक्षर-क्रम—
Alphabetical Order
अनादरण—Dishonour
अपहार— Discount
अपहरण—Discounting
अपहृत किया—Discounted
अधमर्ण—Debtor
अर्थ-विपत्र—Finance Bills
अर्थ-प्रबंधक—Financing
अर्थ-प्रबंधक-प्रमंडल—
Financing Corporation
अनिरसनीय—Irrevocable
अविवेचक—Indiscriminate
अधिकतम—Minimum
अवयस्क—Minor
अपरक्राम्य—Not Negotiable
अधि-विकर्ष—Overdraft
अक्षयी—Permanent
अभिलेख—Record
अध्यर्पण-मूल्य—
Surrnender value
अनुसूची-बद्ध—Scheduled
अभियात्री-साख-पत्र—
Traveller's Letter of Credit

अनरेखित—Uncrossed
अप्रतिभूत—Unsecured
अरक्षित—Unsecured
अधिपत्र—Warrant
अबद्ध—Loose
अद्यावत्—Up-to-date
आवेदन-पत्र—Application
आवेदन-प्रपत्र—Application
आगोपक—Insurer
आगोप—Insurance
आगोपित—Insured
आहरण—Drawing
आहर्ता—Drawer
आहार्यी—Drawee
आनुषंगिक व्यय—Incidental Charges
आलोकन—Noting
आदेश—Order
आदाता—Payee
आपणन—Turnover
आहरण-प्रपत्र—Withdrawal Form
औद्योगिक—Industrial
औपचारिकता—Formality
एकत्री-करण—Amalgamation
एकांतर पणन—Simple Arbitrage
ऐच्छिक निस्तारण—Voluntary Liquidation
ऐच्छिक पृष्ठांकना—Facultative Endorsement.
उच्चावचन—Fluctuation
उत्तरदायी—Liable
उत्पादन अथवा उत्पाद विपणि—Produce Market
उपप्राधीयन—Hypothecation
उपप्राधीयित—Hypothecated
उपप्राधीयन-पत्र—Letter of Hypothecation
उपस्थित करना—Present
उपस्थिति—Presentation
उपाधि—Title
उपेक्षा—Negligence
ऋण-दाता—Moneylender
ऋण-पत्र—Debentures
ऋण प्रदाय्य राशि—Loanable Funds.
ऋण प्रदायक संस्था—Lending Institutions
ऋण शोधनार्थ प्राधि—Usufructuary Mortgage
कलेवर—Structure
कृषि-अधिकोष—Agricultural Banks
कृषि-क्षेत्र—Farm
केन्द्रीय अधिकोष—Central Bank
केन्द्रीय निधि—Central Reserve
केन्द्रीकरण—Centralization
कूट—Forged
कूट-कर्म—Fraud
कूट-हस्ताक्षर—Forged Signature
कोष्ठागार—Godown, Warehouse
क्रम-बंधन—Grading

क्रय-विक्रय-पद्धति—
Hire Purchase System
काल-मर्यादा नियम—
Law of Limitation
कालदेय—Time Liabilty
कोष-विपत्र—Treasury Bill
कोषाध्यक्ष—Treasurer
कोष्ठागार-प्रमाण-पत्र—
Warehouse Certificate
गणित्र—Counter
गति—Mobility, Velocity
गलत धारणा—
Misrepresentation
गोपनीय—
Secret, Confidential
गोपलेख—Insurance Policy
ग्रहणाधिकार—Lien
ग्राहक—Customer
गौप्य—Secrecy
चक्र वृद्धि —
Compound Interest
चल मुद्रा—
Circulating Money
चल पूंजी—
Circulating Capital
चल निक्षेप—
Current or floating deposit
चलितार्थ—
Circulating Money
चल प्रत्याभूति—
Continuing Guarantee
चलद् साख पत्र—
Revolving Credit
तिथि क्रम—
Chronological Order

दत्त पूंजी—Paid-up capital
दृश्य विकर्ष—Sight draft
दृश्य विपत्र—Sight Bill
दुर्लभ मुद्रा—Hard Currency
दूषित—Defective
दूषित उपाधि, दूषित स्वत्व—
Defective title
दायी—Liable
दायित्व रहित—
Sans Recourse, without recourse
दायित्व रहित पृष्ठांकना—Sans Recourse endorsement
देय, देयता—Liability
धनादेश—Cheque
धनादेश-पुस्तिका—
Cheque book
धारयामिते—I owe you
धा० ते०—I. O. U.
ध्वनित—Implied
ध्वनितबंधक—
Implied Pledge
नगर सहकारी अधिकोष—
Urban cooperative Banks
निर्गमन करना—Issue
निर्गमित—Issued
निर्गमक समंडल—
Issuing Company
निर्देशन पत्र—
Letter of Indication
नियोजन—Appropriation
निर्बन्ध—Condition
निक्षेप—Deposit
निवेश-अधिपत्र—
Dock-warrant

निवेश, नौनिवेश—Dock
निर्देशक--Director
निक्षेप-प्राप्ति--Deposit Receipt
निक्षेपक--Depositor
निक्षिप्त—Deposited
निक्षेप-पर्णी—Pay-in slip
नियमी—Regular
निरसनीय—Revocable
न्यूनतम—Minimum
न्याय्य प्राधि—
Equitable Mortgage
पंजीयक—Registrar
पंजीयन—Registration
पंजीयित—Registered
पत्रक—Card
पत्रक-निर्देशक—Card Index
प्रेशक—Consignor
परेपणी--Consignee
परस्पर-दायित्व—
Cross obligation
परिसाख-पत्र—
Circular letter of credit
परिपत्र—Circular Notes
परिहार--Concession
परम प्रतिभूति—
Gilt-edged securities
परिकाल्पनिक—Speculative
परक्रामण—Negotiation
परक्राम्य—Negotiable
परक्राम्य विलेख—
Negotiable Instrument
परक्राम्य विलेख विधान—
Negotiable Instruments Act.
पक्ष, पक्षकार—Party

पारितोषण —Remuneration
पार्षद अंतर्नियम—
Articles of Association
पार्षद सीमा नियम—
Memorandum of Association
पुनःसंस्थापन—Replacement
पूँजी—Capital
पूर्ण विश्वास—Good faith
पृष्ठांकक--Endorser
पृष्ठांकी --Endorsee
पृष्ठांकना—Endorsement
पृष्ठांकना करना—Endorse
प्रतिभूत—
Secured, guaranteed
प्रतिभूति—Security, Surety
प्रतिसाद करना—Set off
प्रतिज्ञा—Promise
प्रतिज्ञा अर्थ पत्र—
Promissory Note
प्रतिपर्णी—Counterfoil
प्रदान आदेश--Delivery order
प्रत्याभूति संविदा—
Contract of Guarantee
प्रत्याभूति—Guarantee
प्रधायक--Mortgagor
प्राधमर्ण-आदेश—
Garnisheee's order
प्राधि--Mortgage
प्राधिमान—Mortgagee
प्रन्यासी—Trustee
प्रन्यास लेखा—Trust Account
प्रन्यासी प्रतिभूतियाँ—
Trustee securtities

प्रपंजी—Ledger
प्रमंडल—Company
प्रभार—Charge
प्रभाग-पद्धति—Instalment system
प्रभाव—Persuation
प्रमाणन—Protesting
प्रमाणीकरण—Standardisation
प्रलेख—Document, deed
प्रविवरण—Prospectus
प्रव्याजि—Premium
प्रारम्भिक साख-समिति—Primary Credit Society
प्रेपालय—Post Office
प्रेषालय रोक प्रमाण पत्र—Postal Cash Certificate
प्रेपालय संचय अधिकोष—Post Office Savings Bank
बंध—Bond
बंधक—Pledge
बंधकी—Pledgee, Pawnee
बंधक-दाता—Pledgor
बहिपुस्त—Out-books
बहिर्शोधक—Out clearer
बीजक—Invoice
भाटक, भाड़ा—Freight
भुगतान—Payment
भूप्राधि अधिकोष—Land Mortage Bank
भूसिंचन—Irrigation
मध्यग—Broker
महत्त्वपूर्ण—Material
महत्त्वपूर्ण परिवर्तन—Material alteration

मान्य—Approved
माहिती—Information
मुद्रा—Seal
मुद्रांक—Stamp
मुद्रांक-कर—Stamp Duty
मुद्रांकित आवरण—Sealed Envelope
मुद्रित—Printed
मूर्त—Tangible
मूल्य—Value
मूल्यांकन—Valuation
यथाविधि धारी—Holder in due course
याचना—Call
याचित दर—Call Rate
याचित देय—Demand Liability
याचित धन—Call Money
याचित एवं अल्पकालीन ऋण—Money at call & Short Notice
योग—Total
रकम—Amount
राशि—Amount
राष्ट्रीय संचय प्रमाणपत्र—National Savings Certificates
रिक्थ साधक—Executor
रेखांकित, रेखित—Crossed
रेखांकन—Crossing
रोक, रोकड़—Cash
रोक ऋण—Cash Credit
रोक निधि—Cash Reserve
रोक पाल—Cashier

लिपिक—Clerk
लेखा—Account
लेखापाल—Accountant
लोपन—Omission
लोपन कार्य—
Act of Omission
वर्तन—Commission
वस्तु अधिकार प्रलेख—
Document of title to goods
वहन पत्र—Bill of lading
वाहक—Bearer
वाहक धनादेश—
Bearer Cheque
वाहक बंध—Bearer Bonds
वृत्त लेख—Report
विकलन, विकलित—Debit
विकर्ष—Draft
विकृत धनादेश—
Mutilated Cheques
विनिमय-विपत्र—
Bills of exchange
विनिमय विपणि—
Bills Market
विनिमय अधिकोष—
Exchange Bank
विनिमय स्कंध—
Stock Exchange
विनिमय स्कंध विपणि—
Stock Exchange Market
विनियोग अधिकोष—
Investment Bank
विपत्र—Bill
विपण्यता—Marketability
विपत्रालोकी—Notary Public

विपत्रालोकन एवं प्रमाणन—
Noting & Protesting a bill
विलीयन—
Dissolution, Failure
विलेख- Instrument
विवृत्त—Open
विवृत्त धनादेश—Open cheque
विवृत्त विपणि क्रिया—
Open market operation
विविध अधमर्ण—
Sundry Debtors
विशेष पृष्ठांकना—
Special Endorsement
विशेषित पृष्ठांकना—
Restricted Endorsement
विशेष रेखांकन—
Special crossing
विशिष्ट प्रत्याभूति—
Specific guarantee
विश्वासार्ह—Reliable
वीत काल—Stale
वीतकालीय धनादेश—
Stale cheque
वैयक्तिक—Personal
शासकीय निस्तारक—
Official Liquidator
शिथिल—Loose
शीर्ष अधिकोष—Apex Bank
संकट कालीन साख—
Emergency credit
संग्रहण—Collection
संघीय—Federal
संचय निक्षेप—
Savings deposit

संग्राहक अधिकोष— Collecting Bank
संग्रहण नहीं हुआ— Effects not cleared
संचालक—Director
संतुलन—Balancing
संदर्भ—Reference
संदर्भ पत्र—Reference letter
संधावक—Runners
संपत्ति—Asset
संरक्षण—Protection
संधारक—Holder
संयुक्त स्कंध प्रमंडल— Joint Stock Company
संयान प्राप्ति प्रलेख— Railway Receipt
संविदा—Contract
संवेष्ट—Package
संवेष्टन-पत्र—Packing Note
संशोधन— Amendment, Correction
संशोधित—Amended
सद्भावना—Good faith
समता—Equity
समाशोधक अधिकोष— Clearing Bank
समाशोधन गृह— Clearing House
समामेलन-Incorporation
समामेलित—Incorporated
सहायक प्रमंडल— Subsidiary Company
सहकारी अधिकोपण संघ— Cooperative Banking Union
सशर्त (सनिर्बन्ध) विक्रय प्राधि— Mortgage by Conditional Sale
साखपत्र—Letter of Credit
सामान्य पृष्ठांकना— General Endorsement, Blank Endorsement
सामान्य रेखांकन— General Crossing
सार्थ—Firm
सीमित साख पत्र— Restricted letters of Credit
सुरक्षा—Safe Custody
सुरक्षा निक्षेप— Safe Custody deposit
सुरक्षा संचय प्रमाणपत्र— Defence Savings Certificates
स्वदेशीय—Indigenous
स्वदेशीय अधिकोष— Indigenous Banks
स्वत्व—Title
स्पष्ट अवधि— Apparent Tenor
स्थानांतरण—Remittance
स्थायी निक्षेप—Fixed Deposit
स्थायी साख पत्र— Fixed Credit
स्थिति—Capacity
स्वीकृति—Acceptance
स्वीकृति गृह— Acceptance House
हस्तक—Assignee
हस्तांकन— Assign, Assignment.

हस्तांकित—Assigned
हस्तांतरक--Transferor
हस्तांतरण—Transfer
हस्तांतरी—Transferee
हस्तांतरणीय—Transferable
हानि—Damage
क्षति—Damage
क्षतिपूर—Indemnity
क्षतिपूर संविदा—Indemnity Contract
क्षतिपूर्ति--Compensation.

Ved Sharma

ENGLISH--HINDI GLOSSARY

A

Acceptable—ग्राह्य
Acceptability—ग्राह्यता-मान्यता
Acceptance— स्वीकृति
Acceptance Houses—स्वीकृति-गृह
Account—लेखा
Accountant—लेखापाल
Act—विधान
Act of Omission—लोपनकार्य
Adjustment—समायोजन
Advance—अग्रिम
Agent—अभिकर्ता
Agricultural Banks—कृषि-अधिकोष
Allenge—अनुपर्णी
Alphabetical order—अक्षरक्रम
Amalgamation—एकत्रीकरण
Amended—संशोधित
Amendment—संशोधन
Amount—राशि, रकम
Apex Bank—शीर्ष अधिकोष
Apparent Tenor—स्पष्ट अवधि
Application—आवेदन पत्र
Application Form—आवेदन प्रपत्र
Appropriation—नियोजन
Approved— मान्य
Arbitrage or Arbitrage dealing—अंतरपणन
Articles of Association—पार्षद् अंतर्नियम
Asset—संपत्ति
Assign—हस्तांकन
Assigned—हस्तांकित
Assignee—हस्तक
Assignment—हस्तांकन
Automatic —स्वयं पूर्ण
Automatic working—स्वयंपूर्ण शीलता
Average—औसत

B

Balance—शेष
Balancing--संतुलन
Bank अधिकोष

Bank Acceptances—
अधिकोष स्वीकृति-विपत्र
Bank Account—अधिकोष-लेखा
Bank Bill—अधिकोष-विपत्र
Bank Draft—अधिविकर्ष
Banker—अधिकौषिक
Banking—अधिकोषण
Banking Structure—
अधिकोषण कलेवर
Bank Rate—अधिकोष दर
Bank Reconciliation Statement—
अधिकोष समाधान विवरण
Barter—वस्तु विनिमय
Bearer—वाहक
Bearer Bond—वाहक बंध
Bearer Cheque—
वाहक धनादेश
Bill—विपत्र
Bill Market—विपत्र-विपणि
Bill of Exchange—
विनिमयविपत्र
Bill of Lading—वहन-पत्र
Bimetallism—द्विधातुमान
Blank Endorsement—
सामान्य-पृष्ठांकना
Bond—बंध
Brassage—टंकण शुल्क

C

Call—याचना
Call Money—याचित धन
Call Rate—याचित दर
Capacity—स्थिति
Capital—पूँजी
Card—पत्रक
Card Index—पत्रक-निर्देशक
Card Index Cabinet—
पत्रक-निर्देशक मंजूषा
Cash—रोक, रोकड़
Cash Credit—रोक ऋण
Cashier—रोकपाल
Cash Reserve—रोक निधि
Central Bank—
केन्द्रीय अधिकोष
Central Dollar Pool—
केन्द्रीय डालर निधि
Centralisation—केन्द्रीयकरण
Central Reserve—
केन्द्रीय-निधि
Charge—प्रभार, शुल्क
Charges of Bank—
अधिकोष शुल्क
Cheque—धनादेश
Cheque Book—धनादेश-पुस्तिका
Chronological Order—
तिथि-क्रम
Circular Letter of Credit—
परिसाख पत्र
Circular Notes—परिपत्र
Circulating Capital—
चल-पूँजी
Circulating Money—
चलितार्थ, चलमुद्रा
Classificaton—वर्गीकरण
Clearing—समाशोधन
Clearing Bank—
समाशोधक अधिकोष
Clearing House—
समाशोधन गृह

Clerk—लिपिक
Cognisibility—सुज्ञेयता
Coin—सिक्का
Collecting Bank—
संग्राहक अधिकोष
Collection—संग्रहण
Commercial Bank—
व्यापारिक अधिकोष
Commercial Credit—
व्यापारिक साख
Commision—वर्तन
Company—प्रमंडल
Compensated Dollar—
समायोजित डालर, हानिपूरक डालर
Compensation—
हानि पूर्ति, क्षति पूर्ति
Compound Intetrest—चक्रवृद्धि
Concession—परिहार
Condition—निर्बन्ध
Conference—परिषद्
Confidential—गोपनीय
Consignee—परेषणी
Consignor—परेषक
Continuing Guarantee—
चल प्रत्याभूति
Contract—संविदा, अनुबंध
Contract of Guarantee—
प्रत्याभूति संविदा
Convertible—परिवर्तनीय
Cooperative Bank—
सहकारी अधिकोष
Correction—संशोधन
Council Bill—परिषद् विपत्र
Cooperative Banking
Union—सहकारी अधिकोषण संघ
Counter—गणित्र
Counterfoil—प्रतिपर्णी
Credit—साख
Credit Note—साख-पत्र
Creditor—उत्तमर्ण
Criticism—आलोचना
Crossed—रेखित, रेखांकित
Crossing—रेखांकन
Cross Obligation—
परस्पर दायित्व
Current Account—चल लेखा
Currency—चलन
Custom Duty—निराक्राम्य कर
Customer—ग्राहक

D

Damage—क्षति
Debentures—ऋण पत्र
Debit—विकलन, विकलित
Debt—ऋण
Debtor—अधमर्ण
Deed—प्रलेख
Defective—दूषित
Defective Title—
दूषित उपाधि, दूषित स्वत्व
Defence Saving Certificate
—सुरक्षा संचय प्रमाण पत्र
Definition—परिभाषा
Deflation—मुद्रा संकोच
Delivery Order—प्रदान आदेश
Demand—माँग
Demand Liability—याचित देय
Deposit—निक्षेप

Deposit
Current, floating—
चल निक्षेप
Fixed—स्थायी
Saving—संचय
Deposited—निक्षिप्त
Depositor—निक्षेपक
Deposit Receipt—निक्षेप प्राप्ति
Depreciation—अपमूल्यन
Depression—मंदी
Development—विकास
Direct—प्रत्यक्ष
Direct Exchange—
प्रत्यक्ष विनिमय
Director—संचालक, निर्देशक
Discount—अपहार
Discounted—अपहृत किया
Discounting—अपहरण
Dishonour—अनादरण
Dishonoured—अनादरित किया
Dissolution—विलीयन
Dock—निवेश, नौनिवेश
Dock Warrant—निवेश अधिपत्र
Document—प्रलेख
Document of title to goods
—वस्तु अधिकार प्रलेख (पत्र)
Draft—विकर्ष
Drawee—आहार्या
Drawer—आहर्ता

E

Economy—मितव्ययिता
Effects not cleared—
संग्रहण नहीं हुआ
Elasticity—लोच, उद्वनम्यता
Emergency Credit—
संकट कालीन साख
Endorse—पृष्ठांकना करना
Endorsee—पृष्ठांकको
Endorsement—पृष्ठांकना
Endorser—पृष्ठांकक
Equitable Mortgage—
न्याय्य प्राधि
Equity—समता
Exchange—विनिमय
Exchange Bank—
विनिमय अधिकोष
Excise Duty—उत्पाद-कर
Executor—रिक्थ-साधक
Export—निर्यात
Evolution—उत्क्रांति

F

Face Value—अंकित मूल्य
Factor—घटक
Facultative Endorsement
—ऐच्छिक पृष्ठांकना
Failure—विलीयन, डूबना।
Farm—कृषि क्षेत्र
Favourable—अनुकूल, पक्ष में
Federal—संघीय
Fee—शुल्क
Fiduciary—अरक्षित
Finance—राजस्व
Finance Bill—अर्थ विपत्र
Financial—आर्थिक
Financing—अर्थ प्रबंधक
Financing Corporation—
अर्थ प्रबन्धक प्रमंडल

Firm—सार्थ
Fixed Account—
स्थायी (स्थिर) लेखा
Fixed Credit—स्थायी साख पत्र
Fluctuations—उच्चावचन
Forged—कूट
Forged Cheque—कूट धनादेश
Forged Signature—
कूट हस्ताक्षर
Form—प्रपत्र
Formality—औपचारिकता
Forward—अग्र
Forward Exchange—
अग्र विनिमय
Fraud—कूट कर्म, कपटपूर्ण
Free Coinage—
अप्रतिबंधित (मुक्त) टंक
Freight—भाटक, भाड़ा
Function—कार्य

G

Garnishee's Order—
आधमर्ण्य आदेश
General Crossing—
सामान्य रेखांकन
General Endorsement—
सामान्य पृष्ठांकना
Gilt-edged Security—
परम प्रतिभूति
Godown—कोष्ठागार
Gold Bullion Standard—
स्वर्ण खंड मान
Gold Currency Standard—
स्वर्ण चलन मान
Gold Exchange Standard—
स्वर्ण विनिमय मान
Gold Standard—स्वर्ण मान
Gold Standard Reserve—
स्वर्णमान निधि
Good faith—
सद्भावना, पूर्णविश्वास।
Grading—क्रमबन्धन
Gratuitous—निःशुल्क
Guarantee—प्रत्याभूति
Guarantor—प्रतिभूत

H

Hard Currency—दुर्लभ मुद्रा
Hire Purchase System—
क्रय विक्रय पद्धति
Holder—संधारक
Holder in due course—
यथाविधि धारी
Honorarium—पारितोषण
Hypothecated—उपप्राधीयित
Hypothecation—उपप्राधीयन

I

Illegal—अवैध
Implied—ध्वनित
Implied pledge—ध्वनित बंधक
Import—आयात
Importer—आयात कर्ता
In-book—अन्तरपुस्त
Incidental Charges—
आनुषंगिक व्यय
In-clearer—अन्तर्शोधक
Inconvertible—अपरिवर्तनीय
Incorporated—समामेलित

Indemnity—क्षतिपूर
Indemnity Contract—
क्षतिपूर संविदा
Index Number—निर्देशाङ्क
Indigenous—स्वदेशीय
Indigenous Banks—
स्वदेशीय अधिकोष
Indirect—अप्रत्यक्ष
Indiscriminate—अविवेचक
Industrial—औद्योगिक
Industrial Bank—
औद्योगिक अधिकोष
Inflation—मुद्रा स्फीति
Information—माहिती, सूचना
Inscribed Stock—
अन्तर्लेखित स्कन्ध
Instalment System—
प्रभाग पद्धति
Instrument—विलेख
Insurance—आगोप
Insurance Policy—
गोपलेख, बीमा
Insured—आगोपित
Insurer—आगोपक
Interest—ब्याज
Internal—आन्तरिक
International—अन्तर्राष्ट्रीय
International Monetary
Fund—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा अर्थनिधि
Intrinsic—आन्तरिक
Intrinsic Value—
आन्तरिक मूल्य
Investment—विनियोग
Investment Bank—
विनियोग कर्ता अधिकोष
Invoice—बीजक
I. O. U. (I owe you)—
धारयामि ते (धा० ते०)
Irrigation—भूसिंचन
Issue—निर्गमित करना
Issued—निर्गमित
Issuing Company—
निर्गमक मंडल

J

Joint Stock Company—
संयुक्त स्कन्ध प्रमंडल

L

Land Mortgage Bank—
भू-प्राधि अधिकोष
Law—नियम
Law of Limitiaion—
काल-मर्यादा नियम
Ledger—प्रपंजी
Legal tender—विधिग्राह्य
Lender of last resort—
अन्तिम ऋण-दाता
Lending Institutions—
ऋण प्रदायक संस्था
Leters of credit—साख-पत्र
Letter of Hypothecation—
उपप्राधीयन पत्र
Letter of Indication—
निर्देशन पत्र
Level—स्तर
Liable—दायी, उत्तरदायी
Liability—देय, देयता, दायित्व
Lien—ग्रहणाधिकार
Life Policy—
जीवन गोप लेख, जीवन बीमा पत्र

Limit—मर्यादा
Limited—सीमित
Limping Standard—अपूर्ण धातुमान
Loanable Funds—ऋण प्रदायक राशि
Loose—शिथिल, अबद्ध

M

Margin—अन्तर
Marked—अङ्कित, चिह्नित
Marked Cheque—अङ्कित अथवा चिह्नित धनादेश
Market—विपणि
Marketability—विपणयता
Marking—अङ्कन
Material—महत्वपूर्ण
Material alteration—महत्वपूर्ण परिवर्तन
Maximum—अधिकतम
Measure—माप, मापक
Medium—माध्यम
Memorandum of Association—पार्षद सीमा नियम
Metallic Money—धातु मुद्रा
Metallic Reserve—धातु निधि
Method—पद्धति
Minimum—न्यूनतम
Minor—अवयस्क
Mint—टकसाल, टंकशाला, टंक
Minting—टंकण
Mint par—टंक समता
Misrepresentation—गलत धारणा
Mobility—गति, गति-सामर्थ्य
Money—मुद्रा
Money at call & short notice—या चित एवं अल्पकालीन ऋण
Money Lender—ऋण दाता
Money Market—मुद्रा विपणि
Monometallism—एक धातुमान
Monopoly—एकाधिकार
Mortgage—आधि
Mortgage by Conditional Sale—सशर्त अथवा सनिर्बन्ध विक्रय आधि
Mortgagee—आधिमान
Mortgagor—आधायक
Mutilated cheque—विकृत धनादेश

N

National Saving Certificate—राष्ट्रीय संचय प्रमाण-पत्र
Negligence—उपेक्षा
Negotiable—परक्राम्य
Negotiable Instrument—परक्राम्य विलेख
Negotiable Instrument Act—परक्राम्य विलेख विधान
Negotiation—परक्रामण
Notary Public—विपत्रालोकी
Note—पत्र
Noting—आलोकन
Noting and Protesting a bill—विपत्रालोकन एवं प्रमाणन
Not Negotiable—अपरक्राम्य
Not transferable—अन-हस्तांतरेय

O

Obligation – दायित्व
Official liquidator — शासकीय निस्तारक
Omission—लोपन
Open—विवृत
Open cheque—विवृत धनादेश
Open Market operation— विवृत-विपणि क्रिया
Order—आदेश
Order cheque—आदेश धनादेश
Overdraft—अधिविकर्ष
Over issue—चलनाधिक्य
Out book—बहिपुस्त
Out clearers—बहिर्शोधक

P

Package—संवेष्ट
Packing note—संवेष्टन-पत्र
Paid-up Capital—दत्त पूंजी
Paper Currency Reserve —पत्र चलन निधि
Paper money—पत्र मुद्रा
Parallel—समानांतर
Parallel Standard — समानांतर मान
Parity—समता
Partly paid- अंशतः दत्त
Parity—पक्ष, पक्षकार
Pass book—ग्राहक पुस्तिका
Pawnee—बंधकी
Payee—आदाता
Payment—शोधन, भुगतान
Pay-in slip—निक्षेप-पर्ची
Pay-in slip book— निक्षेप-पर्ची-पुस्तिका
Permanent—अस्थायी
Personal—वैयक्तिक
Persuation—प्रभाव
Pledge—बन्धक
Pledgee—बन्धकी
Pledgor—बन्धक कर्ता
Pool—निधि
Portability—सुवाह्यता
P. O. Saving Bank— प्रेषालय संचय अधिकोष
Post Office—प्रेषालय
Preliminary—प्रारम्भिक
Premium—प्रव्याजि
Present—उपस्थित करना
Presentation—उपस्थिति
Price—कीमत
Primary credit Society— प्रारम्भिक साख-समिति
Printed—मुद्रित
Produce Market— उत्पादन अथवा उत्पाद विपणि
Promise—प्रतिज्ञा
Promissory Note— प्रतिज्ञा अर्थपत्र
Proportion—अनुपात
Prospectus—प्रविवरण
Protection—संरक्षण
Protesting—प्रमाणन
Purchasing Parity— क्रय-शक्ति समता
Purchasing power—क्रय-शक्ति

Q

Quantity—परिमाण
Quota—अभ्यंश

R

Railway Receipt—
संयान प्राप्ति प्रलेख
Rationing—अंशन
Receipt—प्राप्ति, प्राप्ति प्रलेख
Reconstruction—पुनर्निर्माण
Record—अभिलेख
Reference—संदर्भ
Reference letter—संदर्भ पत्र
Registrar—पंजीयक
Registration—पंजीयन
Registered—पंजीयित
Regular—नियमी
Regulate—नियमन करना
Regulation—नियमन
Reliable—विश्वासार्ह
Remittanee—स्थानांतरण
Renewal—नव करण
Replacement—पुनः संस्थापन
Reorganisation—पुनर्संगठन
Report—वृत्त लेख
Representative—प्रतिनिधिक
Reserve निधि
Restoration—पुनः संस्थापन
Restricted—प्रतिबंधित
Restrictive endorsement—
विशेषित पृष्ठांकना
Restricted letter of credit
सीमित साख पत्र
Reverse councils—
प्रति परिषद्-विपत्र
Revocable—निरसनीय
Revolving credit—
चलद साख पत्र
Runners—संधावक

S

Safe custody—सुरक्षा
Safe Custody Deposit—
सुरक्षा निक्षेप
Sale—बिक्री, विक्रय
Sans Recourse—दायित्व रहित
Sans Recourse endorsement—दायित्व रहित पृष्ठांकना
Scheduled Bank—
अनुसूचीबद्ध अधिकोष
Seal—मुद्रा
Sealed Envelope—
मुद्राङ्कित आवरण
Secrecy—गौप्य
Secret—गोपनीय
Secured—प्रतिभूत, सुरक्षित
Security—प्रतिभूति, सुरक्षा
Seigniorage—टंकण लाभ
Set off—प्रतिसाद् करना
Share—अंश
Share capital—अंश पूँजी
Sight Bill—दृश्य विपत्र
Sight Draft—दृश्य विकर्ष
Silver Standard—रौप्य मान
Simple Arbitage—
एकान्तरपणन

Special Crossing—
विशेष रेखांकन

Special Endorsement—
विशेष पृष्ठांकना

Specific guarantee—
विशिष्ट अथवा निश्चित प्रत्याभूति

Speculation—परिकल्पना

Speculative—
परिकाल्पनिक, परिकल्पित

Spot Exchange—
तत्स्थान विनिमय

Spot Rate—तत्स्थान दर

Stability—स्थिरता, स्थैर्य

Stale—वीतकाल

Stale cheque—
वीतकालीय धनादेश

Stamp मुद्रांक

Stamp duty—मुद्रांक कर

Standard—मान

Standardisation—प्रमाणीकरण

Standard Money—
प्रधानमुद्रा, प्रमाणिक मुद्रा

Sterling Area—स्टर्लिङ्ग क्षेत्र

Sterling area Dollar pool
—स्टर्लिङ्ग क्षेत्र डालर निधि

Sterling Balance—पौंड पावने

Stock—स्कन्ध

Stock Exchange—
विनिमय स्कन्ध

Stock Exchange Market—
विनिमय स्कन्ध विपणि

Structure—कलेवर ढाँचा

Subsidiary Company—
सहायक प्रमंडल

Sundry debtors—
विविध अधमर्ण

Surety—प्रतिभूति, जमानतदार

Surrender Value—
अभ्यर्पण मूल्य

Symetallism—मिश्रित धातुमान

T

Table—सारणी

Tabular Standard—सारणीमान

Tangible—मूर्त

Theory—सिद्धान्त

Time liability—काल देय

Title—स्वत्व, उपाधि

Token Money—
गौण मुद्रा, प्रतीक मुद्रा

Total—योग

Transaction—व्यवहार

Transition period—
संक्रमण काल

Transfer—हस्तांतरण

Transferable—हस्तांतरणीय

Transferee—हस्तांतरती

Transferor—हस्तांतरक

Traveller's letter of credit
—अभियात्री साख पत्र

Treasurer—कोषाध्यक्ष

Treasury—कोष

Treasury bill—कोष विपत्र

Trustee—न्यासी

Trustee account—
न्यास लेखा

Trustee securities—
न्यासी प्रतिभूतियाँ

T. T. Rate—तार प्रेषण दर
Turnover—आपणन

U

Uncrossed—अनारेखित
Unfavourable—प्रतिकूल, विपक्ष में
Unlimited—असीमित
Unrestricted—अप्रतिबन्धित
Unsecured—अप्रतिभूत, अरक्षित
Upto-date—अद्यावत्
Urban cooperative Banks—नगर सहकारी अधिकोष
Usufructuary mortgage—ऋणशोधनार्थ प्राधि
Utility—उपयुक्तता, उपयोगिता

V

Value—मूल्य
Velocity—गति
Voluntary liquidation—ऐच्छिक निस्तारण

W

Wages—भृति, मजदूरी
Want—आवश्यकता
Warehouse—कोष्ठागार, भांडार
Warehouse Certificate—कोष्ठागार प्रमाण-पत्र
Warrant—अधिपत्र
Withdrawal form—आहरण प्रपत्र
Without recourse—दायित्व रहित